ओ३म्

भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम
में
आर्यसमाज का योगदान

लेखक

आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री

(सिद्धांत शिरोमणि, हिसार)

सम्पादक

पं० सुरेश शास्त्री धर्माचार्य

फरीदाबाद

प्रकाशक

स्वामी श्रद्धानन्द पुस्तकालय

पलवल (जिला फरीदाबाद)

प्रकाशक

ताराचन्द

मन्त्री,

स्वामी श्रद्धानन्द पुस्तकालय

पलवल, जिला फरीदाबाद

सस्करण · 2004

मूल्य 150/- रुपये

अक्षर मुद्रांकन .

सरमाऊट कम्पयूटर्स

नयी दिल्ली–110002

मुद्रक . अनीस ऑफसेट, नयी दिल्ली–110002

दो शब्द

माननीय श्री लक्ष्मीचन्द आर्य जी के माध्यम से उक्त पुस्तक अवलोकनार्थ मिली। पढते–पढ़ते प्रेरणा व उत्साह के साथ–साथ जो ऐतिहासिक तथ्य दृष्टिगत हुये उससे लगा कि हमारा अपना गौरव कितना ऊँचा व विशाल है। हमारी जाति में कितने बड़े शूरवीर योद्धा, त्यागी व बलिदानी पुरूष हुए हैं और उनके भी त्याग के पीछे वैदिक संस्कृति व महर्षि दयानन्द का शंखनाद प्रेरणा स्रोत है। सत्यार्थ प्रकाश ने कितने ही वीरों को सर्वस्व अर्पण करने के लिए तैयार किया है। आर्य वीरों का बलिदान ही इस देश की संप्रभुता को बनाए रखने मे समर्थ हुआ है। शत् शत् नमन उन वीरों का, उन माताओं और बहनों को तथा उन महान पुरूषों को जिनके बलिदान और त्याग से यह स्वतन्त्रता रूपी उपवन आज भी हरा–भरा है। इस पुस्तक को पुन: मुद्रित करवाने का हमे सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ उन महानुभावों का जिनकी प्रेरणा तथा सहयोग से इस पुस्तक को प्रकाशित कराने मे सफल हो पाया हूँ।

उनमे से चन्द महानुभावों डॉ आर्यवीर भल्ला (प्राचार्य) डी० ए० वी० स्कूल, फरीदाबाद – श्री सुभाष ग्रोवर, फरीदाबाद – श्री अर्जुन देव गुलाटी, फरीदाबाद – श्री केदार नाथ मन्चन्दा, फरीदाबाद – श्रीमति सन्तोष वर्मा, यमुनानगर का विशेष आभार व्यक्त करता हूँ।

राजेन्द्र सिंह बीसला

विधायक, बल्लबगढ

अध्यक्ष, जि० वेद प्रचार मंडल,

फरीदाबाद,

आभार सहित

भारत माता जोकि लगभग 200 वर्ष तक ज़ंजीरों में जकडी रही, उसे स्वतन्त्रता प्राप्त हुई और अनेकानेक वीरों को अपनी कुर्बानी देकर बलिवेदि पर आहूत होना पड़ा। सर्वस्व अर्पण करने वाले रणबांकुरों को फांसी का फन्दा चूमना पड़ा, यातनाओ को सहना पडा, मांओं की गोदियां सूनी हुई, बहनों की राखियां भाई की कलाईयो का इंतज़ार ही करती रहीं, सतियों का श्रृंगार छिन गया परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्त कर ही ली। जिन वीरों ने त्याग बलिदान और सम्पर्ण किया उनके जीवन वृत पर यूं तो अनेकों पुस्तकें लिखी गई किन्तु जिस मार्मिकता के साथ जिस वेदना और पीड़ा के साथ तथा खोजपूर्ण पुस्तक आचार्य श्री सत्यप्रिय जी ने लिखी है उसका विकल्प शायद ही मिले। इसके साथ ही लेखक ने यह भरसक जतलाने का यत्न किया है कि इस स्वतन्त्रता की प्राप्ति में आर्य समाज अथवा आर्य समाजियो और स्वामी दयानन्द के अनुयायियों का कितना योगदान है। सत्यार्थ प्रकाश की प्रेरणा ने कितनों को उद्वेलित किया, कितनों को झिंझोड कर रख दिया। पढ़ने वालों को लगा कि परतन्त्रता में स्वर्ग जैसा सुख भी भोगने योग्य नहीं अपितु स्वतन्त्रता का नरक भी अच्छा है। पराधीन रहना तो ऐसा है जैसा शरीर तो है पर आत्मा नहीं है, स्वाभिमान के बिना तो मरना बेहतर है। जिस परिश्रम के साथ तथा खोजपूर्ण अभिव्यक्ति के साथ लेखक ने पुस्तक की सरचना की है हम उसके दिल से कायल हैं। आभार व्यक्त करने वाले शब्दों का अभाव सा हो गया है। उक्त पुस्तक को पढते हुए जितनी बार हम भावुक और व्यग्र हुए हैं वह कल्पना से भी परे है। इसी से प्रेरित हो कर इस अमूल्य धंरोहर को पुनः नवजीवन प्रदान करने के उद्देश्य से और वर्तमान युवा पीढ़ी जोकि मर्यादाओं को भूल चुकी है को प्रेरित करने के लिए पुनः मुद्रित कराने का संकल्प लिया है। आशा है प्रकाश की किरण पाकर आप सभी कृत कृत्य होंगे।

तारा चन्द आर्य, मन्त्री
स्वामी श्रद्धानन्द पुस्तकालय
पलवल, ज़िला फरीदाबाद

लक्ष्मी चन्द आर्य, प्रधान
स्वामी श्रद्धानन्द पुस्तकालय
पलवल, ज़िला फरीदाबाद

संकल्प पूरा हुआ

(प्रथम संस्करण)

"मन करता है कि इस सामग्री को मिट्टी का तेल डालकर जला डालूं"... प्रिय भाई सत्यप्रिय शास्त्री के पत्र में लिखे इन शब्दों ने मेरी प्रसुप्त संकल्पाग्नि को प्रबुद्ध कर दिया।

आर्य नवयुवकों से मिलकर मुझे सदैव प्रसन्नता होती है। देव दयानन्द की यह ज्ञान प्रसून विकसाने वाली वाटिका सदा लहलहाती रहे और सच्चरित्र, योग्य, कर्त्तव्यपरायण युवक इस वाटिका को प्राणपण से सींचते रहें यही देखने-सुनने को जी चाहता है।

महर्षि दयानन्द बहुमुखी क्रान्ति के अग्रदूत थे। उनके सभी रूप मनमोहक, चित्ताकर्षक, लुभावने और नवजीवन संचारक हैं। महर्षि राष्ट्रभक्त ही नहीं विश्वप्रेमी भी थे। उनका राष्ट्रप्रेम विश्वप्रेम का साधक है, बाधक नहीं। कोई भी राष्ट्र महर्षिप्रणीत राष्ट्र रक्षा के सिद्धान्तों से अपने-आपको सच्चे अर्थों में स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय और अखण्ड बना सकता है, यही ऋषिवर की विशेषता है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक श्री सत्यप्रिय शास्त्री एक ऐसे सदाचारी सुयोग्य नवयुवक हैं जिनका प्रत्येक काम आत्मरति और आत्मसंतोष के लिये हुआ करता है। नाम कमाने, प्रतिष्ठा पाने और अधिकार लिप्सा से वे कोसों दूर रहते हैं।

यही कारण है कि उन्होंने इस पुस्तक में उन आर्यवीरों का जीवन-वृत्त तथा त्याग बलिदान का सच्चा इतिहास लिखा है जो अपने कर्त्तव्य पथ से कभी भी विचलित न हुये थे। जिन्होंने फांसी के तख्ते पर झूलते हुये भी कहा था "आज हमारे लिये विजयदशमी का दिन है। देशवाले हमें Unwept, Unhonoured और Unsung जानें" हमने मृत्यु को मारा है अतः हम पर न रोना, यदि रो सकते हो तो भारत माता की पराधीनता पर रोओ, माता का मान बढ़ाओ और माता के गीत गाओ।

मित्रो! माता की सेवा और प्रतिष्ठा की कामना? क्या यह शोभनीय है?

भारतसन्तान जाग, देश की युवा-शक्ति अपने को पहचान, अपने व्यक्ति समष्टि दोनों ही प्रकार के जीवन को सुन्दर बना। तेरे पूर्वजों द्वारा बनाया गया देश रक्षा, देशभक्ति और सच्ची स्वाधीनता तथा अखण्डता का चित्र इसलिए तेरे समक्ष रखा गया है ताकि तुझे अपने जीवन व्यवहार को देश की परम्पराओं के अनुरूप बनाने का सौभाग्य प्राप्त हो।

देशभक्तो उठो, देश में फैलती जा रही विघटन की विषैली दुर्भावना उभर रही है, साम्प्रदायिकता और दलगत दुदमनीय भेदक भावना तुम्हें चैलेंज दे रही है, अपने रहते क्या इन्हें इसी प्रकार उभरने और देश का नाश करने दोगे?

पुस्तक को लिखने में किये गए परिश्रम और लेखक के उत्साह तथा देशभक्ति के सद्भावों का मूल्यांकन सुविज्ञ पाठकों पर ही छोडते हुये मै इस पुस्तक को देशभक्तों की भेट करता हूं।

ओम्प्रकाश आर्योपदेशक

जालन्धर

भूमिका

(प्रथम संस्करण)

लेखक का जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ जो कि इसके जन्म से पूर्व ही सिखी के भार से मुक्त हो वैदिकधर्मी बन चुका था, न केवल इतना ही प्रत्युत मेरे चाचा श्री हरलालसिंह जी भजनोपदेशो के द्वारा आर्य समाज का प्रचार कार्य भी करने लग गये थे। आसपास के इलाके में हमारा' परिवार आर्यसमाजी परिवार प्रख्यात होने से आर्यसमाजी उपदेशकों के संगम का स्थान बन गया था। अतः अपने बाल्यकाल से ही आर्यसमाजी प्रचारको के विचार सुनने का अवसर मिलता रहा है। धार्मिक इच्छा बलवती होने पर जब माता-पिता ने धर्मप्रचारार्थ भेंट देने के उद्देश्य से अपने बड़े पुत्र (लेखक) को गुरुकुल मे भेजा तो वहां सद्गुरुओं की कृपा से मनन शक्ति प्राप्त हुई। इधर अपने बचपन से ही आर्यप्रचारकों के प्रचार में धार्मिक अंश की अपेक्षा राजनीति का बाहुल्य पाया तो आर्यसमाज के केवलमात्र धार्मिक होने गें कुछ सन्देह हुआ। साथ ही स्वामी रामेश्वरानन्द सरस्वती जी महाराज, स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती महाराज तथा दर्शनाचार्य पं0 जगदीशचन्द्र जी शास्त्री जैसे अपने गुरुओ के जीवनो को राजनीतिक क्रान्ति से पूर्ण पाया तो उस सन्देह की भावना और भी बढी। उपदेशक बनाने के लक्ष्य से माता-पिता द्वारा दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय, यमुनानगर (अम्बाला) मे प्रविष्ट करा दिये जाने पर वहां के नियमानुसार आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संगों में जाने लगा तो वहां अन्त में "भारत माता की जय" के नारे की केवलमात्र धार्मिकता के साथ कोई तुक बैठती न देखकर मैंने आर्यसमाज के इतिहास, सिद्धान्त तथा कार्य-प्रणाली का राजनैतिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने की ठानी। उस अध्ययन का परिणाम है यह

ग्रन्थ। मेरा यह अध्ययन सन् 1955 से आरम्भ हुआ था, पुस्तक मे दी सामग्री की व्याख्यानों, लेखो तथा वार्तालापो मे चर्चा होने पर कुछ हितैषी सज्जनों के आग्रह तथा आन्तरिक प्रेरणा पर लेखनी उठानी पडी। यह ग्रन्थ 1962 के ग्रीष्मावकाश में लिखना शुरू किया था। परन्तु समयाभाव से अढाई अध्याय तक ही लिखा जा सका था। मैं आये वर्ष लगभग ग्रीष्मावकाश मे प्रचारार्थ आर्यसमाज गोविन्दगढ़, जालन्धर जाता रहता हूं। वहां के उत्साही मन्त्री श्री नसीबचन्द जी भारद्वाज तथा अन्य सज्जनों के सात्विक अन्न का प्रभाव कहिये कि सन् 1963 के ग्रीष्मावकाश में उक्त समाज मे रहते हुए ही यह सारा ग्रन्थ लिखा जा सका।

1964 में लिखित ग्रन्थ प्रेसकापी करने के उद्देश्य से जालन्धर ले गया जोकि कार्याधिक्य एव समयाभाव से न हो सकी। वहां से लौटते हुए अपना बिस्तर जिसमें यह हस्तलिखित प्रति भी थी, आर्यसमाज, यमुनानगर में रखकर एक यजुर्वेद पारायण यज्ञ कराने गया। वापिस लौटने पर ज्ञात हुआ कि बिस्तर चोरी हो गया है। उसमें दो-तीन सौ रुपए के सामान के चले जाने का उतना दु:ख न हुआ किन्तु जीवन की संचित निधि लिखित पुस्तक के चले जाने का मर्मान्तक शोक हुआ। पुनः लिखने का विचार सामने आया। उसके कुछ अध्याय मेरे प्रिय शिष्य जयरामसिंह त्यागी ने उद्धृत किये हुये थे। मेरी इच्छा जानकर उन्होने मुझे समर्पित कर दिए। परमेश्वर उन्हें सुखी तथा दीर्घायु करे। इस पुस्तक में कई स्थानों पर अपनी महत्वपूर्ण सम्मति तथा टिप्पणियां देकर मेरे मान्य मित्र श्री प्रो0 राजेन्द्र जी जिज्ञासु तथा श्री प्रो0 जयदेव जी आर्य ने बडी सहायता की है। आर्य जी ने तो भाषा संशोधन मे भी अत्यन्त सहयोग किया है। सच तो यह है कि यदि ये दोनों विद्वान् सज्जन अपनी सम्मतियां न देते तो कई अंशों में यह पुस्तक अपूर्ण रह जाती, इनसे तो हमें इस विषय में अभी काफी काम लेना है। अतः मौनरूप में ही इनके इस उपकार को अपने हृदय में सुरक्षित रखता हूँ। लिखित पुस्तक की पहली प्रेसकापी करने में

मेरे प्रिय शिष्य श्री कर्मवीर जी विद्यावाचस्पति (महाराष्ट्रीय) ने तथा दुबारा कापी करने में मेरे प्रिय अनुज श्री विजयपाल आर्य बी0 ए0 ने असीम प्रयास किया है। यदि मेरे आशीर्वाद में शक्ति हो तो चाहूंगा कि इस कृपा से ये दोनों ही सज्जन आर्यसमाज के रत्न बने। यद्यपि लेखक देश की स्वाधीनता के लिए बलिदान देनेवाले सभी शहीदों का हार्दिक सम्मान करता है। परन्तु यहां उन्हीं का वर्णन किया गया है जिन्हे आर्यसमाज से देशसेवा की प्रेरणा मिली थी। इस पुस्तक को आप राष्ट्र की बलिवेदी पर कुर्बान होनेवाले आर्यसमाजी शहीदो की सूची कह सकते हैं। इतने पर भी मैं यही कहूंगा कि मैंने यह आर्यसमाज के इस उपेक्षित पहलू का एक अधूरा रेखचित्र प्रस्तुत किया है। अब इसे पूर्ण कर रंग भरना, सजाना चतुर चित्रकारों का कार्य है। मैं अपने मान्य बन्धु श्री पं0 ओमप्रकाश जी आर्य महोपदेशक जालन्धर का तो अत्यन्त ही आभारी हूॅ जिनकी कृपा, सद्‌भावना तथा पुरुषार्थ से यह पुस्तक प्रकाशित हो सकी है। साथ ही उन लेखक महानुभावों का भी अत्यन्त कृतज्ञ हूॅ जिनके लिखित साहित्य से उदाहरणों के रूप मे इस ग्रन्थ में सहायता ली गई है। सहायक-साहित्य-सूची अन्त में दी गई है। भूल-चूक व कमी का रह जाना स्वाभाविक ही है। अतः विज्ञ पाठ्कों से नम्र निवेदन है कि इस पुस्तक में जहां कहीं भूल-चूक जान पडे उदार भाव से सूचित करने की कृपा करें, जिससे कि आगे उसका संशोधन किया जा सके।

प्रमाणसिद्धान्तविरुद्धमत्र यत्किंचिदुक्तं मतिमान्द्यदोषात्।
मात्सर्यमुत्सार्य तदार्यचित्ताः प्रसादमाधाय विशोधयन्तु।

आर्य शहीदों का उपासक
सत्यप्रिय शास्त्री, सिद्धान्तशिरोमणि
उपाचार्य
दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय
हिसार (हरियाणा)

प्रागुक्ति

वर्तमान संस्करण

इस ग्रन्थ का पहला संस्करण 1969 में प्रकाश मे आया था। आर्यजगत् मे अपने विषय का यह पहला ग्रन्थ था, पाठकों तथा विद्वानों ने बहुत सराहा। बहुत शीघ्र ही पुस्तक समाप्त हो गई जिसकी आशा नहीं थी, लेखक के पास पुस्तक प्राप्ति के लिये पत्र पर पत्र आने लगे परन्तु उत्तर पाकर वे निराश हो जाते थे। पुनः प्रकाशन के आग्रहात्मक पत्र आते थे। इस मध्य देश में अनेक परिस्थितियां बदलीं। इतिहास का रथ आगे बढ़ चुका था। अध्ययन में सामग्री का प्राचुर्य था, इधर सस्था का प्राचार्य बन जाने से समयाभाव तथा कार्य की अधिकता तो थी ही। हितैषी जनों के पुस्तक प्रकाशन के आग्रह को टाल नहीं सकता था तथा पूर्ण करने में भी झिझक होती थी। क्योकि द्वितीय संस्करण में नवीन सामग्री देना आवश्यक था अतः पुस्तक का बढ़ना स्वाभाविक ही था। एक दिन आर्यजगत् की कर्मठता की प्रतिमा, त्यागी तपस्वी सन्यासी श्री स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती प्रधान परोपकारिणी सभा अजमेर ने आदेशत्मक प्रकार से कह दिया कि पुस्तक की प्रतिलिपि तैयार करो, हरियाणा साहित्य संस्थान से छपवा दूंगा। उनके इस आदेश के आगे मुझे अपने सारे हथियार डालने पडे, बहानेबाजी दूर करनी पडी तथा विवशताओं के चोले को परे फैंककर समय निकालना पड़ा जिसके परिणामस्वरूप यह द्वितीय सस्करण पाठकों के सामने आ सका है। इसका सम्पूर्ण श्रेय आर्यजगत् के इस महामहिमामय सन्त को ही है। जिसके लिये उनके पूज्य चरणों में नमस्कार करता हुआ मैं इस ग्रन्थ का द्वितीय संस्करण पाठकों के सामने उपस्थित कर रहा हू। पुस्तक की उपयोगिता का मूल्यांकन विज्ञ पाठकों पर ही छोडता हूं।

महर्षि-निर्वाण-दिवस
2042 वि0
1985 ई0

निवेदक :
सत्यप्रिय शास्त्री,
एम. ए साहित्याचार्य
प्राचार्य-दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय
हिसार (हरियाणा)

।। ओ३म् ।।

प्रथम अध्याय

आर्यजाति के जीवन में वह सबसे बडा भारी दुर्दिन था, जबकि राजर्षि श्रीकृष्ण के लाख समझाने पर भी भरे दरबार में "सूच्यग्रं नैव दास्यामि बिना युद्ध्येन केशव" की घोषणा करके राष्ट्रद्रोही कुपथगामी दुर्योधन ने इस देश के लिये प्रलयंकर महाभारत के युद्ध की चिंगारियों को हवा दी थी। आर्यजाति के जीवन में उसका परिणाम पतन, ह्रास, निर्बलता एवं शताब्दियों की दासता के रूप में सामने आया, अपना विश्वविमोहक गौरव, प्रभुत्व, समस्त ब्राह्मणत्व तथा राष्ट्र के अदम्य एवं अप्रतिहितत्व का प्रतीक समस्त क्षात्रबल उस युद्धाग्नि की भेंट हो गया। शक्ति के अभाव में विजातीय तत्त्वों ने आर्य-जाति को कुचलना आरम्भ कर दिया। शारीरिक दासता के साथ-साथ सच्ची वेदविद्या के ज्ञाता ब्राह्मणों के अभाव मे राष्ट्र का अध्यात्मपथ भी घोर अज्ञान अन्धकार से परिपूर्ण हो गया। जिसके कारण आर्यावर्तीय नागरिकों के नानाविध दुर्गुण, दुर्व्यसन एवं कुरीतियों ने पदार्पण किया। जो आर्यजाति तप, त्याग, सदाचार, शक्ति, विज्ञान, राजनीति एवं आर्थिक दृष्टि से कभी सारे विश्व का नेतृत्व करती थी, वही जाति आज इन सब बातों के लिए संसार के सामने झोली पसारे भिक्षुक के रूप में खड़ी दिखाई देने लगी। सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य छिनकर दासता की दीनतामयी तथा दयनीय घडी आरम्भ हुई। संसार से पाखण्ड, गुरुडम, कुरीतियों तथा रुढ़िवाद के भूत को भगानेवाली इस जाति के अपने ही जीवन में इन सभी कुकृत्यों का बोलबाला हुआ। संसार का अन्नदाता इस देश का किसान अन्न के एक-एक दाने के लिये तरसने पर मजबूर हो गया। अनाथों की करुण कराहें, बाल विधवाओ का हृदयविदारक करुणक्रन्दन, एवं वेद के सत्पथ से विचलित मानव का आर्तनाद ही सुनने को मिला था, इसके साथ ही भारतीयों के दुर्भाग्य से अस्पृश्य समझे जानेवाले निम्नवर्ग को ईसाई पादरी तथा मुस्लिम मुल्ला तो अपनी पकी खेती जानकर दोनों हाथों से काटने में संलग्न थे।

ऐसी असहाय दशा में पडा भारत किसी उद्धारक, अपने मृतप्राय तन में संजीवनीसंचारक कुशल वैद्य की प्रतीक्षा मे था, जो कि उसके समस्त दु.खो, क्लेशों का पूर्ण निदान कर के सर्वविध स्वास्थ्यलाभ करा सके और उसके यथार्थस्वरूप को दर्शा सके, ऐसे सर्वथा विपदाच्छन्न कराल काल मे भारत के कार्यक्षेत्र में ऋषिवर दयानन्द सरस्वती का आगमन हुआ। पूर्व इसके कि कार्यक्षेत्र मे अवतीर्ण होने के अनन्तर भारत के उद्धारार्थ किये गये महर्षि दयानन्द सरस्वती के गौरवपूर्ण कार्यों का वर्णन किया जाये उससे पूर्व ही सन् 1857 ईस्वी के स्वाधीनता-संग्राम के सम्बन्ध में ऋषि के द्वारा किये गये कार्यों विषयक कुछ तथ्यों को उपस्थित कर देना उचित तथा प्रसंगानुकूल जान पडता है। अतः तद्विषयक कुछ तथ्य उपस्थित किये जा रहे हैं।

1857 का स्वाधीनता संग्राम और महर्षि दयानन्द सरस्वती

तत्कालीन विदेशी ब्रिटिश सरकार, जिसके सुदृढ दासता के लोहे के शिकंजे मे पड़ा यह देश शताब्दियों से स्वतन्त्रता के लिए छटपटा रहा था कि घातक चालों के परिणामस्वरूप यहा की जनता में उस समय उस शासन के विरुद्ध सर्वप्रथम जो शक्तिशाली महान् विस्फोट हुआ था वह यही स्वाधीनता का प्रथम महान् संग्राम था, जिसे उन विदेशी शासको ने प्रखर देशभक्त तत्वों को बदनाम कर असफल करने के लिये गदरसंज्ञा प्रदान की। इसमें भारत के अटक से लेकर कटक तक तथा कशमीर से लेकर कन्याकुमारी तक के विभिन्न मतवादी निवासियों ने पारस्परिक सभी मतभेदों को भुलाकर एकता के सूत्र में संगठित हो स्वाधीनता के पावन उद्देश्य से अंग्रेजों के दासत्व के चोले को अपने कंधों से उतार फैकने का दृढ निश्चय कर लिया था। अग्रेजों को भारत से उनके घर भेजने की यह एक पूर्वनिश्चित गुप्त योजना थी, जिसको भारत के विभिन्न प्रान्तों के प्रभावशाली व्यक्तियो ने मिलकर तैयार किया था। यह योजना तैयार कर उसे सफलता की ओर ले जानेवालों में ऋषिवर दयानन्द सरस्वती, उनके विद्यादाता

गुरु विरजानन्द दण्डी तथा उनके गुरु स्वामी पूर्णानन्द जी भी सम्मिलित थे, इसी तथ्य की पुष्टि करते हुये एक महान् लेखक लिखता है – 'विरजानन्द ने अपने प्रज्ञानेत्रों से साक्षात् कर लिया था कि भारत की दुर्दशा के दो प्रधान कारण हैं, एक अनार्ष ग्रन्थप्रसार तथा दूसरा विदेशी राज्य। आज ऐतिहासिक मुक्तकण्ठ से कहते हैं कि विरजानन्द तथा उनके गुरु पूर्णानन्द सरस्वती ने इस संग्राम का आरम्भ कराया था, इसके लिए वे दो हेतु प्रस्तुत करते हैं, संवत् 1914 वि0 1857 ई0 स्वतन्त्रता संग्राम में जिन राजाओं की जैसी प्रवृत्ति हो रही थी उसको देखते हुए यह कहा जा सकता है समर में जूझने की भावना उनकी अपनी न थी, वह किसी दूसरे की प्रेरणा से प्रसूत थी। स्वभावत: ही यह मानना पडता है कि वह किसी ऐसे व्यक्ति की थी, जिसकी बात टालने का उन्हें साहस न होता था। भारतीय संस्कृति मे गुरु ही उच्च पदस्थ एक ऐसा व्यक्ति है जिसकी आज्ञा का उल्लंघन करने की कल्पना भी मस्तिष्क में आ ही नहीं सकती। दूसरा प्रमाण वे यह प्रस्तुत करते हैं कि जिज्ञासु दयानन्द 1855 ईस्वी में कनखल में विरजानन्द के गुरुदेव स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती की सेवा में विद्याप्राप्ति के निमित्त पहुँचते हैं। पूर्णानन्द जी उन्हें कहते हैं कि हम बहुत वृद्ध हो चुके हैं, हम आपका मनोरथ पूर्ण करने में असमर्थ हैं, आप मथुरा जाइये, वहां विरजानन्द सरस्वती हमारे योग्य शिष्य रहते हैं, वे आपकी मनोकामना पूर्ण करेंगे। व्यग्र दयानन्द कनखल से सीधे मथुरा नहीं जाते हैं। वे उत्तराखण्ड की ओर चलकर कानपुर तथा नर्मदा के परिसर में पहुँचते हैं। यह वह क्षेत्र है जहां स्वतन्त्रता संग्राम का आयोजन किया जा रहा था, तो क्या यह समझना उचित न होगा कि वृद्ध पूर्णानन्द ने युवा बलिष्ठ दयानन्द को उस ओर प्रेरित किया हो? भले ही कुछ लोगों को ये तर्क न जचें, किन्तु ये ऐसे दुर्बल व हीन भी नहीं हैं कि उनकी उपेक्षा की जा सके।

(विरजानन्द चरित पृ0 118, 119, लेखक–स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती)

इसी तथ्य को पुष्टि करते हुए एक और विख्यात इतिहासकार लिखता है कि अप्रैल 1855 से जबकि उसका दूसरा समवयस्क (नाना धोधोपन्तराव) भारत के पेशवा बनने के बाद क्रान्ति यज्ञ के समारम्भ में दीक्षित होने जा रहा था, मार्च, 1857 तक वह प्रायः गंगा के साथ गंगोतरी और बद्रीनाथ से बनारस तक गढ़वाल, रूहेलखण्ड दोआब और काशी के प्रदेशो में घूमता रहा, तब क्रान्ति की तैयारियां जनता में भीतर ही भीतर जोरों से की जा रही थीं। 1856 के मई मास में वह नाना के नगर कानपुर और आगे पांच मास तक कानपुर इलाहाबाद के बीच ही चक्कर काटता रहा, फिर बनारस मिर्जापुर चुनार होकर मार्च 1857 में जब क्रान्ति की तैयारियां लगभग पूरी हो चुकी थीं, और नाना साहब के सैकड़ों सन्देशवाहक साधु फकीरों आदि के रूप में पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण देश के हर कोने में क्रान्ति का सन्देश लेकर रवाना हुए और स्वयं नाना साहब और उनके मन्त्रदाता अजीमुल्ला की क्रान्ति आरम्भ करने की तारीख निश्चित कर उसकी सारी तैयारी अपनी आंखों से देख लेने को तीर्थयात्रा करने निकले तब दयानन्द भी बनारस से मिर्ज़ापुर, चुनार होकर नर्मदा के स्रोतों के दक्षिण की ओर निकल पडा। अपने आरम्भिक जीवन का परिचय देने के लिए दयानन्द की स्वलिखित जीवनी का यहा यकायक अन्त हो जाता है, आगे तीन वर्ष क्रान्ति युद्ध के दिनो वह कहां रहा और क्या करता रहा ? इसकी कोई विगत उसने कभी नहीं दी, यह कहना तो कठिन है कि क्रान्ति युद्ध या उसके संगठन के प्रति उसका क्या रुख रहा, और उसने भी उसमें कोई भाग लिया या नहीं, तो भी उसकी जीवन-घटनाओं की विधियों का जो संक्षिप्त सा विवरण ऊपर दिया गया है, उससे यह बात तो स्पष्ट हो ही सकती है कि क्रान्ति की तैयारियों आदि से उसे निकट परिचय करने का अवसर अवश्य मिला, यह बात मान लेना आसान नहीं कि दयानन्द के सदृश भावनाप्रवल और चेतनावान् हृदय और मस्तिष्क का युवक उसके प्रभाव से अछूता बचा है ? और उस युद्ध की सफलता, विफलता की

उस पर कोई प्रतिक्रिया न हो, अतः उसकी उन तीन वर्षों के बारे मे यह पूरी चुप्पी भी कम अर्थभरी प्रतीत नहीं होती।

(हमारा राजस्थान पृ0 367-368, ले0 पृथ्वीसिंह महता विद्यालंकार)

दयानन्द को विरजानन्द के पास पढ़ने की प्रेरणा विरजानन्द के गुरु पूर्णानन्द ने 1855 में ही दी थी, परन्तु क्रान्ति आन्दोलन के शीघ्र छिड़ जाने की सम्भावना के कारण प्रतीत होता है कि उनकी मन.स्थिति तब गम्भीर अध्ययन की ओर न थी, किन्तु उसकी विफलता ने 1860 में वह मनःस्थिति पैदा कर दी,

(हमारा राजस्थान पृ0 260)

स्वामी दयानन्द सरस्वती नाना साहब पेशवा के गुरु थे, 1857 के युद्ध के बाद स्वामी दयानन्द का कार्य इतने महत्व का रहा कि उसके विवरण के लिए तो पूरे एक लेख की आवश्यकता पडेगी, पर यहां इतना कहना ही काफी होगा कि अगर स्वामी दयानन्द न होते तो नाना साहब पेशवा ने 1857 की हार के बाद आत्महत्या कर ली होती, स्वामी जी ने उन्हें आत्महत्या करने से रोका, और उन्हे आदेश दिया कि अवसर आने पर वे दूसरा युद्ध लड़ें, तब तक के लिए उन्होंने नाना साहब को सन्यासी बनकर धर्म-जागृति करने का गुरुमन्त्र दिया, और यह सब हुआ कन्याकुमारी के मन्दिर के सामने सागर तीर पर, सूर्य को साक्षी मानकर। यह सारा चमत्कार स्वामी दयानन्द ने कैसे किया ? यह उन्हीं के शब्दों में पढें, भारत की पश्चिम सीमा की तरफ मठ मन्दिर में रहकर आप जनसेवा के लिए जीवनदान कीजिए, मनुष्यों को पारमार्थिक कल्याण के लिए उपदेश कीजिए, ऐहिक कल्याण के लिए रोगियों को बिना मूल्य वृक्षों के मूल और पत्तियों से औषध बनवाकर वितरण करते रहिये, मृत्यु तक शान्ति और आनन्द के साथ शेष जीवन बिता सकेंगे, आप आत्महत्या कभी न करें, हमारे इस उपदेश को तीनों ने ही (नाना साहब, उनके साथी दुर्जनराव और सेनापति तात्या टोपे) समान रूप से ग्रहण किया, और तीनों के वहां से चलने के पहले मैंने नाना साहब को सन्यास देकर उनका नाम दिव्यानन्द सरस्वती रख दिया था, शेष

दोनों ने सन्यास लेने का साहस नहीं किया, दिव्यानन्द ने ऐसा ही होगा, भगवान की इच्छा पूर्ण हो, कहा और तीनों वहां से चल दिये, मेरे पास कल्याण जी की जो डायरी है, उसमे नाना साहब का नाम दिव्यानन्द ही मिलता है, 1957 मे जब दत्तो वामन पोतदार सिहोर गये थे, तब उन्होने वहां नाना साहब की औषधियो के संग्रह की बही खुद देखी थी, और उसे स्वीकार किया था, नाना साहब के काग़ज़ात व कल्याण जी की डायरी उस समय उपलब्ध नहीं थी, इसलिए उस समय कोई ऐसा प्रमाण नहीं था कि निश्चित रूप से कहा जा सके कि नाना साहब कहां रहे थे? धर्मयुग साप्ताहिक में 9 से 15 मई 1976 का पृ0 8

बनारस के उदासी मठ के सत्यस्वरूप शास्त्री के कथनानुसार साधु सम्प्रदाय में तो बराबर यह अनुश्रुति चली आती है कि दयानन्द ने 1857 के सघर्ष में महत्त्वपूर्ण भाग लिया था। (राष्ट्रीय इतिहास का अनुशीलन, ले0 जयचन्द्र विद्यालंकार)

कुछ आर्य भाई राजकोट जाने के लिए हमारे साथ बैठे, उनमें एक रेल कर्मचारी है, उन्होंने बताया कि 1857 ई0 के समय नाना धोन्धू पन्त को सुरक्षित रहने के लिए मोरवी के सामन्त के नाम ऋषि दयानन्द ने पत्र देकर भेजा था, सुना है कि वह पत्र किसी सेठ के पास सुरक्षित रहा, 2-9-1965 के आर्योदय साप्ताहिक दिल्ली में स्व0 जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती, सदस्य लोकसभा का मेरी दक्षिण भारत यात्रा नाम लेख पृ0 कालम 2

इतिहास के नये अनुसन्धान :

आज के अनुसन्धान एवं जागृति के युग मे तो सत्य-जिज्ञासु जागरूक इतिहासकार सचेत होने लगे हैं, निम्न तथ्य इस बात के मुंह बोलते चित्र हैं-

'ब्रिटिश सत्ता के उन्मूलन के लिए 1857 ई0 में जो राज्य क्रान्ति हुई थी, उसमें ऋषि दयानन्द ने भूमिका अदा की थी, इतिहास की इस नवीन स्थापना पर आज यहां गोष्ठी में महत्त्वपूर्ण चर्चा हुई,

लाहौर के वयोवृद्ध पत्रकार तथा समाजसेवी श्री वासुदेव वर्मा ने इस विषय पर अपना निबन्ध पढ़ते हुए अनेक नवीन तथ्यो पर प्रकाश डाला, स्वामी पूर्णानन्द से ब्रिटिश अत्याचारों की हृदयविदारक कथा सुनकर किस प्रकार ऋषि दयानन्द ने तात्या टोपे और नाना साहब से निकट सम्पर्क स्थापित किया, और किस प्रकार योजनाबद्ध रूप से क्रान्ति के इन नेताओ ने विभिन्न रियासतों तथा आम जनता को संगठित करने का प्रयत्न किया, यह इतिहास का एक रोचक किन्तु अलिखित अध्याय है, भारतीय साहित्यकार संघ की इतिहास परिषद् की ओर से आयोजित इस गोष्ठी की अध्यक्षता करते हुए श्री क्षितीश वेदालंकार ने कुछ नये प्रमाण प्रस्तुत करते हुए इस धारणा को मिथ्या सिद्ध किया कि नाना साहब पेशवा सन् 1857 की राज्यक्रान्ति विफल हो जाने के पश्चात् नेपाल चले गये थे, उन्होंने कहा कि नाना साहब पेशवा गुप्त रूप से भावनगर (सौराष्ट्र) के पास सिहोर नामक स्थान में साधु के रूप में रहते रहे, और मोरवी में उनका स्वर्गवास हुआ, जहां उनकी समाधि बनी हुई हैं, नाना साहब पेशवा ने अपनी मृत्यु से पहले स्वयं इस रहस्य को जिन लोगों के सामने उद्घाटित किया था उनमें से कुछ लोग अभी जीवित है, और उन्हीं से इतिहास के इस नवीन पहलू पर प्रकाश पड़ा है। 'दैनिक हिन्दुस्तान, दिल्ली, 12-8-69 के पृ0 3 कालम 3 पर देखें।

उक्त कथन में नाना साहब का मोरवी मे शरीरान्त होने का उल्लेख है, इसी सम्बन्ध में यह प्रमाण भी देखने योग्य है।

नाना साहब की छतरी-श्री भगवान्देव (वर्तमान संसद सदस्य) टंकारा वाले ने आर्यनेता पं0 रामगोपाल वैद्य को बताया कि नाना साहब की छतरी मोरवी नगर में मछू नदी के किनारे रेलवे लाइन के पास 'शकर आश्रम' में बनी हुई है, वैद्य जी ने यह बात पं0 युधिष्ठिर मीमांसक को बताई, उन्होंने अपने परिचित श्री इन्दूलाल पटेल (मोरवी) को पत्र लिखकर इसकी जानकारी मांगी, उनसे निम्न पत्र भी मीमांसक जी को प्राप्त हुआ-

'मोरवी आर्यसमाज के प्रमुख श्री पानाचन्द देवचन्द (अब अति वृद्ध और सुनने-समझने की अति कमी) छोटे थे तब नदी पर स्नान करने जाते थे, तो आते-जाते शीतला माता के मन्दिर के पास नये ठहरे हुए सन्यासी के दर्शन करते थे, प्रसादादि रूप मे शक्कर को देते थे। कुछ समय बाद नगर में अपने गृह लाये और ठहराये, सन्यासी ने गृहिणी का असाध्य रोग मिटाया। सन्यासी ने कांच के ऊपर कुछ चित्र बनाये, जो 1857 के वीरों के थे, सन्यासी के लिए किया खर्च चौपडे (बही) में लिखा मिलता है। मरण समय सन्यासी बोले-मैं नाना साहब पेशवा हूं, यह मेरी लकडी है, यह लो, आधी सोने की मोहर से भरी है, ठाकुर बाघ जी को दे देना और मेरा उचित अग्नि संस्कार करने को कहना इत्यादि। उनकी समाधि शंकर आश्रम शिवमन्दिर रूप में है, कांच के फोटो नगर रोड के घर में मौजूद हैं, दो-तीन टूट गई हैं।

वर्तमान नगर रोड का नाम 'चन्द्रकान्त' है। उनके दादा के समय की बात है, गुजराती साप्ताहिक पत्रिका 'साधना' रेडक्रास रोड, अहमदाबाद में लेखमाला नाना साहब के विषय पर आयी थी, उसमें उनके बारे में कुछ नवीन बातें थीं, मोरवी के नगर रोड के घर पर जो चित्र हैं, मैंने अम्बालाल बावा के साथ देखें हैं। चित्र वाटर कलर के है, तिथि नहीं है। (इन्दूलाल पटेल)

इस प्रमाण से नाना साहब का मोरवी मे साधुवेश में निवास तथा देहान्त सिद्ध है। इस पर प्रश्न यह है कि वे जीवन के अन्तिम समय में जबकि तत्कालीन शासकों की दृष्टि में सबसे बडे विद्रोही थे और अंग्रेज सरकार का सारा ही तन्त्र उन्हें पकड़ने को उद्यत था, तब उनका परिचय मोरवी में कैसे हो गया कि जिससे वे अपने को सुरक्षित करने में समर्थ हो सके। निश्चय ही ऋषि दयानन्द से उनका सम्पर्क हुआ होगा और ऋषि दयानन्द के माध्यम से उन्हें मोरवी में सिर छिपाने के लिए विश्वस्त स्थान प्राप्त हो सका। इसका अर्थ है कि उनके कार्य में न्यूनाधिक ऋषि दयानन्द का भी कुछ न कुछ योगदान रहा होगा जिससे कि अपने सहकारी मित्र को मुसीबत से

बचाने के हेतु ऋषि दयानन्द को नैतिकता के नाते कम से कम इतना तो करना पड़ा होगा।

'सन् 1856 बमुताबिक सम्वत् 1913 को एक पंचायत मथुरा के तीर्थगाह पर मुनआविद हुई। उसमें हिन्दू, मुसलमान और दूसरे मज़हब के लोगों ने शिरकत की थी। इस पंचायत में एक नाबीना हिन्दू दरवेश को लाया गया था। एक पालकी में बिठाकर, उनके आने पर सब लोगों ने उनका अदब किया। जब वह एक चौकी पर बैठ गया तब हिन्दू-मुसलमान फकीरों ने उनकी कदमबोसी की। इसके बाद सब हाज़रीन पंचायत के लोगों ने उनका अदब किया। सबके अदब के बाद नाना साहब पेशवा, मौलवी अजीमुल्लाखान, रंगू बाबू और शहनशाह बहादुरशाह का शहजादा इन सबने इनके अदब में कुछ सोने की अशर्फियां पेश कीं। इसके बाद एक हिन्दू और एक मुसलमान फकीर ने यह कहा कि हमारे उस्ताद साहिबान की जबान मुबारिक से जो तकरीर होगी उसे तसल्ली के साथ-साथ साहिबान सुनें और वह इस मुल्क के लिए बहुत मुफ़िद साबित होगी और वह वलीअल्लाह साधु बहुत जवानों का आलिम और हमारा और हमारे मुल्क का बुजुर्ग है। ख़ुदा की मेहरबानी से ऐसे बुजुर्ग हमें मिलें, यह ख़ुदा का हम पर बड़ा अहसान है।

दरवेश की तकरीर का आग़ाज़

सबसे पहले उन्होंने ख़ुदा की तारीफ की, और फिर उर्दू में उसका तर्जुमा किया। इस बुजुर्ग ने यह कहा कि आज़ादी जन्नत है और गुलामी दोज़ख है। अपने मुल्क की हकूमत गैरमुल्क की हकूमत के मुकाबले में हजार दर्जे बेहतर है। दूसरों की गुलामी हमेशा बेइज्ज़ती और बेशर्मी का बायस है, इसमें किसी कौम से और किसी मुल्क से कोई नफरत नहीं हैं। हम तो ख़ुल्केख़ुदा की महबूबी के लिए ख़ुदा से रोज़ दुआ मांगते हैं, मगर हुक्मरां कौम खासकर फिरंगी जिस मुल्क में हकूमत करते हैं, उस मुल्क के बाशिन्दों के साथ इन्सानियत का बरताव नहीं करते और कितनी ही अपनी अच्छाई की तारीफ करें, मगर उस मुल्क के बाशिन्दों के साथ मवेशियों से भी गिरा हुआ बर्ताव

करते हैं। ख़ुदा की खलकत में सब इन्सान भाई-भाई हैं। मगर ग़ैर मुल्की हुक्मरां कौम उन्हें भाई न समझकर गुलाम समझती है। किसी भी मज़हब की किताब में ऐसा हुक्म नहीं है, कि अशरफ मखलुकात के साथ दगा की जाये और अल्लाह के हुक्म की खिलाफबरजी की जाये। इस वास्ते मातहत लोगों का न कोई ईमान है और न कोई उनकी शान है। फिरंगियों में बहुत सी अच्छी बाते भी हैं, मगर सियासी मसले में आकर वह अपने कौल-फैल को न समझकर फौरन बदल जाते हैं और हमारी अच्छाई और नेकसलाह को फौरन ठुकरा देते हैं। इसकी असल बजूहात यह कि हमारे मुल्क को अपना वतन नहीं समझते। हमारे मुल्क का बच्चा-बच्चा उनकी खैरख्वाही का दम भरे फिर भी अपने वतन की बायस है इन्हें अपने ही वतन से मुहब्बत है इसलिए ये सब बाशिन्दगान हिन्द से इलतजा करते हैं कि जितना वह अपने मजहब से मुहब्बत करते हैं, उनता ही इस मुल्क के हर इन्सान का फर्ज है कि वह वतनपरस्त बने और मुल्क के हर इंसान को भाई-भाई जैसी मुहब्बत करे तब तुम्हारे दिलों के अन्दर वतनपरस्ती आ जायेगी तो इस मुल्क की गुलामी खुद-ब-खुद जुदा हो जायेगी। हिन्द के रहनेवाले सब आपस में हिन्दी भाई हैं और बहादुरशाह हमारा शंहशाह है (तसनीफ करदह मीर मुश्ताक मीरासी कासिद सर्वखाप पंचायत)।

नोट - इस सन्यासी का नाम मालूम किया तो इसका नाम बिरजानन्द था और बहुत समय से मथुरा में रहते हैं और संस्कृत की तालीभ देते हैं और अल्लाताला के मोहतविद हैं।

'सम्वत् 1913 विक्रमी में यह पंचायत दूरदराज जंगल में की गई और शुरु भादों का माह था। यह पंचायत चार रोज तक मतवातर होती रही। पहले दिन आने वाले सब मेहमानों की एक-दूसरे से मुलाकात कराई गई थी। दूसरे दिन हज़रत आदम से लेकर हज़रत मुहम्मद अलरसूल सलै अल्लाह अलैह व सलम तक सवाने उमरी सुनाई गई। तीसरे दिन राम, कृष्ण और महात्मा बुद्ध और शंकराचार्य, महावीर स्वामी अनेक ऋषि-मुनि और राजा-महाराज़ाओं के जिन्दगी

की दास्तानों पर रोशनी डाली गई और चौथे दिन नाबीना सन्यासी महात्मा बिरजानन्द जी और मुसलमान साई मियां ममदूनशाह ने शुरु में विरजानन्द जी की तकरीर से पहले शुरुआत की। आज के दिन की तकरीर में खास-खास लोगों की ही जमायत थी और कोई खुफिया सरकारी आदमी इसमें नहीं था। नाबीना महात्मा की तकरीर बहुत ही पुरजोर थी और हर मज़हबी इल्म से ताल्लुक रखती थी। डेढ़ घण्टे तक तकरीर होती रही। मैंने इनकी तकरीर के खास-खास अलफाज तहरीर किये हैं। बाकी उन्होंने हर पहलुओं पर रोशनी डाली थी। जब महात्मा बिरजानन्द को पालकी में बैठाकर लाया गया, उस वक्त हिन्दु-मुसलमान फकीरों ने इनकी खुशी में शंख, घड़ियाल, नागफणी, नक्कारा, तुरही और नरसिंहे बजाये थे। खुदापरस्ती और वतनपरस्ती के गीत गाये थे। यह नाबीना साधु हर इल्म के समझने की ताकत रखता था और खुदा का जलवे-जलाल इनकी जुबान से जाहिर होता था। मैंने भी अपनी रुह के तकाज़े के मुताबिक पांच फूल उसके सामने पेश किये और उनकी कदमबोस की। खुदा से दुआ मांगी की खुदा ऐसी नेक रुहों को ख़लकत की भलाई के लिये हमेशा पैदा कीजिये।

(तसनीफ करदह मीर मुश्ताक मीरासी)

नोट – मीर साहब का यह स्वलिखित उर्दू फारसी लिपि का मूल पत्र आर्य मर्यादा साप्ताहिक के कार्यालय 15 हनुमान रोड, नई दिल्ली में सन् 1970 में निवास करनेवाले प्रसिद्ध विद्वान् श्री जगदेवसिंह सिद्धान्ती तत्कालीन सम्पादक के पास सुरक्षित था। अब उनके स्वर्गवास के पश्चात् पता नहीं कि कहां है?

विशेष :- इस पत्र के लेखक सर्वखाप पंचायत के क्लर्क तथा प्रतिनिधि श्री मीर मुश्ताक मीरासी हैं। 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम को क्रियान्वित करने के विचारार्थ मथुरा में सारे देश के राष्ट्रप्रेमी नेताओं तथा राजनीतिज्ञों की जो विशाल बैठक हुई थी, उसमें उक्त मीरासी महोदय सर्वखाप पंचायत के प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुए थे। यह पंचायत पुरातन हरियाणा प्रदेश का एक ग्रामीण संगठन

था। प्राचीन मानचित्र के अनुसार हरियाणा प्रान्त का विस्तार मुलतान से लेकर मन्दसौर (मध्य प्रदेश) तक था। इस पंचायत की अपनी एक सेना थी जिसमें 85 हज़ार पहलवान योद्धा थे। जिन्होंने सिकन्दर की सेनाओं को रोककर वापिस जाने पर विवश कर दिया था। देश की स्वाधीनता के प्रत्येक मोर्चे पर यह सेना सदैव अग्रणी रहती थी। 1857 में अंग्रेजी साम्राज्य का तख्ता उलटने के लिए जो गुप्त बैठकें होती थीं, उनमे से एक बैठक में मीर साहब सम्मिलित हुऐ थे। वहां उन्होने जैसा देखा वैसा हाल इस पत्र में पढ़ सकते हैं। इन पत्रों के लिये हम चौ0 कबूलसिंह जी महामन्त्री सर्वखाप पंचायत शोरम जि0 मुज़फ्फरनगर (उ0 प्र0) के अत्यन्त आभारी हैं जिनकी कृपा से आर्यजगत् को यह महत्त्वपूर्ण सामग्री तथा जानकारी उपलब्ध हो सकी।

कुछ विवेचनीय :- आर्यजगत् के कुछ अर्वाचीन शोधको के अनुसार यह प्रामाणिक नहीं है। अतः सर्वखाप पंचायत के रिकार्डों को वे कुछ भी महत्व नहीं देते हैं। इस सम्बन्ध में इतना ही निवेदन है कि इति...ऐसा, ह...निश्चय से, आस ..था। इस प्रकार निश्चयात्मक से कही जानेवाली घटना को इतिहास कहते हैं। वह चाहे किसी भी भाषा में लिखी हो, ज़रूरी नहीं कि वह अंग्रेजी में ही लिखी हो। अतः अंग्रेजी के प्रभाव से प्रभावित हो हिन्दी या अरबी में लिखे तथ्यों की प्रामाणिकता को नकारना अंग्रेजी से प्रभावित। मानसिक गुलामी का ही परिचायक है। वैसे भी विख्यात इतिहासकार डा0 सत्यकेतु जी विद्यालंकार के अनुसार उक्त पंचायत का रिकार्ड ऐसा है कि जिसके नवीन या काल्पनिक होने से सन्देह की गुंजायश नहीं है क्योंकि उनके अनुसार उक्त पंचायत की अपना विवरण लिखने तथा रखने की पद्धति प्रामाणिक है। अतः इस प्रमाण से सिद्ध है कि न केवल ऋषि दयानन्द ही प्रत्युत उनके पूज्य गुरु स्वामी बिरजानन्द जी दण्डी की भी प्रचण्ड प्रेरणा उक्त स्वतन्त्रता संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही थी।

पाठक निम्न प्रमाण भी ध्यान से पढ़ने की कृपा करेंगे :

'मार्च 1969 में यह अकिंचन भी जबलपुर से अमरकण्टक तक इसी विचार से गया था, कि कहीं से महर्षि दयानन्द के उन तीन वर्षों की अज्ञात जीवनी का कोई अकाट्य प्रमाण मिल जाये, वहां आर्यसमाज में इस आशय के व्याख्यान भी दिये। कई एक मनीषी, वयोवृद्ध महानुभावों से निजी सम्पर्क भी स्थापित किये परन्तु उल्लेखनीय कोई सामग्री उपलब्ध न हो सकी। हॉ एक स्थान पर महर्षि दयानन्द का एक मूल चित्र देखने को मिला, जो उस समय का था जब वह जबलपुर के गंजीपुर आर्यसमाज में विराजमान हुये थे। एक बात और वहां के प्रधान श्री दालचन्द ने बताई कि उन्होंने किसी पुस्तक में पढ़ा है कि महर्षि दयानन्द का खड़गपुर फौजी विद्रोह में भी हाथ था, जो स्वतंत्रता क्रान्ति की विफलता के कई बर्ष बाद हुआ था।

(1857 और स्वामी दयानन्द पृ0 16-17 ले0 वासुदेव वर्मा)

एक तथ्य

आर्यजगत् के विख्यात एवं प्रामाणिक इतिहासकार श्री डा0 सत्यकेतु जी विद्यालंकार के 'आर्यसमाज का इतिहास' – प्रथम भाग के पृ0 673 से 706 तक इसी विषय पर विवेचन किया तथा प्रामाणिक तौर पर नवीन तथ्यो के परिप्रेक्ष्य मे कुछ अधिकृत तथा प्रामाणिक जानकारी उपस्थित की जिसका सारांश यहां प्रदान किया जा रहा है।

"1857 के स्वतन्त्रता युद्ध की विफलता के पश्चात् उसके कारणों तथा सहकर्मियों के ज्ञान प्राप्त करने का अभिप्राय से तत्कालीन सरकार द्वारा नियुक्त मेजर एच0 पी0 देवरा तथा कैप्टन जे0 एल0 पिअर्स के कमीशन के सामने सीताराम बाबा की गवाही बडी महत्वपूर्ण है। यह बाबा दक्षिण के राजाओं तथा जागीरदारो के नाम ऐसे गुप्त पत्र ले जाता था जिनमे उन्हें अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतन्त्रता संग्राम में योगदान करने को प्रेरित किया जाता था। वह उत्तरी एवं दक्षिणी भारत के मध्य कड़ी बना हुआ था। 18 से 25 जून 1958 को उसकी गवाही हुई जो कि 58 पृष्ठ की है। आरम्भ

में यह चुप रहा। किसी का भी नाम बताने को उद्‌यत न था परन्तु भीषण यन्त्रणाओं के परिणाम स्वरूप उसने कुछ भेद बताया। विद्रोह का संचालक कौन है ? उत्तर था कि यह सब दस्साबाबा द्वारा होता है जो कि नाना साहब के गुरु है तथा बहुत ही वृद्ध हैं। इस समय वह 125 वर्ष के हैं। इसका एक शिष्य जो दक्षिण में काम करता है, इस समय हमारे साथ है। उसका नाम दीनदयाल है। दीनदयाल के द्वारा ही दस्सा बाबा ने तिरुपति के शिवराम बाबा को पत्र भेजे। यह (दस्सा बाबा) गडा से परे कलीधर का निवासी है। षड्‌यन्त्र का आरम्भ कैसे किया ? यह पूछे जाने पर कहा बीस साल पहले सिन्धिया आदि राजाओं को लड़ने की प्रेरणा दी थी परन्तु तब असफल रहने से अब से छः वर्ष पहले उज्जैन जाकर सिन्ध्यिा राजा की दादी बेजीबाई से मुलाकात की। वह स्वयं अंग्रेजों के विरुद्ध योजना बना रही थी। उसने दस्सा बाबा को बताया, जिसे लेकर वे नाना साहब के पास गये और कहा की बेजीबाई के साथ मिलकर काम करो। इस परामर्श पर दोनों ने कहा कि दीनदयाल के साथ-साथ 20 साधु रहते है जो अपने जूड़ों, बाजूबन्दों में इस प्रकार के पत्र छिपाकर ले जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि दस्सा बाबा असली नाम नहीं है क्योंकि ऐसी क्रांतियों में जिनके विफल होने का भय रहता है, प्राय. समायोजक नकली नामो का प्रयोग करते हैं। यह परम्परा है, ऐसा प्रतीत होता है कि सन्यासियों में दसनामी शब्द का अपभ्रंश यह 'दस्सा बाबा' बना है या उसे वास्तविक नाम ज्ञात न हो अथवा अत्यन्त वृद्ध तथा सम्माननीय होने से वह नाम न लेना चाहता हो जैसा कि अत्यन्त सम्माननीय जनों का नाम न लेने की परम्परा है। कुछ भी हो परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि सरस्वती, गिरी, पुरी, भारती, वन, आरण्यक, पर्वत, तीर्थ, आश्रम, सागर ये दश नामी सन्यासी कहलाते हैं। अतः वह दसनामी होना चाहिए। गुरु विरजानन्द इनके गुरु पूर्णानन्द उस समय अत्यन्त ही वृद्ध थे। पूर्ण सम्भावना है कि यह दस्सा बाबा पूर्णानन्द या विरजानन्द ही होगा, उसका शिष्य दीनदयाल दयानन्द ही होगा, क्योंकि नाम बदलते समय वास्तविक

नाम के साथ परिवर्तित नाम की समानता करने की भी परिपाटी है, ऐसा प्रतीत होता है कि योजना बनाने का मुख्य काम स्वामी पूर्णानन्द तथा उनके गुरु स्वामी ओमानन्द जी ने किया, परन्तु योजना को क्रियान्वित करने का सारा श्रेय विरजानन्द को ही है, क्योंकि इस प्रसंग में विरजानन्द जी का नाम बहुधा आता है, सन् 1896 में जे. एफ उपान्थोर्न ने अंग्रेजी में 'मरियम 1857 के भारतीय गदर की कहानी' नामक उपन्यास लिखा, जिसमें एक साधु का वर्णन किया है जो कि अत्यन्त हृष्टपुष्ट था, गेरुवे कपड़े पहनता था, वह जटाजूट था, रुद्राक्ष माला रखता था, वह सार्वजनिक रूप में भाषण नहीं करता था, लेकिन छावनियो में आता-जाता था, सैनिकों को भड़काया करता था, इसी प्रकार इसी ग्रन्थ में बाबा त्रिलोकनाथ का वर्णन है जो कि हाथी पर बैठकर मेरठ में सैनिकों को भडकाता था, इसी को सर्वखाप पंचायत के विवरण के अनुसार स्वामी रामगिरी गोसाई जो कि स्वामी विरजानन्द का शिष्य था समझना चाहिये, क्योंकि इनके नेतृत्व में अनेक साधु-सन्यासी काम किया करते थे, उक्त पंचायत के विवरण में ही एक गोल मुखवाले युवा सन्यासी का प्रसंग आता है जो कि गोरे रंग का था, निश्चय से कहा जा सकता है कि वह दयानन्द ही था, क्योकि ऋषि दयानन्द की आयु उस समय 31 वर्ष की थी, उपरोक्त विवरण से इस विषय पर काफी सन्तोषजनक प्रकाश पड़ता है, जिससे कि हमें यह मानने को बाध्य ही होना पड़ता कि 1857 की क्रान्ति में ऋषि दयानन्द का कुछ न कुछ योगदान अवश्यमेव रहा है।"

उपरोक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में यदि हम श्री दीनबन्धु जी वेद शास्त्री द्वारा सम्पादित 'योगी का आत्मचरित्र' का निम्न उदाहरण देखें तो कोई आपत्तिजनक बात दिखाई नहीं देती है, भले ही उक्त-ग्रन्थ अभी तक प्रमाणकोटि में न माना गया हो। 'दयाराम (दयानन्द) ने साधू, सन्यासियों, तपस्वियों के अन्दर संगठन के लिये कोशिश की थी, देश की बुरी हालत मिटाने के लिये, साधुओं को तत्पर होने के लिए कोशिश की थी, उन्होंने सिपाही विद्रोह आन्दोलन के साथ भी

सयोग स्थापन किये थे, मराठी नेता नाना साहब भी महर्षि दयानन्द से विचार-विमर्श करने आये थे, प्रधान सैन्यावास मे भी आया-जाया करते थे, बैरकपुर सैन्यावास (बंगाल) मे भी आये थे, मंगल पाण्डे नामक सैन्य ने उनसे आशीर्वाद मांगा था।" सार्वदेशिक साप्ताहिक दिल्ली के 12-1-1969 के अंक में दीनबन्धु वेद शास्त्री का लेख।

उपरोक्त उदाहरणों में दिए गए विवरण से यह स्पष्ट है कि इन प्रमाणों ने इतिहास के क्षेत्र में विचारने की एक नवीन दिशा प्रदान की है, यह एक बुद्धिग्राह्य तथ्य है कि भारत के इस प्रथम विशाल स्वतन्त्रता संग्राम के आयोजन मे स्वामी ओमानन्द तथा उनके शिष्य स्वामी पूर्णानन्द का गम्भीर योगदान तथा उस योजना को मूर्तरूप देने में स्वामी विरजानन्द का महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक योगदान था, इसी के साथ ऋषि दयानन्द का भी योगदान था चाहे वह सशस्त्र क्रान्तियुक्त न होकर क्रान्तियोजना के प्रसार एवं प्रचार के रूप में ही रहा हो, क्योंकि यह निर्विवाद सत्य है कि उससे पूर्व भी मुग़ल काल में तथा अग्रेजी काल में भी देश मे बने साधुओं के अनेक संगठन थे, जिन्होंने समय-समय पर विदेशी आक्रान्ताओं को हथियारों के बलबूते पर खदेडकर स्वाधीनता की रक्षा की थी, फिर जब ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' का नारा लगानेवाले तथा हमें संसार से क्या काम है ? इस मान्यता को माननेवाले साधु देश तथा उसकी स्वाधीनता की रक्षा में तत्पर दिखाई देते हैं तब जीवन तथा ससार को संग्राम समझनेवाला और उसमें जूझकर विजय प्राप्त करने की प्रवृत्ति रखनेवाला ऋषि दयानन्द इन बातों से कैसे परे रह सकता है ?

क्रान्ति युद्ध की विफलता के पश्चात् भारत से ही कुछ देशद्रोही वर्गो, विशेषकर जिनमे उत्तर भारत की सिख रियासतें थीं, के द्वारा अपने आकाओं अग्रेजों का साथ देने पर जब यह स्वतन्त्रता युद्ध विफल हो गया, और इस क्रान्तियज्ञ के आयोजकों एवं सहयोगियों को निर्दयतापूर्वक कुचलते हुए चमड़ी से गोरे परन्तु दिल से सर्वथा ही काले कलूटे अंग्रेज यहाँ अपना प्रभुत्व जमाने लगे, और उस समय इस राष्ट्र की नि.सहाय प्रजा इन गौरागों के अत्याचारों की चक्की

में पिसती हुई, अपने गौरव को विस्मृत कर दीन-हीन हो रही थी, तब दयानन्द भी गुरु की पाठशाला से तैयार होकर भारत के कार्यक्षेत्र मे आ चुका था, तब उसने अपनी लोह लेखनी के द्वारा भारत की प्रसुप्त आत्मा को जगाने का साहसिक एवं ऐतिहासिक उपक्रम किया, उसकी ओजस्वी वाणी एवं लेखनी मुर्दो की धमनियों में भी मदमदाते रक्त का संचार कर देती थी, भारत के जन-मन में उस समय और उसके पश्चात् जो भी राजनैतिक चेतना आई वह ऋषि दयानन्द सरस्वती की लेखनी तथा वाणी का ही प्रभाव था, इस तथ्य को पुष्ट करते हुए एक इतिहासकार लिखता है-दयानन्द का जन्म मोरवी रियासत के टंकारा नामक ग्राम में समृद्ध ब्राह्मण गृहपति करसन जी के यहां सन् 1824 में हुआ था, यो तो भारत की स्वाधीनता के लिए मर-मिटने और उसमें फिर से राष्ट्रीयता जगानेवाले ये दोनों महापुरुष समसामयिक और समवयस्क भी थे, इनमें से जब एक (नाना धोंधोंपन्तराव पेशवा) शस्त्र का आश्रय लेकर राष्ट्र की स्वाध ीनता की ज्योति को प्रज्वलित रखने के लिए अपना सर्वस्व होमकर भी असफल रहा, तब दूसरे (दयानन्द) ने उसके स्फूलिंगों को एक प्रकार से फिर से जगाने की विधि निकालने के लिए शास्त्र का आश्रम ग्रहण किया।

(हमारा राजस्थान पृ0 266)

1873 से 1881 दयानन्द उत्तर के अनेक नगरो में घूमता और अपने विचारों का प्रचार करता रहा, जिसके कारण भारतवासियों में अपने प्राचीन इतिहास और धर्म का गौरव फिर से जागने लगा, 1873 ई0 से भारत में राजनैतिक पुर्नजागरण के लक्षण भी प्रायः सर्वत्र प्रकट होने लगे। (हमारा राजस्थान पृ0 270)

इसी ऐतिहासिक तथ्य की पुष्टि करता हुआ, एक और इतिहासकार लिखता है-'सन् 1857 की क्रान्ति के पश्चात् उन महापुरुषों की सूचि में जिन्हें हम उस क्रान्ति के मानसिक, सामाजिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उत्तराधिकारी कह सकते हैं, पहला नाम महर्षि दयानन्द सरस्वती का है। (भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास ले0 इन्द्र विद्यावाचस्पति पृ0 22)

'राजनीति मे स्वामी दयानन्द को नवीन राष्ट्रीयता का अग्रदूत कहे तो अत्युक्ति न होगी, उन्होंने अपने मुख्य ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में स्वराज्य, स्वदेशी, स्वभाषा और स्वदेश के पक्ष मे जो स्पष्ट विचार प्रकट किये थे, वह भारत की राजनीति में 1901 से पहले व्यक्त रूप में नहीं आये थे, व्यावहारिक रूप में उनका प्रयोग तो बंगविच्छेद के पश्चात् ही हुआ है। (भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास 24)

एक अन्य राष्ट्रीय स्तर के महान् लेखक के प्रमाण से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है, इस देश में अंग्रेजी राज्य के स्थापित होने के बाद वे पहले व्यक्ति थे, जिन्होने देशवासियों के हृदय में स्वाभिमान के दीपक को बुझते-बुझते बचाया।

(राष्ट्रवादी दयानन्द पृ0 32 ले0 सत्यदेव विद्यालंकार)

लेखन द्वारा जागरण

महर्षि दयानन्द सरस्वती के जिन असाधारण विचारों से भारत के राजनीतिक वातावरण में एक अपूर्व हलचल उत्पन्न हुई तथा देशवासियों ने उनकी राष्ट्रीय विचारधारा से प्रभावित हो, जिस प्रखरता के साथ उस दिशा में अपने चिन्तन को आगे बढाया, उनमें से उनके साहित्य से स्थालीपुलाक न्याय से कुछ प्रमाण उपस्थित किये जाते हैं।

कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है, अथवा मतमतान्तर के आग्रहरहित, अपने और पराये का पक्षपातशून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायी नहीं है।

(सत्यार्थप्रकाश 8वां समुल्लास)

इसी प्रकार आगे चलकर भारत की दुर्दशा, गुलामी तथा हीनता पर आंसू बहाते हुए दुःखी हृदय से ऋषिवर लिखते हैं, 'विदेशियों के आर्यावर्त मे राजा होने के कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना-पढ़ाना, बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषणादि कुलक्षण, वेद-विद्या का

अप्रचारादि कर्म हैं, जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं, तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है।

(सत्यार्थप्रकाश 10 समुल्लास)

आगे चलकर महर्षि दयानन्द सरस्वती 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम का वर्णन करते हैं, जैसा कि इस क्रान्ति को महर्षि ने साक्षात् ही अपने चर्म-चक्षुओं से देखा, यह निश्चय कराता है। क्योंकि ऐसा सजीव एवं सशक्त तथा हृदयग्राही वर्णन अपने नेत्रों से साक्षात् किये बिना लिखना सम्भव नहीं जंचता है। ऋषि लिखते हैं...'जब सम्वत् 1914 के वर्ष में तोपों से मन्दिर, मूर्तियां अंग्रेजों ने उड़ा दी थीं तब मूर्ति कहां गई थीं ? प्रत्युत बाघेर लोगों ने जितनी वीरता दिखाई और लडे, शत्रुओं को मारा परन्तु मूर्ति एक मक्खी की टांग भी न तोड़ सकी। जो श्रीकृष्ण के सदृश कोई होता तो उनके धुर्रे उडा देता और ये भागते फिरते। (सत्यार्थप्रकाश 11 समूल्लास)

ब्रह्मसमाजियों की समालोचना के प्रसंग में महर्षि स्वातन्त्र्य तथा स्वगौरव की शिक्षा ग्रहण कराने के अभिप्राय से लिखते हैं. .देखो अपने देश के बने हुए जूतों को आफिस और कचहरी जाने देते हैं, इस देशी जूते को नहीं। इतने में ही समझ लो कि अपने देश के बने हुए जूतों का भी कितना मान-प्रतिष्ठा करते हैं। उतना भी अन्य देशस्थ मनुष्यों का नहीं करते।

(सत्यार्थप्रकाश 11 समूल्लास)

पाठक सोचें कि महर्षि दयानन्द सरस्वती का स्वाभिमानी हृदय अपने देश के जूतों के अपमान को भी न सह सका। वह अपमान भी उनके साहित्य में इन शब्दों की वेदना के रूप में अनायास ही प्रकट हो गया। सोचिए कि क्या वह हृदय भारत की दासता को जड़मूल से उखाड फैंकने को सदा अधीर न रहता होगा ? इसी प्रसंग मे आगे चलकर महर्षि ब्रह्मसमाजियों की अंग्रेजभक्ति की अधिकता तथा निज राष्ट्रीयता की कमी पर व्यंग्य करते, फटकारते हुए कठोर शब्दों में भर्त्सना करते लिखते है, इन लोगों में स्वदेशभक्ति बहुत न्यून है। ईसाईयो के आचरण बहुत से लिये हैं। अपने देश की प्रशंसा व पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर रही, उसके बदले भरपेट निन्दा करते हैं।

व्याख्यानों में ईसाई आदि अंग्रेजों की प्रशंसा भरपेट करते हैं। ब्रह्मादि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते। ब्रह्मा से लेकर आर्यावर्त में बहुत से विद्वान् हो गये हैं, उनकी प्रशंसा न करके यूरोपियन की ही स्तुति में उतर पड़ना पक्षपात और खुशामद के बिना क्या कहा जाये।

सत्यार्थप्रकाश 11 समुल्लास

सोचिये! उस समय ऐसे स्पष्ट शब्दों में विदेशी राज्य की समालोचना करना परम आस्तिक, प्रखर देशभक्त, निज गौरव तथा स्वदेशाभिमान के पुतले, परम साहस के प्रतीक, भारतमाता के सच्चे सपूत दयानन्द के अतिरिक्त और किसका काम हो सकता था? उस ऋषि ने ही सर्वप्रथम उस काल में सार्वभौम चक्रवर्ती साम्राज्य के रूप में आर्यों के प्राचीन गौरव तथा महिमा एवं समृद्धि का वर्णन कर भारतीयों के हृदय, मन तथा मस्तिष्कों को स्वतन्त्रता, स्वाभिमान एवं गौरव प्राप्ति की दिशा में प्रखर चिन्तन को प्रेरित किया था। सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास के अन्त में आर्यराजाओ की नामावली देकर आर्यों को उनके प्राचीन गौरव की झलक दिखाकर उनकी पुनः प्राप्ति के लिए मर-मिटने की तमन्ना, तीव्र अभिलाषा परोक्षरूप में उत्पन्न की थी। महर्षि दयानन्द सरस्वती अपने वेदभाष्य में लिखते हैं. 'क्षत्राय पिन्वस्व' हे महाराधिराज ब्रह्मन्! अखण्ड चक्रवर्ती राज्य के लिए, शौर्य, धैर्य, नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तमगुणयुक्त कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्टकर, अन्य देशवासी राजा हमारें देश में कभी न हों तथा लोग पराधीन कभी न हों।

(यजुर्वेद अध्याय 38 मन्त्र 14 भाष्य)

ऋषि दयानन्द सरस्वती ने अपने देश के लिए अखण्ड, सार्वभौम चक्रवती राज्य की प्रार्थना करते हुए जो आदेश किया वह निम्नप्रकार है-'मनुष्यैर्द्वाभ्यां प्रयोजनाभ्यां प्रवर्तितव्यम्, एकमत्यन्तपुरुषार्थ-शरीरारोग्याभ्यां चक्रवर्तिराज्यश्रीप्राप्तिकरणम्, द्वितीयं सर्वाः विद्याः सम्यक् पठित्वा तासां सर्वत्र प्रचारीकरणम्, इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य को सदा अपने सामने दो प्रयोजन रखकर उनकी पूर्ति के लिए अपना सब व्यवहार करना चाहिये पहला यह है कि अत्यन्त

पुरुषार्थ करके और शरीर को स्वस्थ रखकर वह चक्रवर्ती राज्य रूपी श्री का सम्पादन करे और दूसरा यह कि वह सब विद्याओं को अच्छी प्रकार पढ़कर सब जगह उनका प्रचार करे।

इसी प्रकार स्तुतिप्रार्थनैपासना की पुस्तक 'आर्याभिविनय' में भी महर्षि परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं और कहते हैं 'हे न्यायकारिन्! जो कोई हम धार्मिकों से शत्रुता करता है, उसको आप भस्मी-भूत करें और विद्या, शौर्य, धैर्य, बल, पराक्रम, चातुर्य, विधि धन, ऐश्वर्य, विनय, साम्राज्य, सम्मति, सम्प्रीति तथा स्वदेशसुखसम्पादन आदि गुणों से युक्त करके हमको सब देहधारियों में उत्तम बनायें और सबसे अधिक अनन्दभागी करने, सब देशों में इच्छानुकूल विचरने और आरोग्य देह, शुद्ध मानस बल तथा विज्ञानादि की प्राप्ति के लिए हमको सब विद्वानो के मध्य प्रतिष्ठयुक्त करें। (आर्याभिविनय 1-16)

हे महाधनेश्वर! हमारे शत्रुओं के बल, पराक्रम को (आप) सर्वथा नष्ट करें। आपकी करुणा से हमारा राज्य और धन सदा वृद्धि को प्राप्त हो। (आर्याभिविनय 1-43)

इस प्रकार इस पुस्तक में स्थान-स्थान पर परमात्मा की प्रार्थना राजा, साम्राज्य प्रसारक, राज्यविधायक, सम्राट् तथा महाराजा-धिराजेश्वर आदि उत्कृष्टराष्ट्रीय सम्बोधनों से की गई है। यही कारण है कि आर्याभिविनय को वैदिकराष्ट्रीय प्रार्थनाओ की पुस्तको में बहुत ऊँचा स्थान मिल गया है। प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा आर्यवर्त का वह गौरव जिसके कारण भारत की किसी जमाने में अपनी ध ाक थी और यह देश जिसे कभी विश्व का पथप्रदर्शक माना जाता था उसी विस्मृत अपने गौरव को महर्षि दयानन्द भारत के जन-मन में पुनः जागृत करना चाहते थे। साथ ही जिन बुराइयों की वजह से हम गुलामी के शिकंजे में कसे गये उनको भी महर्षि भारत के लोगों से दूर करना चाहते थे। वे अपने देश को दासत्व की श्रृंखलाओं में जकडा हुआ क्षणभर भी देखना पसन्द न करते थे। राष्ट्रीय स्नेह, स्वाभिमान एवं स्वतन्त्रता की भावना उनमें कितनी प्रबल थी, यह निम्न घटना से भी अनुमान लगाया जा सकता है।

'महर्षि दयानन्द सरस्वती प्रचार करने के उद्देश्य से 16 दिसम्बर 1872 ई0 को कलकत्ता गये, जहां वे राजा ज्योतीन्द्र मोहन टैगोर के प्रमोद कानन में ठहरकर मार्च 1873 ई0 तक प्रचार करते रहे, उसी अवधि मे भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड नाथ ब्रुक एक दिन महर्षि से मिले, वार्तालाप के मध्य वे महर्षि से बोले कि देखो हमारे राज्य में कितना सुख एवं न्याय है कि आप जैसे लोगों को जो बेखटके दूसरों के विचारों का खण्डन करते हैं किसी से भी कोई भय व खतरा नहीं हैं, अतः आप प्रतिदिन ईश्वर से भारत में हमारे राज्य की चिरकाल पर्यन्त स्थिरता के लिए प्रार्थना कर दिया करें, उस समय महर्षि ने जो उत्तर दिया वह उनके विशुद्ध एवं सीमातीत राष्ट्रीय स्नेह का परिचायक है, महर्षि ने भारत के तथाकथित भाग्यविधाता तथा भारत में स्थित ब्रिटिश सत्ता के सर्वेसर्वा वायसराय को कहा कि राजन् मैं तो प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर अपने परमपिता परमात्मा से यही प्रार्थना करता हूं कि शीघ्रातिशीघ्र यह राज्य भारत से उठ जाये, मैं तो शीघ्र ही वह दिन देखना चाहता हूं कि जब भारत का शासन सूत्र हम भारतवासियों के हाथ में हो। महर्षि के इस निर्भयता तथा वीरतापूर्ण तथा अप्रत्याशित उत्तर से वायसराय चकित हो गया, इण्डिया आफिस को भेजे गये अपने दस्तावेजों में उसने लिखा कि इस विद्रोही फकीर पर कड़ी नजर रखी जाये।

(दैनिक वीर अर्जुन दिल्ली 9-4-1961 के अंक में
दीवान अलखधारी जी का लेख)

उस महर्षि ने अंग्रेजी राज्य का सहयोग न देने पर भी बल देकर असहयोग आन्दोलन का बीज बोया था, जबकि अपनी मृत्यु से पहले अपने द्वारा स्थापित अपनी उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा के स्वीकारनामें में महर्षि ने यह लिखा था कि 'जहां तक हो सके न्यायप्राप्ति के लिए सरकारी न्यायालय का द्वार न खटखटाया जाये'। अब प्रश्न यह होता है कि महर्षि ने अंग्रेजी न्यायालयों पर अविश्वास क्यों किया? इसका उत्तर भी उन्हीं के शब्दों में ही सुनें-'अनुमान होता है कि इसीलिए ईसाई लोग ईसाईयों का बहुत पक्षपात कर

किसी गोरे (अंग्रेज) ने काले (भारतीय) को मार दिया हो, तो भी बहुधा पक्षपात से निरपराधी कर छोड़ देते हैं।

(सत्यार्थप्रकाश 13-77)

इधर अपने आरम्भकाल में कांग्रेस के सभी नेता अंग्रेजी न्यायालयों की न्यायप्रियता एवं निष्पक्षता का ढिंढोरा पीटते तथा गीत गाते नहीं थकते थे, इतना ही नहीं प्रत्युत लोकमान्य तिलक जैसे प्रखर राष्ट्रभक्त भी कितने अंश में इस विचार से सहमत थे, तिलक का यह भ्रम तब टूटा जबकि तिलक ने सन् 1919 तथा 1920 में मि. शिरौल पर एक पुस्तक में अपने प्रति लिखे गये अपमानजनक तथा आधारहीन शब्दो के कारण मानहानि का अभियोग इंग्लैण्ड के न्यायालय मे चलाया, जहां मि0 शिरौल को दोषी कहते हुए भी निर्दोष बरी कर दिया गया था, तब उन राजनीतिज्ञों ने आश्चर्यभरी नज़रों से अंग्रेजी न्यायलयों के सर्वथा ही विशुद्ध जातीय पक्षपात को देखा और उसके प्रति अविश्वास को प्रकट करना आरम्भ किया, परन्तु महर्षि ने उसे उनसे लगभग 40 वर्ष पूर्व ही प्रकट करना आरम्भ कर दिया था।

अंग्रेजी शासकों की इसी पक्षपातपूर्ण तथा अन्याययुक्त रीति-नीति पर रुदन करते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती अपने साहित्य में परमेश्वर से प्रार्थना करते हुए लिखते हैं-

'हम प्रजापति आर्थात् परमेश्वर की प्रजा और परमात्मा हमारा राजा है, हम उसके किंकर भृत्यवत् हैं, वह कृपा करके अपनी दृष्टि में हमको राज्याधिकारी करे और हमारे हाथ से अपने सत्य न्याय की प्रवृत्ति करावे। (सत्यार्थप्रकाश समुल्लास)

उस समय अंग्रेजी सरकार की ओर से भारतीय जनता पर जो कठोर प्रतिबन्ध लगे हुए थे, महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 1875 ई0 के सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण में उनकी कठोर शब्दों में भर्त्सना करते हुए लिखा-

'एक तो यह बात कि नोन और पोन रोटी मे जो कर लिया जाता है, मुझको अच्छा मालूम नहीं होता, क्योंकि नोन बिना दरिद्र का भी निर्वाह नहीं, किन्तु सबको नोन आवश्यक होता है, और वे

मेहनत-मजदूरी से जैसे-तैसे निर्वाह करते हैं उनके ऊपर भी यह नोन कर (कर) दण्डतुल्य रहता है, इससे दरिद्रों को क्लेश पहुंचता है। अतः कर (टैक्स) लवणादिकों के ऊपर न चाहिये, पौन रोटी से भी गरीबों को बहुत क्लेश होता है, क्योंकि गरीब लोग कहीं से घासछेदन करके ले जायें व लकडी का भार (तो) उनके ऊपर कोड़ियों के लगने से उनको अवश्य क्लेश होता होगा, इससे पोन रोटी का जो करस्थापन करना है, सो भी हमारी समझ से अच्छा नहीं।

(सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण पृ0 384-385)

'सरकार कागद (कागज़) को बेचती है, और बहुत-सा कागजों पर धन बढ़ा दिया है, इससे गरीब लोगों को बहुत क्लेश पहुंचता है, सो यह बात राजा को करनी उचित नहीं, क्योंकि इसके होने से बहुत गरीब लोग दुःख पाकर बैठे रहते हैं, कचहरी में बिना धन के कुछ बात नहीं होती। इससे कागज़ों के ऊपर जो बहुत धन लगाया है, सो मुझको अच्छा मालूम नहीं देता।

(सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण पृ0 387)

इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा गांधी ने जिस नमक कानून के विरुद्ध सन् 1930 में सत्याग्रह द्वारा आवाज़ उठाकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध स्वतन्त्रता का उद्घोष किया था, राजनीति के भविष्यद्रष्टा तथा राजर्षि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने उससे 55 वर्ष पहले ही उक्त लेख के द्वारा इसका बीज वपन किया तथा इस काले कारनामे के लिए अंग्रेजी सरकार को दुत्कारा और ललकारा था।

इसके साथ ही यह भी एक विचारणीय विषय है कि महर्षि ने अपने जीवन काल में जो आर्यसमाजें स्थापित की थीं, वे सभी ऐसे स्थानों पर थीं जो उस समय अंग्रेजी सरकार की सेना के मुख्य आवास स्थल थे, उदाहरणार्थ बम्बई, मेरठ, सहारनपुर, लाहौर इत्यादि, तो क्या एक सत्यान्वेषी इतिहासकार के लिए यह परिणाम निकालना ठीक न होगा कि यदि सर्वविध स्वाधीनता प्राप्ति के सभी प्रकार की जागृति, मनन एवं चिन्तन के उपाय रूपी क्रान्ति का यह बीज अंग्रेजी सेना में प्रविष्ट उन भावुकहृदय भारतीयों के आसपास डाला जाये

तो कदाचित् पूर्ण सम्भावना है कि जल्दी ही उगकर मनोवांछित फल लाने में उपयुक्त सिद्ध हो।

इसी के साथ महर्षि दयानन्द का उस समय गोरक्षा के नारे को बुलन्द करना भी कोई कम महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि इसी प्रश्न को मुख्यता देकर 1857 के समय मंगल पाण्डे, तांत्या टोपे, नाना साहब पेशवा, रानी लक्ष्मी, वीर कुंवरसिंह इत्यादि के द्वारा स्वदेशी एवं राष्ट्रीयता से प्रेरित हो अंग्रेजों पर दागी गई गोलियों की सनसनाहट अभी विलीन भी न होने पाई थी कि सिखों के एक सम्प्रदाय नामधारियों के गुरु बाबा रामसिंह के नेतृत्व में लगभग दो सौ वीरों ने गोरक्षा के प्रश्न पर अंग्रेज सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था, जिसके फलस्वरूप उन्हें फांसी, काला पानी तथा तोप के मुंह से बांधकर, उड़ा देने का दण्ड दिया गया और इस प्रकार गोरक्षण का नारा अंग्रेजी सरकार के विपरीत विद्रोह का पर्याय बन गया था, ऐसे भयंकर समय में ऋषि दयानन्द सरस्वती ने न केवलमात्र गोरक्षा के लिए आवाज ही उठाई प्रत्युत गोहत्या का सारा ही उत्तरदायित्व विदेशी सरकार पर डालकर उसे बन्द करवाने के हेतु भारतीय प्रजा के हस्ताक्षर अभियान आरम्भ करके देश के जनमानस में संगठन तथा जागृति का वातावरण उत्पन्न कर दिया था, जिससे लोगों की परोक्ष रूप में स्वाधीनता प्राप्ति में रुचि बढ़ने का उपक्रम आरम्भ हो गया था, किंवदन्ती तो यहां तक है कि उस काल में जब एक अंग्रेज सरकारी अधिकारी कार्यनिवृत्त हो इंगलैण्ड जाने लगा तब उसकी विदाई सभा में महर्षि ने बोलते हुए कहा था कि 'तुम वहां जाकर महारानी से भारत में गोरक्षा का कानून बनवाने का प्रयत्न करना जिससे कि भारत के गोवंश की रक्षा हो सके, अन्यथा कुछ भी हो सकता है, अर्थात् इस प्रश्न को लेकर इस देश में फिर क्रान्ति हो जाये तो कोई असम्भव नहीं है, उस अवस्था में इस प्रकार के वातावरण के बनने का सारा ही उत्तरदायित्व सरकार पर ही होगा, उस समय महर्षि दयानन्द सरस्वती के इस नारे ने राष्ट्रीय स्वाधीनता के क्षेत्र में एक नवीन दिशा तथा जोशपूर्ण वातावरण का निर्माण किया

था, इस तथ्य से कोई भी निष्पक्ष इतिहासकार इन्कार नहीं कर सकता है, महर्षि दयानन्द सरस्वती के हृदय मे राष्ट्रीयता, स्वदेशाभिमान, वैदिक संस्कृति, एव निज गौरव की जड़ें इतनी गहरी थीं कि उन्होंने कभी भारत के अंग्रेजी राज्य को ईश्वरीय देन मानकर उनकी प्रशंसा के गीत नहीं गाये, इधर जबकि अखिल भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस के मंच से अनेक नेता जिसमें पूज्य मदनमोहन मालवीय जैसे प्रखर राष्ट्रवादी तथा विशुद्ध भारतीय भी सम्मिलित थे वे भी भारत में अंग्रेजी राज्य को ईश्वरीय देन मानकर उसके 'यावच्चन्द्रदिवाकरौ' बने रहने की सदभिलाषा प्रकट किया करते थे, महर्षि ने उस समय उस रूप में विदेशी राज्य के सहयोग से स्वदेश के लिए कोई अपनी विशेष योजना सिरे चढ़ाने की भी आतुरता नहीं दिखाई, जिस प्रबल रूप मे राजा राममोहनराय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर सरीखों ने अपने सुधार कार्य का प्रमुख आधार सरकारी कानूनों को बनाया था, जिसके परिणामस्वरुप इन लोगों की मान्यतायें अधिकांश में भारतमूलक होते हुए भी अपने श्रेय का अधिकांश भाग विदेशी शासकों को ही भेंट कर गई, अपने समय के तीखे राष्ट्रभक्त तथा राष्ट्रगुरु लोकमान्य तिलक जी भी वैदिक साहित्य और उसकी प्राचीनता के सम्बन्ध में पाश्चात्य विचारों में रंगे हुए ही प्रतीत होते हैं, उन विचारों के प्रभाव से वे सर्वथा मुक्त नहीं कहे जा सकते हैं, गीता रहस्य सर्वथा मौलिक होते हुए भी पाश्चात्य मनीषियों के चिन्तन के प्रभाव से सर्वथा मुक्त नहीं माना जा सकता है। उक्त ग्रन्थ से उन पर पाश्चात्य विचारकों की छाप का आभास स्पष्ट मिलता है, इतना ही नहीं बल्कि जब कांग्रेस मे पाश्चात्य वेशभूषा को अपनाने की होड़ लगी हुई थी तब कांग्रेस के जन्म से भी पूर्व महर्षि दयानन्द सरस्वती विशुद्ध स्वदेशी वस्त्रों का ही प्रयोग किया करते थे, स्वामी जी के जो वस्त्र आज तक सम्भालकर परोपकारिणी सभा के कार्यालय अजमेर में रखे हुए हैं, वे सभी विशुद्ध स्वदेशी खादी के ही हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने उस राष्ट्रीयता को जो कि स्वतन्त्रता संग्राम की विफलता पर अंग्रेजी सरकार के अत्याचार तथा दमन से रौंदी जाती हुई भारत की निःसहाय प्रजा जिसे तत्कालीन शासन के बरबर एवं आंतक से जिह्वा पर भी नहीं ला सकती थी, उसे अपने साहसिक तथा प्रखर राष्ट्रीय विचारों के प्रचार से जागृत तथा अभिव्यक्त करने का अद्‌भुत एवं ऐतिहासिक प्रयास किया, जिसके परिणामस्वरूप तब से ही जनता में राष्ट्रीयता का श्वास तीव्र रूप से चलने लगा, जनता ने समझा कि अब हमारा भी अपने देश में उत्पन्न कोई मार्गदर्शक तथा सुध लेनेवाला आ पहुंचा है। भारतीय जनता में इस उठती हुई राजनीतिक चेतना को कुटिलमति अंग्रेज सहन न कर सका, जिसके परिणामस्वरूप महर्षि दयानन्द सरस्वती ब्रिटिश साम्राज्यवाद की कूटनीति का शिकार होकर राष्ट्रीय चेतना तथा जागृति के लिए देश की धर्मवेदी पर अपने जीवन का बलिदान देकर राष्ट्र शहीद तथा अमर पद को प्राप्त हो गये, एक प्रत्यक्षदर्शी के अनुसार उसी के शब्दों में पढ़ें –

'श्री डी0 पी0 जोहरी गर्मी के दिनों में जोधपुर गये थे, वे पानी की तलाश में एक तालाब के किनारे पहुंचे, और वहां उन्होंने एक सत्तर वर्ष के बूढ़े आर्यसमाजी को सन्ध्या करते देखा, उन्होंने सन्ध्या समाप्त की, तो श्री जोहरी ने उनसे स्वामी जी की मृत्यु के सम्बन्ध में बातचीत आरम्भ की, जोहरी जी के प्रश्न का उत्तर देने से पहले वृद्ध महाशय ने उनसे यह शपथ ले ली कि उनका नाम प्रकाशित नहीं किया जायेगा, यह शपथ लेकर जो कहानी वृद्ध महाशय ने जोहरी जी को सुनाई उसका संक्षेप यह है कि जिन दिनों महर्षि जोधपुर में थे, अंग्रेजी सरकार की ओर से रियासत के अत्यन्त आवश्यक अन्तरंग विषय पर चिट्‌ठी प्राप्त हुई, जिसका उत्तर शीघ्र मांगा गया था, रियासत की कौंसिल अभी उस पर विचार कर रही थी कि महाराजा ने उस चिट्‌ठी की चर्चा महर्षि से कर दी, महर्षि ने जो सलाह दी, महाराजा ने उसके अनुसार ही उत्तर भेजा, उत्तर ऐसा चतुरतापूर्ण था कि उससे इण्डिया आफिस चकित हो गया, वहां से रेज़िडेण्ट को लिखा गया कि जिस दरबार मे इस पत्र

पर चर्चा हुई उसकी तस्वीर भेजी जावे, जिससे पता लग सके कि यह उत्तर किसके दिमाग की उपज है ? इस चित्र से भी जब इण्डिया आफिस की जिज्ञासा शान्त न हुई तो महाराजा से सीधा पूछा गया और महाराज ने सरलता से स्वामी जी नाम लिख भेजा। विलायत से जनरल की यह भर्त्सना की गई कि स्वामी दयानन्द जैसे राजद्रोह को प्रचार करने के लिए खुला क्यों छोड़ा गया ? यह वृत्तान्त सुनाकर वृद्ध महाशय ने कहा कि इस घटना की रोशनी में यह समझना कठिन नहीं कि स्वामी जी को विष दिलाने वाले कौन थे ? और सरकारी डाक्टरो ने उनका ठीक इलाज क्यों नहीं किया ?

(आर्यसमाज का इतिहास प्रथम भाग पृ0 320–322
ले0 इन्द्र विद्यावाचस्पति)

'महर्षि' को विष देने के षड्यन्त्र में कौन सी शक्तियां सम्मिलित थीं ? इस प्रश्न का उत्तर देने में भी बहुत कुछ कल्पना से काम लेना पड़ेगा, दोनों ही बाते सत्य हैं। नन्हीं जान (जिसका वास्तविक नाम नन्हीं भक्तिन था) वेश्या स्वामी जी से रुष्ट हो गई थी, इसमें कोई सन्देह नहीं और यह भी असन्दिग्ध है कि अंग्रेजी सरकार राजस्थान में स्वामी जी के बढ़ते हुए प्रभाव से बहुत असन्तुष्ट थी। यह सर्वथा सम्भव है कि उस समय दोनों विरोधी शक्तियां मिल गई हों। सरकारी डाक्टरों द्वारा महर्षि के रोग की उपेक्षा केवल नन्हीं जान की प्रेरणा से नहीं हो सकती। यह सन्देह निर्मूल नहीं प्रतीत होता कि महर्षि की मृत्यु के पीछे केवल एक वेश्या का हाथ नहीं, कोई ज़बरदस्त हाथ था, जो पर्दे के पीछे से इशारा दे रहा था।

(आर्यसमाज का इतिहास प्रथम भाग पृ0 323–324)
ले0 इन्द्र विद्यावाचस्पति)

पूर्व उद्धरणों पर गम्भीर विवेचन करने के पश्चात् तथा तत्कालीन परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए इस परिणाम पर पहुंचना कठिन, निस्सार तथा केवलमात्र कोरी कल्पना नहीं है कि ऋषि दयानन्द सरस्वती की मृत्यु नित्यप्रति बढती राजनीतिक चेतना, स्वदेशाभिमान के क्षेत्र में दिनों–दिन बढ़ रही उत्साह तथा उमंगें और

भविष्य में इससे आने वाले खतरो को अनुभव करके और इन सबका मूल केवलमात्र एक लंगोटबन्द सन्यासी को ही मानते हुए उसको अपने मार्ग से हटाने के लिए एक विशाल किन्तु सर्वथा ही गुप्त षड्यन्त्र रचकर उसका जीवन समाप्त करने का प्रयास किया गया। था, अन्यथा अपने समय का वह ख्यातनामा सुधारक जिससे कि विदेशी भी अपरिचित न हों, सबके देखते-देखते एक वेश्या के द्वारा विष दिलाकर मार दिया जाये और वह सन्यासी जबकि उस राज का राजकीय अतिथि होने के साथ गुरुतुल्य भी हो, जिसकी नागरिका वह वेश्या थी और साथ ही वह महाराजा महर्षि को प्राणपण से बचाने के लिए प्रयत्नशील हो, यह सब गोरखधन्धा किसी सामान्य षड्यन्त्र का परिणाम नहीं था। इस काण्ड मे तीन-चार शक्तियां काम कर रही थीं। विदेशी सरकार, जोधपुर के पाखण्डी जो कि महर्षि के आगमन से तथा उनके द्वारा पाखण्ड का तीव्र खण्डन करने से अपनी घटती हुई दुकानदारी के प्रभाव एवं आजीविका से चिन्तित हो उठे थे, महर्षि दयानन्द द्वारा किये जानेवाले कुरान के खण्डन से चिढ़कर जल-भुन उठनेवाले ओर अंधी साम्प्रदायिकता के जोश में भरकर उनको अपने मार्ग से हटाने के उद्देश्य से इस कुटिल संगठन का एक हिस्सा जिनका अग्रणी तत्कालीन राजा का एक प्रमुख राजकर्मचारी दीवान खानबहादुर फैजउल्लाखां था और वह वेश्या जो कि राजा को उसके दुराचरण पर सबके सामने फटकारा जाने पर अपने को बहुत ही अपमानित महसूस कर रही थी, इन सभी शक्तियों के एकत्रित होने से जिनका एक समान उद्देश्य था कि येनकेन प्रकारेण यह नंगा फकीर जो किसी भी धन, बल या विषय इत्यादि किसी भी शस्त्र से दबता नहीं है इसे अपने मार्ग से सदा के लिये दूर किया जाये। जब तक महर्षि दयानन्द का उपचार प्राईवेट डाक्टरों के द्वारा होता रहा तब तक उनकी दशा में सुधार होता गया परन्तु जब सरकारी डाक्टर अलीमर्दानखां जैसे व्यक्तियों का इलाज आरम्भ हुआ तभी से महर्षि की दशा निरन्तर बिगड़ती गई और अन्त में वे मृत्यु का ग्रास बन गये। इससे प्रतीत होता है उस डाक्टर की पीठ पर तत्कालीन ब्रिटिश सरकार का न केवल हाथ ही था प्रत्युत् वह भी उस षड्यन्त्र

का अंग था। वैसे भी उक्त डाक्टर महोदय स्वयं मुसलमान थे जो कि महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा सर्वप्रथम कुरान के थोथे सिद्धांतो के सम्बन्ध में की गई तर्कपूर्ण कठोर समीक्षा तथा समालोचना से खीझनेवालों मे से ही थे।

अतः सरकार का आशीर्वाद प्राप्त कर उसी के निर्देशानुसार उस मतान्ध डाक्टर ने महर्षि दयान्नद की विशाल परिमाण में दवा का नाम लेकर वह तीव्र विष दिया जिसका कि बलिष्ठ मनुष्य के लिये अत्यल्प परिमाण ही प्राणहरण के लिये पर्याप्त होता है। वैसे भी देखें कि यदि आज वैसा ही प्रभावशाली व्यक्तित्त्व का व्यक्ति वैसी सन्दिग्ध परिस्थितियों मे मृत्यु का शिकार हो जाये तो बुद्धिमान्, नीतिसमान् तथा मानवताप्रेमी सरकार कम से कम जनता की दृष्टि मे अपनी स्थिति के स्पष्टीकरण के अभिप्राय से ही क्यों न हो परन्तु उस विषय अथवा घटना की छानबीन करना अपना नैतिक कार्य समझेगी, परन्तु ऋषि दयानन्द सरस्वती जैसे जगद्विख्यात सुधारक की विषपान से मृत्यु हो जाती है, विषदाता का भी पता लगा जाता है परन्तु अंग्रेजी सरकार या महाराजा की ओर से उस दुःखद काण्ड के आयोजको की खोज करना अथवा उन्हें दण्ड प्रदान करने विषयक कार्रवाई का प्रयत्न नाममात्र के लिये भी तो नहीं किया जाता है, यह था अंग्रेजी सरकार के न्याय का नमूना। तो क्या सरकार की यह चुप्पी बुद्धिमानों की दृष्टि में इस काण्ड मे उसके हिस्सेदार होने की स्पष्ट घोषणा नहीं करती है, यहां तक ही नहीं प्रत्युत वह राजा जो कि महर्षि को गुरु के समान मानता था और जिसके निमन्त्रण पर महर्षि जोधपुर पधारे थे, वह भी अनर्थकारी एवं सन्दिग्ध प्रसंग की आलोचना करने में एक शब्द भी अपने मुख से निकालने की हिम्मत नहीं जुटा पाता है। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि उस जोधपुर के महाराजा को भी यह भली-भांति निश्चय था कि यह सारा का सारा ही नाटक तो अंग्रेजी सरकार की ओर से खेला जा रहा है, नन्ही भक्तिन वेश्या या रसोइया तो एकमात्र बहाना या अपने इस कुकृत्य को गुप्त रखने का साधन घड़ा जा रहा है क्योंकि प्रतीत होता है कि राजा को यह भय था कि यदि तुमने (जोधपुर के महाराज ने)

इस सम्बन्ध मे कोई ऐसा कदम उठाया जो कि अग्रेज सरकार के हितो के प्रतिकूल या उस सरकार को बहुत बुरा लगे लेकिन तुम्हारी दृष्टि मे वह न्यायोचित भी हुआ तो अंग्रेजों को कूटनीति का शिकार होने से किसी भी हालत में बच न पाओगे, जिसके परिणामस्वरूप तुम्हें राजगद्दी से च्युत करके सारे ही अधिकार छीनने की भी स्थिति आ सकने की पूर्ण सम्भावना है।

इस सारे ही विवेचन का तत्त्व यह निकला कि ब्रिटिश साम्राज्य ने ही किसी को अपनी कठपुतली बनाकर विष प्रदान कर महर्षि दयानन्द के प्राणों का हरण कर आपना राजनीतिक मार्ग निष्कण्टक बनाया था क्योंकि महर्षि दयानन्द के बलिदान से बहुत समय पहले ही एक फकीर के नेतृत्व में बंगाल प्रांत में कई हजार साधुओं ने अग्रेजी सेना को अपने चिमटों और त्रिशूलों के बल पर ही एक ऐतिहासिक कड़ी पराजय दी थी। इसलिये कि उसकी दृष्टि में प्रत्येक साधु बागी था। वैसे भी इस साधु का वह भयंकर राष्ट्रवादी स्वरुप भी सदैव अग्रेजी सरकार की आंखों के आगे तैरता रहता था। इस कारण भी अंग्रेजी सरकार प्रत्येक भारतीय साधु को सशंक नेत्रों से ही देखने की अभ्यासी बन चुकी थी। साथ ही उन्हें यथासम्भव प्रत्येक उपाय से दबाने की ताक मे ही रहती थी।

इतिहास के अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान स्व0 श्री पंडित भगवद्दत्त जी बी0 ए0 रिसर्च स्कालर ने इस सम्बन्ध में जो खोज की उसकी जानकारी उन्होने स्वयं ही लेखक को दी, जो इस प्रकार है :

1. पं0 भागराम जी अजमेर निवासी (जो सम्भवतः अजमेर के डिप्टी कमिश्नर थे) ने जो कि अंग्रेज सरकार की ओर से महर्षि के लिये विशेष गुप्तचर नियुक्त किये गये थे बताया कि लन्दन के इण्डिया आफिस में महर्षि के समकालीन गवर्नरों तथा गवर्नर जनरल के पत्र व्यवहारों के जो रिकार्ड सुरक्षित हैं, यदि वे खोज कर पढ़े जायें तो महर्षि दयानन्द सरस्वती की मृत्यु सम्बन्धी घटना की यथार्थता और सत्यता सामने आ सकती है।

2. श्री फिरोजचन्द्र जी एम0 ए0 ने जो वर्तमान कांग्रेस सरकार की ओर से भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास लिख रहे हैं, बताया कि भारतीय स्वाधीनता संग्राम के पराग में महर्षि दयानन्द सरस्वती का स्थान-स्थान पर अत्यधिक वर्णन उपलब्ध होता है।

इस सम्पूर्ण तर्क-वितर्क पर ठण्डे तथा निष्पक्ष मस्तिष्क से विचार करने के पश्चात् हमारे विज्ञ पाठक निश्चय ही इस परिणाम पर पहुंचे बिना नहीं रह सकते कि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 1857 के पश्चात् भारत के नागरिकों के प्रसुप्त अन्तःकरणों में जो अपूर्व जागृति उत्पन्न की जिसमें राजनीतिक, आर्थिक, स्वतन्त्रता, स्वगौरव एवं स्वाभिमान का मूल था, उससे यहा के निवासियों से स्वदेशप्रेम की चेतना दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़नी तेजी के साथ आरम्भ हो गई थी। इस निरन्तर बढ़ती हुई चेतना के भय से उस समय के अंग्रेजी राज्य ने एक भयंकर तथा कुटिल किन्तु अत्यन्त ही सुगुप्त षड्यन्त्र कर इस उठती हुई सर्वविध जागृति की प्रतीक ज्वालाओं को बुझाने का एक अत्यन्त ही अपने राज्य के लिए हितकारक और दूरदर्शितापूर्ण किन्तु मानवता से सर्वथा ही शून्य जघन्य कार्य किया, जो कि महर्षि की मृत्यु के रूप मे था। उनका यह कुकृत्य इतिहास मे सदा के लिये तथाकथित न्यायप्रिय अंग्रेज जाति के माथे पर अमिट कलंक के रूप में विद्यमान रहेगा। जिसे सारी अंग्रेज जाति की सारी गोरी चमड़ी की सफेदी मिलकर भी कदाचित् दूर करने मे समर्थ नहीं हो सकेगी।

द्वितीय अध्याय

यह एक सर्वसम्मत तथ्य है कि राजाओं के सुधर जाने की स्थिति में यह स्वाभाविक है कि प्रजा स्वयमेव सुधर जाती है, इस भावना से प्रेरित होकर गुरु विरजानन्द एवं उनके सुयोग्य शिष्य ऋषि दयानन्द सरस्वती ने तत्कालीन रियासतो और विशेषकर राजस्थान के राजाओं के सुधार का उस युग में एक 'दूरदर्शितापूर्ण' भरसक प्रयास किया, आर्य जगत् के महाविद्वान् बहुभाषाविद् स्व0 स्वामी वेदानन्द जी लिखित स्वामी विरजानन्द जी के जीवनचरित के पृ0 112-134 तक में चरितनायक द्वारा जयपुराधीश राजा रामसिंह के सुधारकाय का वर्णन मिलता है, दण्डी स्वामी जी के इसी कार्य के वर्णन को प्रस्तुत करते हुये एक इतिहासकार भी लिखता है -

"संवत् 1914-15 (सन् 1857 में) अग्रेजों से जमकर मुकाबला करनेवाले हाथरस, मुरसान आदि के जमींदारो से तथा अलवर, भरतपुर, कारोली, ग्वालियर, जयपुर आदि के राजाओं से उनका (स्वामी विरजानन्द का) धनिष्ठ सम्बन्ध था, इनमें से एक दो को तो उसने राजनीति धर्म और दर्शन का अध्ययन कराके प्रबोध कराने का भी जतन किया था। (हमारा राजस्थान पृ0 270)

गुरु विरजानन्द जी के पश्चात् इस महान् कार्य को उनके मानस-पुत्र ऋषि दयानन्द सरस्वती ने अपने हाथों में लिया, उनके असाधारण पाण्डित्य, ओजस्वी वाणी, अखण्ड ब्रह्मचर्य के प्रभाव से बलिष्ठ तथा विशाल शरीर और ओज-तेज से तमतमाता चेहरा साथ ही विशुद्ध एवं प्रखर देशभक्ति और निजगौरव, संस्कृति तथा स्वाभिमान से पूर्ण आकर्षक विचार इस भारी एवं महत्वपूर्ण कार्य की सिद्धि में वरदान साबित हुये, उनके द्वारा राजस्थान के राजाओं का निकटतम सम्पर्क स्थापित कर उनमें राजनीतिक चेतना स्वगौरव तथा स्वाभिमान एवं स्वातंत्र्य के प्रति अदम्य उत्साह और दृढनिश्चयी

चिन्तन को उद्‌बुद्ध कर जिस क्रान्ति को जन्म दिया गया, वह प्रसंग भी भारतीय स्वतन्त्र्य–संग्राम का एक उपेक्षित किन्तु अतीव महत्त्वपूर्ण अध्याय है, जो कि प्रासंगिक इतिहास के ग्रन्थो में जानबूझकर उल्लिखित न किया जाने से तथाकथित इतिहासकारों की इतिहास के प्रति किये गये महत्तम अन्याय तथा कटुतम उपेक्षा का कच्चा चिट्ठा है, ऐसे ही सज्जन तो इतिहासकार न होकर इतिहास या सत्यता का निर्ममतापूर्वक गला घोटनेवाले कहलाया करते हैं, उसी प्रसंग का कुछ उपलब्ध वर्णन एक इतिहासकार करता है।

"दयानन्द ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश का दूसरा संशोधित और परिवर्धित संस्करण भी उदयपुर रहकर ही पूरा किया। उसके छठे राजधर्म–सम्बन्धी समुल्लास में निबद्ध विचारों के चिन्तन से महाराणा सज्जनसिंह को दिये गये राजनीतिक और धर्मसम्बन्धी पाठो के सिलसिले में ही हुआ हो।"

(हमारा राजस्थान पृ0 298)

"राजपूतों के इस संघ में स्वामी जी को प्रताप और दुर्गादास की सन्तान को देखने का अवसर मिला, कहां वह स्वाधीन शेर? कहां यह राज्य और इन्द्रियों के बन्धुवे? ऋषि ने राजपूताने की दशा को रोते हुये हृदय से देखा, जो लोग वीरता के आदर्श, मान के पुजारी और स्वाधीनता के पुतले थे, वे ऋषि दयानन्द को विलास के दास, अफीम के पुजारी और अंग्रेजी सरकार के बन्धुवे दिखाई दिये, ऋषि के शिष्य आत्मानन्द जी ने एक घटना बताई। अपने शिष्यों के साथ ऋषि एक दिन चित्तौडगढ का किला देखने गये, जिस ऋषि दयानन्द की आंखों मे पिता, माता और बहिनों का वियोग तरी न ला सका, चित्तौडगढ़ की दशा देखकर उसकी आंखों से झर–झर आंसू बहने लगे, ऋषि दयानन्द ने एक ठंडी सांस लेकर निम्नलिखित आशय के शब्द कहे–ब्रह्मचर्य के नाश होने से भारतवर्ष का नाश हुआ और ब्रह्मचर्य का उद्धार करने से ही देश का उद्धार हो सकेगा, आत्मानन्द! क्या चित्तौड़गढ़ में गुरुकुल बनाना चाहते हैं"

(आर्यसमाज का इतिहास प्रथम भाग पृ0 128)

राजाओं में जागृति

पाठकगण! ऋषि दयानन्द सरस्वती से भेंट करने के पश्चात् महाराणा सज्जनसिंह पर कैसा पवित्र प्रभाव पड़ा और वह किस प्रकार राष्ट्रीयता के रंग में रंग गया यह निम्न उद्धरण से समझ सकते हैं। सज्जनसिंह अंग्रेज अधिकारियों के बहुत समझाने, मनाने और यह कहने पर की अंग्रेजों का युवराज मेवाड के मित्रराज्य का लड़का होने से इस देश में आने पर उसका अतिथि है। अतः उसके स्वागत में जाकर शामिल होने से महाराणा के महत्त्व में कोई फर्क नहीं आयेगा, इस शर्त पर बम्बई जाकर युवराज का स्वागत करने को तैयार हुआ था कि उसकी कुर्सी वहां दरबार में बाकी सब राजाओं, नवाबों से आगे रखी जायेगी, किन्तु वहां जब हैदराबाद के निजाम की कुर्सी रखी गई तो सज्जनसिंह ने दरबार में आने से इन्कार कर दिया और यों ही उदयपुर वापिस लौट आया।

(हमारा राजस्थान पृ0 237)

"दयानन्द सज्जनसिंह की शिष्टता और सादगी से बहुत अधिक प्रभावित हुए तथा सज्जनसिंह भी दयानन्द की विद्वत्ता और व्यक्तित्व से आकृष्ट हुए। दयानन्द चित्तौड में एक मास ठहरे, जहां मेवाड के ठाकुर जागीरदार आदि भी उनके सम्पर्क में आये।"

(हमारा राजस्थान पृ0 276)

मेवाड के महाराणा का बार-बार आग्रहपूर्ण निमन्त्रण पाकर वह (महर्षि दयानन्द) अगला चौमासा राजस्थान में ही करने के विचार से रवाना हुआ, इन्दौर, रतलाम आदि होता हुआ जुलाई 1882 को वह उदयपुर आन पहुंचा और गुलाब बाग के महलों में सात मास तक महाराणा का अतिथि बन यहीं ठहरा रहा, महाराणा ने उससे संस्कृत सीखी तथा वैशेषिक, मनुस्मृति, महाभारत राजधर्म, विदुरनीति के साथ व्यावहारिकी राजनीति व शासन प्रबन्ध सम्बन्धी अनेक पाठ भी पढ़े, तथा उसकी सहायता से अपने राज्य में अनेक प्रकार के शासन-सुधार भी आरम्भ किये। महाराणा सज्जनसिंह एक तीव्र बुद्धि का होनहार मेधावी युवक था, जिसे विद्या के प्रति आदर

और राज्य में आर्थिक और सास्कृतिक उन्नति के लिए नई-नई योजनाओं पर कार्य आरम्भ करने का विशेष रूप से शौक था।

(हमारा राजस्थान पृ0 278)

'दयानन्द ने राजस्थान में स्वदेशी राज अच्छे से अच्छे विदेशी राज से भी अच्छा होता है, इस मन्त्र का प्रवचन किया था।

(हमारा राजस्थान पृ0 287)

पाठकगण! उक्त महाराणा सज्जनसिंह जिनसे ऋषि दयानन्द को भविष्य मे बहुत-सी आशायें थीं, वह दुर्दैव वश जवानी में ही संसार से विदा हो गये। यह पूर्ण सम्भावना थी कि ऐसे प्रखर राष्ट्रभक्त के द्वारा आगे चलकर न जाने कितना लोकोपकार होता है। अस्तु, इसके पश्चात् इनका उत्तराधिकार श्री महाराणा फतहसिंह जी को प्राप्त हुआ, जो सम्भवतः इनके निजी पुत्र तो नहीं थे, परन्तु इन्हीं के समान प्रखर राष्ट्रवादी विचारधारा के थे और यथासम्भव स्वगौरव, स्वाभिमान, स्वाधीनता के बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील रहते थे, इसलिए वे इनके सच्चे अर्थो में मानसपुत्र थे। वह किस प्रकार है, निम्न उद्धरण में पढ़ें 'मई 1910 में अंग्रेजों का सम्राट् एडवर्ड 7वां चल बसा और उसका लड़का जार्ज 5वॉ गद्दी पर बैठा। लार्डमिण्टो अपने दमन और भेदनीति के कारण भारत में काफी बदनाम हो चुका था। अतः लार्ड हार्डिगं को भारत का वायसराय बनाकर भेजा गया था, भारत के वातावरण की क्षुब्धता को शान्त करने और लोगों की राजभक्ति की भावना को उभारकर क्रान्तिकारियों के बढ़ते हुए प्रभाव को कम करने के लिए अगले साल सम्राट जार्ज पंचम स्वयं भारत आया, अंग्रेजों ने भारत में उसका राज्यारोहण समारोहण मनाने के लिए 12 दिसम्बर को दिल्ली में एक बड़ा राजदरबार रच भारतीय प्रजा की राजभक्ति का बृहद् प्रदर्शन करने की योजना की, मेवाड का महाराणा फतहसिंह ऐन मौके पर लड़के की बीमारी का बहाना बना उस प्रदर्शन में सम्मिलित होने से टरक गया और बड़ौदा के सयाजीराव गायकवाड़ ने दरबार के समय निर्धारित शिष्टता के व्यवहार की अवहेलना कर अंग्रेज सम्राट् के प्रति अवज्ञा दिखाकर

उस प्रदर्शन की महत्ता किरकिरी कर दी, अंग्रेजी आमला दल इस पर बहुत बिगड़ा, पर भारतीय जनता ने अपने उन दोनों राजाओं के उस व्यवहार से एक तरह का राष्ट्रीय गर्व का सा अनुभव किया, चारों तरफ स्थिति की विकटता को देख अंग्रेज शासकों ने उन मामलों को अधिक तूल न पकड़ने दिया।

(हमारा राजस्थान पृ० 303)

पाठक निम्न घटना को ध्यान से पढ़ें, हमें विश्वास है कि हमारे पाठक आपने आप में गौरव तथा स्वाभिमान की अनुभूति किए बिना नहीं रहेंगे।

महाराणा ने अंग्रेजों की रेलगाड़ी जब्त की थी।

'मेवाड़ में महाराणाओं की बहादुरी के किस्से तो कई हैं, किन्तु कुछ ऐसे भी महाराणा हुये हैं, जिन्होंने आपनी विशिष्ट आदतों के कारण जनमानस में छाप छोड़ी हैं, और आज भी मेवाड़ के लोग उन घटनाओं को याद करके प्रफुल्लित होते हैं। मेवाड के महाराजाओं में श्री फतहसिंह जी का विशिष्ट स्थान रहा है, उनकी कुछ ऐसी आदतें थीं जिनके कारण लोगबाग थर्राते थे और बडे-बड़े जागीरदार और ठाकुर भी उनके सामने बोलने में घबराते थे, अपराधियों को सज़ा देने का भी उनका अजीब ढ़ग था, कहा जाता है आज जहां उदयपुर में घण्टधर पुलिस थाना है, वहां किसी ज़माने में एक लम्बा चमडे का जूता टंगा रहता था, जो भी कोई अपराध करता उसे उस विशाल जूते से पीटा जाता था, एक बार महाराणा को किसी ने आकर सूचना दी कि हुज़ूर! खेमली गुडली लूटगी है, अर्थात् हुज़ूर! खेमली गुडली लूट गई हैं, तो महाराणा ने तपाक से कहा राण्डा रोती क्यूं फिरती ही। अर्थात्-राण्डें! आवारागर्दी क्यों कर रही थी, जबकि तथ्य यह था कि खेमली और गुडली दो गांव है, जिन्हें लुटेरों ने लूट लिया था, उसकी सूचना महाराणा को दी थी।

उस ज़माने में पहले-पहल उदयपुर-चित्तौड़गढ के बीच अंग्रेज सरकार ने बी० बी० एण्ड सी० आई० के नाम से रेलगाडी शुरु की थी, यह रेल लाइन 'भूपाल सागर' तालाब के पास से गुज़रती थी,

यकायक तालाब के टूट जाने से रेल की पटरियां बह गई, अंग्रेजों ने मेवाड़ के महाराणा को पत्र लिखा कि आपके तालाब के टूट जाने के कारण रेल की पटरियां बह गई और इससे अंग्रेज सरकार का 16 लाख रुपये का नुकसान हो गया है। अतः इस नुकसान की पूर्ति मेवाड सरकार को करनी चाहिए। जिस दिन महाराणा फतहसिंह जी के पास यह पत्र पहुंचा उन्होंने उसे सुना और अपने कलमदान में बन्द करवा दिया। दूसरे दिन पेशकार को बुलवाकर उत्तर लिखने के लिए कहा, पत्र में महारणा ने लिखवाया कि चूंकि 'भूपाल सागर' का तालाब पहने बना था और रेलगाडी बाद में निकाली गई, इसलिए रेलगाड़ी की घडघडाहट से तालाब की नींव हिल गई, और तालाब के फूट जाने से कई गांवों में पानी फैल गया है, और फसल नष्ट गई, इससे मेवाड़ सरकार को 32 लाख रुपये का नुकसान हो गया है, अंग्रेज सरकार तुरन्त इस नुकसान को भरे, जब तक क्षतिपूर्ति की राशि प्राप्त नहीं होगी, रेलगाडी जब्त करली जायेगी और महाराणा ने पूरी रेलगाड़ी अपने कब्जे में ले ली, अंग्रेज सरकार ने जब मेवाड़ के महाराणा का उत्तर प्राप्त किया तो शासकगण और अधिकारी चौंक गये, अन्त में महाराणा को रेलगाड़ी सौंप दी गई।

(दैनिक हिन्दुस्तान दिल्ली 23-11-1976 पृ0 7 पर ब्रजेन्द्र रेही)

इतना ही नहीं बल्कि एक अन्य घटना से भी पाठक इनके स्वाभिमान एवं निष्ठा तथा आत्मविश्वास का अनुमान कर सकते हैं।

वायसराय लार्ड कर्ज़न ने पहली फरवरी 1903 को अपनी और अंग्रेज सरकार की धाक जमाने के लिए दिल्ली में दरबार का आयोजन किया था, महीनो से उस दरबार के आयोजन को सफल बनाने का कार्यक्रम चल रहा था, देश के सभी राजा-महाराजाओं को उस दरबार में हाज़िर होने तथा भेट लाने के लिये आमान्त्रित किया गया था। अधिक से अधिक राजा, महाराजा खिदमत में पेश हों, इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति खुलकर खेली जा रही थी, कर्ज़न को एक आशंका थी और वह यह कि कहीं मेवाड़

का अक्खड़ फक्कड़ महाराणा फतहसिंह दरबार में नहीं आया तो उसके दरबार की रौनक फीकी हो जायेगी, उसका यह 'राजसूय यज्ञ' अधूरा रह जायेगा। मेवाड का कोई भी महाराणा दिल्ली में नहीं आया था, मेवाड़ के राणा ने न कभी मुग़लों की पराधीनता स्वीकार की और न अपना सम्मान खोकर जिना सीखा था। कर्जन ने सपना देखा था उ.स राजपूती बहादुरी और भारत में स्वाधीन चेतना के प्रतीक फतहसिंह को दरबार के जुलूस में अपने हाथी के पीछे चलाने का और दरबार मे बैठकर उसके हाथ से नज़राना लेने का, उसने अनेक प्रकार कि रियायतें देकर कूटनीति से फतहसिंह को इस बात के लिए राजी कर लिया था कि वह दरबार में सम्मिलित हो जाये। राजनीतिक तर्क, दाव, घात वह किसान महाराणा समझ नहीं पाया, उसने हामी भर ली (स्मरणीय है कि हल चलाते फतहसिह को खेत से लाकर मेवाड की गद्दी पर बैठाया गया था)। दिल्ली में देश के सात सौ से अधिक राजा, महाराजा अपने डेरे डण्डे उठाये, अपनी वेशभूषा पहने बडी रौनक के साथ पहुॅच रहे थे, कैसे अदब से पैर उठाया जायेगा ? कैसे कर्जन को सलाम और नजराना होगा ? कैसे लौटेंगे ? उसकी रिहर्सल हो रही थी, पर मेवाड की जनता को महाराणा का दिल्ली जाने का निर्णय नहीं भाया, राजस्थान मे कवीश्वरों को अवध्य माना गया है उनको इस बात की पूरी स्वतन्त्रता थी कि वे लोगो के गलत निर्णयो की निन्दा करें, आलोचना करे, यहां तक कि वे अपने आश्रयदाता को भी खरीखोटी सुनाते थे। बारहट-चारण कुल मे जन्में केसरीसिंह ने महाराणा के दिल्ली गमन को स्वाधीनता की शान के विरुद्ध समझा, उसने अपने कुलधर्म के अनुसार महाराणा के मानस को कझोरने का निश्चय किया, तेरह दोहे महाराणा को लिखकर उदयपुर भेजे, पर महाराणा की विशेष रेलगाड़ी दिल्ली चल पडी थी, कवि ने अगले स्टेशन पर 'चेतावणी' के तेरह दोहे महाराणा को पहुचा ही दिए, उन दोहों का प्रभाव तीर की तरह हुआ, कवि ने लिखा-

स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए मेवाड के लोग और महाराणा पग-पग पहाडों में भटकते फिरे, इसलिए ये दो नाम भारत मे लोगो की श्रद्धा के पात्र बने, अनेक युद्ध हुये पर महाराणा निर्भय रहे, लेकिन

फतहसिंह कर्ज़न का फरमान देखते ही तुम दिल्ली कैसे चल पडे ? जिस महाराणा के हाथियों के चलने से उड़ी धूल पृथ्वी पर नहीं समाती थी, वह महाराणा अब दरबार के दो सौ गज़ के घेरे मे कैसे समा जायेगा ? जिसके वंशजों ने अपने शत्रुओ को हरावल में से भगा दिया था, वह अब वायसराय की सवारी के पीछे कैसे चलेगा ? तेरे हाथों में तलवार है, तू कैसे नजराना करने को हाथ आगे फैलायेगा ? जिसके सिंहासन के आगे सम्मान में शत्रु का भी शीश झुका है, हे फतहसिंह तू कैसे भेडों के झुण्ड में मिलकर चलेगा ? जिसके दिए दान को धर्म, स्वाधीनता की चेतना समझकर संसार सिर पर चढ़ाता है, वह कैसे फिरंगी से 'तारे' (नाईट स्टार आफ इण्डिया के० एस० ओ० आई०) का खिताब लेने को ललचा रहा है ? कवि ने सरस ओजपूर्ण वाणी में राष्ट्रीय स्वाभिमान को जगाते हुए लिखा-तुझे हिन्दुओ का सूरज कहते हैं, कैसे तू तारा कहलाने में गौरव समझेगा ? हे शिशोदिया महाराणा! दिल्ली का दम्भी किला तेरा मान चूर-चूर होते देख मन ही मन हंसेगा, और वह दिन उसके लिए अभिमान का होगा जब तेरा शीश सिंहासन के सामने झुकेगा, महाराणा प्रताप और सांगा ने स्वतन्त्रता का रहस्य समझकर संघर्ष किये थे, क्या तुम उनकी प्रतिज्ञाओं को भूल रहे हो ? फतहसिंह हमको आशा है कि आप स्वाधीनता की अपनी कुल-परम्परा को बनाये रखोगे, भगवान् शिव तुम्हारी सहायता करें, हे राणा अपनी प्रतिष्ठा और आन को कलंकित होने से बचाओ, क्या तुम फिरंगी सरकार की गोद में मीठे फल देख रहे हो ? महाराणा का मन चेता, उसने कूटनीति से काम लेने का निश्चय कर लिया, वह दिल्ली तो चल ही चुका था रास्ते में था, पर दिल्ली पहुंचकर वहां उतरा नहीं, जब दिल्ली में दरबार हो रहा था, महाराणा की विशेष रेलगाड़ी दिल्ली से उदयपुर की ओर लौट रही थी, कर्ज़न के दरबार में मेवाड़ के महाराणा की खाली कुर्सी फिरंगी हुकूमत को चिढ़ा रही थी।

(दैनिक हिन्दुस्तान दिल्ली 28-4-1976 पृ० 5 पर डा० भंवर सुराणा का लेख)

केसरीसिंह बारहट के 13 दोहे

1. पगपग भम्या पहाड़धरा छोड राख्यो धरम।
महाराणा र मेवाड, हिरदै वाशिया हिन्द रे।।
2. घण घलिया घमशाण, राणा सदा रहिया निडर।
पेखन्ता फरमाण हलचल, किम फतमल हूवै।।
3. गिरद गजां घमशाण, नहचै धरमाई नहीं।
मावै किम महाराणा, गज दौ सौ रा गिरद में।।
4. औरां ने आसाण, हां कां हरवल हां लणो।
किम हालै कूल राण, हलवल शाहां हंकिया।।
5. नरियन्द शह नजराण, झुक करसी सरसी जिकां।
पशरेलो किम पाण, पाण छतां थारो फता।।
6. शिर झुकिया शंहशाह, सिंहाराण जिण साम्हने।
रलणौ पंगतराह, फाये किम तूने फता।।
7 सकल चढ़ावै शीश, दान धर्म जिनणो दियो।
सो खिताब बखसीस, लेवण किम ललचावसी
8 देखेला हिन्दबाण, निज सूरज दिश नेहसूं।
पण तारा परमाण, निरख निशां शान्हां करसी।।
9. देखे अंजसहीह मूलके लो, मन ही मनां।
दभ्भीगढ़ दिल्लीह, शीश नमन्ता शीशबन्द।।
10 अन्तबेर आखीह, पातल जै बोतौ पहल।
राणा शहसखीह, जिणरौ साखी सिर जटां।।
11. कठिन जमानो कोल बांधे नर हिम्मत बिना।
बीरो हन्दो बोल, घातल सांगे पेखियो।।
12. अब लग सारां आश, राणा रीत कूल राखशी।
रहौ सहाय सुखराश, एकलिंग प्रभु आसरे।।
13. मान मोद शीशोद, राजनीति घल राखणो।
गवरमिण्टरी गोद, फल मीठा दीठा फता।।

पाठकों को यह बताना आवश्यक है कि उक्त घटना का वर्णन संक्षेप मे 'हमारा राजस्थान' पुस्तक मे भी पृ0 288-289 में है,

महाराणा को यह कविता 'सरेरी' नामक स्टेशन पर मिली थी, कवि ने इसका नाम 'चेतावणीरा चुगट्य' रखा था। पाठकों को यह भी ध्यान होना चाहिए कि उक्त कविता के लेखक जिसने भारत की आन-मान-शान रखी थी के रचयिता महर्षि दयानन्द के अमरशिष्य कृष्णसिंह बारहट के पुत्र केसरीसिंह बारहट थे, पाठक इनकी देशभक्ति तथा स्वाभिमान का और भी जायज़ा लेवे। 1901 में अंग्रेजों की रानी विक्टोरिया का देहान्त हुआ, लार्ड कर्जन ने उसके उत्तराधिकारी एडवर्ड 7वे के राज्यारोहण समारोहण के लिए 1903 के आरम्भ में दिल्ली में एक बड़ा दरबार रचा, उस दरबार में वह भारतभर के राजा महाराजाओं और लोकनेताओं को एकत्र कर ब्रिटिशराज के प्रति भारतवासियों की राजभक्ति का विराट् प्रदर्शन करना चाहता था। महाराणा उदयपुर को जो अब फिर राष्ट्रीयता का प्रतीक बन चला था वह उसमें विशेष रूप से सम्मिलित करना चाहता था, जिसके लिए 1902 में उसने मेवाड़ की यात्रा की। वह मेवाड़ में अंग्रेजी सेना की संख्या अधिक बढाने के लिए भी महाराणा पर दबाव डालना चाहता था। इसके लिए उसने भेट के समय महाराणा के सम्मुख प्रस्तुत करने को एक नोट अपने सैक्रेटरी को पहले से तैयार करने की हिदायत कर रखी थी, पर महाराणा से मिलते समय वह उनके तेजस्वी व्यक्तित्व से जैसा कि उसने बाद में अपने सैक्रेटरी के सम्मुख माना, इतना अभिभूत हो गया कि महाराणा की इच्छा के विपरीत उस विषय पर कोई चर्चा छेड़ ही न सका।

(हमारा राजस्थान पृ0 288)

पाठक ! इसी प्रकार की एक कूटनीतिक चाल इनके पूर्ववर्ती महाराणा सज्जनसिंह के समय में भी अंग्रेजों की ओर से चली गई थी, परन्तु उसको भी किस प्रकार विफल कर दिया गया, निम्न उदाहरण से समझ सकते हैं।

जब महाराज चित्तौड़ में थे और गर्वनर जनरल भी चित्तौड़ आये हुए थे, गवर्नर जनरल ने महाराणा सज्जनसिंह से कहा कि चित्तौड़ का किला आप सरकार को दे दें, इस पर महाराणा तो चुप रहे, परन्तु जब स्वामी (दयानन्द) जी को इस बात का पता लगा तो उन्होंने

उदयपुर के सरदारों को जो वहां इक्ट्ठे हुए थे, बुलाकर समझाया कि बारी-बारी जाकर गवर्नर जनरल से मिले, और कहें कि चित्तौड़ का किला केवल महाराणा का ही नहीं है, इस पर सब राजपूतों का हक है, और सबकी सम्मति के बिना महाराणा को कोई हक नहीं है कि इसके विषय में कोई बातचीत करे, तब गवर्नर जनरल समझ गया कि यह हमारी मांग को नहीं मानेंगे, तो उन्होंने कहा कि मैंने वैसे ही महाराजा साहब से जिक्र किया था, हमने किला लेकर क्या करना ?

(पूर्ण पुरुष का विचित्र जीवन चरित्र पृ0 152 ले0 श्रीकुन्दलाल आर्य)

पाठकगण! निश्चय से ही यह राष्ट्रीयता का अपूर्व प्रभाव महर्षि दयानन्द सरस्वती की ही देन था, इसी महाराणा को 1881 में तत्कालीन सरकार उस समय की अपनी के0 सी0 ई0 नामक सर्वोच्च सम्मानास्पद उपाधि देना चाहती थी, परन्तु इसने राष्ट्रीयता के मद में अपनी पूजा के उस थाल को भी ठुकरा दिया था परन्तु ऐसे स्वाभिमानी तथा वर्चस्वी राजा की सहानुभूति अपने पक्ष में करने के उद्देश्य से लार्ड रिपन एक रेलवे लाइन के उद्घाटन करने के बहाने से उक्त राणा के घर जाकर उसे यह उपाधि देकर आये थे। यह महाराणा राजस्थान की स्वतन्त्रता एवं स्वदेशाभिमान का प्रतीक हो चला था, इसीलिए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इसे अपनी उत्तराधिकारिणी, परोपकारिणी सभा का प्रधान मनोनीत किया था, उक्त महाराणा को भी अपना उत्तराधिकारी ऐसा ही प्रखर राष्ट्रीयता के विचारों से ओतप्रोत व्यक्तित्व मिला, जिसके स्वदेशाभिमान के कार्य -कलापों का संक्षिप्त विवरण ऊपर दिया है, और इतिहासकार लिखता है।

'1877 के दिल्ली दरबार के समय इन्दौर के महाराजा तथा कुछ अन्य नरेशो ने मिलकर यह यत्न किया था कि सब देशी नरेशों को इक्ट्ठा करके उनके सामने स्वामी जी का क्षात्रधर्म पर उपदेश कराया जाये।

(राष्ट्रवादी दयानन्द ले0 सत्यदेव विद्यालंकार)

'राजाओं आदि मे अपने विचारों का प्रचार करने के लिए महाराजा इन्दौर ने इस मौके पर दयानन्द सरस्वती को भी दिल्ली आने का निमन्त्रण भेजा।

(हमारा राजस्थान पृ० 273)

इस अवसर पर निमन्त्रण प्राप्त कर इस दुर्लभ अवसर से लाभ उठाने को महर्षि दिल्ली पधारे और यथाशक्ति राजाओं से सम्पर्क करने का प्रयास किया। किन्तु अंग्रेजी सरकार को महर्षि दयानन्द जैसे तेजस्वी राष्ट्रभक्त के साथ राजाओं का सम्पर्क होना फूटी आंखों न सुहाया, अतः उसने भारतीय नरेशो को अपनी साम, दाम, रूपी नीति के द्वारा महर्षि के निकट नहीं फटकने दिया, भारतीयों की इस नासमझी तथा अदूरदर्शिता पर महर्षि दयानन्द के दुःखी हृदय ने बाद में चलकर सत्यार्थप्रकाश मे खून के आंसू बहाये, अन्य नरेशों तक भी स्वामी जी पहुंचे थे, 'मसूदा' नरेश ने स्वामी जी का बड़ा भक्ति से स्वागत किया।

(आर्यसमाज का इतिहास प्रथम भाग पृ० 127)

इन्दौर का राजा सियाजी राव भी प्रबल अंग्रेजविरोधी थी, होलकर वंश में जसवन्त होलकर द्वारा दिखाई गई स्वाधीनता की वृत्ति की परम्परा अभी चली आती थी, भारतीय राजाओं में स्वामी दयानन्द सरस्वती के उपदेशों का सबसे प्रथम स्वागत होलकर ने ही कियां था।

(हमारा राजस्थान पृ० 289)

'खास राजस्थान में इस आन्दोलन में आरम्भ से भाग लेनेवालों में शाहपुर का केसरीसिंह था, जो दयानन्द के शिष्य और महाराजा सज्जनसिंह तथा उस जमाने के दूसरे अनेक राजस्थानी राजाओं के विश्वासपात्र बारहट किशनसिंह का पुत्र था।

(हमारा राजस्थान 295-96)

कर्नल महाराजा प्रतापसिंह कहा करते थे कि स्वामी दयानन्द ने हमको आदमी (मनुष्य) बना दिया, इस बात का दुःख था कि स्वामी

दयानन्द की मृत्यु जो जोधपुर में विष देने से हुई। वह परोपकारिणी सभा के प्रधान थे। जोधपुर आर्यसमाज के भी प्रधान थे।

(आर्यसमाज के त्यागी तपस्वी सन्त ले0 प्रि0 दीवानचन्द एम0 ए0)

जानकार लोगों को मालूम है कि महाराजा सियाजी राव गायकवाड (बड़ौदा) को सुधार की ओर प्रेरित करने का बहुत-सा श्रेय उनके मानसिक गुरु स्वामी नित्यानन्द जी महाराज (आर्यजगत् के विख्यात शास्त्रार्थ महारथी बालब्रह्मचारी सन्यासी) को था और उनकी सुधार सम्बन्धी योजनाओं को कार्यान्वित् करने वाले राज्य रत्न पं0 आत्माराम जी अमृतसरी थे, तीनों ही विद्वान् आर्यसमाजी थे।

(आर्यसमाज का इतिहास पृ0 367)

"मथुरा से आगरा, ग्वालियर, धौलपुर, करौली और जयपुर होते हुये अनेक राजाओं, ठाकुरों आदि से मिलता और उन्हें जगाने का प्रयत्न करता हुआ वह अजमेर और पुष्कर तक आया।"

(हमारा राजस्थान पृ0 271)

1880 के अन्त में दयानन्द फिर राजस्थान मे प्रचार के लिए आया, भरतपुर, जयपुर आदि होता हुआ वह अजमेर पहुचा, जहां मंसूदा, रायपुर, बनेडा आदि के ठाकुरों में जागृति पैदा करता हुआ दीपावली के आसपास वह चित्तौड पहुंचा।

(हमारा राजस्थान पृ0 276)

'मेवाड़ के अनुभवों से दयानन्द शाहपुरा, जोधपुर आदि दूसरी रियासतों में भी जाकर वहां राजा-प्रजा को जगाने के लिए उत्साहित हो उठा था, शाहपुरा का राजा नाहरसिंह मेवाड़ का 'जागीरदार और उसी वंश का होने से मेवाड़ के ही आदर्शों से प्रेरित था, अतः शीघ्र ही दयानन्द का शिष्य बन गया। (हमारा राजस्थान पृ0 279)

"दयानन्द ने राजस्थान में स्वदेशी राज अच्छे से अच्छे विदेशी-राज से भी अच्छा होता है, इस मंत्र का प्रवचन किया था।

(हमारा राजस्थान पृ0 287)

'बड़ौदा की शासन-परिषद् के उपसभापति बंगाली दीवान अरविन्द घोष और उसके छोटे भाई वीरेन्द्र बड़ौदा में रहते समय आर्यसमाज और महाराष्ट्र के स्वाधीनतावादियो के सम्पर्क में आये।'

(हमारा राजस्थान पृ0 288)

'स्वामी दयानन्द के सहकारी मनीषी समर्थदान ने सुधारक, केसरी आदि के नमूने पर राजस्थान में भी अजमेर से राष्ट्रीय-पत्र निकलवाने का दो बार उद्योग किया, पर अंग्रेजी पुलिस के हस्तक्षेप और त्रास के कारण वे सफल न हो सके।

(हमारा राजस्थान पृ0 293)

महाराष्ट्र में अभिनव भारत नामक गुप्त समिति की ओर से Choose oh Indian Princes अर्थात् भारत के राजाओं अपना रास्ता चुन लो शीर्षक की एक छोटी-सी पुस्तिका का गुप्त रूप से प्रचार किया गया था उसमें बड़ौदा के राजा गायकवाड़ का स्पष्ट रूप से उल्लेख करके ही उपर्युक्त भाव का प्रचार किया गया था।

(बन्दी जीवन ले0 शचीन्द्र सान्याल पृ0 769)

दिल्ली दरबार के समय महर्षि ने 3 जनवरी 1877 को देहली से रामगढ (सीकर) जि0 जयपुर निवासी पं0 कालूराम को लिखे गये पत्र मे महाराजा इन्दौर एवं बड़ौदा को अपने भक्तों में स्वीकार किया है, वे एक पत्र में लिखते हैं-

वेदोक्त मार्ग को कितने पुरुष स्वीकार करते हैं ? सो इसका परिगणन नहीं कर सकते, असंख्यों में से दो-चार लिख देते हैं, जैसे महाराजा इन्दौर एव बडौदा तथा कपूरथला आदि के महाराजा।

(ऋषि दयानन्द के पत्र एवं विज्ञापन हरिशचन्द्र कृत ऋषिजीवन चरित पृ0 266)

'भारतीय स्वाधीनता संग्राम के क्रान्तिकारी योद्धा श्री अच्युप्राज्ञ कामेश्वर ने एक रोचक संस्मरण सुनाया। जब अंग्रेजो ने आपको गिरफ्तार करने की कोशिश की तो महाराजा बड़ौदा ने तीन हज़ार रुपए, एक कार और अपने पुलिस-अधीक्षक को साथ भेजकर उन्हें सुरक्षित स्थान पर पहुंचाने में मदद की थी।'

(दैनिक वीर अर्जुन दिल्ली 14-6-1969 पृ0 5 कालम 6)

बम्बई राज्य की सरकार मानती थी बंगभंग के समय बडौदा के मकरपुरा और बिल्लीमोरा में बम बनते थे। सन् 1931 में उन्होंने गोल मेज़ कांफ्रेंस (परिषद्) में सर्वप्रथम घोषणा की थी कि यदि अंग्रेज भारत को स्वराज्य दें तो मैं अपना राज्य भारत में मिला दूंगा। 1935 मे उन्होने लदन के टाउनहाल के भाषण में कहा था कि भारत को स्वशासन आज नहीं तो कल अवश्य देना पड़ेगा।

इसी प्रकार शाहपुरा के महाराजा जो कि महर्षि दयानन्द सरस्वती से प्रभावित हो उनको सर्वात्मना समर्पित थे, उनके आदेशानुसार आज तक अपने घर पर ऋषि द्वारा स्थापित यज्ञाग्नि को नित्य यज्ञ द्वारा जगाये हुये हैं, उन्होंने सर्वप्रथम अपने राज्य में प्रजातन्त्र प्रणाली लागू की थी। उस अवसर पर एक विशाल समारोह का आयोजन किया गया था और सरदार पटेल की इच्छा जानकर बिना किसी मुआवजे के ही अपने राज्य का भारत में विलीनीकरण करना सहर्ष स्वीकार किया था। यहीं तक ही नहीं बल्कि उसके पश्चात् भी उसने किसी प्रकार का कोई चुनाव नहीं लडा, सामान्य नागरिक की भाति अपने जीवन को व्यतीत किया। यह सब ऋषि दयानन्द का ही तो प्रभाव था, क्योंकि इसमें मेवाड़ का भी रक्त था।

पूर्वोक्त महाराजा सज्जनसिंह जी के पश्चात् महाराजा फतहसिंह उत्तराधिकारी बने, जैसे कि पहले बताया जा चुका है कि वे उनसे भी अधिक कट्टर देशभक्त थे, इसी महाराणा फतहसिंह ने बाद में भारत की स्वाधीनता के लिए सशस्त्र संघर्ष करनेवाले न जाने कितने ही देशभक्तों को गहरी मुसीबत के समय गुप्त रूप में अपने राज्य मे आश्रय देकर सुरक्षित किया। इसी कारण यह व्यक्ति सदा ही अंग्रेजों की आंखों में कांटे की तरह खटखता रहा। राजस्थान के राजनीतिक जगत् में जो कुछ भी हलचल, उथल-पुथल हुई इस युग में इस कार्य में महर्षि दयानन्द की राष्ट्रवादी सिंहगर्जना से राजस्थान के राजपूती रक्त में देशभक्ति का एक प्रबल उफान आया, जिससे वहां के जनमन में नव चेतना का संचार हुआ, जिस कारण वहां के निवासी इस दिशा

में बढ़चढ़कर भाग ले सके, निश्चय से इसका मूल ऋषि दयानन्द ही थे।

अतः इन सभी प्रमाणों पर गम्भीरता के साथ विवेचन करने के पश्चात् प्रत्येक पाठक इस परिणाम पर अवश्य ही पहुंचेगा कि भारतीय स्वाधीनता के जागरूक प्रहरी महर्षि दयानन्द सरस्वती ही राष्ट्रीय विचारो से ओतप्रोत वातावरण का संसर्ग मिलने के कारण ही उस युग में राजस्थान को भी देश की स्वाधीनता संग्राम के पृष्ठों मे अपने गौरवशाली कार्यों का उल्लेख कराने का सौभाग्य प्राप्त हो सका, विलासिता में फंसे उन राजाओं को स्वदेश, स्वगौरव, स्वसंस्कृति तथा स्वाधीनता की ओर मोड़ देना क्या यह ऋषि दयानन्द सरस्वती के जीवन का कम महत्वपूर्ण पहलू है?

तृतीय अध्याय

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रसारित राष्ट्रीय-भावना के कारण जब भारतीय जनता में स्वतन्त्रता आन्दोलन उग्ररूप धारण करने लगा, तब वे ही भारतीय-जन जो अंग्रेजों के अत्याचारों की विभीषिका से कान तक नहीं हिलाते थे, अब सभा के आयोजनों, पत्र-पत्रिकाओं, जलसों, जुलूसों द्वारा राजनीतिक-स्वाधीनता, स्वगौरव, निजसंस्कृति सभ्यता के पक्ष में अपना आक्रोश व्यक्त करने में अत्यन्त साहसी तथा कटिबद्ध हो गये थे। भारतीय जनसमूह में दिनोदिन बढती इस नव-चेतना एवं जागृति से चिन्तित होकर इसकी रोकथाम के हेतु अंग्रेज सरकार ने इसके दो उपाय किये, 1 (इससे बहुत काल पूर्व) भारतीयों की इसी भावना को कुचलनेवाली लार्ड मैकाले के द्वारा प्रस्तावित अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति जो पाश्चात्य प्रणाली पर आधारित थी, को तत्कालीन सरकार ने भारत में प्रबलरूप से प्रोत्साहन देकर जनता के मन को अपने अनुकूल बनाकर मानसिक दासता के बन्धनों में जकड़ने का सुगुप्त कूटनीतिक प्रयास आरम्भ कर दिया था।

दूसरा कार्य यह किया कि अपने राष्ट्रीय अधिकारों का नारा लगाकर भारतीय जन-मन में राजनैतिक जागृति उत्पन्न करनेवाले प्रमुख पुरुषों को अपनी मुट्ठी में रखने के लिए लार्ड डफरिन के परामर्श पर मि0 ह्यूम ने सन् 1885 ई0 में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना की।

हमारी इस मान्यता से पाठकों को आश्चर्य न हो अतः इस मंतव्य की प्रबल एवं प्रामाणिक ऐतिहासिक प्रमाणो से पुष्टि की जाती है।

सभी अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीय सरकारी नौकरियों और ओहदों को स्वराज्य, स्वधर्म और स्वदेशी के आदर्श मान रहे थे।

(आर्यसमाज का इतिहास प्रथम भाग पृ0 222)

'सन् 1885 मे कांग्रेस का जन्म हुआ, किन्तु उस समय की

कांग्रेस के पीछे हम न तो किसी क्रान्तिकारी शक्ति को देखते हैं, न उनके कार्यक्रम में कोई क्रान्तिकारी बात थी, उस जमाने के क्रान्तिकारी विचारों के व्यक्ति ने अर्थात् उन व्यक्तियों ने जिनका उद्देश्य ब्रिटिश सत्ता को यहां से उखाड़ने का था, कांग्रेस पर कोई ध्यान नहीं दिया। कांग्रेस तो उन अर्जीद हिन्दुओं का जाजमा थी उससे साम्राज्य विरोध या इस प्रकार के किसी नारे की उम्मीद रखना बेकार था। हम देखते हैं कि चाफेकर बन्धु, सावरकर बन्धु, बारीन्द्रकुमार घोष कोई भी कांग्रेस मे न थे।

(भारतीय-क्रान्तिकारी-आन्दोलन का इतिहास पृ0 377)
(ले मन्मथनाथ गुप्त)

'1893 मे लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, उस समय की स्वागतकारिणी सभा में ला0 लाजपतराय के अतिरिक्त बहुत से प्रमुख आर्यसमाजियो ने भाग लिया था, उस समय तक कांग्रेस कोई राजद्रोही संस्था न मानी जाती थी, वह ऐसे देशभक्तों की संस्था थी जो सरकारी नौकरियो द्वारा सभा की सदस्यता या हाईकोर्ट की जजी से ऊपर कोई चीज नहीं मांगते थे, इस कारण बहुत से ऊंचे सरकारी नौकर भी बैठक में सम्मिलित हो जाते थे।

(आर्य समाज का इतिहास प्रथम भाग पृ0 222-23)

कांग्रेस की नींव उन लोगों ने डाली है जो अंग्रेज थे और अंग्रेज अपने देश के हितैषी हैं इसलिए यह कभी सम्भव नहीं कि कांग्रेस भारतवर्ष के लिए राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने में सफल हो।

(आर्य समाज का इतिहास भाग 1 पृ0 224)

'पण्डित जी (श्री पं0 गुरुदत्त जी विद्यार्थी एम0 ए0) नेशनल कांग्रेस के बारे में आपकी क्या राय है ? पण्डित जी चलते-चलते खडे हो गये और बोले नेशनल कांग्रेस के बारे में मेरी क्या राय है ? अच्छा एक बड़े मैदान मे लकड़ियों का ढेर लगवाइये और उसमें आग लगा दीजिये, उस ढेर के चारों ओर ऊंचे मीनारों पर पानी के नल लगा दीजिए, फिर एक ओर तो भडकी हुई आग में इन्धन डालते जाइये और दूसरी 'ओर पानी के नलकों में से सीधी धारा उस ज्वाला पर

छोड़ते जाइए, वह है नेशनल कांग्रेस, जिसका उद्देश्य कांस्टीट्यूशनल एजीटेशन (वैध आन्दोलन) है।

(कल्याण मार्ग का पथिक पृ0 164 ले0 स्वामी श्रद्धानन्द सन्यासी)

इन प्रमाणों के प्रकाश में पाठक स्वयमेव तथा अनायास ही लेखक के मन्तव्य से सहमत हो जायेंगे, ऐसा अनुमान है कि भारतीय जनसमुदाय में निरन्तर सुलगती जा रही राष्ट्रीय विचारों की चिनगारियों को पानी के छींटे देकर उन्हें शान्त करना ही उस समय कांग्रेस की स्थापना की मूलभावना थी, इसी विवेचन के और अधिक स्पष्टीकरण के लिए कांग्रेस के संस्थापक मि ओ ह्यूम के सम्बन्ध में भी कुछ अत्यावश्यक ऐतिहासिक तथ्य उपस्थित करना भी अनुचित एवं अप्रासंगिक न होगा।

कांग्रेस की स्थापना का उद्देश्य एवं संस्थापक मि0 ह्यूम

कांग्रेस की स्थापना से पूर्व यह महाशय अंग्रेजी सरकार के एक प्रतिष्ठित पद पर कार्य करते थे, 1857 के स्वाधीनता-संग्राम के समय वर्तमान उत्तर प्रदेश के इटावा जिले में अंग्रेजी सरकार के प्रतिनिधि के रूप में एक डिप्टीकमिशनर के उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर कार्य करते थे, जब स्वाधीनता संग्राम विफल हो गया और भारत की निरीह प्रजा पर अंग्रेज सरकार अत्याचाररूपी रोलर फिरने लगा तब ये भी उस मशीनरी का एक महत्त्वपूर्ण तथा मज़बूत पुर्जा बन अपनी राज्य भक्ति प्रदर्शित करने वालो की पंक्ति में प्रमुख थे, अपने उक्त अधिकृत जिले में इन्होने भी न जाने कितनी खिलती जवानियों को गोली, फांसी, कालापानी तथा अग्नि की भेंट चढ़कार कितने घरों में जलते चिरागों को गुल कर तत्कालीन सरकार की दृष्टि में हीरो होने का सौभाग्य प्राप्त किया था। पाठक सन्देह में न रहें अतः सन्देह के निवारण के लिए एक ऐतिहासिक प्रमाण प्रस्तुत किया जा रहा है।

'इटावा के कलेक्टर एलन ओ० ह्यूम ने जब मेरठ का समाचार सुना तो उसने इटावा के चारों ओर की सड़कों पर पहरा देने के लिये एक टुकड़ी तैयार की, यह समाचार सुनकर ह्यूम और डेनियल कुछ सिपाहियों के साथ उन्हें पकड़ने उस मन्दिर में पहुंचे, यह देखकर ह्यूम साहब वहां से भाग खड़े हुये, सिपाहियों की इस उदारता का लाभ उठाकर क्लेक्टर ह्यूम ने भी भारतीय स्त्री के भेष में किसी तरह भागकर जान बचाई, इन्हीं ह्यूम साहब ने आगे चलकर कांग्रेस की स्थापना में मुख्य भाग लिया।

(अठारह सौ सत्तावन पृ० 78–79 ले० श्री बालाजी राव हर्डीकर)

इसी प्रकार और भी कई प्रमाण अनेक मान्यता प्राप्त एवं प्रामाणिक इतिहासकारों के उपलब्ध होते हैं, इन उदाहरणों से सामाश्यमति मनुष्य भी इस परिणाम पर पहुंच सकता है कि जिस व्यक्ति की इतनी दुर्दशा हुई हो कि उसे अपनी जान बचाने के लिए एक स्त्री का वेष धारण कर भागना पड़ा हो, तो क्या दूरमति अंग्रेज–जाति में उत्पन्न इस व्यक्ति ने अपने इस अपमान के प्रतिकार के लिये समर्थ होते हुये भी कुछ भी प्रयास न किया होगा ? अंग्रेज जाति की मानस वृत्ति को देखते हुए इसके स्पष्टीकरण के लिए विचारशील पुरुषों को और अधिक गहराई में जाने की आवश्यकता नहीं है, ऐसे व्यक्ति के द्वारा कालान्तर में कांग्रेस की स्थापना के मूल में क्या भारत की भलाई की आशा की संभावना की जा सकती है ? इसलिए अपने शैशवकाल में कांग्रेस का उद्देश्य भारत को स्वाधीन करना न होकर केवल कुछ इने–गिने व्यक्तियों को नौकरियां तथा प्रतिष्ठित पद दिलाकर संतुष्ट करना मात्र था। सन् 1885 में कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन बम्बई में हुआ उस समय अध्यक्ष–पद से भाषण करते हुए श्री डब्ल्यू० सी० बनर्जी ने कहा था कि–मैं सब उपस्थित जनों के मत को प्रकट कर रहा हूं। जब मैं कहता हूं, कि अंग्रेजी सरकार को मेरी और यहां बैठे मेरे मित्रों की अपेक्षा अधिक गहरे मित्र और पक्के राजभक्त मिलना असम्भव है।

(भारतीय स्वाधीनता–संग्राम का इतिहास पृ० 86)
(ले. इन्द्र विद्यावाचस्पति)

इसी प्रकार जब 1886 में कलकत्ता में कांग्रेस का द्वितीय अधिवेशन हुआ तब भी अध्यक्ष-पद से भाषण करते हुए दादाभाई नौरोजी ने शब्दभेद से इन्हीं भावों को प्रकट करते हुए कहा था 'हमें वीर पुरुषों की तरह घोषणा करनी चाहिए कि हमारी नसों में राजभक्ति भरी हुई है, हम उन लाभों को समझते हैं जो हमें अंग्रेजी राज्य से मिले हैं और अन्त में बोलते हुए आपने कहा था 'हमे इंग्लैण्ड की अन्तरात्मा पर विश्वास करना चाहिये।

(भारतीय-स्वाधीनता-संग्राम का इतिहास पृ0 86
ले0 इन्द्र विद्यावाचस्पति)

कांग्रेस की नींव कुछ अंग्रेजों ने डाली है और अंग्रेज पक्के देश-हितैषी है, उन्होने इस डर से कि कहीं शिक्षित हिन्दुस्तानी कोई गहरा राजनैतिक आन्दोलन इंग्लैण्ड के विरुद्ध न उठायें, हिन्दुस्तानी शिक्षित समुदाय को यह काम सौंप दिया है कि वे साल भर में दो-तीन व्याख्यान देकर और समाचार-पत्रों में अपनी प्रशंसा पढ़कर चित्त प्रसन्न कर लें। उनकी यह सम्मति थी कि हिन्दुस्तानियों को शिक्षा से स्वदेशी के प्रचार से और गुप्त रीति से हथियारों के प्रयोग करने से अपने-आपको बलवान् बनाना चाहिए और उस समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए, जब उनको अंग्रेजों को निकालने की लिए पर्याप्त शक्ति और जनसमूह प्राप्त हो जाये, साधारण तौर पर लाहौर के आर्यसमाजी नेताओं की यही राय थी। (आर्यसमाज का इतिहास भाग 1 पृ0 301)

ये ज्वलन्त प्रमाण किसी टीका-टिप्पणी के अपेक्षा नहीं रखते, विचारशील विवेकी पुरुष इन प्रमाणों के प्रकाश में ज्ञानचक्षु खोलकर देखे कि कांग्रेस के मूल में उस समय क्या भावना कार्य कर रही थी।

एक भ्रम और उसका निराकरण

आर्यजगत् लोहपुरुष अमर शहीद स्व0 श्रद्धानन्द जी महाराज ने 'कल्याण मार्ग का पथिक' नाम से अपनी आत्मकथा लिखी है, जिसके पृष्ठ 70 पर निम्न पंक्तियां लिखी हैं, 'शायद इन्हीं दिनों

स्व0 मि0 ह्यूम कांग्रेस की स्थापना के लिए आन्दोलन करने लाहौर आये थे, मुझे ज्ञात हुआ कि जिस किसी सुशिक्षित हिन्दुस्तानी से भी वह मिलना चाहते वहा से ही उन्हें निराश होना पड़ता, न जाने कैसे मि. ह्यूम को यह निश्चय हो गया कि जो शक्ति हिन्दुस्तानियों को उनसे मिलने नहीं देती वह राय मूलराज एम0 ए0 के रूप में है। शिक्षक दल में यह प्रसिद्ध हो रहा था कि मि0 ह्यूम ब्रिटिश गवर्नमेन्ट के गुप्तचर है, जो हिन्दुस्तानियों को किसी जाल में फंसाने को आये हैं, परमात्मा के सिवाय कौन जान सकता है, कि इसमें राय मूलराज की भी शक्ति कार्य कर रही थी या नहीं ? और इसके लिए कोई विश्वासजनक साक्षी भी नहीं है, किन्तु मि0 ह्यूम ने वह चिरस्मरणीय चिट्ठी ला0 साईदास को लिख दी जिसका स्मरण पं0 गुरुदत्त जी ने मेरे सामने उक्त लाला जी को तीन वर्षों पश्चात् कराया था, उस चि्ठी में मि0 ह्यूम ने यह लिखा था कि उनके मानजीत मित्र स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्यसमाज का सभासद् राय मूलराज एम0 ए0 जैसा व्यक्ति नास्तिक कैसे हो सकता है ?''

इस सन्दर्भ को पढ़कर सर्व साधारण को यह भ्रम हो सकता है कि मि0 ह्यूम ऋषिवर दयानन्द सरस्वती के परम मित्रों में अन्यतम थे, अतः वे भारत के हितसम्पादनार्थ ही कांग्रेस की स्थापना करने का विचार रखते थे, परन्तु इस दृष्टि से इस पर विचार करने का उक्त सन्दर्भ में दिये वचनों के साथ बड़ा भारी विरोध उपस्थित होगा, इसमें एक गूढ़ रहस्य प्रतीत होता है जैसा कि उपरोक्त के सन्दर्भ में भी लिखा है कि मि0 ह्यूम भारतीयों को अपने किसी जाल में फंसाने को आये थे, क्योंकि वे ब्रिटिश गवर्नमेन्ट के गुप्तचर थे, मि0 ह्यूम के सम्बन्ध में तत्कालीन शिक्षित भारतीय जनसमूह में इस प्रकार की सन्देहपूर्ण भावना का फैलना भी कोई कम अर्थ-भरा नहीं है, इससे प्रतीत होता है कि इसमे कोई गूढ़ रहस्य अवश्यमेव निहित है, मि0 ह्यूम की यह चाल देशभक्त आर्यसमाजियों की सतर्कता एवं समझदारी के कारण सफल नहीं हो पा रही थी, चूंकि राय मूलराज भी सरकार से सम्बन्धित होने के कारण सरकार की इस गुप्त चाल

से अपरिचित हों ऐसा भी नहीं कहा जा सकता और उनके रहते मि० ह्यूम को अपनी इस कूटनीति की सफलता की पूर्ण सम्भावना न थी, इसलिये उसने आर्यसमाज में प्रतिष्ठा पद को प्राप्त किया तथा विशेष प्रभाव रखनेवाले राय मूलराज को आस्तिक घोषित करने का कूटनीतिक विचार किया हो। इस प्रकार प्रशंसा के द्वारा अपने पक्ष मे करने का प्रयास किया हो, इसका एक पक्ष यह भी हो सकता है कि सरकारी व्यक्ति होने के कारण राय मूलराज भी भारतीयों को अंग्रेजों का मानसिक दास बनाने का श्रेय लेकर अंग्रेजों की दृष्टि में अपना महत्त्व बढ़ाना चाहते हों, जब उसके मनोवांछित क्षेत्र में मि० ह्यूम कार्य करके प्रसिद्धि प्राप्त कर सरकारी नज़रों में चढ़ने लगे हों, तब राय मूलराज उन्हें यह सारा ही श्रेय लूटते देखकर सहन न कर सकने के कारण उनके मार्ग मे बाधक बनकर खड़े हो गये हो, ऐसी स्थिति मे मि० ह्यूम ने प्रशंसा द्वारा राय मूलराज को अपने अनुकूल बना अपना मार्ग निर्वाध एवं निष्कण्टक बनाया हो, सम्भवतः इसी कारण ऋषि दयानन्द सरस्वती को अपना मित्र घोषित किया हो, जिससे कि भारतीय और विशेषकर देशभक्त आर्यसमाजी उसके इस चक्रव्यूह में फंस सके।

अस्तु, कुछ भी हो किन्तु यह तो एक कटु तथा यथार्थ सत्य है कि मि० ह्यूम जैसा सन्दिग्ध तथा भारत का गूढ़ शत्रु राष्ट्रवादी महर्षि दयानन्द सरस्वती की विशुद्ध हार्दिक मित्रता का पात्र हो यह जंचने वाली बात नहीं है।

उद्देश्य क्यों बदला ?

अब हमारे पाठकों के सम्मुख यह प्रश्न आना अस्वाभाविक नहीं कि जब कांग्रेस की स्थापना के मूल में यह विषाक्त भावना काम कर रही थी, तब फिर इसका उद्देश्य एवं कार्यक्षेत्र भारत के लिए पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने के रूप में कैसे परिवर्तित हो गया ? बात यह है कि "चौबे चले छब्बे बनने पर दो कट जाने से दूबे ही रह गये" इस लोकोक्ति के अनुसार कांग्रेस का कार्यक्षेत्र महर्षि दयानन्द के

संसर्ग से प्रखर देशभक्ति, स्वगौरव एवं स्वाभिमान का पाठ पढ़े हुये विशुद्ध एवं कट्टर देशभक्त आर्यसमाजियों के हाथ में आया तो इन्होंने अपने प्रभाव एवं प्रबल राष्ट्रीय विचारधारा के प्रभाव से उसके विचारप्रवाह तथा कार्यक्षेत्र एवं लक्ष्य को एक नया मोड़ दे दिया, इस तथ्य की पुष्टि के लिए इतिहास का निम्न सन्दर्भ पढ़ने की कृपा कीजिएगा। 'फलतः कुछ आर्यसमाजियों का कांग्रेस में सम्मिलित हो जाना उनके सरकारी अफसरों को बहुत अखरा, उन्होंने अपने विचार को खुफिया सरकारी रिपोर्टों में प्रकाशित भी किया।

(आर्य समाज का इतिहास प्रथम भाग पृ0 223)

महादेव गोविन्द राणाडे

इस प्रकार ऋषिवर दयानन्द के जिन राजनैतिक शिष्यों ने कांग्रेस को राष्ट्रवाद एवं पूर्ण स्वाधीनता प्राप्ति की नई दिशा दिखाई उन व्यक्तियों में सबसे पूर्व तथा प्रमुख नाम महामहिम श्री महादेव गोविंद-राणाडे का आता है, ये महर्षि दयानन्द सरस्वती के अपने समय के शिष्यों तथा अनुयायियों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे। इन्होंने ही महर्षि दयानन्द को निमन्त्रित करके अपने प्रबन्धकत्व में पूना में महर्षि के इतिहास प्रसिद्ध 15 व्याख्यान कराये थे। ये महर्षि दयानन्द सरस्वती के परम भक्तों में से थे। ये महाशय यद्यपि तत्कालीन सरकार के न्यायाधीश जैसे प्रतिष्ठित पद पर कार्य किया करते थे, पुनरपि ऋषि दयानन्द सरस्वती जैसे श्रेष्ठ उत्कट तथा प्रखर देशभक्त महापुरुष के सम्पर्क से इनके अन्तःकरण में भी अपने देश के प्रति अपार स्नेह तथा भक्ति के भाव जागृत हो गये थे, जिससे कि सरकारी सन्देहों से उत्पन्न होने वाले खतरों की परवाह न करके यथाशक्ति देश की स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्नशील रहते थे, कांग्रेस में उस समय इनको प्रायः मूर्धन्य व्यक्ति के रूप में उच्चतम स्थान प्राप्त था, यह उक्त मत हमारी केवलमात्र कपोल-कल्पना नहीं अतः इसकी पुष्टि के लिए एक इतिहासकार के शब्दों को पढ़ने की कृपा करें।

'बम्बई प्रान्त के दूसरे महानुभाव जिन्हें राष्ट्र–जागृति का जन्मदाता कहा जा सकता है, जस्टिस महादेव गोविन्द राणाडे थे। वस्तुतः वह कांग्रेस की प्रत्येक योजना में विमर्शदाता के तौर पर सम्मिलित होते थे। उनकी सम्मति मूल्यवान् समझी जाती थी, वह ऋषि दयानन्द द्वारा स्थापित परोपकारिणी सभा के'सभासद थे।

(भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास पृ0 62)

'1875 ई0 के जुलाई मास के आरम्भ में प्रसिद्ध सुधारक महादेव गोविन्द राणाडे के निमन्त्रण पर स्वामी जी के 15 बड़े प्रभावशाली व्याख्यान हुये। राणाडे महाशय के उद्योग से शहर (पूना) में स्वामी जी की सवारी निकाली, स्वामी जी और उनके साथियों पर कीचड फैका गया, राणाडे महाशय पर भी बहुत–सा कीचड़ पड़ा।

(आर्यसमाज का इतिहास प्रथम भाग पृ0 97)

इस प्रकार कांग्रेस के मूल सिद्धान्तों में अपने प्रखर तथा कट्टरवादी विचारो के द्वारा सर्वप्रथम देशभक्ति की पुट देने तथा भावना भरनेवाले ये महाशय राणाडे थे जो कि ऋषि दयानन्द के अपने समय के अपने शिष्यों, भक्तों तथा अनुयायियों में एक मुख्यतम स्थान रखते थे, अनेक वर्षो तक वे परोपकारिणी सभा (जिसे महर्षि ने अपने सिद्धान्तो, कार्य–कलापों, योजनाओं के प्रचार व प्रसार के हेतु अपनी सारी सम्पत्ति देकर एक संगठन के रूप में अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था) के प्रधान–पद को सुशोभित करते रहे, अपने कार्य काल में वे उनके कार्यो में सक्रिय सहयोग दे उनकी उन्नति में रुचिपूर्वक क्रियाशील रहे, ऐसे राष्ट्रभक्त व्यक्तियों के कांग्रेस में आते ही देशप्रेम, स्वाधीनता–प्राप्ति, स्वगौरव स्वसस्कृति, निजभाषाभिमान के अकुरों ने प्रत्यक्ष रूप में उगना प्रारम्भ कर दिया था, इस प्रकार कांग्रेस के कदमों को पहले–पहल देशभक्ति की राह पर बढाने की प्रेरणा तथा शक्ति एवं स्फूर्ति देनेवाले महाशय राणाडे के रूप मे ऋषि दयानंद की राष्ट्रीयता ही इस संस्था की मार्गदर्शिका बनी थी, इतिहास के इस तथ्य से कोई भी सत्यान्वेषी एवं निष्पक्ष विचारशील इतिहासकार इकार करने का साहस नहीं कर सकता है।

गोपाल कृष्ण गोखले

इसके आगे इस राजनैतिक शिष्यपरम्परा में आनेवाले महानुभावों ने उसी अंकुर की सींच-सींचकर विशाल वटवृक्ष के रूप में परिणित कर दिया, ऋषि दयानन्द सरस्वती की इस शान्तमयी देशभक्त परम्परा में महाशय राणाडे के पश्चात् उनके राजनैतिक शिष्य गोपाल कृष्ण गोखले का नाम आता है, यह तथ्य भी एक इतिहास के शब्दों में ही पढें -

कांग्रेस को आप (राणाडे) की जो सबसे बड़ी देन थी, वह श्री गोपाल कृष्ण गोखले। गोपाल कृष्ण गोखले महोदय अपने को राणाडे का शिष्य कहने में गौरव अनुभव करते थे।

(भारतीय स्वाधीनता-संग्राम का इतिहास पृ0 62)

अपने इस कथन की पुष्टि तथा व्याख्या करता हुआ लेखक आगे चलकर लिखता है - 'जस्टिस महाशय गोविन्द राणाडे की शिष्यता ने उसे त्यागमार्ग का राही बना दिया था। (उक्त ग्रन्थ पृ0 100)

इस प्रकार हम देखते हैं कि कांग्रेस में आकर राष्ट्रीयता के जिस प्रखर स्वरुप का सबलरूप में और जोरदार शब्दों में स्पष्टतया समर्थन किया, वह शक्ति उन्हें ऋषि दयानन्द के राजनैतिक शिष्य महादेव गोविन्द राणाडे की ही शिष्यता के कारण प्राप्त हुई थी।

महात्मा गांधी

ऋषि दयानन्द की देशप्रेम तथा राजनैतिक इस शिष्य परम्परा में गोखले के पश्चात् यदि कहीं पर दृष्टि जाकर ठहरती है, तो वे हैं विश्ववन्द्य महात्मा गांधी। 'महात्मा गांधी गोखले को अपना राजनैतिक गुरु कहते थे, यह उचित ही था।'

(भारतीय स्वाधीनता-संग्राम का इतिहास पृ0 100)

इतिहास के इन प्रबल प्रमाणों से पुष्ट इस सारी परम्परा का दिग्दर्शन कराने का यह अभिप्राय है कि देशप्रेम की जो स्वच्छ गंगधारा ऋषि दयानन्द सरस्वती रुपी हिमालय से प्रादुर्भूत हुई वह राणाडे और गोखले रूपी क्षेत्रों को सींचती हुई अन्त में महात्मा

गांधी रूपी क्षेत्र में जाकर वहां भी हरियाली उत्पन्न कर देने का कारण बनी, देशप्रेम की भावना का अधिक अंश महात्मा गांधी को उस शिष्य परम्परा से प्राप्त हुआ जिसके – आदिम प्रवर्तक तथा आदिम आचार्य ऋषि दयानन्द सरस्वती थे। इतिहास के इन तथ्यों से अनभिज्ञ आज के कुछ अहम्मन्य इतिहास की ओर विदेशी खिड़कियों से झांकने के अभ्यासी तथाकथित इतिहासकार कह बैठते हैं कि 1857 के पश्चात् के युग में राष्ट्रीय–स्वाधीनता के नारे को सर्वप्रथम बुलन्द करने वाले कांग्रेस या महात्मा गांधी है, साथ ही यह भी कि उनको इस प्रकार की प्रेरणा विदेशों के स्वतन्त्रतापूर्ण वायुमण्डल में निवास करने के परिणाम–स्वरूप प्राप्त हुई थी, दूसरे शब्दों में यो कह सकते हैं कि भारतीयों को स्वाधीन होने की प्रेरणा देनेवाले विदेशी हैं, विवेक की आंखें बन्द कर कुछ भी कह देने वाले तथा उसी को प्रमाण मानने वाले ऐसे लोगों का उक्त कथन तथा धारणा जहां सर्वथा ही मिथ्या, निर्मूल, निराधार तथा भ्रमात्मक है वहां इहिास के प्रमाणो से भी सर्वथा ही असिद्ध है।

जबकि महात्मा गांधी काग्रेस के भारतवर्षीय कार्यक्षेत्र में स्पष्ट–रूपेण उभरकर सामने नहीं आये थे और वे दक्षिण अफ्रीका में भारतवासियों के हित के लिए प्रयत्नशील थे, उस समय भी आर्यजगत् के कर्मठ सेनानी स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों के द्वारा कडकती सर्दी मे हरिद्वार के निकट बन रहे दूधिया बांध पर मजदूरी कराकर कई हजार की राशि वहां उनकी सहायतार्थ भेजी थी, यह गाधी युग से भी बहुत पहले तिलक युग की बात है, जब भारत में ऐसे लोगों की सहायता करना राजनैतिक अपराध माना जाता था, जब वे वहाँ से लौटे तब भारत वापस आने पर सर्वप्रथम गुरुकुल–कांगडी गये और एक रात स्वामी श्रद्धानन्द के सानिध्य में रहे तो इसी कारण उन पर देशभक्ति की और अधिक गहरा रंग चढा, एवं उनके नाम के आगे प्रायः पुकारा जानेवाला मिस्टर शब्द न लगाकर 'महात्मा' शब्द से सम्बोधित कर भारतीय स्वातंत्र्य युद्ध के लिए जूझने को तैयार कर दिया था। अतः महात्मा गांधी को प्रबल राष्ट्रीयता एवं

आजीवन स्वातंत्र्य के लिए जूझने की प्रवृत्ति ऋषि दयानन्द सरस्वती तथा आर्यसमाज की ही देन है। आज इतिहासकार तथा महात्मा गांधी जी के अनुयायी इस कटु किन्तु सत्य को दबी वाणी और हिचकिचाहट के साथ तो स्वीकार करते हैं, किन्तु साहस के साथ स्वीकार कर सत्य के प्रति अपनी अटूट एवं अडिग आस्था का परिचय देने में समर्थ नहीं हैं, इस ऐतिहासिक तथ्य के सम्बन्ध में इतना कहना और आवश्यक है कि विशुद्ध भारतीय वायुमण्डल में शिक्षित-दीक्षित वैदिक साहित्य का गहनतम अध्ययन करते हुये ऋषि दयानन्द सरस्वती के हृदय में जो विशुद्ध देशभक्ति तथा उत्कट राष्ट्रीयता तथा प्रखर भारतीयता और अपने धर्म, संस्कृति, भाषा के प्रति जो प्रगाढ स्नेह की भावना थी उस तक पहुंचने में गाधी जी कभी भी समर्थ न हो सके। काश ! कि उक्त राजनैतिक शिष्य-परम्परा की भांति ऋषि दयानन्द सरस्वती की धार्मिक, सांस्कृतिक एवं निजगौरव तथा निजभाषा सम्बन्धी शिष्य-परम्परा भी महात्मा गांधी तक पहुंच पाती तो आज भारत की स्वाधीनता का इतिहास किसी और तरह से लिखा हुआ होता और हम उस अवस्था में दृढ़ निश्चय से कह सकते थे कि महात्मा गांधी जी भी ऋषि दयानन्द के अन्य शिष्यों की भांति उक्त तत्त्वों की सीमान्तता तक पहुंचे बिना नहीं रह सकते, क्योंकि उनके द्वारा किये गये कार्यों पर ऋषि दयानन्द सरस्वती के विचारों की छाप सर्वत्र ही उपलब्ध होती है, इसी प्रसंग में हम यह भी देखते हैं कि किन्हीं सज्जनों पर ऋषि दयानन्द की साक्षात् और किन्हीं पर परोक्ष रूप में वैचारिक छाप पड़ी है, जिन पर परोक्ष-रूप में वैचारिक छाप पड़ी है, उन सज्जनों में दादाभाई नौरोजी का नाम प्रमुखरुपेण मिलता है, कैसे देखिये-

DADA BHAI NAROJI JI

He was the first to write against the British domination the first Indian to use the word 'Swaraj' (self Government) was he? One day Lokmanya Balgangadhar Tilak saw to his amazement? The renowned Parsi Patriot Dadabhai Noroji turning over Pages of "SATYARTHA PRAKASH" He locularly

asked the Patriot Have you became an Arya Samajist? "No I get great inspiration from Swami Daya Nands' work in my struggle for Swrajya, was the reply

(Sainik Samachar 20 October 1969)
(A Government of India Publication)

अर्थात्-दादाभाई नौरोजी पहले सज्जन थे, जिन्होंने भारत पर अंग्रेजों के अधिकार जमाये रखने के विरुद्ध लिखा, वे पहले हिन्दुस्तानी थे, जिन्होंने शब्द (स्वराज्य) (स्वशासन) प्रयुक्त किया, एक दिन लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने हैरान होकर देखा 'कि पारसी देशभक्त दादाभाई नौरोजी 'सत्यार्थप्रकाश' के पन्ने पलट रहे हैं, आपने विनोद में पारसी देशभक्त से प्रश्न किया कि आप आर्यसमाजी बन गये ? नहीं मुझे स्वराज्य समर में स्वामी दयानन्द के ग्रन्थ से भारी प्रेरणा प्राप्त होती है, दादाभाई ने उत्तर दिया।

(सैनिक समाचार 20 अक्टूबर 1968 से भारत सरकार के सुरक्षा विभाग द्वारा प्रचारित)

पंजाब केसरी लाला लाजपतराय

यहां तक हमने उस राष्ट्रीय विचारधारा का वर्णन किया जो महर्षि दयानन्द सरस्वती के हृदय से निकलकर विभिन्न व्यक्तियों द्वारा सर्वप्रथम कांग्रेस मे प्रवेश पा सकी इसके आगे इस सम्बन्ध मे उन महापुरुषों का वर्णन किया जा रहा है जो धार्मिक रूप में भी ऋषि दयानन्द को अपना आचार्य मानते हुये तथा अपने को गर्व के साथ एव स्पष्ट रूप में आर्यसमाजी घोषित करते हुए स्वदेशी एवं स्वराज्य की भावना से प्रेरित हो राष्ट्र की स्वाधीनता के कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुये, ऐसे राष्ट्रनिष्ट महापुरुषों की सूची में लाला लाजपतराय का नाम सर्वोपरि आता है, ऋषि दयानन्द की ही कृपा से यह नरकेसरी पुरुष देश को मिल सका, जो कि वाणी का जादूगर था तथा जिसकी दहाड़ से लन्दन की पार्लियामेन्ट की दीवारें, बर्तानवी राज की चूलें तक हिल जाया करती थीं, तथा उनका ताज और तख्त भी थरथरा जाते थे। इतिहास के शब्दों मे पाठक इस नरख्याघ्र का वर्णन पढ़ें आर्य समाज मे यह (लाला लाजपतराय) डी0 ए0 वी0 कालेज के

संस्थापकों में गिने जाते थे और चिरकाल तक उनके स्तम्भ बने रहे हैं।' (भारतीय स्वाधीनता-संग्राम का इतिहास पृ0 100)

लाला लाजपत राय कॉलेज में प0 गुरुदत्त और महात्मा हंसराज के सहपाठी थे, दयानन्द कॉलेज के लिए समाजों के वार्षिकोत्सवों पर धन की अपील होती थी, यह काम अधिकतर वही करते थे। एक बार उन्होंने स्वामी दयानन्द की बाबत कहा कि उनके सीने में दो दिल थे, एक मोम का बना हुआ था, दूसरा फौलाद का, लाला लाजपतराय ने भी अपने गुरु स्वामी दयानन्द से दो दिलों का सीना प्राप्त किया था। लाला लाजपतराय कांग्रेस कमेटी के बुलाने पर व्याख्यान देने गये, वहां रामचन्द्र मनचन्दा कांग्रेस कमेटी और आर्यसमाज दोनों के प्रधान थे, कांग्रेस का आपना भवन तो था नहीं, लाला रामचन्द्र ने आर्यसमाज के सदन में व्याख्यान कराया। 1818 के एक पुराने राजनियम के तहत लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह को पकड़कर किसी अज्ञात स्थान पर भेज दिया गया, इंगलैण्ड में ही उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'आर्यसमाज' लिखी।

(आर्यसमाज के त्यागी तपस्वी सन्त ले0 प्रिं0 दीवानचन्द पृ0 86-91)

लाला लाजपतराय जी और उनके बहुत से अनुयायी और अम्बाला के बाबू मुरलीधर जी और अन्य अनेक शिक्षित आर्यसज्जन अपनी शक्ति के अनुसार राजनैतिक आन्दोलन में बार-बार सहयोग देते रहे, लालाजी का नाम तो देश के प्रमुख राजनैतिक नेताओं में गिना जाने लगा, उनका नाम कांग्रेस के अग्रगामी दल के तीन प्रमुख नेताओं में आ गया, उनका संग्रहीत नाम 'बाल पाल लाल' था।

(आर्यसमाज का इतिहास भाग 2 पृ0 107)

'बाल पाल लाल ने भारत स्वातंत्र्य युद्ध की कल्पना भारतीयों को सिखाई थी'।

(गदर पार्टी का इतिहास ले0 प्रीतमसिंह पंछी पृ0 भूमिका)

'महर्षि दयानन्द ने वैदिक धर्म का जो विशालरूप संसार के सामने रखा था, राजनीति भी उसका एक अंग था।'

(आर्यसमाज का इतिहास भाग 2 पृ0 107)

'जब 1883 में राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन लाहौर में हुआ, बख्शी जैसीराम जो जिन्होंने कांग्रेस को लाहौर में निमन्त्रित किया था, आर्यसमाजी थे। राय मूलराज आर्यसमाज की कालेज पार्टी के सतम्भ थे, फिर भी उन्होंने कांग्रेस को सफल बनाने में भरपूर सहयोग किया था, लाला लाजपतराय के दो-तीन भाषण हुये जिससे राजनीतिक-क्षेत्र में उनकी वक्तृत्वशक्ति की धाक जम गई।

(भारतीय स्वाधीनतासंग्राम का इतिहास पृ0 89)

इसी प्रकार पूर्वोक्त गदर पार्टी का इतिहास पुस्तक के लेखक श्री प्रीतमसिंह पंछी पुस्तक में आगे चलकर लालाजी के सम्बन्ध में लिखते हैं कि 'भारत के स्वाधीनता प्रेमियों ने 'बान्धवसमाज' नामक एक गुप्त सस्था का निर्माण किया था जिसको बाहर से सहायता पहुंचाने वालों में लाला लाजपतराय, भाई परमानन्द तथा सरदार अजीतसिंह आदि प्रमुख थे, ऋषि दयानन्द सरस्वती के इस प्रमुख शिष्य के कांग्रेस में प्रवेश करते ही विचारसरणी तथा कार्यकलाप की धारा ने एक नई दिशा में मोड लिया, यही कारण है कि भारतीय स्वातंत्र्य युद्ध के महारथियो की त्रिपुटी मे इनका नाम भी गौरव के साथ सम्मिलित किया है, आर्यसमाज के लिए इससे अधिक गौरव की और क्या बात हो सकती है? सन् 1907 का भयंकर समय था, जबकि अंग्रेजी सरकार को यह सन्देह हो गया कि पंजाब के अन्दर लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह के नेतृत्व में आर्यसमाज के कई हज़ार स्वयंसेवक 1857 ई0 के गदर (हमारे मतानुसार भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम) की अर्धशताब्दी मनायेंगे और इसके साथ ही अंग्रेजी राज्य के प्रति सशस्त्र बगावत करेंगे, सरकार की इस आशंका की पुष्टि लालाजी के द्वारा किये गये पंजाब प्रदेश के उस तूफानी दौरे से हो गई, जो उन्होने जनता के उद्बोधन के निमित्त प्रारम्भ किय था, उसी दौरे के मध्य वे पंजाब के रावलपिण्डी नामक नगर में भी गये, जो उस समय इस प्रदेश का सबसे बडा सैनिक अड्डा था, सरकार उस क्षेत्र को इस वातावरण मे सर्वथा ही अछूता रखना चाहती थी, वहां पर लालाजी के व्याख्यानों का प्रभाव होना स्वाभाविक ही था, जिसके परिणाम-स्वरूप रावलपिण्डी के वातावरण

में राजनैतिक विचारों की गर्मी अनुभव की जाने लगी और जनमानस में विचारो के उबाल के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे, उधर 10 मई का दिन निकट आता जा रहा था, जिस दिन अंग्रेजों को पंजाब में अपनी भावी जातीय मौत मुंह बाये खड़ी नज़र आ रही थी, अतः ब्रिटिश सरकार ने उस भावी संकट से बच निकलने के अभिप्राय से 9 मई को प्रात ही अचानक पंजाब के उक्त दोनों आर्यनेताओ को गिरफ्तार कर बिना कोई मुकद्मा चलाये दण्डस्वरूप किसी अज्ञात स्थान को भेज दिया, परन्तु इतना होने पर भी सरकार मन ही मन बहुत घबराई हुई थी और 10 मई की रात को होनेवाले कत्लेआम से सुरक्षित बच निकलने के लिए लाहौर के सारे अंग्रेज परिवार किले में एकत्रित हो बेचैनी के साथ समय बिताते रहे, दूसरी ओर रात भर रेलवे स्टेशन पर एक स्पेशल सवारी गाडी खाली खड़ी धुआं छोडती रही, वह इसलिए कि यदि कत्लेआम हुआ तो सारे ही अंग्रेज परिवार उसमे बैठकर अपनी जान बचाने के लिए सकुशल पंजाब से बाहर भाग सकेंगे।

राष्ट्र के इस वीर पुजारी को उस समय कितना भयानक समझा गया, यह निम्न बातों से भी स्पष्ट है, लालाजी को अपने निर्वासनकाल में एक योरोपियन अधिकारी ने बताया कि आपको सेनाओं की राजभक्ति में हस्तक्षेप करने के कारण दूसरा नानासाहब समझा गया है, 1857-1907, चपातियां = पांच पर्चे, नानासाहब = लाजपतराय, तब अन्तिम मुगल बादशाह का ब्रह्मा में निर्वासिन = अब पंजाब केसरी लाजपतराय का ब्रह्मा में निर्वासन।

(लाला लाजपतराय पृ0 144-145, ले0 अलगूराय शास्त्री)

'इतना भयानक जानकर ही लालाजी को 1818 ई0 के रैग्यूलेशन की धारा 3 के अन्तर्गत पकड़कर बिना मुकद्मा चलाये माण्डला के किले में अनिश्चित-काल के लिए बन्द कर दिया था, ठीक इससे पूर्व सन् 1872 में इसी प्रकार नामधारी सिक्खों के गुरु भाई श्री रामसिंह जी को भी देशभक्ति के अपराध में ऐसी सजा दी थी।'

(लाला लाजपतराय पृ0 129)

जब लालाजी को स्पेशल गाडी से माण्डला ले जाया जा रहा था, तब विद्रोह हो जाने की आशंका से लालाजी को स्पेशल गाडी द्वारा पजाब से बाहर निकालकर अवध रुहेलखण्ड में पहुंचने पर ही अपने डिब्बे की खिड़कियां खोलने की आज्ञा प्रदान की गई। पाठक! निश्चय से गोराशाही की आंखों मे इतना अधिक भयानक होने का गौरव ऋषि दयानन्द सरस्वती के इसी अमरशिष्य को प्राप्त हुआ, क्या यह कम गौरव की बात है?

सन् 1910 ई० में वैलपटाईन शिरोल नामक एक अर्धगोरे पत्रकार ने आर्यसमाज को कुचलने के कुटिल अभिप्राय से 'भारतीय असन्तोष' नामक पुस्तक लिखकर प्रकाशित की थी, जिसमें उसने लिखा था कि 'लाला लाजपतराय तथा सरदार अजीतसिंह ये दोनों ही विद्रोही आर्यसमाजी हैं। इसी प्रकार की बात उससे पूर्व भारत के ही आलाराम नामक एक व्यक्ति ने कही थी-हम इस बात में अपना गौरव समझते है कि आर्यसमाजी नेताओं को ब्रिटिशराज के समय उनकी प्रखर देशभक्ति के कारण विद्रोही खतरनाक आदि पदों से विभूषित किया गया और राष्ट्रभक्ति स्वसंस्कृति एव आत्मगौरव की रक्षा के लिए दण्ड, जेल तथा फांसियां तक दी गई, यह एक अटल सत्य है कि आर्यसमाज के उक्त दोनो नेता ही इस योग्य समझे गये कि उन्हे बिना मुकद्मा चलाये सर्वप्रथम देश निकाला दिया गया।

सन् 1920 ई० में मुक्त राजबन्दियों के विषय को लेकर स्वातंत्र्य समर के अमरसेनानी श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल के प्रयत्नों से 'आल-इण्डिया पालिटिकल सफरर्स कांफ्रेंस' हुई, तब उसके सभापति-पद से भाषण करते हुए इस सिंह पुरुष ने गर्जना की थी-'राजबन्दियों में ऐसे भी आदमी है जिनके जूते के फीते खोलने लायक यहां के लाटसाहब भी नहीं हैं।'

(बन्दी जीवन-ले० शचीन्द्रनाथ सान्याल पृ० 216)

पाठकवर्ग! उस भयावह काल में अंग्रेजी सत्ता के सर्वोच्च प्रतिनिधि के सम्बन्ध मे सबके सामने खुलेआम ऐसे अपमानजनक शब्द कहे जाने के लिए अपेक्षित साहस और गम्भीरता की कल्पना

करे और साथ ही इससे भविष्य मे होनेवाले भयंकर परिणामों का थोड़ा-सा चिन्तन तो करे, ऋषि का यह अमर शिष्य, साहस का यह पुतला केवल मात्र जुबानी जमा-खर्च करनेवाला ही नहीं था, हमारे प्रबुद्ध पाठक! इसी से उनके त्याग-तप की अनुभूति कर सकते है कि जब ऋषि दयानन्द सरस्वती की स्मृति में पंजाब के आर्यसमाजियों ने उनके स्मारक के रूप में डी0 ए0 वी0 कॉलेज की स्थापना की तब इस दानवीर ने उस स्मारक के लिए अपने पास से 50 हजार की राशि दान में देकर अपने आचार्य के प्रति अपनी श्रद्धा तथा दानवीरता का प्रमाण एव परिचय दिया था, इसी प्रकार समय-समय पर देश की स्वाधीनता के लिए अपनी ओर से आर्थिक सहयोग करने में ये कभी किसी से पीछे नहीं रहते थे, वाणी के धनी होने के समान ही ये दान के भी धनी थे, अनेक जनोपयोगी संस्थाओं का निर्माण तो इन्होंने केवल अपने ही पैसों के बलबूते पर किया था, राष्ट्रीय-क्षेत्र में पंजाब नैशनल बैंक तथा नेशनल स्कूल एवं कॉलेजों की स्थापना कर इन्होंने जो अभूतपूर्व सहयोग किया उसका विवरण तो पाठक आगे चलकर ही पढ सकेंगे।

लाला लाजपतराय राजनैतिक दृष्टि से जहां भी रहे वहीं उनके सामने अपने आचार्य महर्षि दयानन्द सरस्वती का आदर्श रहा, महर्षि दयानन्द सरस्वती से प्राप्त इसी विशुद्ध एवं उत्कट राष्ट्रीयता के कारण अन्त में लालाजी की कांग्रेस से भी न पट सकी, कांग्रेस की दुरंगी नीतियों से अन्त में वे यहां तक असन्तुष्ट हुये कि सन् 1926 में लालाजी ने नेशनलिष्ट-पार्टी की स्थापना कर कांग्रेस के विरुद्ध चुनाव लडा, इसी प्रकार जब अंग्रेजों ने भारतीयों की आखो मे धूल झोंकने का प्रयास करने के उद्देश्य से ''साईमन-कमीशन'' भेजा तब भारत में उसके विरुद्ध स्थान-स्थान पर ज़बरदस्त प्रदर्शन हुये, उसी दौरान पंजाब में उसका प्रबल विरोध करनेवाले जन-समुदाय का नेतृत्व लालाजी ही कर रहे थे, इनके ही नेतृत्व में कई हज़ार स्त्री-पुरुष काले झण्डे उठाये तथा काले बिल्ले लगाये लाहौर रेलवे स्टेशन की ओर चले, जहॉ 'साईमन-कमीशन' को स्पेशल रेल से आना था,

कमीशन की स्पेशल ट्रेन के रेलवे–स्टेशन मे घुसते ही पंजाब के हजारो कण्ठो से एक साथ 'साईमन–कमीशन गो बैक' 'साईमन–कमीशन मुर्दाबाद' ''साईमन–कमीशन हाय–हाय'' इत्यादि नारो की ध्वनि निकलने लगी, दूसरी ओर फिरंगियों की पुलिस के टोडी बच्चों ने अपनी राजभक्ति प्रदर्शित करने का अच्छा अवसर समझकर लाठियाँ उठा–उठाकर उन स्त्री–पुरुषों को बड़ी बेरहमी के साथ पीटना आरम्भ किया, माताओ और बहिनों पर तड़ातड़ लाठियों की बौछारें पड़ रही थीं, उनकी गोदियों के नन्हें–मुन्ने बच्चे छीनकर कंकरीट तथा तारकोल की कठोर सडकों पर पटके जा रहे थे, स्त्रियों का अपमान किया जा रहा था, हमारी बेटियां सडकों पर पकड़कर घसीटी जा रही थीं। लेकिन जन–समुदाय किसी प्रकार भी तितर–बितर होने में नही आ रहा था।

उधर पंजाब की युवाशक्ति अपने वृद्ध नेता को बचाने की चिन्ता में थी, परन्तु सबके देखते–देखते पुलिस के उन दो–दो टके के सिपाहियों ने पंजाब के कई करोड़ लोगों के आराध्यदेव, देश के प्रसिद्ध वक्ता एवं भारत की राजनीति के ऋषि लाला लाजपराय के ऊपर भी लाठिया बरसानी आरम्भ कर दी। इस विरोध का यह प्रभाव हुआ कि कमीशन लाहौर में न आकर बाहर से बाहर ही वापिस चला गया और भारत का यह सिंह सपूत भी कुछ काल पश्चात् फिरंगी पुलिस की लाठियों की मार की सूजन अपने वक्षस्थल पर तथा मन में अपमान एवं ग्लानि के भावों को समेटे हुए 17 नवम्बर 1928 को भारत की स्वतंत्र्य वेदी पर अपनी जीवनाहुति देकर अमर–पथ का पथिक बन गया। इसके बलिदान से इस क्षेत्र में जो रंग आया, उसका वर्णन पाठक आगे चलकर पढ़ेंगे।

स्वामी श्रद्धानन्द

इस विषय मे यदि इनके साथ और किसी व्यक्ति का नाम लिया जा सकता है तो वे है, आर्यजगत् के लोहपुरुष, निर्भीकता की प्रतिमा आर्यसेनानी, अमर बलिदानी स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज। यह युग–पुरुष जहां आर्यसमाज का एक–छत्र नेता था,वहां एक लम्बे अरसे

तक कांग्रेस के अग्रगण्य, मूर्धन्य तथा गणमान्य नेताओ की पक्ति मे प्रमुख रहा है, इस महामानव की दूरदर्शिनी बुद्धि के कारण ही महात्मा गांधी इन्हे अपना बडा भाई कहा करते थे। स्वामी श्रद्धानन्द अमर शहीद के समय में आर्यसमाजी होना कोई आसान कार्य नहीं था। उस समय आर्यसमाजी होने का अर्थ था कि सरकार की नजरों में अपराधी तथा अपने को अग्नि की भट्ठी में झोंकना, उस काल की राजशब्दावली में आर्यसमाजी राजद्रोही का पर्याय माना जाता था, क्योंकि उस समय के आर्यसमाज का नेतृत्व स्वामी श्रद्धानन्द जैसे प्रखर राष्ट्रवादी, निष्कामसेवक तथा दबंग व्यक्ति के हाथों में था, इसी राष्ट्रप्रेम के कारण स्वामी जी अपनी आत्मकथा कल्याण-मार्ग के पथिक में अपने पिता जी के देशद्रोहपूर्ण कृत्य का व्यंगभरी किन्तु नम्र एवं मधुर भाषा मे उपहास तथा निन्दा करते हुए लिखते हैं-

"एक सिख सरदार भी 300 सवारों का दस्ता लेकर उस सरकार की जड़ें भारतवर्ष में सुदृढ़ करने जा रहा था, जिसने कुछ वर्ष पहले ही पंजाब को दास बना लिया था, पिताजी हिसार के बागी कोतवाल की किरच संभालकर बागियों को फासी दिलाने के शुभकाम पर तैनात हुए। तीन महीनों में सहारनपुर के सारे ज़िले के हथियार ले उसके और जिले के गले मे सदा के लिए गुलामी की तोक पहना नेपाल की तराई में लालाघाट की लडाई पर जा छापा मारा।

(कल्याणमार्ग का पथिक पृ0 3-4)

पाठकवर्ग! देखा आपने कि स्वामी श्रद्धानन्द जी अपने पिताजी के उक्त कृत्य की कैसे व्यंगपूर्ण शब्दों में निन्दा तथा उपंहास करते है? जिस समय पटियाला रियासत मे स्टेट-सरकार की ओर से आर्यसमाज का दमन किय जाने लगा, तब इसी वीर सेनानी की छत्रछाया में आर्यसमाज ने दिलेरी के साथ उस मौके पर विजय के लिए संघर्ष किया था, जिसका पूरा ब्यौरा पाठक आगे चलकर पढ़ेंगे, पजाब केसरी लाला लाजपतराय जब निर्वासन समाप्ति के पश्चात् माण्डला से स्वेदश वापिस आए, तब लाहौर के आर्यसमाज बच्छोवाली

में इसी वीर सेनानी ने उनका स्वागत करते हुए कहा था "लाला लाजपतराय सदा से ही आर्यसमाज का अंग रहे हैं, संसार की कोई शक्ति इनको आर्यसमाज से जुदा करने में समर्थ नहीं है।" इन्हीं शब्दों के साथ वहाँ पर जहाँ लालाजी का भव्य-स्वागत करवाया वहां पर उनका उसी आर्यसमाज मन्दिर में भाषण भी कराया। इस प्रकार अपनी देशभक्ति का परिचय भी दिया और साथ-ही अपने विरोधी सहकर्मी की देशभक्ति का सम्मान भी किया।

पाठक! अपने समय से उस समय की तुलना न करें, यह वह समय था जबकि देश के लिए मर मिटनेवालों को, जो कि विदेशी सरकार की नज़रों में भयंकर शत्रु थे, को आश्रय देना तथा उनकी प्रशंसा करना और साथ ही अपने स्थान पर उन्हें विचार प्रकट करने का अवसर एवं सुविधा प्रदान करना मौत को बुलाने से कम नहीं था। वह युग 1857 के बाद का दमनचक्र का यौवनकाल था।

इसी प्रकार 1919 में पंजाब के अमृतसर नगर के प्रसिद्ध ऐतिहासिक जलियांवाला बाग में जब एकत्रित देशभक्त जन-समुदाय को कुख्यात जनरल डायर ने अपनी गोलियों से भून डाला था, उस समय पंजाब में मार्शल लॉ लागू हो चुका था, जिसमे वकील, दलील तथा अपील की कोई गुंजाईश नहीं थी, अन्धा कानून लागू कर दिया गया था, अंग्रेजी राज था, वहां की त्रस्त जनता ब्रिटिश सरकार के दमन-चक्र का शिकार हो रही थी। उस समय देशभक्ति का दम भरनेवाले सभी कांग्रेसी नेता चुप साधे इस कुत्सित तथा जघन्य नाटक को देखने में ही अपनी खैर मना रहे थे। उन विकट परिस्थितियों में उस विभीषिका से उभारने को वहां जाने को कोई माई का लाल साहस नहीं जुटा पा रहा था, उस समय आर्यजगत् के इसी सुदृढ़ स्तम्भ तथा लोहपुरुष ने कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन वहां पर सम्पन्न कराने का भार अपने सिर पर लेकर एक अलौकिक तथा ऐतिहासिक साहस का परिचय दिया था, उस अधिवेशन मे स्वामी जी ने अपने बालसखा तथा सहपाठी मोतीलाल नेहरू को अध्यक्ष बनाया था तथा स्वयं स्वागताध्यक्ष पद का कार्यभार संभाला था,

स्वामी जी के साहस, प्रबन्धपटुता, दूरदर्शिता तथा कुशाग्रबुद्धिमत्ता के कारण ही भयंकर दैवी विपदाओं के कारण भी उस वर्ष का अधिवेशन बहुत ही शानदार हुआ था, स्वागताध्यक्ष पद से दिया गया स्वामी जी का भाषण जहां उनकी बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शिता का सूचक था वहां यह भी गौरव की बात है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी में था। जबकि इससे पूर्व के सभी स्वागताध्यक्षीय एवं अध्यक्षीय भाषण अंग्रेजी अथवा प्रान्तीय भाषाओं में होते थे, इससे पाठक स्वामी जी का हिन्दी के प्रति उत्कट प्रेम का परिचय प्राप्त कर सकते हैं, स्वामी जी ने भाषण करते हुए कहा था–

'पहला कारण मेरे लिए इस वेदी पर आने का यह है कि पंजाब में जिन रत्नों ने भारतमाता के उज्ज्वल माथे को दाग से बचाने के लिए फांसी तथा उम्र कैद को तुच्छ समझा और निरपराध होते हुये भी दरख्वास्त पर दरख्वास्त को पाप समझकर क़ैदखाने को काशी और काबे का रुतबा दिलाया, हरिकिशनलाल, दूनीचन्द्र, रामभजदत्त, किचलू, सत्यपाल, रत्नचन्द उन्होने अपनी भरी सभा से मुझे आज्ञा भेजी कि मैं स्वागतकारिणी का सभापति बनूं, फिर मैंने जेल के खूनी पिजरों से श्रद्धासम्पन्न चौ0 बुग्गा और महाशय रत्तो से सिंहपुरुषों की भी यही ध्वनि सुनी परन्तु जब इनमें से कुछ वीर देवी धर्मपत्नियों को यह कहते हुए कि बन्दीगृहों में घिरे हमारे पति महाशयों की आत्मा तभी शान्त होगी, जब कांग्रेस का महोत्सव न टले, मुझ भिक्षु सन्यासी से भिक्षा मांगी तो उस मातृशक्ति के आगे सिर झुकाना पडा, यह पहला कारण है मेरे इस वेदी पर आने का और दूसरा कारण मेरा आश्रम और राष्ट्र के प्रति तत्कालीन कर्त्तव्य है।'

(स्वामी श्रद्धानन्द जीवन ले0 सं0 विद्यालंकार पृ0 492–493)

इसी भाषण में स्वामी जी ने कांग्रेस का ध्यान उन कई करोड अछूतों (जिन्हें आज हरिजन कहा जाता है) की ओर भी आकृष्ट किया था, जिन पर ईसाई तथा मुसलमान दोनों ही की नज़र टिकी हुई थी, उनको हिन्दू समाज में बराबरी का दर्जा दिलाने के लिए आपने उस समय मार्मिक अपील की थी, साथ मे चेतावनी देते हुए कहा था कि अन्यथा हमारे देश में विषमता तथा विघटन का ऐसा वातावरण

उत्पन्न होगा कि जो राष्ट्र के लिए घातक होगा, पाठक आज के परिप्रेक्ष्य में स्वामी जी की दूरदर्शिता का अनुमान लगा सकते हैं, इस प्रकार अधिवेशन तो समाप्त हुआ, बरसाती लीडर धूमधाम के साथ अपने-अपने प्रान्तों को सकुशल लौट गये। लेकिन पंजाब के वायुमण्डल में अभी निर्दयी डायर की गोलियां सनसना रहीं थीं, उसकी गोलियों के घाव अभी ताज़े ही थे, पंजाब की जनता सहानुभूति तथा हमदर्दी की नजरों के लिए तरस रही थी, तब स्वामी जी पीड़ित जनता को सान्त्वना देने को निकल पड़े।

'स्वामी श्रद्धानन्द के नेतृत्व में आर्यसमाजी कार्यकर्त्ताओं ने मिलकर घायल पंजाब को सान्त्वना देने और मार्शल लॉ पीड़ितों को सहायता पहुंचाने का जो समयोचित कार्य किया वह पंजाब के इतिहास में स्मरणीय रहेगा।'

(भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास पृ0 21)

जब सन् 1921 में महात्मा गांधी असहयोग आन्दोलन का नारा लगाकर देश को विदेशी सरकार से टकराने के लिए संगठित करने लगे तब भी आर्यजगत् के इस सेनानी ने उसमें अपने सर्वस्व की आहुति प्रस्तुत करते हुए महात्मा गांधी को एक तार द्वारा सन्देश दिया था कि मैंने अभी सत्याग्रह के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए हैं, इस धर्मयुद्ध में सम्मिलित होने से मैं बहुत प्रसन्न हूँ।''

(भारतीय स्वाधीनतासंग्राम का इतिहास पृ0 204)

विचारशील पाठक! ज़रा विचार करें कि आर्यजगत् का यह वीर सेनानी देश की स्वाधीनता के लिए लड़े जानेवाले युद्ध को 'धर्मयुद्ध' की संज्ञा देता है, अर्थात् महर्षि दयानन्द तथा उनके अनुयायी देश की स्वाधीनता के लिए अपना धर्म समझकर ही संघर्ष करते हैं, स्वामी जी के इस युद्ध में कूदने से जो परिणाम सामने आए उनको उक्त लेखक अपने एक अन्य ग्रंथ में वर्णन करता हुआ लिखता है, ''आर्य समाजियों में एक बिजली सी दौड़ गई, जो आर्यसमाजी अभी राजनीति के प्रति उपेक्षा का भाव रखते थे, वे अब सबसे अगले मोर्च पर जाकर खडे हो गये, देश के उत्तरीय प्रान्तों में आर्यसमाजी लोग

युद्ध की सबसे अगली पंक्ति में लडते रहे, प्रारम्भिक वर्षो में जिन महिलाओं ने राजनीति में भाग लिया, उनकी आधी से अधिक संख्या आर्यजगत् से आई थी।"

(आर्यसमाज का इतिहास भाग 2 पृ0 11)

उस समय इस आन्दोलन की सहानुभूति तथा इसके पक्ष में जिन वकीलों ने सरकारी अदालतों का बहिष्कार किया था, उनमें भी अस्सी प्रतिशत लोग आर्यसमाजी विचारधारा के थे, उसी दौर में दुकानों तथा कारखानों की हड़ताल के लिए 30 मार्च, 1919 का दिन नियत किया गया था, जो किसी कारण बदलकर 6 अप्रैल कर दिया गया था परन्तु इस परिवर्तन की सूचना दिल्ली न पहुंच सकने का कारण वहां रोल्ट एक्ट के विरोध में 30 मार्च को जो अभूतपूर्व जुलूस निकला, उसके संयोजक तथा निर्देशक स्वामी श्रद्धानन्द जी ही थे, जिस कारण स्वामी जी राष्ट्रीय-जनता की दृष्टि में देश के अग्रणी नेताओ की पंक्ति में भी अग्रणी हो गये और विदेशी शासकों की दृष्टि में कांटे के समान चुभने लगे, इसका कुछ विवरण हम डा0 पट्टाभिसीतारमैया द्वारा लिखित "कांग्रेस का इतिहास" नामक ग्रन्थ से लिखना ही उचित समझते हैं, "वहां 30 मार्च को ही जुलूस निकला और हड़ताल हुई, उस दिन के जुलूस का नेतृत्व स्वामी श्रद्धानन्द जी कर रहे थे, उन्हें कुछ गोरे सिपाहियों ने गोली मारने की धमकी दी, इस पर उन्होंने अपनी छाती खोल दी और कहा 'लो मारो गोली'। बस गोरों की धमकी हवा में उड़ गई।

इस जुलूस के परिणामस्वरुप दिल्ली के हिन्दू तथा मुस्लिम-वर्ग में दूध-पानी का सा मिलाप हो गया, राष्ट्रीय परिस्थितियों के विचार विनिमय के लिए उसी समय जामा-मस्जिद (फतेहपुरी वाली) में एक विशाल सभा हुई, कुछ जोशीले नवयुवक स्वामी जी को भी भाषण के लिए ले आये, मुसलमानो ने स्वामी जी को अपने मजहब की उस सर्वोपरि पवित्र वेदी पर जिस मि0 जिन्ना जैसे कट्टर मुस्लिमलीगी व्यक्ति को भी पग धरने का सौभाग्य न मिला, उस पर बैठाकर स्वामी जी का व्याख्यान कराया, स्वामी जी ने भी 'ओइम

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ, अधा ते सुम्नमीमहे' इस पावन वेद-मन्त्र से जो मज़हबी तंग दायरे से ऊपर उठा हुआ है, जिसमें मनुष्य मात्र को परमात्मा का पुत्र कहा गया है, अपना उपदेश आरम्भ किया, इसके बाद तो स्वामी जी दिल्ली के बेताज बादशाह बनकर दोनों ही वर्गों पर राज्य करते रहे, हिन्दू और मुस्लिमो के इस मिलाप को अपनी ही गदिद्यों के नीचे होता देखकर अंग्रेज सहम उठा, जिस पर उसने खतरे के भावी तूफान से अपनी गद्दी को बचाने के लिए उक्त संगठन में दरारें डालनी आरम्भ कर दी, इसके साथ ही दूसरी भूल यह हुई कि महात्मा गांधी जी ने भी असहयोग जैसे विशुद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ खिलाफत जैसे सर्वथा ही साम्प्रदायिक, विघटनकारी तथा विषैले प्रश्न को नत्थी कर दिया, स्वामी जी के लाख समझाने पर भी जब महात्मा गांधी टस से मस नहीं हुए तब उन्होंने उसमें भावी राष्ट्रीय हित को न देखते हुए उनसे पृथक् हो शुद्धि के कार्य में अपनी समस्त शक्ति केन्द्रित कर दी, इसके साथ ही उस समय चोरा-चोरी हत्याकांड हो जाने से गांधी जी ने यह समझकर कि मेरे सिद्धान्तों के विपरीत है अतः आन्दोलन स्थगित कर दिया, चूंकि सारा मुस्लिम जगत् इस आन्दोलन में केवल खिलाफत के प्रश्न को लेकर ही सम्मिलित हुआ था, अब वह समस्या भी ज्यों की त्यों रह गई। असहयोग आन्दोलन के सूत्रधार एवं प्रवर्तक गांधी जी हिन्दू थे, अतः मुस्लिमों की दृष्टि में समस्त हिन्दू-वर्ग ही दोषी हो गया, जिसका फल विभिन्न स्थानों पर हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगों के रूप में सामने आया। अंग्रेजों की कूटनीति ने उन दंगों को भड़काने में अग्नि में पैट्रोल का काम किया।

1924 में ईद के अवसर पर दिल्ली के पहाडी धीरज क्षेत्र से जहां हिन्दुओं की आबादी अधिक थी, सरकार ने मुस्लिम-वर्ग को कुरबानी की गौ को सजधज के साथ निकालने की अनुमति प्रदान कर दी, इससे पहले कभी इस क्षेत्र में इस प्रकार की गौ का जुलूस निकालने की अनुमति नहीं थी, जिसके परिणामस्वरूप गाय ले जाते समय उक्त क्षेत्र में हिन्दू-मुस्लिमों का दंगा हो गया, पुलिस सरकारी

नीति के अनुसार मौके पर खडी मूकदर्शक बनी रही, अन्त मे दोनो पक्षों के कुछ व्यक्तियों को गिरफ्तार कर लिया गया, उन्हीं दिनों महात्मा गांधी जेल से लौटकर बम्बई के जुहू नामक स्थान पर विश्राम तथा स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे तब कुछ मुस्लिम नेता जो अपनी कट्टर पथी तथा साम्प्रदायिकता के लिए प्रसिद्ध थे तथा काग्रेस में लीगी उद्देश्यो की सिद्धि के लिए ही घुसे हुए थे, जिनमे अली बन्धु प्रमुख थे, वे आर्यसमाज के विरुद्ध शिकायतों का पुलिन्दा लेकर महात्मा जी की सेवा में जा पहुंचे और उनके दबकर कान भरे, गांधी जी ने भी एक पक्षीय बात को ही सुनकर अपने भोले तथा अपरिपक्व विचारों के आधार पर 28 मई, 1924 के 'यंग इण्डिया' में एक लेख लिख डाला, जिस लेख में आर्यसमाज, ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द और सत्यार्थप्रकाश के सम्बंध में अतिशयोक्तिपूर्ण, कठोर तथा निराध ार आलोचना कर डाली, जिसे किसी भी स्थिति में औचित्य की कोटि में नहीं रखा जा सकता है, बाद में महात्मा जी को जब अपनी इस भूल का एहसास हुआ तब उस पर लीपापोती करने का प्रयत्न किया, मगर छूटा हुआ तीर वापिस न हुआ, गांधी जी के इस लेख के विषय में प्रसिद्ध गांधीवादी नेता श्री पं0 इन्द्र जी विद्यावाचस्पति (सुपुत्र स्वामी श्रद्धानन्द जी) ने ठीक ही लिखा कि "इस क़ारण महात्मा जी ने पीछे से कई लेखों और नोटों द्वारा उसका मार्जन करने की चेष्टा की, परन्तु उस लेख से बोए गए कांटे सिमट न सके, उस लेख के दूरवर्ती परिणामों में हम स्वामी श्रद्धानन्द और महाशय राजपाल की हत्याओ की गिनती कर सकते है।

(आर्यसमाज का इतिहास भाग 2 पृ0 368)

कुछ दिन बाद उस साम्प्रदायिक उबाल को शान्त करने के उद्देश्य से महात्मा गाधी ने दिल्ली में आकर अनशन आरम्भ कर दिया, अनशन तोडने की शर्त यह थी कि हिन्दू-मुसलमानों पर से मुकद्में वापिस ले लें, उस समय राष्ट्रीय नेताओ की ओर से दिल्ली में 'एकता सम्मलेन' का आयोजन किया गया, जिसमें आर्यसमाज की ओर से स्वामी श्रद्धानन्द तथा लाला लाजपतराय सम्मिलित हुए,

स्वामी जी ने वहां भी गरजते हुए कहा था कि 'आपने सिद्धान्तों के प्रचार तथा मत-परिवर्तन का प्रत्येक को अधिकार है, यदि मुसलमान मौलवी जब लीग का काम बन्द कर देंगे तो आर्यसमाज भी परिस्थितियों को देखते हुए उतने समय के लिए शुद्धि कार्य बन्द कर देगा' परन्तु स्वामी जी की इस न्यायोचित घोषणा का किसी भी उत्तरदायी राष्ट्रीय अथवा साम्प्रदायिक मुस्लिम नेता ने कोई आश्वासनात्मक उत्तर न दिया, शायद महात्मा गांधी जी को तो ऐसा अभीष्ट न था, साम्प्रदायिक एकता की आड़ में वे भी अल्पमत मुस्लिमों को सीमातीत शक्ति तथा अधिकार देने के पक्षपाती प्रतीत होते थे, आखिर लीपापोती एवं कोरी कागज़ी कार्रवाई और केवल मात्र जुबानी जमाखर्च के प्रस्तावों के साथ वह सम्मलेन समाप्त हो गया, साथ ही साधारण जन विशेषकर मुस्लिम-वर्ग के मन पर यह प्रभाव छोड़ा गया कि इन दंगों मे आर्यसमाज तथा हिन्दू-वर्ग ही प्रमुख दोषी था, उसी समय कराची से स्वेच्छा से शुद्ध होने के लिए आई "असगरी बेगम" नामक एक मुस्लिम महिला को स्वामी जी ने वैदिक धर्म में दीक्षित कर शान्ति देवी नाम दिया, कूटनीतिज्ञ शासकों ने इन घटनाओं को मज़हबी रंग देकर दोनो वर्गों में फूट डालने के अभिप्राय से मुस्लिम-वर्ग को भडकाया, साथ ही कट्टर लीगी पन्थियों के बहकावे में आ गये जिसके परिणामस्वरूप अब्दुल रशीद नाम एक अधेड़ आयु के मुस्लिममतान्ध ने 23 दिसम्बर 1926 को रोगी अवस्था में विश्राम करते हुए इस वीर सेनानी पर पिस्तौल से तीन गोलियों का वार कर उन्हें भारत के बलिदानी इतिहास का एक अमर एवं ऐतिहासिक अध्याय बना दिया, उस अवसर पर उनके बलिदान के स्थान भारत की राजधानी दिल्ली में इनके शव की जो भव्य तथा अलौकिक शोभायात्रा निकली वह बडे-बडे सम्राटो की ईर्ष्या का विषय था, तत्कालीन प्रत्यक्षदर्शियो के द्वारा अर्थी के साथ उपस्थित मनुष्यों की संख्या ढाई लाख तक आंकी गयी थी।

बलिदान का रहस्य

स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान की पृष्ठभूमि पर अन्वेषण करने से कुछ नवीन तथ्य प्रकाश में आते हैं, जिनका उल्लेख ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत ही उपयुक्त है, उनकी हत्या में मतान्धता, स्वार्थपरायता तथा क्रोध तो कार्य कर ही रहे थे, परन्तु इस मनोवृत्ति को प्रोत्साहित करने में बिट्रिश शासको की कूटनीति भी एक प्रमुख खलनायक का पार्ट अदा कर रही थी, क्योंकि अंग्रेज शासको को यह सहन नहीं था कि स्वामी श्रद्धानन्द जैसा प्रखर राष्ट्रभक्त पुरुष हिन्दू-मुसलमानों का एकछत्र नेता हो, क्योंकि इस संगठ्न का आंशिक एवं कटु परिणाम वे 1857 में भुगत चुके थे, अतः बलिदान के रहस्यों को छुपाया गया या फिर तोड-मरोड़कर प्रस्तुत किया गया, इतिहास के शब्दों में पाठ्क पढ़े।

'यह एक खुला रहस्य है कि अब्दुलरशीद को बचाने का प्रयास करनेवालों में मौ0 शौकत अली, मुहम्मद अली और दिल्ली के मो0 अब्दुल्ला चूडीवाले थे, उन्हीं दिनों अब्दुल रशीद के मकान के पास की गली में पड़ा हुआ कागजों का एक बण्डल मिला था, जो सम्भवतः तलाशी का खतरा होने पर अब्दुल रशीद के सम्बन्धियों ने खिड़की से बाहर फैंक दिया था, उस बण्डल में बड़े-बड़े प्रसिद्ध मुसलमान मौलवियों के इस आशय के खत भी थे कि स्वामी श्रद्धानन्द काफिर है और मुसलमानों को मुरतिद बनाता है, इसलिए इसे मारना मुसलमानों का फर्ज है, वह बण्डल सी0 आई0 डी0 के आदमियों ने लाकर श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति और लाला देशबन्धु गुप्ता को दिया। उन दोनों ने वह बण्डल लाला लाजपतराय को दे दिया, लाला जी ने उसे स्वयं उस समय के होम मैम्बर मि0 बिन्सेण्ट स्मिथ के पास पहुंचा दिया, बिन्सेण्ट स्मिथ ने वह बण्डल यह कहकर ले लिया कि हम इसकी तहकीकात करायेंगे, बस वहां जाकर खतों का वह बण्डल ऐसा गुम हुआ कि फिर न निकला।

(आर्यसमाज का इतिहास भाग 2 पृ0 155)

एक ज़िम्मेदार सरकार के पदाधिकारी द्वारा ऐसा रहस्यपूर्ण काग़जों का बण्डल गुम कर देना क्या अर्थ रखता है ? पाठक इसकी गहराई तक जाने का प्रयत्न करें। जिन लोगों का पक्ष लेने में गांधी जी औचित्य की सीमा को भी उलांघ जाने में भी गौरव की अनुभूति समझते थे उन छिपे रुस्तमों की ओर से इस दुःखद काण्ड पर पर्दा डालने की किस भांतिं घृणित कोशिशें की गई, पाठक ज़रा इतिहास के झरोखे से देखने का कष्ट करें।

"23 दिसम्बर 1926 को अब्दुल रशीद नाम से एक मतान्ध मुसलमान की गोलियों से वह वीरगति पा गये, घातक पकड़ा गया, गोली लगने के आधा घण्टा पश्चात् सीनियर सुपरिटेन्डेंट ऑफ पुलिस श्री मार्गन तथा शेख नज़ीरुल हक इन्सपेक्टर पुलिस आरम्भिक जांच के लिए आये, अभियोग देहली की ज़िला कचहरी से सैशन तक चला और फिर अपील प्रीवी काऊंसिल में की गई, घातक को मृत्युदण्ड से बचाने के लिए इस्लामी-जगत् की ओर से पूरा-पूरा प्रयत्न किया गया, मिस्टर ज़ाकिर उल रहमान घातक के वकील थे, इस वकील महोदय ने सेशन-जज के न्यायलय में 230 साक्षियों की सूची प्रस्तुत की, इन 230 लोगों को न्यायालय में लाने की अनुमति इस उद्देश्य से मांगी गई कि यह सिद्ध किया जा सके कि घातक 23 दिसम्बर को तो पागल था ही साथ ही उससे बहुत समय पूर्व से ही मानसिक-सन्तुलन खो चुका था, योजनाबद्ध ढंग से घातक के साक्षियों ने ऐसे वक्तव्य न्यायालय में देने आरम्भ कर दिए, जिनसे यह सिद्ध हो कि वह पागल है, खान बहादुर अकराम उल हक डिप्टी सुपरिटेन्डेंट गुप्तचर पुलिस, मलिक देवीदयाल डी० एस० पी० सरदार अजीतसिंह थानेदार आदि ने अपनी-अपनी साक्षी में कहा कि घातक पागल नहीं, घातक को कृत्रिम रूप से पागल बनने की प्रेरणा दी गई है, उसे मेन्टल हॉस्पिटल में उन्माद रोगों के विशेषज्ञ ले० कर्नल लाज के पास भेजा गया, 29-1-1927 से 14-2-1927 तक घातक उनके निरीक्षण में रहा, उन्हीं की रिपोर्ट पर घातक को सन्तुलित मस्तिष्क का मतान्ध मुसलमान मानकर

फांसी दण्ड दिया गया, कर्नल लाज से अपने ढंग की रिपोर्ट दिलाने के लिए बड़े षडयन्त्र रचे गये।

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज इस इस्लामी-प्रवृत्ति से सुपरिचित थे, आपने अपने सुशिष्य पं0 रुचिराम जी को षड्यन्त्रों की खोज पर पहले ही लगा रखा था, पं0 जी निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह में मजावरों के बीच रहने लगे, ख्वाजा हसन निज़ामी की सेवा में लग गये, वहां मौलवियों का हुक्का तक भरने लगे, वहां होनेवाली सब गुप्त बैठकों की रिपोर्ट 'तेज' के 'जासूस की लेखनी' शीर्षक से दैनिक 'तेज' में छपने लगीं, मुल्ला चकित थे कि ये गुप्त बातें वहां कौन पहुंचाता है? लाला देशबन्धु गुप्ता के निवास स्थान दैनिक 'तेज' के कार्यालय में आने-जानेवाले सब लोगों पर निज़ामीमोमिनों का कड़ा पहरा लग गया, परन्तु यह गुप्तचर न पकड़ा गया। जामा-मस्जिद की सीढ़ियों पर बदायूं के एक बदर मौलाना की कृपा से तेज बेचने वाला एक मुसलमान भाई तेज का जासूस समझकर पीट डाला गया, पंडित रुचिराम जी तब भी पास खड़े थे, पं0 जी न तो तेज कार्यालय में जाते और न लाला देशबन्धु गुप्ता के पास जाते, वह अपनी रिपोर्ट स्वामी श्री स्वतन्त्रानन्द जी के प्रसिद्ध भक्त सर गंगाराम जी की कोठी तक पहुंचा देते, वही आगे तेज के संचालक श्री लाला देशबन्धु गुप्ता जी को यह रिपोर्ट पहुंचाते, 'तेज के जासूस' की रिपोर्ट में दरगाह में घातक को बचाने की गुप्त बैठकों की इतनी विस्तृत जानकारी होती थी कि मौलाना दंग थे कि यह 'गद्दार' मौलवी कौन है? जो रहस्य बाहर पहुंचाता है, उन गुप्त बैठकों में देश के कई चोटी के मुसलमान भाग लेते थे, एक नवाब भी एक बार सम्मिलित हुआ, मि0 अकराम उल हक भी बैठक मे थे, उनका नाम 'तेज' में आ जाने से वह तो अपने किसी वक्तव्य में यह कहने का दुस्साहस न कर सके कि घातक पागल था अथवा है। 5 मार्च 1927 ई0 को लाहौर में उन्माद चिकित्सालय के मानसिक रोगों के विशेषज्ञ डा0 कर्नल लाज की साक्षी थी, ख्वाजा हसन निजामी ने इस साक्षी को घातक के पक्ष में कराने के लिए गुप्त बैठकें करके एक योजना बनाई।

कश्मीरी गेट देहली के चर्च का पादरी अंग्रेज था, उसको भारी रिश्वत दी गई, उसके द्वारा कर्नल लाज को नोटों के बण्डल भेजे गये। उक्त पादरी से कहलवाया गया कि डा0 लाज यह कहे व लिखे कि अब्दुल रशीद पागल है, डा0 लाज जाल मे फंस गये, जिस बैठक में यह योजना बनी थी, उसका विवरण 'तेज के जासूस की लेखनी' से 'तेज' में छप गया। अब प्रश्न यह था कि डा0 लाज को सत्य की हत्या करने से कौन रोके ? और कैसे रोके ? आर्य नेता चिन्तित थे, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी का उर्वरा मस्तिष्क फिर समाधान निकाल लाया, लाहौर में एक महाराष्ट्रीय कर्नल थे, उनका पुत्र एक मेम के प्रेमपाश में फंसकर ईसाई हो गया था, उसे आर्यसमाज ने शुद्ध किया था, पं0 रुचिराम जी आर्य उनके पास गये और उन नोटों में से दो-तीन के नम्बर बताकर कहा-कर्नल लाज से कह दो कि गुप्तचर-विभाग को तुम्हारे घूस लेने की पूरी-पूरी जानकारी है, यदि तुमने स्वामी श्रद्धानन्द के घातक को बचाने के लिए उसे पागल घोषित किया तो घातक बचे अथवा फांसी दण्ड पाये, तुम न बच सकोगे, तुम अवश्य फंस जाओगे, उन नोटो में से दो-तीन नम्बर ये हैं, शेष के तुम्हारे अभियोग में बताए जायेंगे, अच्छा यही है कि रिश्वत जो भेंटस्वरूप तुम्हें मिली है हड़प कर लो और रिपोर्ट ठीक दो, तीर ठिकाने पर लगा। 5 मई 1927 को कर्नल लाज ने न्यायालय में कहा कि मैने 15 दिन तक उसे अपने निरीक्षण में रखा, प्रतिदिन एक घण्टा तक इससे वार्ता की, इसे किसी प्रकार का उन्माद रोग नहीं है, घातक को फांसी का दण्ड सुनाया गया, सुनते ही उसका पसीना छूट गया, उसके वकीलों पर उस समय क्या बीती ? यह एक पृथक् कहानी है, एक और बात यहां उल्लेखनीय है, घातक ने इस्लामी नेताओं की पवित्र आज्ञा का पालन करते हुए अपने वकीलों के परामर्श पर न्यायालय में पहले-पहले प्रश्नो के उत्तर न दिए, परन्तु 26-1-1927 को एकदम अपना मौन तोड़ा और अपना वक्तव्य देते हुए अपना नाम अब्दुल रशीद बताया, अपने पिता का नाम अब्दुल वहीद, जात सैय्यद तथा देहली का रहनेवाला बताया, इसी दिन उसके

वकील ने उसे मेण्टल हास्पिटल लाहौर में उन्माद रोगी की जांच के लिए भेजने का प्रार्थना-पत्र दिया था, उस प्रार्थना-पत्र पर न्यायालय विचार कर रहा था कि घातक ने वक्तव्य देकर इस कृत्रिम पागलपन व घृणित मनोवृत्ति का भांडा फोड़ दिया, सारे आर्यजगत् में 'तेज के जासूस' की धूम मच गई। सेठ जुगलकिशोर बिडला इस वीर साहसी धर्मवीर के भक्त बन गये, महात्मा मालवीय जी इसकी साहसिक कहानियां व उपलब्धियां सुनकर धन्य-धन्य कह उठे, देवतास्वरूप भाई परमानन्द जी झूम उठे।

(लौहपुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द ले राजेन्द्र जिज्ञासु पृ0 130-133)

राष्ट्र की एकता, अखण्डता तथा स्वाधीनता के लिए अपना सर्वस्व होमनेवाले इस वीर सेनानी के सम्बन्ध में वे ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे लोग जो पांव से लेकर सिर के बालों तक गहरी साम्प्रदायिकता के समुद्र में डूबे है जिनकी बदौलत भारतमाता का अंगभंग होकर पाकिस्तान बना और 1947 में लाखों निर्दोष प्राणियों की हत्यायें हुई, अपनी अंधी साम्प्रदायिकता के जोश में राष्ट्र के प्रति किए इन पापों के कारण भारत की आनेवाली प्रबुद्ध पीढ़ियां जिन्हें क्षमा नहीं कर पायेंगी उन तथाकथित महाबुद्धिमान् तथा दूरदर्शी नेताओ के साथ महात्मा गाधी जैसे उच्च नेता भी यह समझ रहे कि शुद्धि का कार्य कर इन्होंने हिन्दू-मुसलमानों के मध्य वैमनस्य का बीज बोया, जो कि स्वाधीनता के मार्ग में बाधक बना, उन सज्जनों के भ्रमनिवारणार्थ कुछ तथ्य वहां उपस्थित किय जाते हैं।

क्या वे साम्प्रदायिक थे ?

1. सन् 1926 के अन्त में काग्रेस का वार्षिक अधिवेशन गोहाटी में होने जा रहा था। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपने बलिदान से एक दिन पहले अपनी शुभकामना के रूप में राष्ट्रीय नेताओं के नाम निम्न तार गोहाटी को भेजा था।

"In Hindu-Muslim unity alone Lies India's Salvation"

अर्थात्–भारत के स्वाधीन होने की आशा केवल हिन्दू–मुस्लिम एकता पर ही निर्भर है

(भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास पृ0 250)

2. महात्मा गांधी के स्वर में स्वर मिलाकर कांग्रेस के प्रायः सभी छुटभय्यै जीवनभर हिन्दू–मुस्लिम एकता के राग अलापते रहे, यहां तक कि हिन्दू–मुस्लिम एकता की दुहाई देकर अनेक बार अनेक ऐसे आचरण हुए जिन्हें इस देश के बहुसंख्यक हिन्दू के साथ ज़्यादती या अन्याय के सिवाय और कुछ भी नहीं कहा जा सकता है, कांग्रेस के इस पहलू से हिन्दू प्रायः सदैव घाटे मे ही रहा है, परन्तु इतना कुछ होने पर भी इन नेताओं के जीवन में ऐसा शुभ अवसर नहीं आया कि मुसलमानों ने इन्हें स्वयं सहर्ष जामा–मस्जिद के उस मंच पर जिस पर उनकी मान्यता के अनुसार सच्चा मुसलमान भी कदम नहीं रख सकता जो कि उनकी दृष्टि में अत्यन्त ही पवित्र है, उस पर इनमें से किसी को बैठा करके उपदेश कराया हो तथा इनके हिन्दू–मुस्लिम में सहायक होना प्रमाणित किया हो, यह शुभ अवसर तो केवलमात्र आर्यजगत् के इस वीर सेनानी को ही प्राप्त हुआ है। यह इतिहास का एक ऐसा ध्रुव सत्य है कि जिसे कोई झुठला नहीं सकता, महात्मा गांधी को भी सारे मुस्लिम नेता न मानकर हिन्दुओं का ही नेता मानते तथा कहते रहे हैं, क्या यह घटना स्वामी श्रद्धानन्द जी के सम्प्रदायवाद के घोर विरोधी होने की घोषणा नहीं करती है ?

3. 'कोरी साम्प्रदायिक नीति से प्रेरित होकर काम करनेवाले दल के मै विरुद्ध हूं - मेरे त्यागपत्र का यह आशय है कि यतः हिन्दू–महासभा एक साम्प्रदायिक राजनीतिक संस्था बन गई, इसलिए उसके काम में सहयोग देना मेरे लिए संभव नहीं रह गया है।

(स्वामी श्रद्धानन्द ले0 सत्यदेव विद्यालंकार पृ0 608–609)

पाठक विचार करें कि जिस स्वामी श्रद्धानन्द जी ने हिन्दू महासभा को जीवन प्रदान किया, सर्वत्र घूम–घूमकर जिसका प्रचार किया, परन्तु जब उन्होंने यह अनुभव किया कि मेरे विचार में यह

साम्प्रदायिक सगठन बन चुका है, तब उसको त्यागते समय कुछ भी देर तथा मोह नहीं किया, इसके सर्वथा विपरीत साम्प्रदायिक दल कहकर अपना नाता तोड लिया, आश्चर्य यह है कि कांग्रेसी लोग स्वामी जी पर हिन्दूवादी होने का आरोप लगाते हैं, हिन्दू महासभा को भी हिन्दू हितों का रक्षकदल बताकर उपेक्षा करते हैं, यदि स्वामी जी वास्तव मे हिन्दू सम्प्रदायवादी होते तो इस संगठन से अपना सम्बन्ध क्यों तोडते ?

4. स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा स्थापित गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगडी के वार्षिकोत्सव पर एक बार तथाकथित नेता मौलाना ब्रदर्स गये, जब शाम का समय हुआ तब वे ज्वालापुर शहर जाने को तैयार हुए, स्वामी जी ने पूछा मौलाना किधर जा रहे हो ? उन्होने उत्तर दिया कि नमाज़ का वक्त है, अतः ज्वालापुर मस्जिद में नमाज अदा करने जा रहे हैं, तब स्वामी जी बोले कि क्यों यहाँ गुरुकुल भूमि में अल्लाताला नहीं है क्या ? मस्जिद मे खुदा की अधिक और बखूबी इबादत होती है क्या ? क्या यहा वैसी नहीं हो सकती है ? मौलाना ने जवाब दिया कि खुदा तो सभी जगह पर है और सभी जगहों पर उसकी एक सी इबादत हो सकती है, तब स्वामी जी ने गुरुकुल के कम्पाउण्ड में ही उनके नमाज पढ़ने का प्रबन्ध कराया और उन्होंने वहीं पर नमाज अदा की। मेरा पाठकों से एक प्रश्न है कि क्या कभी किसी उदार से उदार मुसलमान ने भी मुसलमानेतर व्यक्तियों को अपनी मस्जिद में अपने ढंग से ईश्वर की उपासना करने का प्रबन्ध करवाकर वास्तविक उदारता का परिचय देने की कृपा की है ? फिर स्वामी श्रद्धानन्द ही साम्प्रदायिक क्यों ? और सारा ही इस्लामी-जगत् कट्टर मतान्ध क्यों नहीं है ?

5. सन् 1922 में जब सिख बन्धुओ ने अपने अधिकारों की रक्षा के लिए गुरु का बाग आन्दोलन आरम्भ किया, तब उस आन्दोलन के साथ आर्यसमाज का कुछ भी सम्बन्ध न होने पर भी राष्ट्रीय दृष्टिकोण के कारण स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने उसमे अपने को सर्वात्मना आहूत कर दिया, उनकी इस पहल पर ही आर्यसमाज के अनेक कार्यकर्त्ताओं ने भी उसमें बढ़-चढकर योगदान

किया, उस समय हालत यह थी कि सिख बन्धु प्रतिदिन अपने 'पवित्र अकाल तख्त' से न केवल स्वामीजी का प्रवचन ही कराते थे वल्कि एक सम्मान्य प्रतिष्ठित महापुरुष के रूप में सब वक्ताओं के अन्त में उनके भाषण से एक नवीन प्रेरणा, प्रकाश तथा नवजीवन का सन्देश प्रतिदिन लिया करते थे और यह सिलसिला लम्बे समय तक चलता रहा, उनके अधिकारों की रक्षा के लिये इस सन्त ने ''मियांवाली' जेल मे न जाने कितनी यातनायें सहीं, किन गंदी, बदबूदार, अन्धेरी कोठरियों में बन्द रखा गया, इतना ही नहीं बल्कि जेल में भी लोहे के पिंजरों में बन्द किया गया। वे खालसा वीर जो स्वामी जी को आंखों पर बैठाते नहीं अघाते थे, उनमें से कुछ सिरफिरे आज हिन्दू को देखते ही गोलियों का निशाना बनाते हैं तथा राष्ट्र की एकता को छिन्न-भिन्न करने की घृणित कोशिशें कर रहे हैं, उनमें यह तीखा जहर किन्होंने घोला ? क्या इसकी जिम्मेदारी उन लोगों पर नहीं है जो अपने को धर्म-निरपेक्ष कहते थे, किन्तु आचरण में कट्टर साम्प्रदायिक ही थे, जिनके पापों की बदौलत 1947 में साम्प्रदायिक आधार पर भारत का विभाजन हुआ, जो सहनशीलता को कमजोरी समझते रहे, लेकिन डंडे के आगे अपनी दुम पैरो में दबाकर घिघियाते रहे, वे ही लोग आज स्वामी श्रद्धानन्द जैसे राष्ट्रवादी नेता को साम्प्रदायिक कहते तनिक भी तो लजाते नहीं हैं।

6. एक बार स्वामी श्रद्धान्नद जी महाराज मौलाना भाईयों से मिलने गये, वहां जब स्वामी जी ने पीने को पानी मांगा, तब मौलाना ने पहले गिलास में एक सज्जन को पानी दिया, उस धर्म-निरपेक्षवादी, साम्प्रदायिक भीरू ने तुरन्त ही पानी पी लिया, तक फिर उसी प्रकार स्वामी जी को उसने पानी दिया, स्वामी ने कहा कि पहले इस जूठे गिलास को धोओ, तब मुझे पानी दो और स्वामी जी ने धोये गिलास से पानी पिया, मौलाना कहने लगा कि स्वामी जी! आपके इस काम से हिन्दू-मुस्लिम एकता मे बाधा पड़ती है, यदि हम सब जूठे-सुच्चे का विचार किये बिना आपस में मिलकर बैठकर खायें-पीयें तो हिन्दू-मुस्लिम एकता को बल मिलेगा, तब

स्वामी जी बोले-मेरे दोस्त! यदि जूठा खाने से ही एकता बढ़ती होती तो सबसे अधिक एकता कुत्तों में होनी चाहिये थी, परन्तु यहां तो हालत यह कि कुत्ता, कुत्ते का बैरी है-किसी के जूठा भोजन का एकता के साथ क्या सम्बन्ध है ? जब तक वैचारिक एकता नहीं होगी, तक तक यों ही बिखराव रहेगा।

हिन्दू-मुस्लिम एकता के सम्बन्ध में इन लोगों तथा इनके दुमछल्ले बने गांधी जी के और स्वामी श्रद्धानन्द के दृष्टिकोण में यही अन्तर है कि हिन्दुओं के अधिकारों की हत्या करके किया गया संगठन जहां पायेदार नहीं होगा वहां पर राष्ट्र के एक जनसमुदाय जो कि इस देश को अपना वतन, इसकी संस्कृति को अपनी संस्कृति, इसके इतिहास को अपना इतिहास तथा इस देश के सर्वस्व को अपना सर्वस्व मानता है, इनके साथ घोर अन्याय भी होगा, जो कि आनेवाले समय में देश को खतरे की घंटी की सूचना देनेवाला होगा, इस तथाकथित संगठन के नाम पर बन्दरबंटवारे में कहीं हम अपनी मातृभूमि के और अधिक टुकड़े न कर बैठें, जैसा कि इस चेतावनी के बावजूद भी अपने काल्पनिक विचारों पर बराबर चलते रहने के परिणामस्वरूप 1947 में हुआ भी, परन्तु इसके विपरीत कांग्रेस के कर्णधारों का मत था कि किसी भी मूल्य पर मुस्लिम-वर्ग को साथ रखते हुये गुलामी की खाई से तो निकलो, आगे चाहे गहरे कुओ में ही क्यो न पड जायें।

यही कारण था कि महात्मा गांधी आदि कांग्रेस के नेताओं ने कभी भी मुस्लिम मनोवृत्ति की यथार्थता पर गम्भीरता के साथ विचार नहीं किया था, जो मुसलमान इस देश में उत्पन्न होते, यहां के अन्न, जल, वायु आदि पदार्थो पर जीते, यहां के वस्त्रों से तन ढांपते और अन्त में मरते हुए भी कम से कम चार गज़ ज़मीन बेकार कर जाते, इतिहास के परिप्रेक्ष्य में गम्भीरता से अध्ययन करने पर उनमें से अधिकांश की इस देश के सम्बन्ध में निष्ठा एवं अपनत्व की विचारधारा सर्वथा ही संदिग्ध पायी जाती है, उनकी प्रेरणा का स्रोत यह देश नहीं है, सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, परम्परा आदि के सम्बन्ध में उनकी मान्यतायें इस देश से सर्वथा ही विपरीत है, क्योंकि

वे तो आज भी अपने को विदेशी मानकर यहां बैठे हैं, उनकी मान्यताओं के अनुसार तो वे लोग इस देश पर शासन कर इसे अपने मजहब मे तब्दील करने आये हैं न कि इस देश को अपना देश मानकर आराम से यहां रहने आये हैं।

जब सन् 1923 में कोकानाडा में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, तो एक अली बन्धु के 'हरिजन' जैसे निम्न-वर्ग को हिन्दू तथा मुसलमान आधा-आधा बांटकर झगडे को समाप्त क्यों नहीं कर देते, इस कथन को सुनकर स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गरजते हुए कहा था कि "ये कोई भेड़-बकरियां नहीं है जो मौलाना साहब आप इनको आधा-आधा बांटने पर तुले हुए हो" पाठक! इससे स्वामी जी के देश को खण्ड-खण्ड करनेवाले तत्त्वों की कुचेष्टाओं के प्रति जागरूकता का तथा सावधानी का अनुमान कर सकते हैं।

तत्कालीन तथाकथित कांग्रेसी मुस्लिम नेताओं की मतान्धता का परिचय निम्न घटना से भी पाठक स्पष्टतः प्राप्त कर सकते हैं।

"इन्हीं दिनों कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना मोहम्मद अली का एक भाषण अखबारों में छपा, जो उन्होंने मुसलमानों में दिया था, मैं एक फाजिर (व्यभिचारी) और फासिद (दुश्चरित्र) मुसलमान को भी महात्मा गांधी से अच्छा मानता हूं, बस पंजाब के हिन्दू अखबार बौखला-उठे, - मैं आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी का सदस्य था और पं0 जवाहरलाल नेहरू सैक्रेटरी, कांग्रेस अध्यक्ष की यह तकरीर असहनीय हो गई। मैंने अविश्वास का प्रस्ताव भेज दिया और नरदेव शास्त्री ने उस पर अनुमोदन के हस्ताक्षर कर दिये। बैठक के आरम्भ होने से पहले ही मौलाना मोहम्मद अली ने यह कहते हुये कि पहले मेरी तकरीर का फैसला हो जाना चाहिये, मुझे आवाज़ लगा दी, अविश्वास का प्रस्ताव पेश करो, मेरे मिस्टर प्रज़िडेण्ट एण्ड फ्रेण्डस! कहते ही गाधी जी ने मोहम्मद अली से इजाज़त चाही, प्रस्ताव से पहले मुझे दो मिनट प्रस्तावक से बात करने का मौका होना चाहिये, मौलाना ने ज़ोर से कहा 'आर्डर-आर्डर' पहले प्रस्ताव का फैसला होगा। फिर दूसरी बात, महात्मा जी को चुप करना कठिन था, उन्होंने

मुझसे कहा तुम्हें तो मुझसे बात करने में ऐतराज़ नहीं है ? मैंने कहा नहीं, तो जोर से हंसते हुये बापूजी ने प्रश्न किया 'जब मैं और वो राज़ी तो बीच में क्यों बोलता है काजी' सारी सभा हंसी से गूंज उठी, मैं फट से गांधी जी के पास जा बैठा, बापू बोले कि यह प्रस्ताव तो ठीक नहीं है, मौलाना ने इसमें किसी और को कुछ कहा नहीं है, महात्मा गांधी से फाजिर फासिद मुसलमान को अच्छा समझने की बात है, इसमें कोई गाली तो नहीं है, गाली का सबूत तो उसका लगना ठहरा, गांधी तो इसका लगना स्वीकार नहीं करता फिर तो यह खलास हो गई, मैंने उत्तर दिया कि महात्मा गांधी से कोई सम्बन्ध ा नहीं है, इस तकरीर के अनुसार अध्यक्ष की निगाह में एक बदमाश और बदचलन मुसलमान भी दूसरे सम्प्रदाय के श्रेष्ठतम व्यक्ति से ऊंचा है। आजकल जगह-जगह हिन्दू-मुसलमानो के दंगे हो रहे हैं, ऐसी तकरीर जलती हुई आग में पेट्रोल का काम करेगी, गांधी जी-तुम्हें इस प्रस्ताव के पास होने की आशा है ? कितने वोट मिलेंगे ? मैंने कहा कि दो वोट तो पक्के हैं, पास हो या न हो कम से कम यह तो रिकार्ड पर आ जायेगा कि कांग्रेस के अध्यक्ष की तकरीर पर कुछ लोगों को आपत्ति थी, महात्मा जी-ऐसी बात को लाने से कांग्रेस का रिकार्ड अच्छा होने की बजाय और काला बनेगा, हिन्दू-मुसलमान को साथ रखना है, तो दूसरों के खोट को निभाना ही पड़ेगा, तुम जानते हो मित्रता किसे कहते हैं ? मैंने कहा, एक-दूसरे को प्यार करने को मित्रता कहते हैं, बापू ने कहा नहीं, यह तो बदमाशी है, मित्रता का अर्थ तो एक-दूसरे के खोट को निभाना है, जो ऐसा नहीं करता वह मित्र नहीं, यह प्रस्ताव ठीक नहीं है।

(मेरी कौन सुनेगा ले० महावीर त्यागी पृ० 17-20)

पाठकगण विचार करें कि केवलमात्र अपनी सर्वप्रियता बनाये रखने के हेतु अथवा मनमोदकों का स्वाद लेने के समान केवल काल्पनिक मान्यताओं के चक्रव्यूह में फंसकर स्वप्निल-जगत् को ही यथार्थ समझने की महाभयंकर भूल करनेवाले ये भारत के बमभोले

शिवजी ऐसे कट्टर मतान्ध व्यक्ति के तो खोटों को भी निभाने के अपने कर्त्तव्यरूप की बातें कही जाती है, परन्तु इसके विपरीत राष्ट्रनिष्ठ देश की एकता, अखण्डता तथा स्वाधीनता के लिए मर-मिटने वाले व्यक्तियों की न्यायसंगत बातों पर टीका टिप्पणी? अपने काल्पनिक विचारों के आधार पर इसी हिन्दू-मुस्लिम एकता के नाम पर ऐसे मतान्ध तथा कट्टर मज़हबी लोगों को जो न कभी मानसिक रूप से भारत के साथ रहे और न ही जिनके साथ रहने का विश्वास है, उनको अपने साथ रखने के लिए महात्मा जी इतने बह गये कि जब केवल मात्र मज़हब तथा विचारभेद को सहन न कर सकने के कारण अब्दुल रशीद नामक एक मुसलमान ने स्वामी श्रद्धानन्द को गोली चलाकर बलिदान कर दिया, तब भी महात्मा जी ने हत्यारे एवं राष्ट्रीयता का दम भरनेवाले प्रच्छन्न, किन्तु कट्टर लीगियों को जो उस हत्यारे की सरेआम या परोक्षरूपजहां में उसकी पीठ थपथपा रहे थे वहां पर उसे वैध तथा अवैध तरीकों से कानून के शिकंजे से बचाने की जी तोड़ कोशिशें भी कर रहे थे। इतना ही नहीं बल्कि इसके इस कलंकित कुकृत्य को इस्लाम की सेवा समझकर उसे गाजी के गौरवशाली, पद से विभूषित कर रहे थे उनके सम्बन्ध में एक भी वाक्य न कहकर अपना अहिंसा तथा शान्ति का सारा ही उपदेश हिन्दुओं को देने में ही अपना बड़प्पन तथा गौरव समझा, शान्ति के इस तथाकथित मसीहा से और क्या आशा की जा सकती थी? उस समय कांग्रेस में एकमात्र डा० राजेन्द्रप्रसाद ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने निम्न वक्तव्य देकर हिन्दुओं के प्रति न्याय का भाव दिखाने का सराहनीय कार्य किया था-

"ठीक गोहाटी कांग्रेस से पहले दिल्ली में एक मुसलमान ने स्वामी श्रद्धानन्द जी की उनके घर में घुसकर हत्या कर दी, सबसे अधिक बढ़कर हिन्दुओं के दिल दुखानेवाली बात यह हुई कि हत्या करनेवाले उस आदमी के मुकदमे की पेशी में मौलाना मुहम्मद अली जैसा नेता भी गया, हिन्दुओ के दिल पर इससे यह असर पड़ा कि

मौलाना साहब भी उसके साथ सहानुभूति रखते हैं और शायद इस हत्या को पसन्द भी करते हैं।''

अपने सिद्धान्तों के सर्वथा ही विपरीत हिंसा जैसे कुकृत्य में संलिप्त एवं सहायक होने पर भी ऐसे व्यक्ति की निन्दा या भर्त्सना के रूप एक शब्द भी अपने मुख से बिना बोले यदि महात्मा गांधी जी सत्य, अहिंसा और न्याय आदि का राग का अलापते हैं, बुद्धिमानों की दृष्टि मे सिवाय ढोंग और पाखण्ड के कुछ नहीं है तथा ऐसे सत्य, अहिंसा और न्याय उन महात्माओं को ही मुबारिक हों।

मुसलमानों की राष्ट्रनिष्ठा तथा स्वदेशप्रेम का अनुमान पाठक निम्न घटना से लगा सकते हैं। लन्दन के अन्दर अली बन्धुओं में से एक की मृत्यु हो जाती है, मरने से पहले जब उसकी अन्तिम इच्छा पूछी जाती है तो उत्तर मिलता है कि मौत के बाद मेरी लाश को मक्का-मदीना ले जाकर दफना देना ताकि अल्ला ताला के दरबार में अपना पाक मुंह लेकर जा सकूँ, यह उस व्यक्ति की विचारधारा है जो राष्ट्रीय नेता होने का दम भरता था तथा गांधी जी भी जिसकी जेब में पड़े रहते थे और जिसके पूर्वजों को मक्का-मदीना छोड़कर भारत में रहते इतना समय हो गया कि उसकी पीढ़ी दर पीढ़ियों के कारण वहां के खून का अणुमात्र भी इस तक पहुंचते-पहुंचते नहीं रहा होगा, इधर दूसरी ओर लौहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल के जीवन का अन्त भी लन्दन में ही होता है। उनसे भी तब मरने से पहले अन्तिम इच्छा पूछी जाती है, तब उत्तर मिलता है कि मरने के पश्चात् मेरी लाश यदि मेरी प्यारी मातृभूमि भारत में ले जाकर भस्म की जा सके तो बहुत उत्तम हो, परन्तु यदि किसी कारणवश ऐसा न किया जा सके तो कम से कम इतना तो कर ही देना कि मेरी लाश की भस्म यहां से भारत ले जाकर मेरे देश की पावन गंगा अथवा यमुना में प्रवाहित कर देना, जिससे कि मैं अपनी जन्मभूमि में एकाकार होकर सुख-शान्ति प्राप्त कर सकूं, यह था दोनों वर्गों के दृष्टिकोणो में एक महान् एवं मौलिक अन्तर, ऐसा प्रतीत होता है कि गांधी जी शायद उस वर्ग के मानसिक रोग को शारीरिक रोग

समझने की भूल कर बैठे थे, वे उसी के अनुसार ही दवा दे रहे थे, सामान्य वैद्य भी जब यह देखता है कि मेरी औषधि से मरीज़ स्वस्थ नहीं हो रहा है बल्कि उसका मर्ज़ दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है, तो वह भी अपनी दवा बदल देता है। परन्तु गांधी जी तो उस वैद्य के समान थे जो अपने ज्ञान एवं ख्याति के गर्व के कारण यह समझे हुये थे कि बिना सोचे-समझे आंखे मून्दकर तेरे द्वारा दी गई दवा इस मरीज के रोग का सर्वनाश कर देगी। काश! महात्मा जी उस रोग का ठीक-ठीक निदान, उत्पत्ति का कारण तथा स्वरूप और उसी के अनुकूल दी जानेवाली दवा की खोजकर उसका समुचित तथा योग्य उपचार कर पाते तो आज के भारत का इतिहास किसी और ही प्रकार से लिखा जाता। स्वामी श्रद्धानन्द जी उन चतुर वैद्यों में से थे जो इस रोग का सही-सही इलाज जानते थे और करना भी चाहते थे आर्य-समाज और उसके नेता सदा से ही इस विषय में बड़े स्पष्ट रहे, उनका दृष्टिकोण राष्ट्रीय था।

"आर्यसमाज भारत की राष्ट्रीय एकता का सदैव पक्षधर रहा है, उसकी स्पष्ट नीति रही है कि देश की राजनीति राष्ट्रीयता के द्वारा शासित हो, साम्प्रदायिक तुष्टिकरण द्वारा नहीं, सन् 1907 से 1920 तक के दौरान गृह मन्त्रालय की फाइलों के अध्ययन विश्लेषण से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि स्वामी श्रद्धानन्द, ला0 लाजपत राय, नारायण स्वामी, रामभजदत्त, हंसराज, गुरुदत्त विद्यार्थी एवं अन्य आर्यसमाजी नेता हिन्दू-मुस्लिम एकता की आवश्यकता पर ज़ोर देते रहे, ये नेता राष्ट्रीय एकता के तो समर्थक थे, किन्तु हिन्दुओं के हितों का बलिदान करने अथवा मुस्लिम तुष्टिकरण नीति के कट्टर विरोधी थे। अप्रैल 1908 में आर्यसमाज, लायलपुर के तीसरे वार्षिकोत्सव पर उपदेशकों-प्रचारकों के विदेशी चीनी का प्रयोग बन्द करने एवं समान शत्रु अंग्रेज के विरुद्ध हिन्दू-मुस्लिम एकता की अपीलें की। 10 जून 1906 को भगत ईश्वरदास के यहां आर्यसमाज, लाहौर के नेताओं की गुप्त बैठक हुई, जिसमें अंग्रेजों द्वारा सिखों को बरगलाने की कार्रवाईयों की चिन्ता प्रकट करते हुए

हिन्दू-सिख एकता के लिए प्रयास करने का निर्णय किया गया, 25 मार्च, 1907 को महाशय रामचन्द्र ने अंग्रेजों के निरंकुश शासन के विरुद्ध हिन्दू-मुस्लिम मोर्चा कायम करने का आह्वान किया।

26 अप्रैल को संगोही झेलम जिले के हुकमसिंह एवं बोधराज ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध एकजुट होकर जिला स्तर पर अभियान चलाये जाने की आवश्यकता प्रतिपादित की, 26/27/28 अप्रैल 1907 को गुजरात आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में वक्ताओं की आम राय थी कि यदि हिन्दू-मुस्लिम एक हो जायें तो सब कुछ हासिल किया जा सकता है, 3 मई, 1907 को गुरदासपुर में गुरदीतसिंह बी0 ए0 की अध्यक्षता में साम्प्रदायिक एकता को प्रोत्साहन देने के लिये 'देशभक्त, समाज के गठन का निश्चय किया, सन् 1914 में आर्य महासम्मेलन में भाषण करते हुए लाला लाजपतराय जी ने आर्यजनों को चेतावनी दी थी, आर्यसमाजियो! याद रखना चाहिये कि आज का भारत सिर्फ हिन्दुओं का ही नहीं है, हमारा भविष्य तभी उत्कर्षपूर्ण हो सकेगा जब हिन्दू राष्ट्रवाद एक बड़े वाद भारतीय राष्ट्रवाद में परिणत हो जावेगा। वे तत्त्व जो ऐसा होने में बाधक हैं राष्ट्र के लिये कलंक हैं, और उन्हें बर्दाश्त नहीं किया जाना चाहिये, 26 मार्च, 1906 को इलाहाबाद में एक सभा को सम्बोधित करते हुये स्वराज्य के लिये हिन्दू-मुस्लिम एकता पर जोर दिया। 20 फरवरी, 1920 को बम्बई में भाषण करते हुए उन्होंने दोनों सम्प्रदायों को संदेश दिया, मित्रो! राजनीतिक सुभविष्य के लिये हिन्दू-मुस्लिम एकता एक मौलिक एवं अपरिहार्य तथ्य है, इसे कायम रखने के लिये इस या उस सम्प्रदाय को तुष्ट करनेवाले अस्थायी प्रयत्नों से काम नहीं चलेगा।

(भारतीय राष्ट्रवाद एवं आर्यसमाज आन्दोलन ले0 डा0 विजेन्द्रपाल, एम0 ए0 पी-एच डी0 58-60)

आर्यसमाज का इस सम्बन्ध में यह चिन्तन उस समय का है जबकि गांधी जी भारत में इस क्षेत्र में आये ही नहीं थे, आर्य नेताओं का यह चिन्तन विशुद्ध देशभक्ति पर आधरित था, इसी चिन्तन को स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने उपस्थित किया था, गांधी जी के

सामने तो यह समस्या 1920 के बाद ही आयी जबकि आर्यसमाजी नेता इस पर बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में मौलिक चिन्तन प्रस्तुत कर चुके थे, फिर पता नहीं कि इसमें साम्प्रदायिकता की बू कैसे आ गई ?

''मद्रास में कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष होने वाले मि0 नार्टन जब बगाल के क्रान्तिकारियों के प्रतिकूल सरकार की ओर से वकील हुये तब उनके इस कृत्य की आपने (स्वामी श्रद्धानन्द जी ने) घोर निन्दा की थी और सरकारी गवाह बननेवाले 'गोसाई नरेन्द्रनाथ' को 'महा अधम', 'विश्वासघातक' लिखा था।

(स्वामी श्रद्धानन्द जी ले0 सत्यदेव विद्यालंकार पृ0 469)

पाठकगण! एक ओर तो स्वामी श्रद्धानन्द जी का यह राष्ट्रवादी स्वरूप है और दूसरी ओर प्रथम विश्वयुद्ध के समय अंग्रेजों के सहायतार्थ उनकी सेना में अधिक से अधिक भर्ती होने के लिये देश के जवानों को अपील करने वाले महात्मा गांधी जी हैं, यही हालत द्वितीय विश्व-युद्ध के समय की भी है, इतना ही नहीं, बल्कि नेता जी सुभाषचन्द्र बोस, अमरशहीद भगतसिंह जैसे अनेक देशभक्त क्रान्तिकारियों को हिंसक जैसे घृणित शब्दों से पुकारनेवाले देशभक्त चन्द्रसिंह गढ़वाली जैसे बहादुर को जिन्होंने अपना जीवन खतरे में डालकर, अंग्रेजी सेना में होते हुये अंग्रेजो के आदेश पर पेशावर के खिस्साखान बाज़ार में एकत्रित देशभक्त लोगों की भीड़ पर गोली न चलाकर असहयोग करने वाले वीर को भी निन्दित शब्दों मे याद करने वाले गांधी जी को क्या कहा जाये ? पाठक ! स्वयंमेव दोनों की तुलना करके अपने विवेक के द्वारा दोनों में से किसमें अधिक प्रखर राष्ट्रवाद है ? इसका निर्णय कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त इन्होंने गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी जैसी राष्ट्रीय शिक्षा संस्था को जन्म दे इस दिशा में जो अमूल्य, अपूर्व तथा स्मरणीय सहयोग किया उसका विस्तृत विवरण तो पाठक आगे चलकर उक्त गुरुकुल प्रसंग में ही पढ़ सकेंगे।

देवता स्वरूप भाई परमानन्द एम0 ए0

महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं आर्यसमाज से राष्ट्रीयता की प्रेरणा तथा भावना प्राप्त कर देश की आज़ादी, एकता, अखण्डता के लिये आत्मसमर्पण करने वाले इन लोगों में स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ यदि किसी का नाम लिया जा सकता है तो वे हैं, दयानन्द कालेज, लाहौर के इतिहास के भूतपूर्व प्राध्यापक, नेशनल कालेज, लाहौर के कुलपति स्व0 भाई परमानन्द जी एम0 ए0, उन्होंने इस दिशा में जो अलौकिक, अभूतपूर्व, प्रशंसनीय तथा साहसिक कार्य किया है, वह आने वाली भारत की भावी पीढियों के लिये एक नवीन चेतना का कार्य करता रहेगा। आर्यसमाज की शिक्षण संस्था में कार्य करते हुये ये आर्यसमाज के धार्मिक सिद्धान्तों के प्रचारार्थ एक मिशनरी के रूप में अफ्रीका गये थे, वहीं से इनके राष्ट्रीय जीवन का अध्याय आरम्भ होता है। वहां पर गांधी जी के पास निवास करते हुये जो कि उस समय वहां पर एक वकील की हैसियत से एक व्यक्ति के मुकद्मे की पैरवी हेतु गये थे, इन्होंने अपनी राष्ट्रीय भावना की गहरी छाप गांधी जी पर छोड़ी थी, इनके एक सहकर्मी के शब्दों में ही इनके राष्ट्रीय जीवन के संस्मरणों को पढ़िये, 'जो कुछ पढने का फल है वह मेरी समझ में आ चुका है, अंग्रेजों को यहां से निकल जाना चाहिये, उन (भाई जी) की योग्यता को बढ़ाने के लिये कमेटी (डी0 ए0 वी0 कॉलेज प्रबन्धक मन्त्री सभा) ने उन्हें लन्दन में इतिहास के अध्ययन के लिये भेजा, वहां परीक्षा दी, परन्तु कामयाब नहीं हुये, डिग्री तो न लाये, परन्तु 1857 के विद्रोह पर जो भी पुस्तकें मिल सकीं, वह कॉलेज (डी0 ए0 वी0 कालेज, लाहौर, जिसमें भाई जी इतिहास के प्रोफेसर थे) के लिए ले आये।

भाई परमानन्द ने इसके आधार पर एक पुस्तक लिखी, जो उनके खिलाफ मुकद्में में बरती गई, सरकारी वकील ने कहा–कि यह क्या बताऊ ? कि पुस्तक में कौन–सा परिच्छेद आक्षेप के योग्य है ? सारी पुस्तक ही राजद्रोह है, भाई परमानन्द इंग्लैण्ड मे श्यामजी कृष्ण वर्मा के प्रभाव में आये थे, श्याम जी लन्दन में भारतीय क्रान्तिकारियों

के नेता थे, भाई परमानन्द विलायत से आते हुये पुस्तकें तो लाये ही थे, साईक्लोस्टाइल पर छपी एक पत्रिका भी लेते आये थे, वह बम बनाने का नुसखा था। भाई जी शहर (लाहौर) में मकान की एक मंज़िल में रहते थे; दूसरी मंज़िल में स्व0 किशनसिंह (स0 अजीतसिंह के बडे भाई तथा अमरशहीद भगतसिंह के पिता) के सम्बन्धियों की रिहायश थी, सन् 1909 में पुलिस को किसी सम्बन्ध में स0 किशनसिंह के मकान की तलाशी लेनी पड़ी। भाई परमानन्द के मकान की तलाशी की आज्ञा भी प्राप्त कर ली गई, भाई परमानन्द के पास वह नुसखा मिला, जो उनकी वापसी के समय श्यामजी ने जबरदस्ती रख दिया था, श्यामजी कृष्ण ने उन्हें अजीतसिंह के लिए एक पिस्तौल भी दी थी, जो उनके पास ही पड़ी रही, तलाशी में वह नुसखा पुलिस के हाथ आ गया। भाई परमानन्द जी की प्रोफेसरी समाप्त हो गई, अच्छे आचरण के लिये 25-25 हज़ार की दो जमानतें उनके दो मित्रों ने दी, भाई जी अमेरिका चले गये वहॉ से 1914 में भारत आकर गरीबो की सेवा उद्देश्य से दवाघर खोला। माईकल ओडवायर पंजाब का शासक था, जब उससे किसी ने भाई परमानन्द का ज़िक्र किया, तो उसने कहा कि-'कहता है कि दवाइयां बनाता हूं', परमात्मा जानता है बनाता क्या है ? बहुत देर तक हम बातचीत करते रहे, उसी शाम को भाई परमानन्द को पकड़ लिया गया।

भाई जी का मुकद्मा एक ट्रिब्यूनल के सामने पेश हुआ, पहले मुकद्मे की तरह इसमें भी भाई जी की तरफ से सफाई का गवाह था, ट्रिब्यूनल के तीन सदस्य थे, दो अंग्रेज तीसरे पं0 शिवनारायण वकील, दोनो अंग्रेजों ने मृत्युदण्ड की तजनीज की पं0 शिव नारायण ने उम्रकैद की, मामला वायसराय के पास गया, जिसने आजीवन कैद का आदेश दिया, अंडमान द्वीप में जिसे कालापानी कहा जाता है, वीर सावरकर, भाई परमानन्द के साथियों में थे, इन दोनों का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया था। भाई परमानन्द कहते थे कि वीर सावरकर और वह दोनों विशेष रूप से देखभाल का विषय थे। भाई परमानन्द पर जो गुज़री उसकी कल्पना कर सकते हैं, पीछे उनकी पत्नी भाग्यसुधि पर जो गुज़री वह बहुत भिन्न न थी, परन्तु उसने सिर आई परेशानी पेरशानी को बड़ी हिम्मत के साथ सहन किया,

शहर की एक छोटी-सी गली में एक छोटा-सा कमरा किराये पर लिया और एक कन्या पाठशाला (आर्यसमाज की) मे काम करना आरम्भ किया।

भाई परमानन्द को 1926 में रिहा कर दिया गया, भाई परमानन्द को पुलिस ने लाहौर रेलवे स्टेशन पर या लाहौरीद्वार के निकट तागो, इक्कों के अड्डो पर छोड दिया, निकट ही आर्यसमाज मन्दिर था, वह वहां गये और एक पुरुष से पूछा-कि क्या वे उन्हे भाई परमानन्द के परिवार के निवास स्थान का पता दे सकता है? उनका रुप आकार अजीव-सा था परन्तु पास खडे एक आदमी ने उन्हे पहचान लिया और वह पूछते-पूछते अपनी पत्नी और बच्चों के पास पंहुच गये।

(आ० स० त्यागी तपस्वी सन्त ले० दीवानचन्द पृ० 118-123)

इसके पश्चात् भाई जी कुछ देर के लिये राष्ट्रीय कांग्रेस में भी सम्मिलित हुये, परन्तु जब वह कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन पर गये, तो वहां एक कमरे मे मौ० मोहम्मद तथा मौ० शौकल अली बैठे हुये थे, जब भाई जी वहां बैठने लगे तब इन्होंने इनको वहां न बैठने दिया, क्योकि उस समय कांग्रेस में उनकी तूती बोलती थी, भाई जी के स्वाभिमानी हृदय को इससे गहरी ठेस पहुंची, इस घटना से भाई जी जिस परिणाम पर पहुंचे, उसका वर्णन करते हुये उक्त लेखक अपनी पुस्तक में आगे लिखता है :- भाई जी आर्यसमाज में पले थे, शीघ्र ही उन्हें यह बात खलने लगी कि कांग्रेस मुसलमानो को खींचने के लिये कई बार हिन्दू हितों की उपेक्षा ही नहीं करती उन्हें हानि भी पहुंचाती है, भाई परमानन्द जी कांग्रेस से अलग हुये तो सदा के लिये हो गये।

(आर्यसमाज के त्यागी तपस्वी सन्त ले० दीवानचन्द पृष्ट 124)

भाई जी पर जब 1915 में षड्यन्त्रकारी होने का मुकद्मा चला तो उनके पास से पंजाब केसरी लाला लाजपतराय के दो पत्र भी मिले थे, जो उन्होंने 1907 जैसे भयंकर ज़माने में भाई जी को लिखे

थे, जब स्वतन्त्रता संग्राम के अमर योद्धा लाला हरदयाल एम0 ए0 अमेरिका मे थे, तब इनके मन में एक बार यह विचार आया कि इन स्वतन्त्रता संग्राम के झंझटपूर्ण तथा अशान्तिकारक कामों से अलग हो किसी नये अध्यात्मसम्प्रदाय को जन्म दें, वैराग्यवृत्ति से ही शेष जीवन को व्यतीत करना चाहिये और इसके लिये वे पूर्ण तैयारी भी कर चुके थे, तब इसी देशभक्त आर्यवीर ने राष्ट्रीयता से पूर्ण उत्तेजनात्मक विचारों को पुट देकर उनकी वृत्ति को पुनः स्वतन्त्रता संग्राम की ओर मोडकर राष्ट्रीय क्षेत्र में एक महान तथा ऐतिहासिक कार्य किया था, इस कार्य के लिए इन्होंने जिन कष्टों को सहन किया, उसे पढकर पत्थर हृदय मनुष्य भी एक बार व्याकुल हो उठता है, इनको जब गिरफ्तार किया गया, साथ ही इनके घर की सारी वस्तुएँ पुलिस उठाकर ले गई, दिसम्बर के दिन थे, इनकी श्रीमती भाग्यसुधि ने अपने नन्हें-नन्हें बच्चों को सर्दी के तीक्ष्ण प्रहारों से बचाने के विचार से अपनी रजाई पडोसी के घर में फैंक दी थी, क्योंकि पुलिस घर के सारे कपडे भी उठा रही थी, जब पडोसी के घर रजाई पडी तब सारा ही परिवार घबरा गया और ज़ोर-ज़ोर से कहने लगा कि तुम तो फांसी पर चढ रहे हो लेकिन साथ में हमे भी मरवाओगे, यह कहकर रज़ाई वापिस इनके घर में ला पटकी और पुलिस उसे भी उठाकर ले गई।

पाठक! स्वदेश पर बलिदान करने वालो के साथ यह व्यवहार था हमारे देशवासियों का ? और आप अनुमान लगा सकते हैं कि बिना किसी वस्त्र के ही इनके नन्हें-नन्हे बच्चों ने दिसम्बर, जनवरी की कड़कड़ाती सर्दी में भरी राते किस प्रकार बिताई होंगी ? इसी के परिणामस्वरूप इनकी बच्ची, बच्चे तथा पत्नी भी उचित दवादारू तथा पुष्टिकारक भोजन के अभाव में असमय में ही तपेदिक के शिकार हो गये, लेकिन वाह रे देशभक्त ! तेरे मुंह पर जरा भी शिकन तक नहीं। जिस समय इनको फांसी का दण्ड मिला, परन्तु इसके स्थान पर कालेपानी की सजा देकर इन्हें अण्डमान निकोबार द्वीप भेज दिया गया, सारे देश में हाहाकार मच गया, राष्ट्र का जनमानस व्याकुल

हो उठा, जब आप वहां सज़ा भुगतकर वापिस आये तब सारे ही राष्ट्र ने एक चैन की सांस ली, आपकी रिहाई पर एक कविता छपी थी, जिससे देश के निवासियो का आपके प्रति प्यार तथा सम्मान का पाठ्क अनुमान कर सकते हैं-

याद कर करके तुझे, खूने जिगर रोते थे,
आहोजारी से न दमभर को भी कभी सोते थे।
जबकि बेचैन बहुत दर्द-से हम होते थे,
सर पटकते थे मरे जाते थे जी खोते थे।
तेरे दीवानों ने आराम न पाया पल भर,
दस्तो कुछ सर को बालों से उठाया सर पर।
आज गुलशन का नया रंग आया है तेरे,
मुल्क का राग हर इक भाई ने गाया है तेरे।
हमने हर दर्द को सीने से लगाया है तेरे,
फिर से आराम है बीमार ने पाया है तेरे।
दिल है यह चाहता सीने से लगा लूं तुझको,
शोक कहता है कि आंखों में छिपा लूं तुझको।

पाठ्क! इनके तप-त्याग का क्या हम अन्दाज़ा लगा सकते है ? इन्हीं वीरों के तप-त्याग की नींव पर यह भारत की आज़ादी का भव्य भवन खडा है, इतिहास के ये मुंह बोलते तथ्य प्रकट करते हैं। ऋषि दयानन्द तथा आर्यसमाज से स्वाधीनता का मंत्र सीखकर ही इन वीरों ने सिर पर कफन बांधे तथा प्राण हथेली पर धरे हुये थे, परिवारों के प्रबल ममत्व को ठुकराकर अंडमान जैसे सुदूर प्रान्तों में वहां की नारकीय गंदी, बदबूदार तथा तंग कोठरियों में हथकड़ियों तथा बेडियों से बंधे हुये अपने जीवन के एक लम्बे हिस्से को तिल-तिलकर जलाते हुए, अमानवीय यातनाये सहते हुए उत्कट देशप्रेम का परिचय दिया, यह भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की एक बहुमूल्य तथा गौरवशाली थाती है काश! कि आज के इतिहासकार आर्यसमाज के इन गौरवपूर्ण कायो का वर्णन कर जहां आर्यसमाज के साथ न्याय कर पाने का साहस जुटा पाते वहां अपनी लेखनियों को भी कृतज्ञों की पंक्ति में ला खडा कर पाते, परन्तु अफसोस यह न कर पाये।

इन्द्र विद्यावाचस्पति

देशभक्त आर्यो की इस श्रृखला में इनसे आगे स्वामी श्रद्धानन्द जी के छोटे सुपुत्र पं0 इन्द्र विद्यावाचस्पति का नाम आता है. उक्त पं जी अपने महान् पिता द्वारा स्थापित भारत की प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा संस्था विश्वविद्यालय गुरुकुल कांगडी में शिक्षा प्राप्त कर प्रथम स्नातक बने थे, ये अपने अध्ययनकाल मे ही राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत थे, आपके ये राष्ट्रीय विचार अध्ययनकाल में ही गद्य-पद्य साहित्य के रुप में ही समय-समय पर प्रकट होते रहते थे। 1930 के अन्त मे देशभर में नमक सत्याग्रह का बिगुल बज गया, मुझे दिल्ली के अधिकारी सत्याग्रह करने से पूर्व ही जेल मे ले गये थे, मेरे जेल जाने पर दिल्ली में एक सार्वजनिक सभा हुई, उसमें देवदास जी (महात्मा गांधी के छोटे पुत्र) का भी भाषण हुआ, उस भाषण में देवदास जी ने मेरे सम्बन्ध में कुछ शब्द कहते हुए एक ऐसे तार को हिला दिया, जिसकी झंकार मुझे जेल की ऊंची दीवारों के अन्दर भी सुनाई दे गई, उन्होंने लोगों को देशभक्ति के एक गीत के कुछ पद सुनाकर कहा- 'यह गीत इन्द्र जी का बनाया हुआ है और इसे हमने तब याद किया था, जब हम छात्रावास मे गुरुकुल में रहते थे, तब यह गीत प्रार्थना के समय गुरुकुल में गाया जाता था-

ऐ! मातृभूमि तेरे चरणो में सिर नवाऊं।

मैं इनका ऋणी हूं (ले0 इन्द्र विद्यावाचस्पति पृ0 118-119)

कार्यक्षेत्र में आने के पश्चात् जो अपूर्व कार्य इन्होने किया वह इतिहास के शब्दों में ही पढ़ने का कष्ट करें, पुस्तक के लेखक न केवल अच्छे लेखक और पत्रकार थे, अपितु भारत के स्वाधीनता संग्राम के एक प्रमुख सैनानी भी रहे थे, आजादी के लिये जितने भी आन्दोलन हुये थे सब में इन्होंने सक्रिय भाग लिया था और कई बार जेल गये थे।

(भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास भूमिका ले0 इन्द्र जी)

अपना अध्ययन तथा अध्यापन कार्य समाप्त कर आप दिल्ली में आये और वहां आपने हिन्दी में 'विजय' नामक दैनिकपत्र निकालना आरम्भ किया, जिसके द्वारा समय-समय पर होनेवाले

राष्ट्रीय आन्दोलनों को प्रबल प्रोत्साहन, पुष्टि तथा बढावा मिलता था। रोल्ट एक्ट के विरुद्ध निकाले गये जूलूस को जिसका वर्णन पाठक पीछे पढ़ चुके है जनव्यापक बनाने में सर्वाधिक सहयोग 'विजय' पत्र का ही रहा था, तदनन्तर आपने "वीर अर्जुन" नामक पत्र भी इसी अभिप्राय से आरम्भ किया था, जब 1930 में नमक सत्याग्रह की घोषणा महात्मा गांधी की ओर से ही दी गई तो दिल्ली में एक सत्याग्रह-कमेटी बना दी गई, जिसमें एक तिहाई संख्या आर्यसमाजियो की थी, उस कमेटी के मंत्री पं0 इन्द्र विद्यावाचस्पति थे। (आर्यसमाज का इतिहास पृ0 110 ले0 इन्द्र जी)

इसी राष्ट्रीय भावना तथा उसके प्रतीक महात्मा गांधी की भावना के बहाव में बहने के कारण इन्द्र जी महात्मा गांधी तथा कांग्रेस के इतने अधिक समीप चले गये थे कि एक समय आया कि जब पिता और पुत्र मे राष्ट्रीयनीति के सम्बन्ध में नीति के विषय को लेकर मतभेद उत्पन्न हुआ, परन्तु दोनों ही अपने-अपने दृष्टिकोण से अपनी-अपनी दिशा मे कार्यरत रहे, इन्हीं अपनी सेवाओं के कारण पंडित जी स्वतन्त्र भारत में राज्यसभा में राष्ट्रपति द्वारा एक अरसे तक मनोनीत सदस्य रहे, लोकसभा में दिये गये उनके वक्तव्यों में भी उनकी देशनिष्ठा झलकती थी।

महाशय कृष्ण

देश की स्वाधीनता का कार्य करने वाले इन्हीं आर्यवीरो की श्रेणी में पंजाब की महान् विभूति, पंजाब की राजनीति के मार्ग-दर्शक, लोह लेखनी के धनी, प्रसिद्ध राष्ट्रवादी पत्रकार महाशय कृष्ण का नाम आता है। विद्यार्थी काल में उनके लेख अंग्रेजी के प्रसिद्ध राष्ट्रीय पत्र 'अमृत बाजार-पत्रिका' में छपने लगे थे, जब वे आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अग्रेजी पत्र 'आर्य-पत्रिका' के सम्पादक नियुक्त हुये तो थोडे ही समय मे अपनी मंजी हुई लेखनी तथा व्यगात्मक लेखन शैली के कारण प्रसिद्ध हो गये जिस कारण लन्दन के एक समाचारपत्र ने उन्हे 'अग्निसम्पादक' के पद से विभूषित किया था।

(पंजाब का आर्यसमाज-ले0 रामचन्द्र जावेद)

महाशय जी ने सन् 1907 जैसे भयानक जमाने में "प्रकाश" साप्ताहिक का प्रकाशन आरम्भ कर स्वाधीनता-मार्ग के कांटों को कुचलना आरम्भ कर दिया था, उस खतरनाक जमाने में महाशय जी ने ला0 लाजपतराय तथा स0 अजीतसिंह जैसे नेताओं के निर्वासन पर जो निर्भीक विचार प्रकट किये थे और बंगाल विभाजन के समय किये गये भारतीयों के बलिदानों को आप जिस ओजस्वी भाषा में प्रकट किया करते थे जिन्हें पढ़कर पाठक रोमांचित हो जाते थे, जिन्होंने वे लेख पढ़े हैं आज भी वे पाठक उन्हें भूलते नहीं हैं, उस समय की पंजाबी जनता में दो गीत सबकी जुबां पर थे, इनमें से एक गीत 'प्रकाश' में छपा था, जिसकी पहली कडियां निम्न प्रकार से थीं-

न मिन्टो है अफसर अपना, न किचनर है कमान अफसर।

'प्रकाश' में प्रकाशित इस गीत की चोट उन दिनो के भारत के वायसराय लार्ड मिण्टो तथा कमाण्डर इन चीफ लार्ड किचनर पर ही थी।

(महाशय कृष्ण का जीवन-चरित्र पृ0 27 ले0 सत्यदेव विद्यालकार)

इसी प्रकार 1919 जैसे भयावह काल में महाशय जी ने "प्रताप" नामक दैनिक उर्दू-पत्र का आरम्भ किया, इसका पहला अंक 31 मार्च के ऐतिहासिक दिन निकला था, दूसरा अंक 1 अप्रैल को निकला था, जिसमें रोल्ट एक्ट के विरुद्ध स्वामी श्रद्धानन्द जी के नेतृत्व मे निकले दिल्ली के जूलूस तथा उस पर गोराशाही सरकार की पुलिस के अत्याचार एवं गोरो की नंगी-संगीनो आगे के आपने कुर्ते के बटन खोल अपनी नंगी छाती पर गोली चलाकर अपनी बहादुरी का परिचय देने की ललकार करते हुए समाचार का आंखो देखा वर्णन सजीव तथा सशक्त भाषा में अंकित किया गया था। प्रताप की इसी उग्रता तथा राष्ट्रीयतापूर्ण नीति के कारण इनके जन्म से केवलमात्र डेढ़ सप्ताह बाद ही विदेशी साम्राज्यवाद के द्वारा सेन्सरशिप की नगी तलवार इसकी गर्दन पर रख दी गई थी, अंग्रेजी काल में न जाने कितनी बार इसकी ज़मानतें जब्त हुई, राजद्रोह के मुकद्मे चलाये

गये, पर यह आर्यवीर जिसने हल्दीघाटी के स्वतन्त्रयवीर तथा स्वाभिमानी महाराणा प्रताप का अपना आदर्श चुना था, उसी के समान अपने राष्ट्रीय विचारों से तिलभर भी पीछे न हटे। जब पंजाब में सर सिकन्दर हैयात खां की मिनिस्ट्री थी और द्वितीय विश्वयुद्ध अपने यौवन पर था तब तक ब्रिटिश सेनायें मोर्चे पर हार रही थीं, तो महाशय जी ने अपने प्रताप में 'जंग का रंग' नामक सम्पादकीय लेखमाला लिखी, जिससे कि जनता को युद्ध के मोर्चे की यथार्थ स्थिति जानकर विदेशी शासकों की नींद हराम कर दी थी।

सरकार ने उसी अपने पुराने हथियार सैंसरशिप रूपी भाले की नोक महाशय जी की छाती से अड़ाकर अपनी खीज मिटाने का उपक्रम करना चाहा, परन्तु महाशय जी की चतुरता के कारण शासकों को अबकी बार यह सौदा महगा सिद्ध हुआ और सरकार को अपना यह आदेश बिना किसी शर्त के ही वापिस लेने पर मजबूर होना पड़ा, 'प्रताप' पर जब यह सैन्सरशिप का दौर-दौरा चल रहा था, उसी समय पं0 जवाहरलाल नेहरू भी लाहौर पहुचे और वहा वे महाशय जी की कोठी पर ठहरे, प्रताप पर लगे सैन्सरशिप के विरोध में उन्होंने एक कठोर वक्तव्य दिया उसी अवसर पर आयोजित एक पत्रकार सम्मेलन में एक पत्रकार द्वारा पूछे गये प्रश्न का उत्तर देते हुये नेहरू जी ने कहा कि यदि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की आज़ाद हिन्द सेना भारत पर आक्रमण करती है तो मैं पूरी शक्ति के साथ उनका सशक्त विरोध करुंगा, इसके पश्चात् महाशय जी ने अपनी लेखमाला में अपने पाठकों के सामने एक प्रश्न रखकर उसका उत्तर देते हुए लिखा था कि यदि जर्मन की सेनायें भी भारत पर आक्रमण करती हैं तो मैं बन्दरगाह पर जाकर हार पहना कर उनका स्वागत करूंगा।

(म0 कृष्ण का जीवन पृ0 191-199)

पाठकगण! यह था आर्यसमाज में पले राष्ट्रीय नेताओं और अन्य नेताओं की विचारधारा में अन्तर। जहां एक ओर जवाहरलाल नेहरू अपने देश में उत्पन्न हुये राष्ट्रीयता के रंग में रंगे स्वबन्धु का विरोध करने को तत्पर थे वहां राष्ट्र के हितार्थ दूसरी ओर महाशय

जी जर्मनी सेनाओं का भी स्वागत करने को समुद्यत हैं, राष्ट्रवाद की इसी उग्र प्रवृत्ति ने महाशय जी को अन्त में कांग्रेस से पृथक् होने पर विवश कर दिया था, जिसके परिणामस्वरुप भारत के स्वतन्त्र होने पर भी यह देशभक्त पत्रकार स्वदेशी राष्ट्रीय सरकार की नज़रों में आजीवन कांटे की भांति खटकता रहा, 1942 की क्रांति में इन्होंने जो सहयोग दिया, प्रसंग आने पर पाठक उसे पढ़ सकेगे, जिसमे देशप्रेम के उनके प्यार के दर्शन हम कर सकेंगे।

महाशय वीरेन्द्र

इन्हीं देशभक्त आर्यवीरों की कोटि में महाशय कृष्ण के बड़े सुपुत्र दैनिक उर्दू 'प्रताप' एवं दैनिक हिन्दी 'वीरप्रताप' के सम्पादक म0 वीरेन्द्र का नाम भी आता है, आप भी अपने पिता जी के चरणचिन्हो पर चलते हुये अपने पत्रो में ब्रिटिश सरकार के विरोध में आग उगलने वाले लेख लिखा करते थे, जब अमरशहीद भगतसिंह के दल पर सरकार के विरुद्ध बगावत करने के अपराध में लाहौर में मुकदमा चला तब आप भी दल में सहायक होने के अपराध में पकड लिये गये, जिसके परिणामस्वरूप आपको कठोर कारावास की यातनायें भुगतनी पडी थीं, पाठकों को स्मरण होना चाहिए कि उस गिरफ्तारी के समय श्री वीरेन्द्र जी की आयु केवलमात्र 19 वर्ष की थी, यह आर्यसमाज के लिये हम एक अत्यन्त ही गौरव का विषय समझते हैं आपने दस बार ब्रिटिश सरकार की जेलों में राजद्रोही बन्दी के रूप में सहर्ष अमानवीय यातनायें सहन कर अपनी उत्कट देशभक्ति का परिचय दिया था, जेल में बन्दी होते हुये ही आपने जेल के जीवन से ही एम0 ए0, बी0 ए0 तथा एम0 एड0 की परीक्षायें उत्तीर्ण की थी। यह थी आर्यवीरों के तप, त्याग, बलिदान एवं राष्ट्रप्रेम तथा स्वदेशी की भावना से प्रेरित हो उसके समुद्धार के हेतु कष्ट सहन की सीमातीत क्षमता! जो आज हमारे लिये जहा गौरव का विषय है वहां इस पर हम नाज कर सकते हैं।

जलियाँवाले बाग का काण्ड और आर्यसमाज

इसी के साथ अमृतसर के जलियाँवाले बाग में सन् 1919 में 13 अप्रैल को हुये काण्ड के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डालना आवश्यक एवं प्रासगिक होने से लिखा जा रहा है, मार्शल लॉ के उस ऐतिहासिक युग को पंजाब क्या कभी भूल सकेगा ? उस काल में विदेशी सरकार की पुलिस तथा सेना के द्वारा किए अत्याचार, भारतीयों को दी गई अमानुषिक यन्त्रणायें, अपनी संगीनों की तीखी नोंकों के द्वारा छलनी किए गए पंजाबियों के हृदय क्या यह देश कभी भूल सकेगा ? उनके द्वारा हमारी माताओं-बहिनो के अस्मतधन के साथ किए क्रूर-मजाक, हमारे बुजुर्गो के सम्मान पर डाला गया जघन्य डाका, उनके भय से चिल्लाते हमारे बच्चों की मुखाकृतियां हम चाहने पर भी कभी भूल न सकेंगे और अत्याचारी अंग्रेज से इन सबका प्रखर प्रतिशोध लेने की हमारी भावना को याद दिलाते रहेंगे, उस ऐतिहासिक एवं पैशाचिक काण्ड से पूर्व अमृतसर मे एक विशाल जूलूस निकाला गया, जिसका नेतृत्व डा० सत्यपाल, चौ० बुग्गामल तथा महाशय रत्नचन्द्र उर्फ रत्तो कर रहे थे, इनमें से डा० सत्यपाल तथा महाशय रत्नचन्द्र दोनों ही प्रत्यक्षरूप मे आर्यसमाज से सम्बन्धित थे, जब जूलूस में उपस्थित पंजाब के जोशीले युवाकंठों से निकले राष्ट्रीय नारो से अमृतसर गूंजने लगा तब झुंझलाई हुई पुलिस ने अन्धाधुन्ध लाठिया बरसाकर अपनी झेंप मिटानी आरम्भ की, उस भयंकर स्थिति में गोराशाही विदेशी सरकार की निर्दयी पुलिस ने माताओं की गोदियों से नन्हे बच्चों को झपटकर सबके देखते ही देखते अमृतसर की कंकरीट की पथरीली तथा तारकोल से तपती हुई सड़कों पर पटक-पटककर मारना आरम्भ कर दिया, इस असहाय तथा दर्दनाक दृश्य को देख अपनी ही आंखो के सामने अपनी भावी पीढी को इस निर्दयता के साथ मसली जाते हुए देखकर युवावर्ग अपने मानसिक सन्तुलन को खो बैठा, अपने उबाल पर नियन्त्रण न रख सकने के कारण कई अंग्रेजों को मौत के घाट उतार दिया गया, उनके

बंगले, कोठियां तथा सरकारी निवास स्थान सबको देखते-देखते ही जलाकर राख की ढेरी बना दी गई, इधर पुलिस ने चौ0 बुग्गामल के मकान का घेरा डाल दिया और साथ ही पुलिस ने जुलूस के नेताओं की धरपकड़ आरम्भ कर दी, चौ0 बुग्गामल के मकान पर पहरा दे रहे स्वयंसेवकों को गोली मारकर ढेर कर दिया, उधर डा0 सत्यपाल को भी पकड़ लिय गया।

महाशय रत्नचन्द्र

फिर म0 रत्नचन्द्र को बड़ी कठिनता के साथ खोजकर निकाला गया, उनकी आंखों के सामने उनके घर का सारा सामान पुलिस उठाकर ले गई, उनकी पत्नी को जिसकी गोद में एक नन्हा–सा बच्चा था, उसे घर से धक्के मारकर तथा बालो से पकड़–घसीटकर बाहर फैक दिया गया और बाहर खड़ी पुलिस ने माता की गोद से फूल के समान उस मासूम बच्चे को झपटकर दूर फैंक दिया और इनके मकान पर तालाबन्दी कर दी, इन तीनों वीरों के मुकद्में को एक स्पेशल ट्रिब्यूनल के सामने पेश किया गया, जहां ये तीनों वीर भारी हथकड़ी बेड़ियों से जकड़े नंगी संगीनें चढ़ाये सैकडों सशस्त्र सिपाहियों से घिरे तथा गोलाबारूद से भरी तीन तोपो के मुंह सामने खड़े बडे भयानक राजद्रोही बन्दियों के रूप में उपस्थित किये गये, ट्रिब्यूनल ने मुकद्में का नाटक रचकर अपने निर्णयानुसार तीनों को फांसी का दण्ड देने का निश्चय किया, जो बाद में पं0 मोतीलाल नेहरू, पं0 मदनमोहन मालवीय के प्रीवीकोंसिल में अपील करने पर आजीवन कालापानी के रूप में बदल दिया गया था, जब महाशय रत्नचन्द्र जी को अंडमान भेजा जाने लगा तब आर्यवीरों ने ही उनके परिवार के पालन का उत्तरदायित्व अपने कंधों पर लेकर अपनी दृढ़ देशभक्ति का परिचय दिया था, कैसे? ''महाशय रत्नचन्द्र जी के सम्बन्ध में एक और घटना बताना चाहता हूं, जो सैन्ट्रल जेल लाहौर में घटित हुई, मैं उस समय जेल से रिहा हो चुका था, जब उनके अंडमान जाने कि तिथि निश्चित हुई, तो मुझे उनकी ओर से संदेश मिला, कि अमुक दिन आकर मिल जाओ, अतः मैं वहां गया, उस समय

उनकी धर्मपत्नी भी वहां पर मौजूद थी, उनकी गोद में बच्चा था, महाशय रत्नचन्द्र ने मुझे सम्बोधित करते हुये कहा कि अब मैं अंडमान जानेवाला हूं, कह नहीं सकता कब लौटूंगा और जीवित लौट भी सकूंगा या नहीं ? इसलिये मै आप पर एक दायित्व डालना चाहता हूं, क्या आप वह लेने को तैयार हैं ? मैंने हां कह दी, इस पर उन्होंने अपनी धर्मपत्नी से कहा कि बच्चा महाशय जी की गोद मे दे दो, अतः उसने अपना बच्चा मेरे हवाले कर दिया, उस समय से मैं उस बच्चे का सरक्षक हो गया, मैंने पहले उसे गुरुकुल मे दाखिल कराया और फिर एक स्कूल में, अब वह काम पर लगा हुआ है।''

(महाशय कृष्ण का जीवन पृ0 270 ले0 सत्यदेव विद्यालंकार)

उस राजद्रोह के अपराध के दण्डस्वरूप इस वीर ने अंडमान की सड़ी, गंदी, अन्धेरी एवं तंग कोठरियों में अपने जीवन की दो दशाब्दियों (20 वर्ष) की लम्बी अवधि काटी, जब पंजाब में सर सिकन्दर हैयातखां का मंत्रिमण्डल अस्तित्व में आया, और अंग्रेज सरकार ने कुछ राजनीतिक बन्दियों को रिहा किया तब महाशय जी भी अंडमान से वापस लौटे, (अब इस देशभक्त वीर का प्राणान्त हो चुका है), ये आर्यसमाज लोहगढ़, अमृतसर के सदस्य थे, 24 फरवरी, 1965 को इन पंक्तियों का लेखक इनसे इनके मकान पर मिला, अनेक बातें होने के पश्चात् ''आप आर्यसमाज की ओर कैसे आकृष्ट हुए ?'' यह पूछे जाने पर कहा कि आर्यसमाज का राष्ट्रीय स्वरूप ही इसकी ओर मेरे आकर्षण का प्रमुख कारण था, यह कारण है कि आज भी मैं अपने को आर्यसमाज तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती का अटूट शिष्य कहने में गौरव का अनुभव करता हूं।''

पाठकवृन्द! जबकि ब्रिटिश काल में एक घंटे की जेल की सजा काटनेवाले कांग्रेसियों ने राजनैतिक पीड़ित सहायक फंड से लाखों के वारे–न्यारे किये तब भी भारत की स्वाधीनता के लिए अपने यौवन की उठती उमंगों को कुचलकर मृत्यु को भी निमन्त्रण देने वाला यह आर्य वीर स्वतन्त्र भारत में निर्धनता की दुर्दशा में अपने दिन गुज़ारते हुए मरने पर मजबूर था, उसी बातचीत के मध्य में 'रुंधे हुए' गले

से उन्होंने कहा कि हमने तप, त्याग, देशभक्ति के चैक भुनाने के लिए अंडमान की नारकीय यातनाये नहीं सही थीं, परन्तु स्वतन्त्र भारत में इन तथाकथित अहिंसावादी थोथे शासकों ने हमारी कीर्ति को भी चुरा लिया है, जब 1919 में जलियां वाले बाग का काण्ड हुआ तब पंजाब के गली मोहल्लों में तथा नगर के बच्चे-बच्चे की जुबान पर महाशय रत्नचन्द्र का नाम गूंजता था, लेकिन 1957 में स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा0 राजेन्द्र प्रसाद उसी बाग में जब शहीद स्मारक का उद्घाटन करने आये, तब मैं सर्वसाधारण दर्शकों तथा श्रोताओ के मध्य दरियों पर बैठा था, इनसे इतना भी तो नहीं हुआ की मार्शल लॉ के सबसे बडे अभियुक्त तथा ब्रिटिश साम्राज्य की दृष्टि में सबसे बडे खतरनाक कैदी को आज के इस समारोह के साथ जिनका अटूट नाता है, उसको कम से कम उस समय मंच पर बैठाने मात्र का सम्मान तो दे दिया जाये, काश कि आज के तथाकथित राष्ट्रीय शासक इस ओर तनिक अपना ध्यान दे अपने पापों का प्रायश्चित कर पाते, इसी प्रसंग मे हम श्री प्रीतदास आर्य को नहीं भूल सकते हैं, श्री आर्य जी प्रसिद्ध आर्य विद्वान् श्री पं0 विश्वनाथ जी विद्यामार्तण्ड वेदोपाध्याय के पिता जी थे, उनके सम्बन्ध में लिखा मिलता है कि श्री प्रीतदास जी आर्य के मार्शल ला में नंगे पांव रहकर विरोध प्रकट करने पर काले पानी की सजा दी थी, परन्तु वृद्ध तथा कमज़ोर होने से वह सजा तीन वर्ष की कैद के रूप में बदल दी थी।

(अथर्ववेद परिचय भूमिका ले. पं0 विश्वनाथ जी विद्यामार्तण्ड)

पंजाब के अन्य कुछ देशभक्त आर्य नेता

इनके अतिरिक्त पजाब प्रदेश में कांग्रेस के माध्यम से राष्ट्रीय क्षेत्र में कार्य करनेवाले सैकड़ों प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता आर्यसमाज की देन थे, दैनिक 'मिलाप' के संचालक महाशय खुशहालचद जी खुरसन्द (बाद मे प्रसिद्ध आर्य-सन्यासी महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज) के सुपुत्र श्री रणवीर जी को भी स्वाधीनता का कार्य करते-करते विदेशी साम्राज्य के न्यायालय ने फासी का दण्ड दिया था, जो कि बाद में

कारागार के रूप में बदल दिया था, स्वयं खुशहालचन्द जी भी देशभक्ति से परिपूर्ण विचारधारा वाले तथा ऐसे व्यक्तियों से न केवल स्नेह रखनेवाले ही थे, पत्युत गाढ़ी मुसीबत के समय अपने को मुसीबत में डालकर भी उनको प्रश्रय देनेवाले थे, पक्के गांधीवादी होते हुये भी सशस्त्र क्रान्तिकारियों से सदा ही सहानुभूति रखा करते थे, जिस समय भाई परमानन्द जी गिरफ्तार किये गये, उस समय वे उनसे मिलने जेल में भी गये, तभी से सरकारी पुलिस खुशहालचन्द खुरसन्द जी की गतिविधियों पर निगरानी करने लगी थी, उसी दौरान इन्होने टोपी पहनना बन्द कर दिया था, क्योंकि टोपी विदेशों से बनकर आती थी, उनके इस कार्य पर महात्मा हंसराज जी ने उनके इस काम की प्रशंसा कर उनका उत्साह बढ़ाया था, 1929 में जब कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन लाहौर में हुआ तब आपने अपने 'दैनिक मिलाप' का एक विशेष 'कांग्रेस एडीशन' प्रकाशित किया था, जिसमें आपके सुपुत्र रणवीर ने भी 'भारत की जंगे आज़ादी के खामोश सिपाही' नामक एक लेख लिखा था, जिसमे देश के बहादुर सिपाहियों तथा क्रान्तिकारियों का वर्णन था जो सिर पर कफन बांधकर देश की आजादी के लिये कार्य कर रहे थे।

(रणवीर रचित महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती पृ0 154)

एक दिन मैं अपने कमरे में बैठा हुआ था, लगभग दो दर्जन रिवाल्वर और पिस्तौल मेरे सामने थे, उन्हें कभी-कभी साफ भी करना पडता था, ताकि अवसर आने पर वे जाम न रहे जायें, उस दिन उन्हें साफ करके तेल दे रहा था, प्रायः ऐसे समय पर अपने कमरे का द्वार बन्द कर लिया करता था, लेकिन उस दिन ऐसा करना भूल गया, किवाड बन्द थे, सांकल नहीं लगी थी, मैं पूरी तन्मयता से अपना काम कर रहा था, एक ओर कारतूसों का ढ़ेर पडा था, सामने सबके सब पिस्तौल और रिवाल्वर थे, कुछ खुले, कुछ बन्द, तभी ठक से दरवाजा खुला, मैं चौंक पड़ा, पीछे देखा तो द्वार में पिताजी भी खड़े हैं, पलभर के लिए वह खडे रहे, फिर किवाड भिडाकर चले गये, मैंने जल्दी से उठकर सांकल लगा दी, इस पर भी दिल धड़कता रहा था,

बार-बार यह विचार कुरेद जाता पिता जी ने सब कुछ देख लिया है, अब पता नहीं क्या होगा ? शायद मुझे घर से बाहर भागना पड़ेगा, शायद वह कहेंगे यह काम छोड़ दो, नहीं तो घर से निकल जाओ, दिनभर कितनी ही योजनायें बनाता रहा, आखिर निर्णय किया कि चाहे घर छोड़ना पडे या और कुछ करना पड़े, यह काम तो बन्द नहीं होगा, रात को पिताजी ने मुझे अपने पास बुलाया, अब पता नहीं कौन-कौन से कठोर प्रवचन सुनने होंगे, लेकिन मैं हैरान रह गया, जब उन्होंने धीमे से कहा-तुम्हें अपना काम करना हो तो करो, लेकिन कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया करो, जिस तरह मैं तुम्हारे कमरे में आया उसी तरह कोई बाहर का आदमी भी आ सकता है, दरवाजा खुला करके काम करना ठीक नहीं,..... उन्हें मालूम था कि जो काम मैं करता हूं, उसका अंजाम क्या हो सकता है ? इसके बावजूद एक बार भी उन्होंने मुझे रोका नहीं, उनका बेटा देश की स्वतंत्रता के लिए लडता मरे यह बात उन्हें अच्छी लगती होगी, इस घटना के काफी समय बाद मैं जब पंजाब के गर्वनर पर गोली चलाने के षड्यन्त्र के आरोप में गिरफ्तार हुआ तो दिसम्बर का महीना था, सर्दियों की वह ठिठुरती हुई रात थी, मैं लाहौर के शाही किले मे बैठा था, पुलिसवालों ने मुझे अभी-अभी बताया था कि उन्होंने मुझे गिरफ्तार कर लिया है, थोड़ी ही देर में मेरे पिताजी मेरा बिस्तर आदि लेकर आयेंगे, फिर धीमे से (पिता जी ने) मेरे कान में कहा बहादुर बनना रणवीर। देश के लिए जान देने से बेहतर इस दुनियां में कोई मौत नहीं होती, पुलिसवालों को अपने किसी भी साथी का नाम न बताना, मैंने धीमे से उनका हाथ दबा दिया, यह बताने के लिए कि मैं जानता हूं, आप चिंता मत कीजिये, आपका बेटा मर सकता है, देश के साथ द्रोह नहीं कर सकता।

(महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती पृ0 242-243 ले0 रणवीर)

मिलाप और उसके सम्पादक श्री खुशहालचन्द पर भी मुसीबतें आई, कई मुकद्मे उन पर चले, कई बार मिलाप की ज़मानते मांगी गई, कई बार न जाने कितने-कितने हजार रुपये जब्त हुए, कई

सस्करण मिलाप के जब्त हुए, कई बार हमारे घर और दफ्तर की तलाशी हुई, यह सब कुछ बखान करने की आवश्यकता नहीं है यह सत्य है कि समाचारपत्र और जमानत की जब्ती के लिए हम हर घडी तैयार रहते थे, पुलिस और वारट के स्वागत के लिए हम सदैव उद्यत थे, फिर हमारे परिवार में विदेशी शासन की आखों में खटकने वाले केवल पिता जी ही नहीं थे, उनके पुत्र भी थे, यश (रणवीर जी का छोटा भाई) आठ वर्ष का था जब वह बाल भारत सभा का प्रधान और प्रमुख कार्यकर्त्ता बना, नौ वर्ष का था तब वह इस आरोप मे गिरफ्तार हुआ कि साढे तीन फीट के इस बालक ने साढ़े छः फीट के एक बावर्दी सिपाही को पीट डाला, इस आरोप के कारण वह हवालात में रहा, अभियोग चला तो अदालत ने उसकी आयु को देखते हुए जेल भेजना उचित न समझा हां उसके बाद तो गिरफ्तार होना, जेल जाना, कैद होना या नजरबन्द होना जैसे उसके जीवन का अंग बन गया, यश से बडे हैं ओमप्रकाश जी, वह यश से बडे होने पर भी बाल भारत सभा में यश का मार्गदर्शन करते थे, एक बार बर्तानवी शासन के विरुद्ध बच्चो द्वारा प्रदर्शन मे पुलिस ने उन्हें निर्ममता से पीटा और लाहौर की जलती–तपती ठडी सडक पर कितनी देर तक इस बुरी तरह से घसीटा कि वह बेहोश हो गये, वहां से उन्हें उठाकर लाया गया।

(महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती पृ0 153 ले0 रणवीर)

रणवीर के समान ही इनके छोटे भाई यश को भी स्वाधीनता के लिए अनेक बार कारावास की सज़ायें भुगतनी पड़ी थी। इस प्रकार देश की स्वाधीनता के लिए इस परिवार ने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये है, इसी प्रकार ला0 भीमसेन सच्चर भू0 पू0 मुख्यमंत्री पंजाब ने भारत की स्वाधीनता के लिए जो कष्ट झेले है, वह आर्यसमाज की प्रेरणा का फल था, आप कई आर्यसमाजों के प्रधान तथा मंत्री के रूप मे सक्रिय अधिकारी रहे है, आर्यसमाज के प्रसिद्ध सन्यासी आर्यसमाज की राष्ट्रवादी विचारधारा के प्रतीक स्वामी स्वतंत्रानन्द जी

महाराज के प्रमुख शिष्यों में आपका स्थान था, उन्हीं की प्रेरणा से तो आप राजनीति के क्षेत्र में आये थे, मुख्यमंत्री का कार्यभार संभालने से पहले आप आर्यसमाज, बेयर्ड रोड, नई दिल्ली में यज्ञ एवं प्रार्थना करने के पश्चात् अपने भावी कर्त्तव्यनिष्ठा की पूर्ति अधिकाधिक तथा निरन्तर प्रयत्नशील, जागरूक और ईमानदार रहने का व्रत लेकर गये थे, इनसे पूर्ववर्ती पंजाब के मुख्यमंत्री डा0 गोपीचन्द भार्गव भी आर्यसमाज के प्रसिद्ध नेता ला0 लाजपतराय के प्रमुख तथा कट्टर अनुयायियों एवं शिष्यों में से थे, उन्हीं के नेतृत्व में आपने भारत की स्वाधीनता का कार्य किया था, राजनीति में आर्यसमाज से ही अनुप्राणित हो कूदे थे, इन्हीं के शिष्य डा0 गोकुलचन्द नारंग तो डी0 ए0 वी0 आंदोलन के मुख्य आधार स्तम्भों में से थे, इनका भी स्वाधीनता संग्राम में जो सहयोग रहा, वह आर्य जगत् के लिए एक अपूर्व गौरव का विषय है, आर्य जगत् के प्रसिद्ध नेता महात्मा देवीचन्द्र जी होशियारपुर वालो ने ब्रिटिशकाल में पंजाब विश्वविद्यालय की सर्वोच्च उपाधि एम0 ए0 सफलता के साथ उत्तीर्ण की थी, जब उक्त विश्वविद्यालय के अधिकारी दीक्षान्त समारोह में उपाधिपत्र देने से पहले अंग्रेजी राज्य के प्रति दृढ़निष्ठा तथा अगाध भक्ति रखने की शपथ दिलाने लगे तब आपने उक्त शपथ लेने से सर्वथा ही इंकार कर दिया था, जिसके परिणामस्वरूप आपको उक्त उपाधिपत्र नहीं दिया गया था, परन्तु भारत की राष्ट्रवादी जनता ने स्वयं ही उनके नाम के आगे 'महात्मा' लगाकर उन्हें विभूषित किया और स्वयं ही उनके नाम के साथ एम0 ए0 की उपाधि लगा दी थी, आर्यसमाज के इसी विभाग के कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री ला0 रामप्रसाद जी भी ला0 लाजपतराय जी के प्रमुख शिष्यों में से एक थे, बहुत दिनों तक इन्होंने लाला जी के 'वन्दे मातरम्' का सम्पादन किया था, इनका कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं में भी एक प्रमुख स्थान था, इसी प्रकार पंजाब के भू0 पू0 शिक्षामंत्री श्री प्रबोधचन्द्र जी ने इस दिशा में जो कार्य किया, उसके मूल में भी आर्यसमाज की ही प्रबल प्रेरणा काम कर रही थी, प्रमाण के लिये उन्हीं के मुख से निकली स्वीकारोक्ति पढ़ें।

आर्यसमाजी होने पर गर्व-

चण्डीगढ़ 25 मार्च। आज पंजाब विधानसभा में शिक्षामंत्री श्री प्रबोधचन्द्र पर आरोप लगाते हुए अकाली सदस्यों ने यह कहा कि यह आर्यसमाजी हैं, इसके उत्तर में श्री प्रबोधचन्द्र ने कहा कि मैं आर्यसमाजी हू, और मुझे आर्यसमाजी होने पर गर्व है, आर्यसमाज ने देश की भारी सेवा की है।

(दैनिक 'वीर अर्जुन' दिल्ली 26 मार्च, 1956)

इनके पिता श्री मा0 सत्यदेव जी बी0 ए0 आर्यसमाज के स्कूलों में अध्यापन कार्य करते हुए आर्यसमाज के निष्ठावान् सक्रिय कार्यकर्त्ताओ में रहे है, इसी प्रकार पंजाब के भू0 पू0 शिक्षामंत्री स्व0 ला0 जगत् नारायण जी ने भी आर्यसमाज से ही प्रेरणा प्राप्त कर देश की स्वाधीनता के क्षेत्र में प्रशसनीय सेवायें की हैं, देशभक्त आर्यसमाजियों की इस परम्परा में आर्यसमाज के विख्यात दार्शनिक विद्वान् मनस्वी संत स्वामी आत्मानन्द जी महाराज का भी नाम आता है, आप समय-समय पर अपने संसर्ग मे आने वाले युवकों को देशभक्ति की प्रेरणा दिया करते थे, तथा देशभक्तों के परिवारों की केवलमात्र शाब्दिक ही नहीं प्रत्युत आर्थिक सहायता भी किया करते थे, आर्यजगत् के महान दार्शनिक विद्वान् तथा प्रसिद्ध देशभक्त स्व0 पं0 जगदीशचन्द्र जी शास्त्री दर्शनाचार्य ने अपने संस्मरणों में निम्न तथ्य को प्रतिपादित किया है, इसी बीच में कभी-कभी रात्रि के समय क्रांतिकारियों के दल के कार्यो की चर्चा भी चलती थी, और उनकी रोमाचकारी घटनाओं की चर्चा भी हुआ करती थी, इसी कथावार्ता में मुझे पता चला कि उपाध्याय जी (स्वामी जी का पूर्व का नाम पं0 मुक्तिराम उपाध्याय था) भी क्रांतिकारी विचारधारा के महान् समर्थक और वीर भगतसिंह के साथी सुखदेव जी को क्रांति का मार्ग प्रदर्शन कराने वाले हैं, मैं अपने साथियों को आवश्यक संकेत देकर सीधा गुरुकुल पोठोहार पहुचा, इच्छा थी कि पं0 मुक्तिराम उपाध्याय के पास जाकर कुछ काल अज्ञातवास की व्यवस्था हो जायेगी, सायंकाल

का समय था, अग्निहोत्र और संध्या हो चुकी थी, उपाध्याय जी नित्यकर्म से निवृत्त होकर ज्योंही यज्ञशाला से नीचे उतरे त्योंही उनकी दृष्टि मेरी ऊपर पडी, दौड़े-दौड़े मेरे पास आये, जब उनको हमारे कांड का पता लगा तो गंभीर होकर बोले चार दिन हुये गुरुकुल की तलाशी हुई है, जेहलम पार के दो ग्रामों में पुलिस ने कई लोगों को गिरफ्तार किया है, पता लगा है कि हमारे गुरुकुल पर अंग्रेजी पुलिस का कडा और गुप्त पहरा लगनेवाला है, अतः आप इसी समय (रात के लगभग 8 बजे) दो मील पर उस ग्राम में चले जायें, और वहां से प्रातः उठकर 8 मील पर अमुक स्थान पर चले जायें, तथा साधु वेश में साधारण साधुओं का दिखावा बनाकर भिक्षावृत्ति से दिन काट लें और एक मास के पश्चात् मुझे रात के समय अमुक स्थान पर मिलें, मै उपाध्याय जी के आदेशानुसार उसी समय उस ग्राम मे चला गया, गुरुकुल से जाते समय मैंने 100 रुपये अपन परिवार तक पहुंचाने के लिए उपाध्याय जी को दिये, महान आश्चर्य का विषय है कि उपाध्याय जी स्वयं मेरे परिवार को सान्त्वना देने और आर्थिक सहायता पहुचाने जण्डियाला गुरु पहुंचे, ये वे दिन थे जबकि बाहर का व्यक्ति मेरे बच्चों को देखने तथा पत्नी को ढांढस बंधाने और उनकी सहायता करने का साहस नहीं कर सकता था, क्योंकि वहां पुलिस का कडा पहरा था।

(आर्योदय साप्ताहिक जालन्धर पृ0 5-13, 19 पौष 2022)

श्री पं0 महेशप्रसाद जी मौलवी आलम फाजिल प्राध्यापक हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस भी राष्ट्रीय विचारधारा वाले व्यक्ति थे, उन पर प्रयाग से निकलने वाले उर्दू हिन्दुस्तान के सम्पादक देशभक्त महात्मा नन्दगोपाल जी के प्रभाव के साथ-साथ उससे भी अधिक प्रभाव आर्यसमाज के विचारों का था, ये आर्य समाज के सबसे आरम्भिक उपदेशक विद्यालय 'मुसाफिर महाविद्यालय, आगरा' में अध्यापन कार्य करते थे, एक सफल आर्यसमाजी प्रचारक के रूप में वे प्रसिद्ध थे, वह न केवल स्वदेशी मोटा कपडा स्वयं पहनते थे, बल्कि अपने शिष्यो को भी वही कपड़ा पहनने की प्रेरणा दिया करते थे, राहुल साकृत्यायन के शब्दो में-'भाई साहब (महेश जी) ने हमे आज्ञा दी,

देश की पुकार सुनने के लिए कान दिये, प्राणदान करनेवाले हुतात्मा का अनुसरण करने की प्रवृत्ति दी। महेशप्रसाद जी पहले पुलिस में नौकर थे, देशभक्तों के संग तथा प्रभाव से नौकरी छोड मुसाफिर विद्यालय, आगरा में आ गये थे।'

(जिनका मैं ऋणी हूं, पृ० 93-94 लेखक राहुल साकृत्यायन)

आर्यसमाज के आदिकाल के नेताओं की आरम्भिक पीढी ने स्वतंत्रता की जो भूमिका तैयार की क्या देशवासी तथा इतिहासकार उसे भुला सकेंगे ? आरम्भिक नेताओं में से चौ० रामभजदत्त जी ने स्वाधीनता, स्वदेशी, स्वसंस्कृति एवं स्वभाषा तथा स्वाभिमान की भूमिका तैयार करने तथा कांग्रेस के लिए अनुकूल भूमिका तैयार करने में अपनी बड़ी भारी शक्ति लगाई थी, जिसका विशेष विवरण पाठक समय आने पर पढ सकेंगे, इसी प्रकार अम्बाला के बाबू मुरलीधर तथा दीवान अलखधारी जी ने जो अपूर्व सहयोग दिया, काश कि उसका सर्वांगपूर्ण तथा क्रमशः सारा वृत्तान्त हम उपलब्ध कर पाते, जब सन् 1885 ई० में भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड रिपन काशी पधारे तब वहां के उन पौराणिक पंडितों ने जिस रथ में वह बैठे थे उसमें घोडों के स्थान पर स्वयं जुतकर सारी नगरी में उनका जुलूस निकाला था और इस प्रकार उनका सम्मान कर उनके प्रति अपनी भक्ति, श्रद्धा तथा निष्ठा का परिचय दिया था, दूसरे शब्दों में उनका यह कार्य विदेशी अंग्रेजी राज्य के प्रति अपनी अटूट निष्ठा के रूप में गुलामी मनोवृत्ति का परिचायक था, जब यह समाचार पंजाब पहुचा तब पजाब के आर्यजगत् के नेता ला० साईदास जी को बड़ा भारी दु.ख हुआ, और उन्होंने अपनी व्यथा निम्न शब्दो में प्रकट की ''बनारस के पंडितो ने ऐसा करके बहुत ही बुरा किया, उन्होंने भारत की लाज गवां दी, तथा काशी नगरी की नाक कटा दी है, उनका यह कार्य हमारे ही नहीं बल्कि सारे देश के लिये लज्जाजनक है।''

(माझी जन्मठेपे-लेखक स्वातन्त्रय वीर सावरकर)

पाठकों को यह स्मरण होना चाहिये कि लाला जी स्वयं सरकारी नौकर होते हुये भी प्रतिभाशाली योग्य भारतीय युवकों को सरकारी

नौकरी करने से रोका करते थे, साथ ही स्वयं हाथ के बुने स्वदेशी वस्त्र पहनते थे। यह उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण की बात है जबकि कांग्रेसी नेताओं या भारतीय स्वतंन्त्रता संग्राम के ध्वजावाहकों को स्वदेशी खादी का स्वप्न भी नहीं आया था, जोधपुर नरेश के भाई सरदार प्रतापसिंह जी ने लिखा है – 'दूसरी बात जो मैंने स्वामी जी (दयानन्द सरस्वती) से सीखी वह सादगी और देश का हित थी, जोधपुर का कपड़ा जो टुकडी कहलाता है, मैं अभी तक प्रयोग करता हूं।'

(महर्षि दयानन्द जी ससार की नजरों में – पृ० 122)

यह था महर्षि दयानन्द सरस्वती के द्वारा प्रेरित राष्ट्रवाद की भावना का प्रभाव तथा परिणाम, जिसके कारण एक अंग्रेज भक्त भी स्वदेशी की भावना से प्रभावित था, इसके पश्चात् जालन्धर के रायजादा भक्तराम तथा कन्या महाविद्यालय के संस्थापक ला० देवराज ने इस दिशा मे जो कार्य किये, काश कि हम उनका सविस्तार वर्णन कर पाने मे समर्थ हो पाते, उक्त कन्या महाविद्यालय के द्वारा इस दिशा मे जो भी कार्य हुआ, पाठक उसे संस्थाओ के प्रसंग में पढ़ सकेगे, यह एक ध्रुवसत्य है जिससे कोई निष्पक्ष इतिहासकार मुंह नहीं मोड़ सकता कि पंजाब के जनमन में जो भी स्वतंन्त्रता प्रेम की भावना का उदय हुआ, तथा राष्ट्र की बलिवेदी पर मर मिटने की प्रेरणा मिली उसमें सबसे अधिक सहयोग आर्यसमाज का ही है।

असहयोग आन्दोलन और आर्यसमाज

जलियावाला बाग के कांड के पश्चात् भारत के राजनैतिक क्षेत्र मे स्वतंन्त्रता युद्ध के रूप में जो उबाल आया वह 1921 का असहयोग आन्दोलन था, यद्यपि 1875 में महर्षि दयानन्द सरस्वती के द्वारा इसका बीजारोपण किया जा चुका था, और वही बीज समय पाकर वृक्षाकार हो उठा था, जैसा कि पीछे बताया जा चुका है कि आर्यजगत् के सर्वमान्य नेता स्वामी श्रद्धानन्द जी के इस आन्दोलन में कूदते ही उत्तर भारत का सारा ही आर्यजगत् इसमें कूद पड़ा, शायद

ही कोई आर्यसमाजी इस आंदोलन के प्रभाव से अछूता बचा हो, प्रमाणार्थ निम्न तथ्य देखे–

''सन् 1919–21 में महात्मा गाधी जी के नेतृत्व मे स्वाधीनता के प्रथम अहिंसात्मक संग्राम की तैयारी की जाने लगी, सारे देश में कांग्रेस को नये रूप मे संगठित किया गया, आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता भारी संख्या मे सम्मिलित हुये, उत्तर भारत में तो यह स्थिति थी। जिस नगर, कस्बे या ग्राम में आर्यसमाज अथवा आर्यसमाजी थे वहां ही कांग्रेस की सुदृढ शाखाये स्थापित हो पायीं।''

(आर्य प्रतिनिधि सभा, यू0 पी0 का इतिहास–पृ0 72)

''स्वाधीनता के विगत संग्रामों में मेरठ जिला उत्तर प्रदेश में सबसे आगे रहा, जिले के अन्दर दो हजार से ऊपर सत्याग्रहियों को कारागार की यातनायें सहन करनी पडी हैं, इन दो हज़ार में से अधिकतर आर्यसमाजी थे।'

(पूर्वोक्त पुस्तक पृ0 30)

''देश की स्वाधीनता के संग्राम मे बुलन्दशहर ने बढचढकर बलिदानो का तांता लगाया, इस जिले के कई सौ आर्यसमाजियों ने कारागारों की कठोर यातनायें सहीं।''

(पूर्वोक्त पुस्तक पृ0 43)

''सन् 1921 में स्वराज्य आन्दोलन मे आर्यसमाज के (सोरों जि0 मथुरा) के अनेक सदस्यों ने प्रशंसनीय भाग लिया।''

(पूर्वोक्त पुस्तक पृ0 61)

सन् 1921 के स्वाधीनता संग्राम में जिले (सुलतानपुर) के अनेको आर्यसमाज के कर्मठ कार्यकत्ताओं ने प्रशंसनीय त्याग एवं बलिदान किये।''

(पूर्वोक्त पुस्तक पृ0 125)

इतिहास के इन ज्वलन्त प्रमाणों की उपस्थिति में जो कि आर्यसमाज के प्रखर राष्ट्रवाद के अक्षुण्ण एवं शाश्वत गौरव के परिचायक है जो कि स्थालीपुलाक न्याय से ही लिखे गये हैं, अपनी ओर से इस सम्बन्ध में और अधिक कुछ कहना उचित न होगा, जबकि

देश की स्वाधीनता के लिये ये आर्यवीर ब्रिटिश सरकार की नारकीय जेलों मे अमानवीय यातनाओं के शिकार बन रहे थे तब अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने इन सबकी जांच के लिए पं0 मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता मे एक कमेटी नियुक्त की कि वह देश की सारी जेलों का निरीक्षण करें तथा अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करें, निरीक्षण करने पर उस कमेटी ने जो रिपोर्ट अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सामने प्रस्तुत की उसमें इस प्रसंग के अनुकूल यह बात लिखी थी कि आज महात्मा गांधी के आदेशानुसार स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये जेल के सींखचों में बन्द बैठे जो सत्याग्रही कष्ट भोग रहे हैं, उनमें लगभग 70 प्रतिशत आर्यसमाज की विचारधारा रखनेवाले हैं, साथ ही जिन वकीलों ने अदालतों का बहिष्कार किया उनमें भी सबसे अधिक संख्या आर्यसमाजियों की ही है, पाठकवर्ग! कांग्रेस के एक अद्वितीय तथा उच्चकोटि के नेता द्वारा आर्यसमाज के राष्ट्रीय प्रयासों के सम्बन्ध मे ऐसा प्रशसा से परिपूर्ण प्रमाणपत्र दिया जाना कोई कम महत्वपूर्ण घटना नहीं है यद्यपि गांधी जी के साथ उनकी नीति तथा व्यवहार के कारण आर्यसमाज अन्त तक उनका दुमछल्ला बनने को असहमत हो गया था, जोकि राष्ट्रीय हितों को देखते हुए उचित ही था, तब भी विचारभेद के कारण कोई आर्यसमाजी सभी आन्दोलनों में त्याग तथा बलिदान से कभी पीछे नहीं हटा, कांग्रेस तथा गांधी जी के साथ मतभेद एवं ईमानदार आर्यसमाजियों की घोर उपेक्षा होने के बावजूद भी "आर्यसमाजियों ने न केवल आरम्भिक वर्षों में अपितु अन्तिम सफलता तक स्वाधीनता के संग्राम में आगे बढ़कर महत्त्वपूर्ण कार्य किये।"

(आर्यसमाज का इतिहास भाग 2 पृ0 6)

परन्तु शोक के साथ कहना पड़ता है कि स्वतन्त्र होने पर अपनी सरकार के होते हुये भी जब लेखकों की लेखनियां भारतीय स्वाधीनता संग्राम के कार्यों का उल्लेख करती हैं, तब प्रकरण में आर्यसमाज के इन प्रशंसनीय तथा साहसिक तप, त्याग तथा बलिदानों की चर्चा न कर घोर उपेक्षा की जाती है, 'इससे अधिक

इतिहास की हत्या और क्या होगी ? इसी प्रसंग मे इससे पहले होने वाले विदेशी वस्तु बहिष्कार आन्दोलन के सम्बन्ध में आर्यसमाज के द्वारा किये स्वदेशनिष्ठ कार्यो का उल्लेख करना भी आवश्यक है, यह भावना भी मूलतः ऋषि दयानन्द सरस्वती न ही अपने आदिम सत्यार्थप्रकाश में न्यायालयों के स्टाम्प शुल्क की आलोचना, सरकारी न्यायालयों पर अविश्वास, अपने झगडे न्यायालयों में न ले जाने तथा स्वदेशी वस्त्रों एवं वस्तुओ के प्रयोग के रूप में प्रदान की थी, आर्यसमाज के आरम्भिक नेता स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग धार्मिक कर्त्तव्य समझते थे, "कांग्रेस द्वारा स्वदेशी कार्यक्रम अपनाये जाने से वर्षो पूर्व ही आर्यसमाज के प्रचारक कार्यकर्त्ता इसके प्रचार-प्रसार में जी-जान से जुटे थे।"

(भारतीय राष्ट्रवाद एवं आर्यसमाज आदोलन - ले0 विजेन्द्रपाल पृ0 121)

"आज इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि सन् 1905 में बंगाल का महान् विद्रोह परोक्ष रूप से आर्यसमाज की धार्मिक राष्ट्रीयता का ही परिणाम था, और महर्षि दयानन्द का संगठन राजनीतिक राष्ट्रीयता का प्रथम मूर्त केन्द्रबिन्दु था, उस सम्पूर्ण असहयोग कार्यक्रम की पूर्व सूचना थी जिसने पन्द्रह वर्ष बाद देश को झकझोर दिया था महात्मा गांधी के हाथो स्वदेशी आन्दोलन ब्रिटिश साम्राज्यशाही के विरुद्ध प्रभावशाली हथियार सिद्ध हुआ।"

(पूर्वोक्त पुस्तक पृ0 122)

"उनके (लाला लाजपतराय जी के) आदेश भरे शब्दो ने समूचे पजाब में स्वदेशी कार्यक्रम के प्रति पुनः निष्ठा उत्पन्न कर दी, उनके बहिष्कार आंदोलन की मुख्य प्रवृत्ति तो विदेशी वस्तुओ के ही विरुद्ध थी, परन्तु इसकी व्यापक व्याख्या में इसमे सरकार के विरुद्ध असहयोग, सरकारी नौकरियों, प्रतिष्ठासूचक पदवियो, उपाधियों का बहिष्कार भी शामिल था, आर्यसमाज के नेताओं की मान्यता थी कि बहिष्कार विदेशी शासन की प्रतिष्ठा और हितों के ऊपर एक सीधा आघात होगा.. ..छात्रों को उन्होंने सम्बोधित किया, नौजवानो ! तुम्हारा

खून गर्म है, राष्ट्र का वृक्ष खून मांगता है, राष्ट्ररूपी वृक्ष खून से सींचा जाता है, राष्ट्रीय उत्थान के लिए हमें निज व्यक्तित्व को न्यौछावर कर देना है, दुनिया भर में छात्र लाल अक्षरों से नया इतिहास लिख रहे हैं, वृद्ध वह सब नहीं कर सकते जो नौजवान कर सकते हैं, हमें अपने राष्ट्रीय स्वदेशी आंदोलन का देशप्रेम से श्रृंगार करना है, हम अपने मुख सरकारी भवनों से हटाकर साधारण जनों की झोपडियों की ओर ले जाना चाहते हैं, ... 29-30 सितम्बर, 1906 की आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अधिवेशन में भाषण करते हुए लाला लाजपतराय ने शिक्षित वर्ग से राजनीतिक कार्यों विशेषकर स्वदेशी कार्यक्रम के प्रति अधिक रुचि प्रदर्शित करने का अनुरोध किया ..... 27 मार्च, 1907 को इलाहाबाद मे भाषण करते हुये उन्होंने सरकारी अदालतों के बहिष्कार और स्वदेशी पंचायतो की स्थापना का सुझाव दिया, ... 18 जनवरी, 1908 को कानपुर मे भाषण करते हुये उन्होंने राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक तीनों क्षेत्रो में स्वदेशी पर जोर दिया . स्मरण रहे कि 1905 मे पंजाब नेशनल बैंक के निर्माताओं मे से वह एक थे, उन्होंने लक्ष्मी इंश्योरेन्स कंपनी, अनेक कपडा मिलों तथा प्रिंटिंग प्रेसों की स्थापना में आर्थिक सहयोग किया। लाला जी का कहना था उनके लिये तो स्वदेशी तथा देशभक्ति पर्यायवाची शब्द हैं, ... 21 जुलाई, 1909 मे आर्यसमाजी प्रचारक सुन्दरलाल ने इलाहाबाद मे भाषण देते हुए कहा था विदेशी जो व्यापारी बनकर यहां आये थे आज शासन कर रहे हैं, ये देश की दौलत बटोरकर इंगलैण्ड ढो रहे हैं, भारत का सोना-चांदी आखिर कहां जा रहा है ? सोमनाथ मन्दिर के हीरे जवाहरात कहां गये ? सब विदेशियों द्वारा चुरा लिये गये, उस सबके प्रतिकार के लिए हिन्दुओं को विदेश निर्मित वस्तुओं का बहिष्कार कर अपने देश के उद्योग धन्धो को प्रोत्साहन देना चाहिये, 1906 में कलकत्ता में अपने एक अन्य भाषण में उन्होंने स्वदेशी का अर्थ स्वदेशभक्ति बताया,......बहरामपुर आर्य स्कूल के प्रधानाचार्य रामदत्त ने ब्रिटिश माल के बहिष्कार के लिए देशवासियों को संगठित होने की अपील की, स्वदेशी आन्दोलन की प्रचण्ड लहर बम्बई प्रेसीडेन्सी तक भी

पहुंची, और ब्रह्मचारी वीरेन्द्र नाथ एवं स्वामी आनन्दानन्द ने इसका घनघोर प्रचार किया, अगस्त 1907 में कानपुर के आर्यसमाजियों ने स्वदेशी वस्तुओं की दुकान खोलने का फैसला किया, दिसम्बर 1907 में झेलम के आर्यसमाजी दीनानाथ ने विदेशी माल के बहिष्कार की अपील करते हुये स्वदेशी भण्डार खोला, दिसम्बर 1908 में आर्यमाज लाहौर के वार्षिकोत्सव पर 200 नौजवानों ने विदेशी माल के बहिष्कार और स्वदेशी के प्रचार की शपथ ली, आर्यसमाज की पत्र–पत्रिकाओं ने स्वदेशी आन्दोलन के पक्ष में ज़बरदस्त मुहिम चलाई, लाहौर से प्रकाशित 'दी पंजाबी' ने 7 अगस्त 1907 में स्वदेशी सम्बन्धित एक लेख प्रकाशित किया और बताया कि स्वदेशी एवं बहिष्कार आन्दोलन भारतीय राष्ट्रवाद का रचनात्मक आधार है, 15 सितम्बर, 1905 के 'सद्धर्म प्रचारक' ने स्वदेशी आंदोलन के समर्थन में प्रभावशाली सम्पादकीय लिखा, 21 सितम्बर, 1905 के आर्यगज़ेट ने डी0 ए0 वी0 कालेज, लाहौर के स्नातक छात्र नानकचन्द का लेख प्रकाशित किया, जिसमे स्वदेशी को राजनीतिक अस्त्र के रूप से प्रयोग करने की सलाह दी, 25 दिसम्बर, 1905 को आर्यसन्देश ने आर्यसमाजी नेताओं से स्वदेशी आन्दोलन को सफल बनाने की जोरदार अपील की।

(भारतीय राष्ट्रवाद एवं आर्यसमाज आन्दोलन–ले0 विजेन्द्रपाल पृ0 124–125)

इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखने की बात है कि ऋषि दयानन्द सरस्वती के देशभक्त अनुयायियों ने 1870 में ही विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तथा स्वदेशी वस्त्रों तथा वस्तुओं के उपयोग की दिशा में चिन्तन करना आरम्भ कर दिया था, जबकि गांधी जी अपने शैशवकाल में कहीं पालने मे पडे झूल रहे होंगे, फिर इस विचार के जनक गांधी जी को कहना इतिहास के साथ क्रूर मजाक नहीं तो क्या है ? हां यह कह सकते हैं कि ऋषि दयानन्द के विचार को गांधी जी ने पल्लवित, पुष्पित किया।

THE STATESMAN
August 14, 1879

(Letter to the Editor)
EUROPE GOODS

To
The Editor,

Sir, The present condition of India is one of rapidly increasing impoverishment. In this condition of our country, there is, I think no public question of such high importance and absorbing interest, as the question of the revival of our trades and industries. The action of the members of the Lahore Arya Samaj, founded by the learned Pandit Daya Nand Sarswati should, therefore, be hailed with satisfaction by those who have the interest and welfare of this country at heart. They resolved at a meeting lately held at the premises of the Arya Samaj building to abstain from the use of English Clothes. Henceforward they will stick to the clothes manufactured solely in India. If they can fulfil their promises, and others follow their example a object will be gained. This is the only way by which the influence of Manchester can counteracted in the Indian Market. It is the duty of every right thinking man to discourage Lancashirelinen, as it is superfluous to add that had it not been for the cotton lords of Manchester, who exercise a vast influence over the Indian Minister, the deputation of the British India Association would not have received the sharp rebuke from the Viceroy at the time of the presentation of its Memorial on the subject of cotton duties But the Manchester clothes have taken so deep a root in to the Indian Market, that it will take years to uproot them. Wherever you go, Europe made goods meet the eye They have crept not only into our houses, bed chambers, curtains, cushions, and are used in our very poojahs and shrads. This altered condition of India has been so beautifully described by De Fov. that cannot resist the

temptation of quoting the following passage from this writing. Native for the most part wear Manchester cotton fabrics, children play in the bazaar with Enlgish and French toys, Moonshees write on foreign paper, the sick drink foreign Medicines, native Ladies wear imitation pearls manufactured in Paris, the toper has his foreign manufactured glass out of which he drinks French or British brandy, the sportsman of position shoots with a rifle purchased in the strand and the English speaking native official has been to a born his understanding with stoekings from paisley or Leicester and patent leather boots and shoes made by machinery in Birmingham.' The whole nation, like the Americans should, therefore rise as one man and resolve not to consume English Goods. p.c.

Lahore, August 10, 1879

Note — Inseeds of respectable natives binding themselves thus to wear nothing but the coarse clothes made in India, it would be a wiser course if they took step to improve the quality of Indian manufacturers, for the cotton grown here, with the help of a little American to form a superior mixture, is quite good enough to admit of a much finer quality of cloth being made.

— ED-S

इस उद्धरण का संक्षिप्त सार यही है कि लाहौर के आर्यसमाजी सभासदों ने स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग करने का निश्चय अभिव्यक्त किया है, क्योंकि स्वदेशी वस्तुयें, वस्त्रादि सस्ते, उत्तम तथा अनुकूल हैं इसके विपरीत विदेशी वस्त्रादि वस्तुओं का प्रयोग इसलिए हमें छोडना चाहिए कि वह मंहगे तथा चुंगी आदि लगने के कारण महंगे हैं, साथ ही उससे होनेवाला आर्थिक लाभ विदेशो को जाता है, जिससे हमारा देश निर्धन होता जाता है।

पाठ्क! इस उदाहरण की मूलभावना की जडों तक पहुंचने का

कष्ट करें, उसी काल में जब विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की आंधी चल रही थी, लाहौर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर हरियाणा के विख्यात कवि श्री यशवंतसिंह वर्मा टोहानवी अपनी मंडली के साथ पहुचे। जब नगर-कीर्तन हुआ, तब उन्होंने एक गीत गाया, जिसके पद कुछ इस प्रकार के थे, कि – 'उसके जीवन को धिक्कार जिसको पगड़ी दे सरकार।' गले में माधुर्य तथा जोश था, हृदय मे देशप्रेम का तूफान, आवाज़ सुरीली तथा जोशीली थी, जब ढोलक और परिणामस्वरूप उनको सुनकर चिमटे पर गाते थे तो समां बन्ध जाता था अनेक सज्जनो ने तो अपनी-अपनी टोपियां तथा टोप उतारकर फैक दिये, एवं भरी सभा में ही स्वदेशी वस्त्रों के धारण का व्रत ग्रहण किया था, इस प्रसंग को छोड़ अब हम कुछ और आर्य वीरों का वर्णन करेंगे।

आर्यसमाज के विख्यात महारथी श्री पं0 मनसाराम जी वैदिक तोप जिन्होंने जीवनभर आर्यसमाज का प्रचार किया, अनेक शास्त्रार्थ किये, उन्होंने भी इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया। पं0 मनसाराम जी जैसे तेजस्वी व्यक्ति का स्वतंत्रता के आन्दोलन में आगे आना स्वाभाविक ही था, वह कई बार देशहित में बन्दी बनाये गये, 1922 ई0 मे गांधीजी ने पहला सत्याग्रह चलाया, तो हमारे चरितनायक भी जेल गये, हिसार जेल में आपको रखा गया, क्रांतिकारी दयानन्द के मेधावी वीर शिष्य ने तब स्वतंत्रता के इस युद्ध में एक बड़ी साहसिक बात की, इसे हम अपने स्वाधीनता संग्राम की एक स्वर्णिम घटना कहे तो अत्युक्ति न होगी। पंडित जी को हिसार में मजिस्ट्रेट के सामने वक्तव्य के लिये लाया गया, आपने अपने नयनों पर कपड़ा डाल लिया, इसका कारण पूछा गया तो आपने कहा जो व्यक्ति चांदी के कुछ श्वेत टुकड़ों (तब रुपया चांदी का होता था) के लिए अपने-आप को बेच दे, मैं उसकी आकृति भी नहीं देखना चाहता, स्पष्ट है कि यह न्यायालय का अपमान था, इसलिए सत्याग्रह के साथ एक और अभियोग (Contempt of Court) न्यायालय के अपमान का भी

चलाया गया, यह अभियोग बहुत लम्बा चला, पंडित जी खादी के धोती-कुर्ते व गांधी टोपी में एक अच्छे नेता जंचते थे, उन्होंने स्वदेशी का व्रत लिया और दूसरों को भी सदा स्वदेशी की प्रेरणा देते थे।

(एक मनस्वी जीवन-ले0 प्रो0 राजेन्द्र जिज्ञासु पृ0 32)

ये ही पंडित जी 1941 में भी देश की स्वाधीनता के लिए सक्रिय होकर जेल जाने का निश्चय किये हुये थे, 1922 में हिसार के अंग्रेज डी0 सी0 ने इनकी पैतृक सम्पत्ति को सरकारी अधिकार में ले लिया था, ऐसे थे ये ऋषि दयानन्द के दीवाने जिन्होंने देशप्रेम की धुन में अपने को फकीर बना लिया था, आज की पीढ़ियां उनके त्याग तथा देशनिष्ठा का क्या अंदाज़ा लगा पायेगी? इन्हीं आर्यपुरुषों में ऊना (हिमाचल) में जन्मे बाबा लक्ष्मणदास आर्य भी आते हैं, ये प्रसिद्ध क्रान्तिकारी सरदार अजीतसिंह के सहपाठी रहे हैं, देश की स्वाधीनता हेतु इनके बच्चे भी इनके साथ ही जेल में रहे हैं, उस भयानक काल में जब तिरगा हाथ में रखनेवाला राजद्रोही समझा जाता था, तब निरन्तर 68 वर्ष तक इनके घर पर तिरंगा झंडा फहराता रहा, इन्होंने विदेशी वस्त्रों की होलियां भी जलाई थीं, अनेक विधर्मियों की इन्होंने शुद्धियां की थी, इनकी धर्मपत्नी श्रीमती दुर्गाबाई ने स्वयं अपने हाथ से कती खादी पहनने का व्रत लिया था, सदा अपने पति की अनुव्रता रही थी, देशभक्त इन्हीं आर्यवीरों में हम हिसार के देशभक्त महाशय लक्ष्मीदास बाद में स्व0 स्वामी देवानन्दजी, संस्थापक गुरुकुल आर्यनगर (कुरडी) को भी पाते हैं, इन्होने देश की स्वाधीनता के लिये न जाने कितने कष्ट भोगे, कितनी ही बार जेल-यात्रायें कीं, आप 1921 से 1932 तक कांग्रेस के संगठन मे सम्मिलित होकर प्रत्येक आन्दोलन में जेल गये, 1942 के अंग्रेजो भारत छोडो आन्दोलन मे बाकायदा घोषणा करके सत्याग्रह करने का सौभाग्य आपको ही मिला, जिसमें आपको एक वर्ष की कैद की सज़ा मिली थी, आप ऋषि दयानन्द की विचारधारा से प्रभावित थे।

(अमरगाथा लेखक पतराम वर्मा-पृष्ठ 165-166)

हिसार के इन्हीं अमर सेनानियों में पूज्य स्वामी बेधड़कजी महाराज भी आते हैं, इन्होंने 1921 से 1947 तक अनेक बार

जेल-यात्रायें की थीं, देशभक्ति के अपराध में पुलिस ने आपको अमानवीय यातनायें दी थी, मलस्थान में लाठियां तक डाल दी थीं, लालूराम नामक एक थानेदार ने आपको एक बार बन्दी बनाया, आपने उसे कहा कि तू हमारा भाई होकर भी हमें ही पकड़ता है, तेरा नाश होगा, और कुछ दिन के बाद ही उसे बड़ी भारी शारीरिक यातनायें सहनी पड़ीं, एक बार पुलिस ने अपनी जीप के साथ बांधकर उसे तेज रफ्तार से चला दिया जिससे कि आप दूर तक घिसटते गये थे, इन्हीं सज्जनों में सेठ महेशजी भी थे, जोकि प्रसिद्ध देशभक्त, पंजाबी अखबार के सम्पादक सेठ जशवन्तराय के सुपुत्र थे, इन्होंने लाला लाजपतराय के द्वारा स्थापित नेशनल कालेज में शिक्षा प्राप्त की थी, जो कि उन्होने सरकारी शिक्षण-संस्थाओं के विरोध में राष्ट्रीय शिक्षा सस्था के प्रतीक रूप में चालू किया था, ये अनेक बार देश की स्वाधीनता के कारावास की यातनायें भुगतते रहे, ये बडे ही स्पष्ट तथा निर्भीक वक्ता थे, स्वाधीनता के बाद इन्हीं ने हरियाणा में हिन्दी के प्रचार तथा उत्थान के लिए बहुत अधिक कार्य किया, हिसार के ही श्री परमानन्द जी आर्य भी इन कार्यो में प्रमुख रहे हैं, इनका जन्म मुलतान में हुआ था, सन् 1931 में अमर शहीद सरदार भगतसिंह आदि के फांसी के समय आपको बडी भारी प्रेरणा मिली जिससे कि आप कांग्रेस में सम्मिलित होकर प्रत्येक आंदोलन में जेल जाते रहे, 1940 में व्यक्तिगत सत्याग्रह में भी आपका प्रमुख भाग रहा, ये बड़े ही सज्जन तथा सौम्य स्वभाव के व्यक्ति हैं, हिसार के श्री बनवारीलाल जी 'आज़ाद' कवि भी इस दृष्टि से पीछे नहीं रहे है, ये जहां जत्थे लेकर स्वाधीनता प्राप्ति के लिये जेल जाते रहे हैं वहां अपनी ओजस्वी कविताओं के द्वारा कांग्रेस के मंचों से युवकों को तप, त्याग तथा बलिदान की प्रेरणा देते रहे हैं, इनकी कवितायें एक बार तो मुर्दो की धमनियों में भी दमदमाते रक्त का सचार कर देती थीं, हिसार के इन्हीं स्वतत्रंतासेनानियों में हरदयाल नम्बरदार भी आर्यसमाजी थे, इनका जन्म लाडवा, जि0 हिसार में हुआ, ये साधारण हिन्दी सीखकर अपना पैतृक व्यवसाय खेती करते थे, परन्तु

ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रंथ पढकर स्वाधीनता की ओर इनका झुकाव हुआ, उसके साथ ही आर्यसमाज के प्रचार का कार्य भी करते रहे, 1924 में महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस मे सम्मिलित हुये, अनेक जेल यात्राये कीं, 1940 मे व्यक्तिगत सत्याग्रह करके अपने गांव में ही गिरफ्तार हुये, कड़ी सज़ा और जुर्माना हुआ, इन्हीं देशभक्तों में हिसार के प्रसिद्ध देशभक्त दादा पतराम शर्मा भी हैं, इनका जन्म रावलवास, जि0 हिसार में हुआ, ये साधारण पढे-लिखे थे, परन्तु आर्यसमाज के सम्पर्क से स्वाधीनता की प्रबल प्रेरणा इनको प्राप्त हुई, 1920 में जब महात्मा गांधी भिवानी पधारे तब आप अपने गांव से पैदल 50 मील चलकर उनके दर्शन करने पंहुचे थे, बस तभी से आप स्वाधीनता के कार्यो में जुट गये, तभी से निरन्तर जेलयात्रायें तथा यातनायें भोगने का क्रम भी चालू हो गया, आप प्रत्येक आंदोलन में जेल गये, जुर्माने सहे, परन्तु अपने मार्ग से कभी विचलित नहीं हुये, इन्हीं देशभक्त आर्य सपूतों में दीवान पोहलीराम पर किसको गर्व न होगा, आनन्दपुर साहब में जन्मा यह शूरमा, जब आर्य हाईस्कूल, होशियारपुर में पढता था तब वहां के मुख्याध्यापक श्री लाला देवीचन्द्र जो कि इनको देशभक्तों की जीवन गाथा सुनाकर इसमे देशभक्ति के भाव भरा करते थे, उनकी ही प्रेरणा से इनको देश से प्यार की लगन लगी, उसके बाद तो इन्होंने अपने को इसी कार्य मे खपा दिया, बाबा गुरुदत्तसिंह के प्रसिद्ध 'कोमागाटा मारु' जहाज़ में आप भी थे, उसके पश्चात् कुछ समय तक सरकारी नौकरी करते रहे, परन्तु महात्मा गांधी ने इनको जब कहा कि आप कोमागाटामारु के सिपाही होकर भी सरकार की गुलामी करते हो ? आपने तुरन्त ही नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और देशभक्त क्रांतिकारियों में सम्मिलित हो गये।

आपकी बग़ावती गतिविधियों के कारण ही आपको आपके घर आनन्दपुर में 1914 से 1918 तक नज़रबंद रखा गया, उसके पश्चात् तो आप प्रत्येक आंदोलन में जेल जाते और विदेशी सरकार के जुर्माने सहते रहे, इन्हीं वीरों की बदौलत देश आज़ादी की सांस

ले सका, पाठक निम्न उदाहरण भी ध्यान से पढ़ने की कृपा करें, 'आर्य समाज के द्वारा जहां लोग धर्म का ज्ञान प्राप्त करते थे वहां देशप्रेम, राष्ट्रीयता और स्वदेशी की भावना भी उससे प्रचारित की जाती थी, इसलिये अनेक आर्यसमाजों में लाला लाजपतराय और लोकमान्य तिलक सदृश राष्ट्रीय नेताओं के चित्र भी लगाये जाया करते थे, सन् 1913 मे कांगड़ा का डिप्टी कमिश्नर जब डेरा गोपीपुर आया तो आर्यसमाज भवन में लगे इन चित्रों को देखकर भड़क गया, उसने इन्हें उतरवा दिया और पुस्तकालय को बन्द कर पुलिस का पहरा बिठ्वा दिया, पुस्तकालय की तलाशी ली गई, और आर्यसमाज के सदस्यो को डराया-धमकाया गया, लाला किशोरीलाल को हिरासत में ले लिया गया और जिला बोर्ड के स्कूल के हैडमास्टर को केवल इस कारण मुअत्तल कर दिया गया क्योंकि वह आर्यसमाजी थे।'

(आर्यसमाज का इतिहास – ले० डॉ० सत्यकेतु जी विद्यालंकार भाग 3, पृ० 135)

हिसार के प्रसिद्ध वकील, विख्यात आर्यसमाजी नेता तथा अनेक आर्यसंस्थाओं के अध्यक्ष एवं आर्यसमाज, हिसार के पूर्व प्रधान स्व० रामकृष्ण जी बख्शी भी 1921 से 1932 तक स्वाधीनता के आंदोलन के साथ सम्बन्धित रहे हैं, इस प्रंसग में इन्होंने जेलयात्रायें भी कीं, इनकी स्थानबद्धता भी हुई, स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् तो ये सर्वात्मना आर्यसमाज के ही कार्यो में संलग्न रहे थे, इसी प्रसंग में हम एक दो देवियों का भी वर्णन आवश्यक समझते हैं, जिन्होंने आर्यसमाज से प्रेरणा लेकर देश की स्वाधीनता के लिए कार्य किये हैं।

ये देवियां

इन देवियों में श्रीमती शामदेवी का नाम अपना स्थान रखता है, वे 1920 से 1934 तक अमृतसर में राष्ट्रीय गतिविधियों में बढ़ चढ़कर भाग लेती रही हैं, 1890 में इनका जन्म हुआ, बाद में एक आर्यसमाजी विचार रखनेवाली पड़ोसन की प्रेरणा व सहयोग से

पंजाब विश्वविद्यालय की 'प्रभाकर' तथा 'शास्त्री उत्तीर्ण' की, वहां ये 1921 से आर्यसमाज के माध्यम से कार्यरत रहीं, इनके नेतृत्व में केसरिया साडी पहने तथा भगवे झण्डे लिये देवियां जुलूस बाजारो से निकालती थीं, इनकी अपील पर लोग इनकी झोली को पैसो तथा आभूषणों से भर देते थे, 1920 से 1940 तक प्रत्येक आंदोलन मे जेल जाती रहीं। ऋषि दयानन्द तथा महात्मा गांधी का इन पर विशेष प्रभाव था, ये अपने एकमात्र छोटे बच्चे को पडोसियों के यहां छोड़कर प्रात: 4 बजे से रात्रि के 10 बजे तक जुलूसों मे व्यस्त रहती थीं।

('पंजाब केसरी' दैनिक 7-4-85 का मुख पृष्ठ)

इसी प्रसंग में श्रीमती पुष्पावती गुजराल जी को कौन भूल सकता है? जिन्होने देश के लिए अनेक विपदायें सहन की हैं, इन्हीं के शब्दो में 'मै पहले आर्यसमाज की सदस्या रही, वहीं से मुख्य प्रेरणा मिली, कुछ दिनों लाला लाजपतराय, महात्मा गांधी और पं0 नेहरू के भाषणो से अभिभूत हो जाती थी, 1930 में जब मदनमोहन मालवीय ने रावी के किनारे औरतों को संगठित कर देश सेवा की प्रेरणा दी थी, तब इस राह की ओर मेरे कदम बढ गये, इस राह में इन्हें अनेक दुश्वारियां भी झेलनी पडीं, जेलयात्रा भी करनी पडी, इससे सम्बन्धित श्रीमती गुजराल ने एक घटना सुनाई-1929 मे लाहौर में जो सैशन हो रहा था, वहां से उठकर मैं भगतसिंह जी का केस सुनने को जेल गई, वहां तलाशी में मुझसे रामलुभाया की लिखी 'घोडी' मिलने पर दो घंटे के लिए मुझे जेल मे रखा गया, 1940 में नौ महीने के लिए लाहौर जेल में रही, 1942 मे फिर नौ महीने के लिए सपरिवार 'भारत छोडो आन्दोलन' के तहत जेल गई, आजकल ये नकोदर रोड, जालन्धर में स्थित 'नारी निकेतन' का संचालन कर रही हैं।

('पंजाब केसरी' दैनिक, जालन्धर 19-4-1982 का मुखपृष्ठ)

इस प्रसंग में श्रीमती विद्यावती जी शारदा को भूल जाना एक महती कृतघ्नता होगी, ये सहारनपुर में स्थित टोपरी नामक ग्राम में प्रखर आर्यसमाजी श्री चौ0 न्यामतसिंह के यहां जन्मी थीं, इनका

विवाह भी प्रसिद्ध देशभक्त क्रांतिकारी श्री गयाप्रसाद शुक्ल के साथ हुआ, ये अपने पति का अनुकरण करती हुई अनेक बार देश के लिए जेलो में गई, इतना ही नहीं बल्कि अपने एक मात्र पुत्र (श्री भारतेन्द्र जी, जनज्ञान पत्र के सम्पादक) को भी गुरुकुल में पढाया तथा स्नातक होते समय उसे आदेश किया कि बेटा अंग्रेज सरकार की नौकरी नहीं करनी है, चाहे भूखा ही क्यो न मरना पडे, भारत की इन्हीं माताओं, बहिनो के त्याग, तप तथा बलिदानो की कृपा से ही तो हम आज स्वतन्त्र हुये हैं।

उत्तर प्रदेश के देशभक्त आर्यवीर

स्वाधीनता के क्षेत्र में उतरनेवाले आर्यसमाजियों मे उत्तर प्रदेश के आर्यवीरो की सख्या कम नहीं है, इस प्रदेश के कई कार्यकर्ताओं मे उत्तर प्रदेश के भू0 पू0 मंत्री श्री अलगूराय शास्त्री का नाम प्रमुख है, 'आप गुरुकूल डोरली के संस्थापकों मे प्रमुख थे, लोकसेवा संघ के आजीवन सदस्य रहे, और आश्रम मेरठ का विशेष संचालन किया, अनेक बार ब्रिटिश कारागारों की शोभा बढ़ाई सन् 1942 में भारत से बाहर जाते हुये सीमान्त प्रदेश में पकड़े गये, और खतरनाक क्रांतिकारी और संगठनकर्त्ता बताकर आपको गृहसचिव नेहरू ने कारागार में रखा।'

(आर्य प्रतिनिधि सभा यू0 पी0 का इतिहास पृ0 182)

इसी कोटि में भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री चो0 चरणसिंह का नाम भी आता है, राजनैतिक कार्यकर्त्ता तथा प्रचारक के रूप मे राष्ट्र के आप आर्यसमाज की ही देन हैं, 'मेरठ जिले के स्वतन्त्रता आंदोलन में आपका विशेष हाथ रहा है, अनेक बार आपने ब्रिटिश नौकरशाही को जेलों की यात्रा की है,.... गुरुकुल डोरली की आपने अनेक वर्षो तक प्रधानता की, आपने आर्यकुमार महासम्मलेन की भी अध्यक्षता की, भारतवर्ष-आर्यकुमार परिषद् के आप प्रधान भी रह चुके हैं।'

(पूर्वोक्त पुस्तक पृ0 187)

देशभक्त आर्यवीरो की इसी श्रेणी मे उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्ता भी हैं, आप आरम्भ से ही आर्यसमाजी रहे हैं, 'लखीमपुर मे आप आर्यकुमार सभा के मत्री रहे.. आप यहा (लखनऊ मे) गणेशगंज आर्यकुमार सभा के कर्मठ कार्यकर्त्ता रहे हैं, सन् 1916 के प्रान्तीय आर्यकुमार सम्मेलन को सफल बनाने में आपका विशेष हाथ था, आपने स्वाधीनता संग्राम मे भाग लिया और ब्रिटिश सरकार की जेलो की यात्रा की।'

(पूर्वोक्त पुस्तक, पृ0 193-194)

'आर्यसमाज की प्रेरणा प्राप्त कर स्वाधीनता के क्षेत्र में कूदनेवाले ऐसे लोगो की सूची मे भारत के भूतपूर्व गृहमंत्री पं0 गोविन्द वल्लभ पन्त को भी सम्मिलित पाते हैं, आप अपने यौवनकाल में आर्यसमाज, नैनीताल के विशेष कार्यकर्त्ताओं में गिने जाते थे, सन् 1922 ई0 में नैनीताल की पहली पुत्री पाठशाला, आर्यसमाज द्वारा ही स्थापित की गई थी, पाठशाला के संरक्षक स्व0 पं0 गोविन्द वल्लभ पन्त जी थे। (पूर्वोक्त पुस्तक, पृ0 6)

इनके साथ ही भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्व0 लालबहादुर शास्त्री जी भी अपने आरम्भिक काल में आर्यसमाज से सम्बन्धित रहे हैं, कुछ समय तक आप आर्यसमाज की ओर से शुद्धि के क्षेत्र में कार्य करते रहे हैं, राजनीतिक क्षेत्र मे तो आप पंजाब केसरी लाला लाजपतराय द्वारा स्थापित लोकसेवा संघ के आजीवन सदस्य बनकर उनके निर्देशन मे ही आगे बढ़े हैं, देशभक्त आर्यो की इसी नामावली मे गढवाल के देवता श्री जयानन्द जी भारती को भी सम्मिलित हुआ पाते हैं, भारती जी आर्यसमाज से ही प्रेरित होकर ब्रिटिश नौकरशाही के विरूद्ध संघर्ष करते हुए अनेक बार जेल गये हैं, बीच-बीच में आप गढवाल क्षेत्र में अछूतों की डोलापाल की समस्या को लेकर संघर्ष करते रहे हैं, उसी के परिणामस्वरूप आप वहां के निर्धन वर्ग तथा तथाकथित अस्पृश्य हमारी भाषा में दलित समझी जानेवाली जातियों में देवतुल्य पूजे जाते रहे हैं, देश की स्वाधीनता के लिए अपना सर्वस्व होमने वाले इन्हीं आर्यवीरों की कोटि में भारत के भू0 पू0

प्रतिरक्षामत्री एवं पुर्नवासमंत्री श्री महावीर त्यागी का नाम भी अंकित मिलता है, उन्हीं के शब्दो मे यह सत्य पढ़िये 'मैं बचपन से ही आर्यसमाजी था, घर पर यज्ञोपवीत और धोती, दो ही कपड़े पहनता था, आमतौर पर गर्मियों में।'

(वे क्रांति के दिन – ले0 महावीर त्यागी पृ0 45)

दिल्ली की आर्य केन्द्रीय सभा ने 1964 ई0 में दीपावली पर महर्षि दयानन्द निर्वाणोत्सव में अपने विचार व्यक्त करने के लिए श्री त्यागी जी को निमन्त्रित किया था, वहां आपने जो कहा उसका संक्षिप्त सारांश निम्न है, पुर्नवासमंत्री श्री महावीर त्यागी और उपविदेशमत्री श्री राजा दिनेशसिंह जी ने भी श्रद्धांजलि समर्पित की, श्री महावीर त्यागी ने कहा कि उन्होंने बचपन से ही आर्यसमाज की शिक्षा से उत्साह पाया था और उसी से प्रेरित होकर कांग्रेस में सम्मिलित हुये थे, खिलाफत आंदोलन के समय आगरा में 82% पुरुष तथा 92% स्त्रियां आर्यसमाजी थीं, महर्षि ने स्वराज्य का बीज बोया।

(दैनिक हिन्दी हिन्दुस्तान, दिल्ली 5-11-64 पृ0 3)

यहां उत्तर प्रदेश के उन नेताओं का वर्णन किया गया है, जिनकी राष्ट्रीय भावनाओं का मूलप्रेरक आर्यसमाज रहा है, जो उस क्षेत्र में जाकर आर्यसमाज से प्रत्यक्ष सम्बन्धित नहीं रहे, इनके अतिरिक्त जिनका आर्यसमाज से यावज्जीवन सम्बन्ध रहा है, उनका वर्णन आगे चलकर किया जायेगा।

सन् 1931 का नमक कानून भंग सत्याग्रह और आर्यसमाज

असहयोग आन्दोलन के पश्चात् उस काल मे महात्मा गांधी के आह्वान पर जो आन्दोलन आरम्भ हुआ उसे नमक कानून तोड़ सत्याग्रह कहा जाता है, वैसे तो इसका वैचारिक बीज उस समय से 55 वर्ष पहले ही महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस क्षेत्र में वपन कर दिया था जैसा कि पाठक पहले पढ़ चुके हैं, परन्तु महात्मा गांधी के प्रयत्न पुरुषार्थ, त्याग और बलिदान से सिंचकर यह समय आने पर

पल्लवित तथा पुष्पित हुआ, पूर्व के आन्दोलनों की भांति आर्यसमाजी कार्यकर्त्ताओं ने इसमें भी बढ-चढ़कर भाग लिया।

'इन संग्रामो में आर्यसमाजियों का सर्वाधिक हाथ था, इन स्वाधीनता समरों मे लाखों की संख्या में नर-नारियों एवं युवक-युवतियों ने गोली-डंडों की मार और कारागार की यातनायें सहीं, यदि समूचे उत्तर प्रदेश में दो लाख नर-नारियों में ब्रिटिश नौकरशाही की जेलों को सुशोभित किया तो इसमें आर्यसमाज के कार्यकर्त्ताओं की संख्या 50 हज़ार तो निर्विवाद थी।'

(आर्य प्रतिनिधि सभा यू0 पी0 का इतिहास, पृ0 72)

''आर्यसमाज मेरठ शहर की अनेक सदस्याओं यथा श्रीमती विद्यावती जी, सत्यवती जी, भूतपूर्व एम0 एल0 ए0 श्रीमती बस्सो देवी जी, श्री प्रकाशवती जी, श्रीमती शकुन्तला जी उपमंत्री आदि ने राष्ट्रीय आन्दोलनों में भी विशेष भाग लिया।

(पूर्वोक्त पुस्तक, पृ0 31)

''देश के स्वाधीनता संग्राम में श्रीमती रामकली देवी जी (सदस्या आर्य स्त्री समाज, सदर मेरठ) ने सन् 1930 में अपने तीन नन्हे बालकों को लेकर कपडों की दुकान पर धरना दिया और सत्याग्रह किया, कारागार की यात्रा की, श्रीमती शोभावती देवी, श्रीमती अम्बा देवी जी ने जो आजकल हलद्वानी मे है स्वाधीनता आन्दोलन में आगे बढकर काम किया।''

(पूर्वोक्त पुस्तक, पृ0 33)

''आर्यसमाज के कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री शादीराम जी ने स्वतन्त्रता आन्दोलन मे अग्रसर होकर कार्य किया।

(पूर्वोक्त पुस्तक, पृ0 34)

''सन् 1931 ई0 में इसी समाज (हापुड़) में प0 शिवदयालु जी की अध्यक्षता में विराट् तहसील राजनैतिक सम्मेलन किया गया और नमक सत्याग्रह का श्रीगणेश किया गया तथा स्वाधीनता संग्राम मे आर्यसमाज, हापुड के कार्यकर्त्ताओं का विशेष योगदान रहा।

(पूर्वोक्त पुस्तक, पृ0 37)

''स्वराज्य के आन्दोलन में इसी प्रकार हज़ारो व्यक्ति आर्यसमाज को छोडकर कांग्रेस में मिल गये और आर्यसमाज को भूलकर उसी मशीन के पुर्जे बन गए, वैद्य प0 शेरसिंह जी फरमाते थे की जिस जेल में मैं था उसमें गणना कि गई तो उसमे 80 प्रतिशत आर्यसमाजी थे, लगभग यही हाल दूसरी जेलों का भी था।''

(भारतीय लोकसमिति के प्रथम अधिवेशन दिल्ली के अध्यक्ष-पद से दिया गया, शास्त्रार्थ महारथी पं. रामचन्द्र देहलवी का अध्यक्षीय भाषण)

पंजाब प्रान्त में इस आन्दोलन की बागडोर आर्यसमाज के लौह-पुरुष स्वतन्त्रानन्द जी के हाथों में थी, उन्होंने अपने कुशल मस्तिष्क से इस आन्दोलन का अपने क्षेत्र मे ऐसी चातुर्यता तथा सुगुप्तता के साथ संचालन किया कि सरकार के गुप्तचर भी अन्त तक निश्चयपूर्वक पता नहीं लगा सके कि सत्याग्रहियों की जत्थेबंदी के सिलसिले को जोडने तथा निरन्तर व्यवस्थापूर्वक चलानेवाला कौन-सा चतुर मस्तिष्क है ? उसी काल में आर्य प्रतिनिधि सभा के गुरुदत्त भवन में स्थित दयानन्द उपदेशक विद्यालय के छात्रों ने भी सत्याग्रह किया था, उस समय लाहौर में एक सार्वजनिक सभा हुई जिसमें भाषण करते हुये, स्वामी जी महाराज ने सरकार की ओर संकेत करते हुये कहा था कि - ''सरकार हमारे सत्याग्रहियों से जेल में वही व्यवहार करे जैसा कि एक सरकार अपने राजनैतिक बन्दियो से किया करती है।''

पाठ्क ज़रा इस वाक्य की गहराई में उतरने का प्रयत्न करें। इस सत्याग्रह के दौरान भी अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने सत्याग्रहियों के निरीक्षण के लिए मौलाना हसरत मोहानी की अध्यक्षता में एक सर्वे कमेटी बनाई थी, जो सारी जेलों का निरीक्षण कर लौटने पर कांग्रेस कमेटी के सामने उन्होने अपनी जो रिपोर्ट प्रस्तुत की उसमें आर्यसमाजियों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा था उसका सारांश यह है कि - ''आज महात्मा गांधी जी के आदेश पर देश की स्वाधीनता के लिए ब्रिटिश सरकार की जेलों में बन्द होकर

जो लोग कठोर कष्ट भोग रहे हैं, उनमें लगभग 80 प्रतिशत आर्यसमाजी विचारधारा रखने वाले हैं।

एक विधर्मी पुरुष के द्वारा आर्यसमाज के सम्बन्ध में इतना स्तुत्य प्रमाणपत्र दिया जाना स्वाधीनता संग्राम तथा आर्यसमाज के लिए एक महान् गौरव का विषय नहीं है ? साथ-ही यह आर्यसमाज को साम्प्रदायिक, फूट डालनेवाला तथा झगडालू आदि निन्दित विशेषणों से सम्बोधित कर कोसनेवालों के तत्त्वज्ञान, तथाकथित विवेक एवं नैतिकता को एक खुली प्रखर चुनौती भी है।

स्वाधीनता के ये वीर पुजारी

इस स्थल पर उन आर्यवीरों का उल्लेख कर देना भी आवश्यक है जो राजनैतिक विचारो के साथ आर्यसमाज से धार्मिक विचार भी ग्रहण कर स्वाधीनता संग्राम मे पूर्ण योगदान देते रहे, तथा जीवनपर्यन्त आर्यसमाज से वैचारिक रूप से जुडे रहे ऐसे देशभक्त आर्यवीरो में हम आर्यजगत् के कर्मठ सन्यासी श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज, भूतपूर्व संसद् सदस्य तथा संस्थापक एवं कुलपति गुरुकुल वेद विद्यालय, घरौण्डा (करनाल) को अग्रणी देखते है, स्वाधीनता की भावना से ही आपने अपने अध्ययनकाल में ही विशुद्ध स्वदेशी खादी के वस्त्र धारण करने का व्रत लिया था, जो कि आज भी यथापूर्व चालू है, जब असहयोग आंदोलन आरम्भ हुआ, तब आप बनारस में अपने अध्ययन को बीच में ही छोड़कर आंदोलन में कूद पड़े, जिसके परिणामस्वरूप एक लंबे समय तक जेल भुगतकर रिहा हुये, नमक कानूनतोड़ सत्याग्रह के समय जब आप ऋषिकेश मे जागृति उत्पन्न कर उस आंदोलन को मज़बूत बना रहे थे, उसी समय आपके वारंट जारी हो गये, तब आप भूमिगत होकर कार्य करने लगे, उस समय आप गांवों में घूमते हुये नारा लगाया करते थे, 'नमक कानून तोड़ दिया अंग्रेज का सिर फोड दिया' अंत में आपको भयानक जानकर गिरफ्तार कर देहरादून की जेल में बन्द कर दिया, वहां आपको बड़ी कठोर सज़ा के लिए चक्कियां चलाना, पत्थर तोडना,

मल मूत्र के टोकरे सिर पर उठा-उठाकर फैंकना आदि अनेक असहाय कष्ट दिये गये, उसी दौरान आप रेल में सवार होकर कहीं जा रहे थे, आपने रेल में बैठे हुये ही 'महात्मा गांधी की जय' का नारा लगाया, जिसे सुनकर ट्रेन का ड्राइवर तथा गार्ड दोनों आपके पास आये और आपको बाजुओ से पकडकर ट्रेन से नीचे उतार दिया और कहा कि जा महात्मा गांधी की रेल में ही सवारी करना, इसमें सवारी करने का तेरा कोई अधिकार नहीं हैं, ज्येष्ठ और अषाढ मास की भयंकर गर्मी बरस रही थी, घोर जंगल के बीच इनको उतार दिया जाता है, जहां मीलों तक पीने को पानी तथा बैठने को ठंडी छाया भी नसीब न थी, पाठक अनुमान कर सकते हैं कि स्वामी जी उन कष्टों को पार करते हुए कैसे अपने गन्तव्य तक पहुंचे होंगे? परन्तु दुःख है कि स्वाधीनता के लिए असीम कष्ट सहनेवाले इस आर्यवीर का नाम कांग्रेस के किसी भी दफ्तर के किसी रजिस्टर में अंकित नहीं है, अरे! कैसी विडम्बना है कि देशरूपी बगीचे को सींचने के लिए जब खून की जरूरत पडी तब खून आर्यसमाजियो ने दिया, और जब फल खाने का समय आया तो ये दूध पीने वाले मजनू कहते हैं कि अब तुम्हारा कोई मतलब नहीं, क्या आर्यसमाजी हो जाने मात्र से ही इन लोगो की बहुमूल्य देशभक्ति का कोई भी मूल्य नहीं रह जाता? क्या इनके गुरुकुल का जो देश की आजादी के लिए लड़नेवालों के लिए अड्डा और विश्वस्त आश्रयस्थल था का नाम भी स्वाधीनता के किसी ग्रंथ मे है? देशभक्त आर्यों की इसी सूची में हम आर्यजगत् के विख्यात विद्वान गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, (सहारनपुर) के कुलपति स्व0 पं0 नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ को मुख्यरुपेण देख पाते है, स्वाधीनता का कार्य करने के कारण ही शास्त्री जी को उत्तरप्रदेश का प्रत्येक निवासी जानता है, आपने समय-समय पर होने वाले राष्ट्रीय आंदोलनों में सक्रिय भाग लिया, आपने लगभग पांच बार विदेशी सरकार के समय जेल काटकर अपनी देशभक्ति का परिचय दिया था, राजनैतिक दृष्टि से आप लोकमान्य तिलक को अपना गुरु मानते थे, इन्हीं सेवाओं के कारण आप देश के स्वतन्त्र होने पर कांग्रेस

दल की ओर से उत्तरप्रदेश विधानसभा के पांच वर्ष तक सदस्य भी रहे, आर्यसमाज की इन्हीं विभूतियों में हम सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि ा सभा के पूर्व प्रधान स्व0 स्वामी अभेदानन्द जी महाराज (पूर्व नाम पं0 वेदव्रत) को भी खड़ा देखते हैं, आप भारत के पूर्व राष्ट्रपति डा0 राजेन्द्रप्रसाद जी के परमस्नेही तथा निकट मित्रों मे से थे।

बिहार प्रदेश में गाधीवादी दृष्टिकोण तथा तौर-तरीके से स्वाधीनता के लिये जो जागृति हुई, उसका अधिकांश में श्रेय आपको ही जाता है, आपने न जाने कितनी बार इसी देशभक्ति के कारण फिरंगियो की जेलों की अमानवीय यातनाये सहीं, इन वीरों का स्मरण करते हुये हम मध्य प्रदेश के प्रसिद्ध आर्य नेता स्व0 घनश्यामसिंह जी गुप्त को कैसे भूल सकते हैं ? स्वाधीनता के कार्यों से ही आपका नाम मध्य प्रदेश के जन-जन तक पहुंचा हुआ है, अंग्रेजी राज्य मे ही अपने प्रभाव तथा राजनीतिज्ञता के कारण वहां की विधानसभा के अध्यक्ष रहे, जब एक अंग्रेज सदस्य ने सत्ता के मद मे आकर कुछ उद्दण्डता प्रदर्शित करनी चाही तब आपने उसको लहुत डांटा, उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई और उसके अभिमान पर पानी फिर गया, यह था उन आर्यवीरों का साहस तथा तेज। इन्हीं के साथी प्रसिद्ध आर्यसमाजी नेता तथा पत्रकार लाला देशबन्धु जी गुप्ता (पानीपत) की राष्ट्रीय सेवाये क्या किसी बडे से बडे कांग्रेसी से कम हैं ? कांग्रेस के चोटी के नेताओं में आपकी गणना होती थी, उनकी इन्हीं सेवाओं के कारण भारत की राजधानी दिल्ली में उनकी पाषाण प्रतिमा लगाई गई तथा उस पथ का नाम "देशबंधु गुप्त मार्ग" रखा गया, प्रसिद्ध आर्यसमाजी विद्वान् पं0 दामोदर सातवलेकर को भी इसी देशभक्ति के कारण अंग्रेज सरकार का कोपभाजन बनना पडा था, 1907 में हैदराबाद में आपका सम्पर्क आर्यसमाज से हुआ, आपने तभी से वेदमंत्रो की व्याख्या नये रुप से आरम्भ की अथर्ववेद के भूमिसूक्त को राष्ट्रीय जागरण का आधार बनाया, तब अंग्रेजी सरकार के कान खड़े हो गये, आपने 'वैदिक राष्ट्रीय गीत' नामक पुस्तक लिखकर भूमिसूक्त की व्याख्या लिखी इसे प्रकाशित होते ही ब्रिटिश सरकार

ने जब्त कर लिया, इस छोटी सी पुस्तक के कारण निज़ाम सरकार ने अंग्रेज रेजीडेन्ट का दबाब मानकर श्री सातवलेकर जी को हैदराबाद छोड़ने को विवश कर दिया, आप गुरुकुल कांगड़ी चले गये, वहां फिर एक लेख, "वैदिक अर्चना की तेजस्विता" शीर्षक से लिखा, आप पर राजद्रोह का मुकद्मा चला, छोटी अदालत ने 3/6 वर्ष की सज़ा दी, पर डेढ वर्ष के पश्चात् ऊंची अदालत से आप निर्दोष सिद्ध हुये, 1918 मे स्वाध्याय मंडल की स्थापना की।

(साप्ताहिक हिन्दी धर्मयुग 19-9-65)

आर्यसमाज के इन्हीं विद्वानों में आर्य प्रतिनिधि सभा बम्बई के उपदेशक श्री पं0 महाराणीशंकर थे, इन्होंने स्वाधीनता हेतु अपने प्रदेश में गुप्त रुप से बहुत भारी कार्य किया, इनके राष्ट्रीय प्रयत्नों का मूल्यांकन पाठ्क इससे ही कर सकते हैं, कि इनकी गतिविधियों के सम्बन्ध में बम्बई सरकार के पास दो भारी फाइलें मौजूद थीं, जब लाला लाजपतराय को जलावतन किया गया था, तब इनके प्रयत्नों तथा बुद्धिमत्ता से बम्बई प्रदेश के आर्यों ने मार्गो और चौराहों पर 'उतूजयथका' आदि वाक्य लिखकर स्वातन्त्रय भावना फैलाने का गुप्त उपाय आविष्कृत किया था, इसी प्रसंग में आर्यजगत् के विख्यात कवि श्री प्रकाशचन्द्रजी कविरत्न अजमेर वालों की राष्ट्रीय सेवाओं को स्मरण न करना ही महती कृतघ्नता होगी।

"जलियां वाला कांड के अवसर पर आप सरकारी नौकरी छोडकर राष्ट्रीय कार्यो में संलग्न हो गये, 1931 के स्वातंत्रता संग्राम में ब्रिटिश सरकार की जेलयात्रा की।"

(आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का इतिहास पृ0 209)

पाठ्क! बड़े ही खेद तथा दुःख से कहना पड़ता है कि स्वाधीनता के लिए अपना सर्वस्व होमनेवाला यह आर्यवीर स्वतन्त्र भारत में अपनी सरकार के होते हुए भी अधरंग तथा लकवा जैसी भयानक बिमारियों के चक्रव्यूह में फंसकर दुःख भोगता रहा, परन्तु हमारी मोतियांवाली सरकार ने जो कि स्वतन्त्रता सेनानियों के नाम पर कोरा

यश लूटती रही, इस वीर की ओर किसी प्रकार का ध्यान नहीं दिया, केवल मात्र आर्यसमाज का सर्वोच्च संगठन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधिसभा इनकी सेवाओं का ध्यान रखकर एक सौ रुपये प्रतिमास इनको देती रही। इन देशभक्त आर्यवीरों में जब हम श्री चन्द्रसिंह गढ़वाली का नाम पढ़ते हैं तो हमारा माथा गौरव तथा अभिमान से ऊंचा हो जाता है।

"1930 ई0 में जब पंजाब के सीमाप्रान्तस्थ पेशावर नगर में स्वतंत्रता की मांग करती हुई अहिंसक भीड़ पर अपनी सेना को गोली चलाने का आदेश दिया गया तब सर्वप्रथम इस देशभक्त आर्यवीर ने अपने चार-पांच साथियों के साथ पंक्ति से बाहर निकलकर अपने कमांडर का आदेश मानने से इंकार कर दिया था, उसके परिणामस्वरूप इनको कारागार का दण्ड भुगतना तथा नौकरी से भी हाथ धोने पडे थे, जब ये बरेली में दण्ड भुगत रहे थे तब वहां कैदियों में तत्परता के साथ आर्यसमाज का प्रचार किया करते थे।"

(सिंहावलोकन भाग - ले0 यशपाल पृ0 171-172)

उत्तरप्रदेश के आरम्भिककाल के नेताओं में श्री रासबिहारी तिवारी ने भी इस दिशा में बडा भारी कार्य किया, लखनऊ में साईमन कमीशन के तीव्र बहिष्कार का आपने संगठित किया, और पुलिस के डंडे खाये, सन् 1930 में पुलिस के अत्याचारों के विरोध में आपने प्रांतीय कौन्सिल से त्यागपत्र दे दिया था।

(आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश का इतिहास, पृ0 245)

जब पंजाब में 1930 का सत्याग्रह हो रहा था तब 'श्री पं0 सत्यपाल विद्यालंकार स्नातक गुरुकुल कांगड़ी तथा अफ्रीका एवं ब्रह्मदेश में आर्यसमाज के उपदेशक एक बार पंजाब लौटे थे, वह सन् 1931 का साल था, उस समय भारत में सत्याग्रह चल रहा था, वह पंजाब के सर्वाधिकारी नियुक्त हुये, एक व्याख्यान में ही लाहौर में पकड़े गये, और इनको दो वर्ष का कारागार हुआ।

(विदेश में एक साल-ले0 स्वामी स्वातंत्रानन्द जी, पृ0 132)

इन्हीं आर्य विद्वानों में प्रसिद्ध आर्य विद्वान आचार्य वैद्यनाथ जी तथा डा0 सत्यकेतु जी विद्यालंकार ने भी इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य किये, कई स्थानों पर ये कांग्रेस कमेटियों के अधिकारी रहे, तथा अनेक बार जेलयात्रायें भी की, इन्हीं आर्य देशभक्तों में आर्यनेता ज्ञानी पिण्डीदास जी के तद्विषयक सहयोग को कैसे भुलाया जा सकता है ? आपने लाला लाजपतराय जी के नेतृत्व में देश की बड़ी सेवायें की हैं, समय-समय पर होनेवाले सत्याग्रहों में आपकी सुपुत्री सुदेश ने बडे स्तर पर भाग लेकर राष्ट्र के प्रति अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा का परिचय दिया, आपके ही साथी मार्शल लॉ के प्रसिद्ध अभियुक्त श्री डा0 सत्यपाल की सेवायें तो सदा ही सादर स्मरण की जायेंगी, उनकी सेवायें आर्यसमाज के राष्ट्रीय पहलू का एक विशेषद्योतन कराती हैं, राष्ट्रीयता के उस तूफानी काल में जबकि आर्यवीर देशभक्त श्री भगतसिंह को अपने दो साथियों के साथ अंग्रेजी सरकार ने फांसी पर लटका दिया था, तब से देशभक्ति के भावों रो प्रेरित हो प्रसिद्ध आर्य सन्यासी स्वामी ओमानन्द जी महाराज संचालक गुरुकुल, झज्जर (रोहतक) तथा सस्थापक आर्य कन्या गुरुकुल नरेला एवं प्रधान परोपकारिणी सभा, अजेमर भी अपनी उठती जवानी में अपने कॉलेज के अध्ययन को लात मारकर राष्ट्रीय सेवाओ में तल्लीन हो गये थे, आपने अनेक बार ब्रिटिश सरकार के कारागारों की यातनाओं को सहन किया, आपका स्वदेशी वस्त्र धारण का व्रत आजीवन यथापूर्व चलता रहा, इनके ही एक सहयोगी स्वामी नित्यानन्द जी (पूर्व चौ0 न्यौनदसिंह) तो बहुत पहले से ही दिल से कांग्रेस के राष्ट्रीय कायो में सहयोग देते रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें न जाने कितनी बार ब्रिटिश सरकार की जेलों की हवा खानी पडी।

देश की स्वाधीनता के प्रसंग मे लिखते हुए भारत के प्रसिद्ध ओजस्वी वक्ता अदम्य राष्ट्रप्रेमी कुंवर सुखलाल आर्य मुसाफिर को भूल जाना जीवित शहीदों के तपत्याग के साथ क्रूर मजाक ही कहा जायेगा, भारत के इस वीर पुत्र ने अपने जोशीले तथा ओजस्वी भाषणों से उत्तर भारत की जनता में राष्ट्र की बलिवेदी पर मर-मिटने की

जो उत्कंठा तथा जोश जागृत कर दिया था, वह भारत के स्वातन्त्रय समर का एक अलभ्य किन्तु अमर अध्याय है, आपके देशप्रेम से पूर्ण भाषणों के ओजस्वी तथा व्यापक प्रभाव से भयभीत होकर अंग्रेज सरकार ने पंजाब के सीमा-प्रांत में आपका प्रवेश निषिद्ध कर दिया था, जब देशभक्त जनता की मांग पर ब्रिटिश सरकार की आज्ञा भंग कर पंजाब पहुंचे तो आपको आदेशभंग करने के अपराध में पकड़ हथकडियों और बेडियों से बांधकर अदालत में अंग्रेज न्यायाधीश के सामने उपस्थित किया, जब उस अंग्रेज न्यायाधीश ने बहुत कुछ पूछने के बाद यह पूछा कि तुम कहां के निवासी हो ? उत्तर मे यू0 पी0 प्रांत का नाम सुनकर वह अग्रेज बोला कि तुम इनती दूर से फ्रंटफील्ड में प्रचार करने आये हो ? तुम्हे अपने प्रांत के आसपास प्रचार के लिये कोई स्थान नहीं मिला ? यह सुनकर कुवर जी ने उससे पूछा कि साहब ! आपकी जन्मभूमि कहां हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में 'इंग्लैण्ड' का नाम सुनकर कुंवर सुखलाल जी ने कहा कि साहब! आप सात हज़ार मील की दूरी से यहां अपना प्रभुत्व जमाने आ पहुंचे हो, क्या आपको शासन करने के लिए इंग्लैण्ड के आसपास कोई और देश नहीं मिला था ? जब आप इतनी दूर से यहां राज्य करने आ सकते हैं, हम कुछ सौ मील की दूरी से अपने ही देश मे हमारे प्रचार करने पर आपको दर्द क्यों होता हैं ? यह करारा जवाब सुनकर क्रोध से भरकर उस अंग्रेज न्यायाधीश ने पुलिस को कहा यह बहुत बदमाश तथा गुस्ताख है, इसको ले जाकर तुरन्त जेल में डाल दो।

पाठकगण ! जिसके राज्य में सूर्य भी नहीं छिपता था, ऐसी विदेशी सरकार के प्रतिनिधि अंग्रेज न्यायाधीश के समक्ष दिये गये, उक्त निर्भीक उत्तर से आने वाली विपत्तियों के पहाड़ की कल्पना कर सकते हैं ? इसी विशुद्ध तथा प्रबल देशप्रेम के कारण पुलिस के डंडे, लाठियों, कोड़ों की मार, जेलों के गले सडे भोजन, तंग, अन्धेरी तथा गंदी कोठरियो के निवास तथा अन्य अनेक यातनाओं के कारण कुंवरजी का शरीर जीवन के अन्तिम हिस्से में हड्डियों का एक कंकालमात्र शेष रह गया था, इन्ही राष्ट्रप्रेमी आर्य उपदेशकों में आर्यजगत् के

विख्यात सन्यासी स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक ने विदेशों मे घूम-घूमकर अंग्रेजी सरकार की न्यायप्रियता, दयालुता और कथित मानवीयता की पोल खोलकर राष्ट्रीय स्वाधीनता के मार्ग को निष्कंटक बनाया। उस महान् कार्य का मूल्यांकन क्या ये पक्षपाती लेखनियां कभी कर पायेंगी ? स्वामी जी के ही अपने शब्द हैं, पाठक पढ़ने का कष्ट करें, "आर्यसमाज के संस्कारो की जबरदस्त छाप मेरे हृदय पर लगी हुई है।"

(अमेरिका भ्रमण, पृ0 177)

आप अमेरिका जाने के अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुये लिखते हैं, 'मेरी इच्छा थी कि मैं अमेरिका जैसे आज़ाद देश में जाकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करूं क्योकि मेरे सिद्धान्तानुसार गुलाम संतान उत्पन्न करना घोर पाप है, अमेरिका आकर मेरा कार्यक्रम बदल गया और मैंने सोचा कि मेरा कर्त्तव्य अपने देश में जाकर उसे स्वतन्त्र कराना हैं।"

(अमेरिका भ्रमण, पृ0 253)

जब आप भारत में भ्रमण कर जागृति उत्पन्न कर रहे थे, तब आप विश्राम के लिए अल्मोडा गये, आपके वहां पहुंचते ही जिलाधीश की ओर से जुबाबन्दी का लिखित आदेश प्राप्त हुआ, आपने उसे फाडकर फेंक दिया, और जनता के विश्वास पर उस आज्ञा को भंग करने की घोषणा कर दी, अंत में सरकार को अपना आदेश वापिस लेना पड़ा, इसी प्रकार जब फरुखाबाद पधारे तब यहां भी यह घटना घटी, और आपने जनताशक्ति पर उस आदेश को भी भंग कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप आपको अदालत उठने वहीं बैठे रहने का दंड देकर सरकार को अपने आदेश तथा क्रोध की पूर्ति करनी पडी, एक प्रत्यक्षदर्शी के शब्दों में आपके सम्बन्ध मे यह कथन पठनीय है।

"दूसरा व्याख्यान श्री स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक का था। स्वामी जी को मैं अपने प्रारम्भिक राजनैतिक शिक्षकों में से मानता हूं, उनकी मनुष्यों के अधिकारों पर लिखी हुई छोटी सी पुस्तिका ने

बाल्यावस्था में मुझे बहुत प्रभावित किया था, स्वामी जी के राजनैतिक व्याख्यान सुनने का मुझे बहुत शौक था, मैंने उनका यह पहला राजनैतिक व्याख्यान सुना था, मै उनकी वक्तृत्व शक्ति से बहुत प्रभावित हुआ, उनके व्याख्यान का निम्न हिस्सा मुझे अभी तक याद है, लोग मुझसे पूछते हैं, स्वामी जी आप सिर से बाल कब कटवायेगे ? मैं उन्हें जवाब देता हूं, अरे! ये तो सिंह की लटायें हैं, ये तब तक नहीं कटेंगी, जब तक हमारा देश स्वतन्त्र नहीं हो जाता, ये जेल मे भी मेरे साथ ही जायेंगी।"

(मेरे पिता–ले० इन्द्र विद्यावाचस्पति, पृ0 241)

इन्हीं आर्य नेताओ मे उत्तर प्रदेश के आर्य नेता श्री पं0 शिवदयालु जी की भी गणना होती है, आप समय-समय पर कांग्रेस कमेटियों के प्रधान तथा मंत्री जैसे उत्तरदायित्वपूर्ण पदो पर रहे, किसी भी आंदोलन मे जेलयात्रा करने में किसी से पीछे न रहे, इन आर्यवीरों के साथ ही आर्य वीरांगनाओ का सहयोग तो वास्तव मे एक प्रशंसा तथा गौरवपूर्ण अध्याय है, श्री पं0 सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार की धर्मपत्नी श्रीमती चन्द्रवती जी लखनपाल भूतपूर्व संसद् सदस्या ने देश की स्वाधीनता के लिए जो अपार कष्ट सहे, क्या वह हमारी पावन राष्ट्रीय धरहर नहीं हैं ? इसके साथ ही राजस्थान में शारदा परिवार के सदस्य आर्यनेता श्री चान्दकरण शारदा तथा निर्भीक नेता श्री पं0 जियालाल जी आर्य देश की आजादी की रक्षा के लिए जेलो के तालों तथा सींखचो को खटखटाते हुए वहां की जनता के पथप्रदर्शक तथा मार्गदर्शक अगुवा नेता के रूप में प्रसिद्ध हुए, श्रीयुत शारदा जी के क्रांतिकारियो के साथ भी गहरे सम्बन्ध थे जो कि प्रसंग आने पर वर्णन किया जायेगा, राजस्थान की महिलाओं में सबसे पहले सत्याग्रह करने वाली श्री चान्दकरण शारदा जी की धर्मपत्नी थीं जो कि प्रसिद्ध आर्यविद्वान् तथा आर्यनेता श्री पं0 आत्माराम जी अमृतसरी की सुपुत्री थीं, इनके अतिरिक्त भाग्यनगर (हैदराबाद) में क्या चमत्कारिक कार्य हुआ तथा हमारी शिक्षा संस्थाओ ने इस सम्बन्ध में जो बलिदान, त्याग तथा कार्य

का परिचय दिया यह पृथक् अध्याय का विषय है जो पाठक आगे चलकर पढ सकेंगे।

कौन्सिल प्रवेश और आर्यसमाज

सन् 1931 के आन्दोलन के पश्चात् कांग्रेस ने प्रान्तीय शासनों पर अधिकार करने के लिए चुनाव लड़ने का कार्यक्रम बनाया, जिसके परिणामस्वरूप अनेक प्रांतों में शासनसत्ता कांग्रेस के हाथों में आयी, उस कार्यक्रम को अधिक से अधिक बढ़ावा देकर पूर्ण करने में भी आर्यसमाज किसी से कभी पीछे न रहा, सन् 1931 ई0 में जब प्रांतीय स्वायत्त शासन (डोमिनयन स्टेटस) के अधीन देश के पहले मन्त्रिमंडल बने, तो धारा सभा के चुने जानेवाले सदस्यों में आर्यसमाजियों की संख्या सर्वाधिक थी।

(आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश का इतिहास पृ0 72)

आर्य स्वराज्य सभा और स्वातन्त्रय संग्राम

पाठक इस भ्रम में न रहें कि यह किसी एक ही प्रांत की बात कही जा रही है, प्रत्युत सारे देश में उस समय आर्यसमाजी सर्वाधिक-रूप में चुने गये थे, चुनाव के इस काल से बहुत समय पूर्व पंजाब के उत्साही आर्य युवकों ने 'आर्य स्वराज्य सभा' का निर्माण कर दिया था, जिन सज्जनों में प्रसिद्ध आर्यसमाजी देशंभक्त चौ0 वेदव्रत जी, श्री रामगोपालजी शास्त्री रिसर्चस्कालर, एवं श्रीयुत अजीतसिंह जी सत्यार्थी प्रमुख थे, यह त्रिपुटी आर्यसमाज के राष्ट्रीय दृष्टिकोण से पंजाब प्रदेश में दिल, दिमाग व वाणी कहे जा सकते है, समय-समय पर होनेवाले राष्ट्रीय आंदोलनो को जन, धन, तथा प्रचार से बढावा देकर देशव्यापी बनाना इनका प्रमुख कार्य होता था, इन तीनो ही आर्यनेताओं के कष्ट सहन, त्याग, साधना तथा बलिदान किसी भी अच्चकोटि के किसी कांग्रेसी नेता से किसी तरह कम नहीं हैं, शेष समय में हिन्दू जाति में शौर्य, स्वाभिमान, आत्मनिर्भरता, बलवत्ता आदि गुणों का संचार करना इनका मुख्य कार्य होता था, पंजाब केसरी लाला लाजपतराय को आर्थिक सहायता देनेवाला हाथ

सदा ही इनके लिये वरदहस्त बना रहता था, इनको अपना राजनैतिक गुरु तथा प्रथप्रदर्शक समझते थे, लाला जी के बलिदान के पश्चात् लाहौर में एक बड़े प्रतिष्ठित तथा प्रभावी अंग्रेज सरकारी अधिकारी के न चाहते हुए भी जनसमुदाय के बलबूते पर ही इन तीनों वीरो ने स्मृति के रुप में लालाजी की प्रस्तर प्रतिमा सड़क के ठीक बीच में उस स्थान पर लगवाई थी, जहां कि लालाजी के सीने पर अंग्रेज पुलिस ने बर्बरता के साथ लाठियां बरसाई थी, वह पुनः इन्हीं लोगों ने पाकिस्तान बन जाने के कारण शिमला के रिज के मैदान में लगा दी थी, यह ध्यान रहे कि अंग्रेजीकाल में रिज के मैदान में हिन्दुस्तानियों को प्रवेश का अधिकार नहीं था, पाठक! कई करोड़ों सदस्यों वाली कांग्रेस वह कार्य नहीं कर सकी, जो विचित्र और साहसिक कार्य इन तीन आर्ययुवकों ने कर दिखाया, इनमें से चौ0 वेदव्रत (जो सन्याय लेने के बाद स्वामी सत्यानन्दजी बने) जब भारत की स्वाधीनता हेतु जेलों में पड़े सड़ रहे थे, तब पीछे से इनकी पत्नी तथा एकमात्र पुत्री टी0 बी0 का शिकार होकर एक-एक पैसे के अभाव में उपचार न करा सकने के कारण घुट-घुटकर दम तोड़ गई थी, परन्तु वाह रे अनूठे देशभक्त! इतने पर भी तेरे माथे पर शिकन एवं हृदय में किसी भी प्रकार की कोई कमज़ोरी नहीं आई, और जेल से बाहर आने की कल्पना तक न आयी, आर्यसमाज के इन वीरों के त्याग, साधना एवं बलिदान की इन पावन आहुतियों से स्वातन्त्रय समर की अग्नि प्रचण्ड हुई, किन्तु यह लिखते हुये हृदय फटता है कि स्वाधीनता के लिये मर मिटनेवाले इस वीर को स्वतन्त्र भारत में अपनी आजाद सरकार के होते हुये जीवन के अन्तिम हिस्से में एक-एक पैसे के अभाव में अपनी बीमारी का इलाज न करा सकने के कारण अधरंग के भयानक रोग की पीड़ा से कराहते हुये घुट-घुटकर अपने प्राण छोड़ने पड़े, उस समय भी आर्यसमाज के कुछ आर्ययुवकों ने जिनमें आदरणीय भाई श्री राजेन्द्र जी जिज्ञासु मुख्य हैं, ने इनकी यथाशक्ति आर्थिक सहायता तथा परिचर्या कर इन शहीदों के प्रति अपनी सच्ची श्रद्धा का परिचय देने का पुण्य कार्य किया था।

सन् 1942 का अंग्रेजों भारत छोड़ो का नारा और आर्यसमाज

इस प्रकार इन आर्यवीरों के बलिदान, तप, त्याग, साधना तथा देश के प्रति अटूट निष्ठा के कारण आन्दोलन का यह जलयान अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने लगा, उस अवस्था में उसका वेग तीव्र करने में जो एक धक्का और लगा वह सन् '1942 का अंग्रेजो भारत छोड़ो' आंदोलन था, इस आंदोलन को इस जहाज का अपनी दिशा में बढ़ने का अन्तिम पड़ाव कह सकते हैं, जब कांग्रेस के सारे ही नेता पकड़ लिये गये, तब आर्यवीरो ने ही भावी कार्यक्रम की प्रतीक्षा कर रही देश की जनता का गुप्तरूप से पथप्रदर्शन कराया था, उस समय आर्यजगत् के लौहपुरुष स्वतन्त्रानंद जी महाराज ने पंजाब के हरियाणा क्षेत्र का दौरा तथा सर्वेक्षण किया, इससे सरकार ने यह समझा कि यह साधु सेना में बगावत फैलाना चाहता है, क्योकि पंजाब के हरियाणा क्षेत्र से ही अधिक युवक सेना में भर्ती होते थे, हमारे विचार में सरकार का यह सन्देह निराधार तथा निर्मूल नहीं था, परिणामस्वरूप स्वामी जी को गिरफ्तार कर लाहौर के शाही किले की कालकोठरी में बन्द कर दिया गया, पाठको को यह ध्यान रहे कि शाही किले में मामूली बन्दी नहीं रखे जाते थे, सरकार जिनको अपना सबसे बड़ा दुश्मन समझती थी, उनको ही शाही किले में रखा जाता था, वहां कितनी अमानवीय यातनायें सहन करनी पड़ी होंगी इससे ही अनुमान कर सकते हैं स्वामीजी के ही शब्दों मे - 'रात को कोपीन लगाकर सोता था, शेष सारा शरीर नंगा ही था, तो भी स्वेद (पसीने) का आनन्द था, स्वामीजी की जेल डायरी 3-5-1943 का पृष्ठ। डायरी के 24 मई के पृष्ठ से पता लगता है कि महाराज का वक्तव्य दो बजे से साढ़े छः बजे तक होता रहा, इतने समय में कितनी भयकर पूछताछ की गई होगी यह अनुमान ही लगाया जा सकता है, वहीं पर कप्तान सैय्यद अहमद के द्वारा बड़ी-कड़ी पूछताछ (Interrogation) की गई, स्वामी जी ने लिखा कि बिहारादि मे भारतीय

सेना ने निरपराधियों को भून डाला, निरपराध नहीं मारने चाहियें, कहा था, शशिभूषण का हाल लिखवाया, प्रसिद्ध आर्य नेता श्री जगदेवसिह जी सिद्धान्तों जो हरियाणा के दौरे के समय स्वामीजी के साथ थे, उनके सम्बन्ध में पूछा कि उन्हे कबसे जानते हो? सिद्धान्तीजी ने लिखा कि उन दिनों स्वामीजी ने तीस दिन के बत्तीस ग्रामो के भ्रमण में सैंतीस भाषण दिये, भापड़ोदा ग्राम की जिस बैठक में स्वामीजी के इशारे पर निश्चय किया गया था कि हरियाणा के वीर सैनिक जनता पर गोली न चलायें उसकी चर्चा करते हुये स्वामी ओमानन्द जी महाराज लिखते हैं कि उस बैठक में एक गुप्तचर भी था, जिसने इसकी सूचना सरकार को दे दी थी, वह गुप्तचर आजकल काग्रेस पार्टी की ओर से एम0 पी0 है, प्रसंगवश यह कहना चाहता हू कि जिस गुप्तचर का यहा वर्णन किया गया है, वह कांग्रेस के टिकट पर चुने गये प्रसिद्ध सांसद 'शशिभूषण' हैं, काश कि इन गद्दारों को लालकिले के सामने मैदान में खडा करके गोलियों से भून दिया जाता, परन्तु करे कौन ? क्योकि गौरी चमडीवालो का शासन हटकर काली चमडीवालों के हाथ मे है जोकि वास्तव में तो उनके ही वैचारिक उत्तराधिकारी हैं शासन आया है, पाठक अनुमान कर सकते हैं कि जिस समय स्वामी जी महाराज जेल से स्थानबद्धता के लिये अपने मठ दीनानगर में लाये गये उस समय उनके शरीर पर सारे ही कपड़े फटकर चीथडा-चीथड़ा हो गये थे, इससे उनको दिये कष्टों का अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है।

सीमाबद्ध कर देने के पश्चात् उनके भाषणों पर भी पाबन्दी लगा दी गई थी, पुलिस बहुत समय तक मठ पर घेरा डाले पड़ी रही, उनसे मिलने के लिए आनेवाले सज्जनों की भी पूर्ण जांच-पड़ताल कठोरता के साथ पुलिस करती थी, क्योंकि सरकार को उस समय पंजाब में इसी सन्यासी के उस आन्दोलन का सूत्रधार होने का दृढ निश्चय हो गया था। आर्यजगत् के प्रसिद्ध महाशय कृष्ण तो इस आदोलन को आरम्भ करने का निश्चय करने के लिए महात्मा गांधी जी के द्वारा बुलाई गई कांग्रेस की हगामी मीटिंग मे उपस्थित थे, जिसमें

कि रात्रि को ही 'करो या मरो' तथा 'अंग्रेजो भारत छोडो' के कार्यक्रम का निश्चय किया गया था, महाशय जी अगले दिन प्रात जब लाहौर के लिए रवाना हुए तब उन्हें सर्वप्रथम ही ज्ञात हो गया था कि सभी नेता पकडे जा चुके है, लाहौर पहुंचते-पहुचते उन्हे यह भी मालूम हो गया था कि उनके दोनों ही पुत्र वीरेन्द्र तथा नरेन्द्र भी गिरफ्तार किए जा चुके है, महाशय जी के लाहौर पहुंचते ही पुलिस हथकड़ियां-बेडियां लेकर इनका स्वागत करने आ पहुंची थी, इन तीनों पिता-पुत्रों को ले-जाकर शाहपुर जैसी गदी जेल में रखा गया, जिसके सम्बन्ध मे महाशय जी का स्वयं का कहना है कि - "यदि कहीं इस जमीन पर नर्क है तो यही है, शाहपुर में जन्म लेना भी पुराने जन्म के बुरे कर्मों का फल है।

(महाशय कृष्ण का जीवन-चरित्र-ले0 सत्यदेव विद्यालंकार, पृ0 207)

वहां की भूमि में सीलन अधिक थी और वहां की जेल में सत्याग्रहियों के सोने की व्यवस्था-भूमि पर ही थी, अतः सभी सत्याग्रही रोगी हो गये, वहां के आर्यसमाज के अधिकारियों ने सत्याग्रहियो के लिए 45 चारपाईयां भिजवाई, परन्तु यह सब कुछ होने पर भी महाशय जी वहा से जर्जरित शरीर लेकर निकले थे, उसी आदोलन मे उत्तरप्रदेश के जिन चार कार्यकत्ताओ को सबसे अधिक खतरनाक घोषित किया गया था, उनमें से श्री अलगूराय शास्त्री तथा श्री प0 शिवदयालु जी ये दोनो ही आर्यसमाजी थे, इन दोनों को पुलिस के कड़े पहरे मे कई वर्ष तक कालकोठरियो में बन्द रखा गया था, इस प्रकार गत आन्दोलनों की भाति आर्यसमाज आज़ादी की इस अन्तिम लडाई मे भी किसी से पीछे न रहा, सन् 1942 की 'करो या मरो' की प्रतिज्ञा के साथ स्वाधीनता के रण में कूदनेवाले सहस्त्रों आर्यसमाजियों के घर उजड गये और सैकडों ही आर्यसमाजी ब्रिटिश बायनेटो एवं हंटरो के शिकार बने।

(आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश का इतिहास, पृ0 72)

''1942 का देश की स्वाधीनता का अंतिम एवं भीषण समर सामने आ उपस्थित हुआ, देशप्रेम के दीवाने आर्यसमाजियों का उस समर मे कूदना स्वाभाविक था, अत वह सब उस में कूद पड़े।''
(पूर्वोक्त पुस्तक, पृ0 74)

उस संकट काल में भूमिगत होकर कार्य करनेवाले देशभक्त पुलिस जिनका वारंट हाथ में लिए छाया की तरह पीछा करती थी, जिन्हें सिर छिपाने को अनेक स्थानों पर ठोकर खाने के बाद कोई ही माई का लाल साहसी व्यक्ति ही जगह देने की हिम्मत कर पाता था, ब्रिटिश सरकार के गुप्तचर जिन्हें पकडने को नदियों में जाल तथा कुओं में बांस घुमाते फिरते थे, उन सिरफिरों को एक बहुत बडी संख्या में आर्यसमाजियों ने अपनी शिक्षा संस्थाओ में विश्वस्त संरक्षण प्रदान किया था। इसके अतिरिक्त आर्यसमाज के भजनोपदेशकों ने देशभक्ति से भरे भजन गा-गाकर के जनमानस भारत को झिंझोडा, उनके अपने इतिहास की गौरवमयी गाथाओं, देश की रक्षा के निर्मित्त अपने प्राणो को हंस-हंसकर बलिदान करनेवाले सूरमाओ की गाथाये सुनाकर जनता में जो अपूर्व जागृति उत्पन्न हुई उसका अपना एक अति ही महत्त्वपूर्ण स्थान है, आर्यसमाज के वे दीवाने-मस्ताने जो यद्यपि पढ़ाई की दृष्टि से तो शून्य से ही थे लेकिन देशभक्ति का ज्वालामुखी जिनके दिलों में धधकता था, उसी धुन में बाजा, ढोलक उठाये गांव-गांव में घूमकर लोकजागृति का अपूर्व तथा महत्त्वपूर्ण कार्य किया करते थे, ग्रामीण जनता को देश की स्वाधीनता पर पतंगों की भाति मर-मिटने के लिए समुद्यत करने मे इनके योगदान का मूल्यांकन कैसे किया जा सकेगा ? लेखक को भलीभांति स्मरण है कि उनके पूज्य चाचा श्री हरलालसिंह जी सन् 1942 से 1946 तक भजनों द्वारा ग्रामीण जनता में राष्ट्रीय-चेतना जागृत करने के कारण पुलिस की नज़रों से बचते फिरा करते थे और ब्रिटिश सरकार की पुलिस वारंट तथा हथकडियां लिए आये दिन घर घेरा डालकर सारे परिवार को दुःखी किया करती थी, पुलिस के इरा

व्यवहार से दुःखी हो लेखक ने बचपन में अज्ञानवश जब एक सिपाही को भद्दी गाली दी, तब उसने लेखक को दो-तीन थप्पड़ भी मारे थे, इस प्रकार स्वाधीनता का जो मार्ग कांग्रेस के नरमदल ने ग्रहण कर जो कार्य किया, उसमें ऋषि दयानन्द के देशभक्त सैनिकों ने बढ़-चढ़कर योगदान किया, उसी प्रयत्न के फलस्वरूप 15 अगस्त, 1947 के उषाकाल के साथ स्वतन्त्रता देवी ने भारत के प्रांगण में पदार्पण किया, जिसका कुछ विवरण पाठक अब तक की पंक्तियों में पढ़ चुके हैं।

चतुर्थ अध्याय

पाठकवर्ग ! गत अध्याय मे आप पढ चुके हैं कि भारतीयों को भ्रमाने के उद्देश्य से स्थापित इंडियन नेशनल कांग्रेस की प्रवृत्ति को स्वातन्त्र्यभिमुखी बना देने का सम्पूर्ण श्रेय आर्यसमाजी वातावरण मे शिक्षित देशभक्तों को ही जाता है, स्वाधीनता प्राप्ति के मार्गों के अवलम्बन में मतभेद हो जाने से जब इस दल का गांधीवादी दल तथा सशस्त्र क्रान्तिकारी दल के रूप में विभाजन हो गया तब दोनों ही दल अपने-अपने विश्वास एव मान्यताओं के आनुसार स्वाधीनता प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहे, विगत अध्याय मे गांधीवादी दल के सहयोगियों के रुप में देशभक्त आर्यसमाजियो के तप, त्याग, साधना एवं बलिदानों तथा स्वाधीनता हेतु किये गये प्रयासों का उल्लेख किया गया, उस वर्णन मे राष्ट्रवीर लाला लाजपतराय द्वारा तथा प्रसिद्ध देशभक्त भाई परमानन्द जी द्वारा किये गये स्वाधीनता विषयक कार्यों का उल्लेख किया गया है, जिन्हे पाठक प्रायः सशस्त्र क्रांति से पूर्णतया 'सम्बन्धित एवं एकमात्र उसी के समर्थक मान बैठते है, परन्तु लेखक के मतानुसार इतिहास मे ऐसा प्रमाण अभी तक उपलब्ध नहीं है कि इन्होने स्वयं शस्त्र लेकर यह कार्य किया हो अथवा सर्वजनप्रत्यक्ष होकर इस वर्ग को प्रोत्साहित किया हो, यह तो अलग बात है कि ये लोग उत्तेजनापूर्ण विचारधारा, वाणी एवं चिन्तन वाले थे जैसा कि एक ही वर्ग के लोगों में क्रियाकलाप का अन्तर होता ही है, हां यह तो कहा जा सकता है कि इन लोगों ने परोक्षरूप में सशस्त्र क्रांतिकारियों को प्रोत्साहित किया हो, इतिहास के प्रमाण भी बहुत सीमा तक इस तथ्य की पुष्टि करते है, अब प्रस्तुत प्रकरण मे उन देशभक्त आर्यो का वर्णन किया जायेगा। जिनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध सशस्त्र क्रान्तिकारी दल के साथ रहा है, इन पंक्तियों के लेखक की दृष्टि में स्वाधीनता प्राप्ति के सम्बन्ध में सशस्त्र

क्रांतिकारियो के द्वारा किये गये प्रयास अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण, उपयोगी, ऐतिहासिक तथा स्तुत्य हैं, भारत के कुछ अदूरदर्शी लोग इन देशभक्त क्रांतिकारियों के प्रशंसनीय प्रयासो को आतंकवाद, कुछ मनचले युवको के मन की भड़ास निकालने का अदूरदर्शितापूर्ण, बचकाना तथा क्रूर उपाय कहकर जहां उनकी उपेक्षा, उपहास एवं निन्दा करते रहे वहा उन्हे स्वाधीनता के मार्ग में बाधा की संज्ञा देते रहे हैं, ऐसे सज्जनों की सेवा में इतना ही निवेदन करना है कि राज्य-भिक्षा में न मिलकर मैदाने-जंग में दुश्मन के खून के दरिया बहाकर, अनेक उठती जवानियों की भेंट चढाकर मिला करते हैं, भारत के सपूत फांसी, गोली, काला-पानी, आजीवन कारावास आदि की परवाह न करके, मां-बाप, बहिन-भाई, पत्नी आदि सम्बन्धियों के मोह पर लात मारकर, अपनी सभी प्रकार की सांसारिक तमन्नाओं को दफनाकर जंगलो की खाक छानते हुए जीवन भर ब्रिटिश साम्राज्य से जूझते रहे, इतने पर भी देश के लिए जीवन की बाजी लगाने वाले इनके सत्प्रयत्न क्या स्वाधीनता संग्राम के परिप्रेक्ष्य में अन्यों की अपेक्षा महत्त्वपूर्ण नहीं होंगे ? तथा वे ऊंचे सम्मान और स्थान के अधिकारी न होंगे ? सच पूछो तो देश की स्वतंत्रता इन्हीं लोगों के प्रशंसनीय प्रयत्नों का शुभ परिणाम है, इस प्रकार का प्रयत्न करने वालों मे सबसे प्रमुख नाम क्रांतिकारियों के आचार्य महर्षि दयानन्द सरस्वती के अमर शिष्य श्यामजी कृष्ण वर्मा का आता है। अपने आचार्य दयानन्द सरस्वती की प्रेरणा पर ही इस आर्यवीर ने सर्वप्रथम राष्ट्रीयता के इस कण्टाकीर्ण मार्ग पर चलने का दृढ़ निश्चय किया था, इनका संक्षिप्त किन्तु अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण तद्विषयक वृत्तान्त निम्न प्रकार से उपलब्ध होता है।

श्याम जी कृष्ण वर्मा

"दयानन्द जी कह चुके हैं कि अपने शिष्य श्यामजी कृष्ण वर्मा को भारतीय धर्मप्रचार और विद्याध्ययन के लिए 1879 में ही इंग्लैण्ड भेजा था" तथा "भारत की स्वाधीनता की महत्त्वाकांक्षा और

आत्माभिमान श्यामजी मे दयानन्द के सम्पर्क के कारण पहले ही पर्याप्त था।"

(हमारा राजस्थान, पृ0 283-284)

उन्हीं दिनों महर्षि दयानन्द बम्बई में वैदिकधर्म का सन्देश सुनाने पहुंचे, स्वाभाविक ही था कि श्यामजी कृष्ण वर्मा महर्षि की ओर आकृष्ट होते, और महर्षि उन्हे अपने शिष्यों की श्रेणी में प्रविष्ट कर लेते, रत्नं समागच्छतु कांचनेन विधाता की यह इच्छा पूरी हुई, श्यामजी कृष्ण वर्मा आर्यसमाज में प्रविष्ट हो गये।

(आर्यसमाज का इतिहास-भाग 2, पृ 374)

"श्यामजी कृष्ण वर्मा को विलायत जाने की अनुमति देने का क्या अभिप्राय था? यह उनके उस पत्र से प्रकट होता है जो उन्होने संस्कृत में अपने शिष्य को उस समय लिखा जब वह आक्सफोर्ड मे अपनी प्रतिभा का असाधारण सिक्का जमा रहा था, पत्र मे आशीर्वाद देने और इंग्लैण्ड सम्बन्धी अनेक प्रश्न करने के पश्चात् महर्षि ने लिखा था कि यदि अब तक अवकाश न मिला हो तो मैं सत्य हृदय से प्रेरणा करता हूं कि जब तुमको पठन-पाठन से अवकाश मिले, तभी वैदिक-सिद्धांतों के प्रचार के निमित्त व्याख्यान देना, और तभी आना, इससे पूर्व नहीं, पत्र के अन्त में यह भी पूछा गया था कि क्या तुमने कभी पार्लियामेण्ट नाम की सभा देखी है? इस पत्र मे स्पष्ट है कि महर्षि के श्यामजी कृष्ण वर्मा को विलायत जाने की प्रेरणा करने में धार्मिक और राजनैतिक दोनों उद्देश्य मिले हुये थे।"

(आर्यसमाज का इतिहास-भाग 2, पृ0 375)

विद्वान् लेखक आगे चलकर लिखता है, 'महर्षि का प्रभाव देसी रियासतों मे बहुत था, फलत. श्यामजी कृष्ण वर्मा को पहले रतलाम और उसके पश्चात् बड़ौदा आदि रियासतों में बहुत ऊंचे पद की नौकरियां प्राप्त करने में कठिनाई न हुई।"

(पूर्वोक्त पुस्तक, पृ0 375)

श्यामजी कृष्ण वर्मा ने स्वाधीनता का मन्त्र अपने आचार्यप्रवर महर्षि दयानन्द सरस्वती से ही सीखा था, इसी तथ्य की पुष्टि करते

हुये उक्त लेखक आगे चलकर लिखता है, श्री श्याम कृष्ण वर्मा महर्षि दयानन्द के शिष्य होने के कारण इस सिद्धांत के अनुयायी थे कि अच्छे से अच्छा विदेशी राज्य भी स्वराज्य की बराबरी नहीं कर सकता।'

(पूर्वोक्त पुस्तक, पृ0 376)

रियासतों की नौकरियां करते हुए श्यामजी को यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि यहां रहकर स्वाधीनता प्राप्ति का कार्य नहीं हो सकता, क्योंकि रियासतों पर भी अधिकांश में अंग्रेजों के राजनैतिक दबाव के साथ-साथ उनका मानसिक प्रभुत्व तो होता ही है, अतः उन्होंने विदेशो में जाकर अपना कार्य करने का कार्यक्रम बनाया, इसी मध्य 1897 ई0 में पूना में प्लेग फैला, उस समय अंग्रेज अधिकारियों ने रोगक्रान्त प्रदेश को खाली कराने में जनता के साथ अत्यन्त ही जघन्यतापूर्ण दुर्व्यवहार किया, इस अपमान से दुःखी होकर एक स्वाभिमानी मराठे युवक ने इस कार्य में उत्तरदायी मि0 रेण्ड नामक एक अंग्रेज अधिकारी पर गोली चलाकर उसे यमलोक पहुंचा दिया, जिसका यह परिणाम हुआ कि 'श्यामजी कृष्ण वर्मा का हाथ भी इस काण्ड के पीछे था, अतः वह सपरिवार भारत से लन्दन खिसक गया, 1905 तक वह प्रायः अज्ञात रहते हुए वहां पढने जानेवाले भारतीय युवकों मे स्वाधीनता की भावना जगाने और भारत में स्वाधीनतावादी आंदोलन सगठित करने का प्रयत्न करता रहा।

(हमारा राजस्थान, पृ0 286)

एक अंग्रेज पत्रकार ने लिखा कि "किसी भी आर्यसमाजी की खाल खरोंचकर देखो तो अन्दर छुपा हुआ क्रांतिकारी देशभक्त लिखा हुआ दिखाई देगा" यूरोप में क्रांतिकारी गतिविधियों को सगठित करने मे श्यामजी कृष्ण वर्मा का नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय है, सन् 1883 में महर्षि ने जब परोपकारिणी सभा की स्थापना की, तब उनके सदस्यों मे उन्होंने वर्मा जी का नाम भी रखा, सन् 1877-78 में उन्होने आर्यसमाज के वैतनिक प्रचारक के रूप में कार्य किया था, महादेव गोविन्द राणाडे ने उनके तर्क, युक्तियों एवं प्रमाणों से युक्त भाषण सुनकर आजीवन आर्यसमाज का प्रचारक बने रहने का अनुरोध किया

था, सन् 1905 मे श्याम जी कृष्ण वर्मा ने बंग भग का का तीव्र विरोध किया था सन् 1907 में वे लोकमान्य तिलक के गर्मदल के प्रवक्ता थे, इसी दौरान उन्होने 'इण्डिया होमरुल सोसाइटी'' की स्थापना की जो इंग्लैण्ड में विद्यमान देशभक्त भारतीयों का आकर्षण केन्द्र बन गई, भारतीय पक्ष के जोरदार प्रस्तुतीकरण के लिए उन्होने 'सोशियालोजिस्ट' पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया, सन् 1905 में 'इण्डिया हाऊस' की स्थापना की, जो आतंकवादी गतिविधियों के केन्द्रस्थल के रूप में विख्यात हुआ, भाई परमानन्द ने उन्हे पूर्ण स्वराज्य की मांग करनेवाला प्रथम राजनीतिज्ञ बताया, उन्होंने देशभक्त छात्रों को विदेश में अध्ययन की सुविधा उपलब्ध कराने के लिए दयानन्द, प्रताप तथा शिवाजी छात्रवृत्तियां देने की घोषणा की, वीर सावरकर, लाला हरदयाल, सरदारसिंह राणा, भाई बालमुकुन्द आदि क्रांतिकारी युवको के वर्मा प्रेरणास्तम्भ थे, मदनलाल धींगरा द्वारा कर्जन वायली की लन्दन में हत्या कर देने से श्यामजी जैसे क्रांति के नेताओ का लन्दन में प्रवास कठिन हो गया, और तब उन्होने पेरिस को अपनी गतिवधियों का केन्द्र बनाया, पेरिस में मैडमकामा उनकी अन्यतम सहयोगी थीं, सन् 1914 मे इंग्लैण्ड, फ्रांस मैत्री सन्धि के परिणामस्वरूप उनका पेरिस में रहना कठिन हो गया और उन्हें विवश होकर स्विट्ज़रलैण्ड चले जाना पड़ा, वर्मा जी ने 'बम बनाने की विधि' पुस्तक लिखकर सेनापति बापट द्वारा भारतीय क्रांतिकारियों तक भिजवाई, लाला हरदयाल, चम्पकरामन, पिल्लई तथा चट्टोपाध्याय को आर्थिक सहायता देकर जर्मनी से भारत जानेवाले स्टीमरो से भारत के क्रान्तिकारियों को काफी हथियार पहुंचाये।

(भारतीय राष्ट्रवाद एवं आर्यसमाज आन्दोलन – ले0 डा0 विजेन्द्रपाल सिंह, पृ0 142-43)

पाठकगण ! सन् 1857 के बाद जबकि अंग्रेज भारतीयों की भावनाओं को पैर तले रोंदकर निःशक हो आराम की नीद सो रहा था, तब सबसे पहले उसकी छाती पर गोली चलवाकर उनकी नींद हराम कर देनेवालों में महर्षि का यह अमर शिष्य श्यामजी कृष्ण वर्मा ही था, उस इतिहासप्रसिद्ध स्वातन्त्र्यसंग्राम के पश्चात्

साम्राज्यवादी, निरंकुश अत्याचारी, विदेशी शासकों की छाती पर भारतीय सूरमाओं के हाथों यह पहली ही गोली दागी गई थी, जिसके कारण महर्षि दयानन्द के इस देशभक्त वीर शिष्य को अपने जीवन की अन्तिम घडियों तक अपनी मातृभूमि के दर्शनों से वंचित हो उसके लिए तडपते हुए ही विदेशों में प्राण छोड़ने के लिए मजबूर होना पडा, मि0 रेण्ड को मारने वाले दामोदर तथा बालकृष्ण नामक दो चाफेकर बन्धु थे, इसमें से दामोदर तो पकडा गया था, जिसे अदालत ने फांसी का दण्ड दे दिया था, परन्तु दूसरा युवक बालकृष्ण चाफेकर भागकर दक्षिण हैदराबाद में सुरक्षित छिप गया था, उस अवस्था में भी आर्यसमाज के लोगों ने ही उसकी सब प्रकार से सहायता की थी, कैसे ? निम्न उदहरण पढिए -

"बालकृष्ण भागकर निजाम के राज्य में छिपे हुए थे, लोकमान्य तिलक ने दामोदर चाफेकर के मामले में साढे सात हजार रु0 खर्च किये थे, जब उन्होने सुना कि बालकृष्ण के पास खाने को नहीं है, तो उन्होने हैदराबाद के मुख्य न्यायाधीश केशवराव कोरटकर के ज़रिये से सहायता भेजी, मज़े की बात यह है कि कोरटकर नरम विचारों के व्यक्ति थे और गोखले के अनुयायी थे, पर इस मामले में उन्होने तिलक की आज्ञा मानी, बाद में कोरटकर ने लिखा कि मुझको बडा आश्चर्य हुआ कि जब मुझे लोकमान्य तिलक का यह पैगाम प्राप्त हुआ, पर मैंने उनका कहा हुआ कार्य कर दिया।"

(भारत के क्रांतिकारी - ले0 मन्मथनाथ गुप्त, पृ0 42)

पाठकवर्ग ! यह न भूलें कि श्री केशवराव कोरटकर ही हैदराबाद मे आर्यसमाज का बीजारोपण करने तथा उसे सींचकर पल्लवित करनेवालो में प्रमुख स्थान रखते थे, इन्होंने ही स्वामी श्रद्धानन्द जी को गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगडी की स्थापना से पूर्व अपने प्रदेश मे बुला उसके लिए धनसंग्रह मे प्रशंसनीय सहयोग किया था, इतना ही नहीं बल्कि अपने सुपुत्र श्री विनायकराव को गुरुकुल मे पढ़ाने को भी भेजा था, विद्यालंकार जी के राष्ट्रीय प्रयासो का वर्णन पाठक आगे चलकर पढ़ेंगे, जैसा कि पाठक पढ चुके हैं, लन्दन मे जाकर

श्यामजी ने 'इण्डिया हाऊस' की स्थापना की, जिसका मूल ध्येय वहां पढने आने वाले भारतीय छात्रों को स्वाधीनता का पाठ पढाकर उन्हें दासता की प्रतीक सरकारी नौकरियों के प्रति विरक्त कर स्वाधीनता संग्राम में भी निज जीवन अर्पण करने को समुद्यत करना था, सन् 1908 में इण्डिया हाऊस में बडी धूमधाम के साथ 'गदर दिवस' का आयोजन किया, उस समय वहा अनुमानतः एक हज़ार के लगभग भारतीय छात्र उपस्थित थे, उसके कुछ दिन के बाद ही 'ऐ शहीदो' शीर्षक से एक पर्चा बांटा गया, जिसमें 1857 के युद्ध को 'स्वातंत्र्य समर' बताकर उसमे बलिदान हुये देशभक्तो की प्रशंसा की गई थी, रौल्ट कमेटी का अनुमान था कि इसमे "श्यामजी कृष्ण वर्मा की शरारत थी।"

(भारतीय क्रातिकारी आन्दोलन का इतिहास–ले0 मन्मथनाथ गुप्त, पृ0 23)

"वहां आनेवाले प्रत्येक छात्र को यह पर्चा तथा 'घोर चेतावनी' नामक दो पर्चे मुफ्त दिये जाते थे और उसका प्रचार करने को उन्हें प्रोत्साहित किया जाता था, गुप्तचर पुलिस की रिपोर्ट के अनुसार प्रत्येक रविवार को भारतीय भवन में जो सभा होती थी उसमें छात्रों को गुप्त हत्या के लिए उत्तेजित किया जाता था, कहते हैं कि 1908 ई0 मे लन्दन विश्वविद्यालय के एक छात्र ने बम बनाने की सामग्री तथा उपायो पर व्याख्यान दिया था, अन्त में उसने कहा था कि जब आप में से कोई जान पर खेलने को तैयार होगा तो इसका उसे पूरा विवरण दूंगा।"

(पूर्वोक्त पुस्तक, पृ0 24)

इस प्रकार स्वाधीनता के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर अन्त मे सदा के लिए अपने वतन से हज़ारों मील दूर हो, ऋषि दयानन्द सरस्वती का यह अमर शिष्य दिल में भारत की स्वाधीनता के अरमान संजोये, स्विट्जरलैण्ड में 1930 ई0 में परलोक सिधार गया, विदेशों में रहते हुए इन्होने समय–समय पर पत्रिकायें चला, पम्पलेट बांट, लेख लिख, पुस्तकें प्रकाशित कर तथा भाषण देकर अपने सुलझे हुए

विचारो के द्वारा राष्ट्रीय स्वाधीनता का मार्ग प्रशस्त किया, काश! कि आज हम उनकी उस गम्भीर विचारराशि को संग्रहीत कर लाभ उठा पाते, ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने अपनी मृत्यु से एक-दो वर्ष पूर्व कहा था कि महर्षि दयानन्द सरस्वती का वास्तविक जीवनचरित्र अभी तक नहीं लिखा जा सका, मेरे पास उस विषय की पर्याप्त सामग्री है, अतः मैं उनका यथार्थ जीवन चरित्र लिखने का प्रयत्न कर रहा हूं, सम्भवतः यथार्थ जीवन चरित्र से श्यामजी कृष्ण वर्मा का अभिप्राय महर्षि दयानन्द सरस्वती का राजनैतिक जीवन चरित्र लिखना ही रहा हो।

विनायक दामोदर वीर सावरकर

श्यामजी कृष्ण वर्मा के पश्चात् आर्यो की इस क्रान्तिकारी पीढ़ी में आजादी के परवाने, स्वातंत्र्य समर के अमरयोद्धा वीर विनायक दामोदर सावरकर का नाम आता है, इन्होने श्यामजी से ही प्रेरणा प्राप्त कर देश की स्वाधीनता के इस काटो से भरे मार्ग का वरण किया था, 'श्रीयुत विनायक दामोदर सावरकर आदि देशभक्तों को अपने विचार परिपक्व करने और अन्यों तक फैलाने का अवसर इण्डिया हाऊस की सभाओं में ही हुआ।'

(आर्य-समाज का इतिहास - भाग 2, पृ0 376)

'विनायक दामोदर सावरकर और दिल्ली के हरदयाल जैसे अनेक देशभक्त युवक उसकी ये छात्रवृत्तियां पाकर वहां एकत्र होने और उससे देशभक्ति की शिक्षा पाने लगे।'

(हमारा राजस्थान, पृ0 292)

श्यामजी कृष्ण वर्मा के चारों ओर थोड़े ही दिनों में एक बहुत बडा शिष्य समाज इक्ट्ठा हो गया, इन एकत्रित होनेवाले लोगों में विनायक दामोदर सावरकर भी थे।

(भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ0 27)

इतिहास के ये प्रमाण पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि वीर सावरकर को भारत के स्वाधीनतासंग्राम में मर-मिटने की प्रेरणा देने

का सम्पूर्ण श्रेय महर्षि दयानन्द सरस्वती के अमरशिष्य श्याम जी कृष्ण वर्मा को ही है, वीर सावरकर ही इतिहास का वह पहला गम्भीर राष्ट्रीय विचारक तथा चिन्तक था जिसने 1857 के सग्राम को भारतीय स्वाधीनतासंग्राम की संज्ञा देकर उस युद्ध में मर-मिटनेवाले देशभक्तों के विचार, तप, त्याग, बलिदान का वास्तविक मूल्यांकन कर उनके साथ न्याय किया था। सावरकर जी अपने इण्डिया हाऊस में अपने उस अमरग्रंथ की भी कथा किया करते थे, परिणामस्वरूप जब यह ब्रिटिश सरकार को ज्ञात हुआ तो उसने इनके प्रकाशन से पूर्व ही इस ग्रंथ की जब्ती की घोषणा कर दी परन्तु इतने पर भी उसे संतोष नहीं हुआ, बल्कि उसके गुप्तचर विभाग ने उस ग्रंथ के हस्तलिखित दो अध्याय चुरा भी लिये थे, बाद मे सरकार की आंखों मे धूल झोंककर विदेशो में ही यह ग्रंथ गुप्तरूप से प्रकाशित कराकर अपने देश तथा विदेशों तक को भी भेजा गया, विश्व के इतिहास में यह भी एक अद्‌भुत घटना है कि वीर सावरकर का यह क्रांन्तिकारी ग्रंथ प्रकाशित होने से पूर्व ही जब्ती के योग्य घोषित किया गया।

पाठको को स्मरण रखना चाहिए कि अंग्रेज सरकार के दिल में भय का भूकम्प उत्पन्न करनेवाले इस विश्वविख्यात ग्रंथ को लिखते समय सावरकर जी की आयु केवल मात्र 23 वर्ष की थी, लन्दन में रहते हुये सावरकर जी ने जिन छात्रों को देशभक्ति के रंग में रंगा उनमें मदनलाल धींगडा प्रमुख थे, वीर धींगड़ा ने सावरकर की बनाई योजना के अनुसार कर्जन वायली को गोली का शिकार बनाकर नरकधाम भेज दिया था, जब धींगडा का केस लन्दन की अदालत मे विचाराधीन था, तब वहां श्री विपिनचन्द्र पाल की अध्यक्षता में एक सभा हुई, जिसमें सारे टोडी बच्चे दनदना रहे थे और धींगडा के इस कार्य को जघन्य, पापपूर्ण, राजद्रोह आदि शब्दों से सम्बोधित कर धींगड़ा की लगातार निंदा करते जा रहे थे, वीर सावरकर तथा उनके साथी दिल मसोसकर बैठे हुए थे, आखिर अध्यक्ष की कुर्सी से उठकर पाल महोदय ने बोलते हुए कहा कि-"तो क्या मान लिया जाये मदनलाल धींगड़ा की निंदा का प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किया

जाता है," ? इतना सुनने के साथ ही वीर सावरकर उठकर सिंह की भांति गरजते हुये बोले कि 'मैं' कुछ कहना चाहता हूं, चूंकि वह सरकारी दुमछल्लों की भांति पूरी स्वतन्त्रता से अपनी बात नहीं कह सकते थे, अतः उन्होंने वकालत का एक दाव चलाते हुये कहा कि उसका केस अभी विचाराधीन है, अतः बिना अदालत का कोई निर्णय हुये निंदा के प्रस्ताव का उसके केस पर विपरीत प्रभाव पड सकता है, सावकर इतना ही कह रहे थे कि एक अंग्रेज अपने पाजामे से बाहर हो गया और उसने सावरकर जी के मुख पर एक घूंसा मारते हुये कहा कि "ज़रा अंग्रेजी घूंसे का मज़ा ले लो कैसा ठीक बैठता है,"

ठीक उसी समय श्यामजी कृष्ण वर्मा के एक शिष्य ने उस अंग्रेज के गंजे सिर पर एक मज़बूत डंडे का प्रहार करते हुए कहा कि "जरा इसका भी तो मज़ा ले लो, यह हिन्दुस्तान का डंडा है," बस सभा में गड़बड़ मच गई, किसी ने उसी समय वहां पर एक पटाखा छोड दिया, परिणामस्वरूप धींगडा के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का कोई प्रस्ताव पास किये बिना ही सभा भंग हो गई, वीर जी के इन कार्यो से भयभीत होकर अंग्रेज सरकार ने इनको गिरफ्तार कर लिया, जब इन पर मुकद्मा चलाने के उद्देश्य से इन्हे जलयान के द्वारा भारत लाया जा रहा था, तब श्यामजी ने फ्रांस देश की भूमि पर अंग्रेज पुलिस से इन्हें छीनने का एक षड्यंत्र किया, श्यामजी की योजनानुसार सावरकर जहाज से समुद्र में कूद गये, जहाज पर से पुलिस के द्वारा लगातार इन पर की जा रही गोलीवर्षा के बावजूद भी भारत का यह सिंहपुत्र समुद्र की छाती चीरता हुआ, मासलेज नामक बन्दरगाह पर जा लगा, और फ्रांस की भूमि पर भागा, वहां एक फ्रैंच सिपाही से अपने को वहां की अदालत में ले जाने को कहा, परन्तु उसकी मूर्खता ने सारा बना बनाया खेल बिगाड दिया, आखिर पीछे लगी अंग्रेज पुलिस केवल कच्छा और बनियान पहने सावरकर को घसीटती हुई जहाज की ओर ले गई, उस समय भी सावरकर ने चिल्लाते हुये कहा कि तुम अन्तर्राष्ट्रीय नियमों की अवहेलना कर

दूसरे देश की भूमि पर से उसके बिना पूछे मुझे क्यो पकड रहो हो ? यह कौन से संविधान का कौन–सा कानून है ? परन्तुं वहां सुननेवाला था ही कौन ? अन्ततः आपको पकड़कर जहाज में डाल दिया और भारत लाकर सम्राट् विद्रोही होने का मुकदमा आरम्भ कर दिया, सावरकर के इस काण्ड को लेकर इनके सहयोगियों ने हेग स्थित अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध मुकदमा चलाया, परन्तु उस समय वहां भी अंग्रेजो का दबदबा होने से न्यायप्राप्ति कैसे हो सकती थी ? जब नंगी संगीन चढ़ाये पुलिस दल से घिरा सावरकर अदालत मे हाज़िर हुआ तो इस वीर ने हथकड़ियों से जकड़े दोनों हाथों को न्यायाधीश की मेज पर पटकते हुये भारतमाता की जय का घोष किया, सावरकर के इस तेजोमय तथा वीरतायुक्त स्वरूप को देखकर वह अंग्रेज न्यायाधीश भी एक बार तो हैरान रह गया, पुनः अनेक षड्यंत्रों के अभियोग में इस महावीर को दो जन्मों के कालापानी की सज़ा दी गई थी, दो जन्मों का अर्थ था 50 वर्ष, उस समय अदालत में हंसते हुये सावरकर ने कहा था कि 'चलो अंग्रेजी सरकार ने मुझे दो जन्मो का दण्डस्वरूप कारावास देकर हिन्दू धर्म के पुनर्जन्म के सिद्धान्त को तो मान ही लिया है, जिसके लिये ईसाईयत में अब तक कोई भी स्थान नहीं था, वीरजी को यह दण्ड सन् 1910 में दिया गया था, जब एक अंग्रेज अधिकारी दण्ड पट्टिका लेकर इनके पास आया जिसमें इनके मुक्त होने का समय सन् 1960 लिखा हुआ था, और जब उसने सावरकर जी को यह कहते हुये दण्डपट्टिका दी कि "मेरी दयालु सरकार तुम्हें 1960 में अवश्यमेव मुक्त कर देगी" तब इस राजनैतिक भविष्यद्रष्टा ने मुस्कुराते हुये कहा था क्या तुम यह विश्वास करते हो कि 1960 तक भारत में अंग्रेजी राज्य रह पायेगा ? सावरकर की इस भविष्यवाणी में आज किंचित् भी सन्देह नहीं रहा है, उस समय सावरकर का नया–नया विवाह हुआ था, और तभी 50 वर्ष के कालेपानी का भयानक दण्ड, पाठक जरा इतने लम्बे समय की कल्पना तो करें। जब इनको अंडेमान भेजे जाने की तैयारियां हो रही थी तब इनकी नवविवाहिता पत्नी जिसके हाथों से अभी विवाह की मेंहदी

उतरी भी नहीं थी, जिसने अच्छी तरह न अपने पति का मुख ही देखा था और न ही जीवन के उस आरम्भिक सुखदायी क्षणों का कुछ सुख ही ले पायी थी, सांसारिक दृष्टि से जो अभी सर्वथा नादान ही थी, वह जेल में आपसे मिलने आयी, पाठकवर्ग! उस दुःखदायी दारुण घडी की कल्पना करें कि अभी विवाह हुआ है, संसार की रंगरलियां नहीं मनाई, उठती जवानिया हैं, दिलों में कुछ अरमान तथा तमन्नाये है, एक अंजान पुरुष के साथ बंध जाने के सिवाय विवाह का अर्थ और कुछ नहीं समझा है।

वह अन्जान पुरुष ही जिसका सब प्रकार का सहारा है, लेकिन ओह! दुर्भाग्य! ऐसे समय मे 50 वर्ष का कालापानी मिल जाता है, मानो क्रूर दुर्दैव मधुर सपनों से उठाकर कांटों से भरे यथार्थ में ला पटक देता है, क्या सोचा और क्या हो गया? इतने लम्बे समय के वियोग से जीवनसंगिनी अधीर, निराश तथा दुःखी न हो अतः उन्होंने उसे समझाते हुए कहा कि 'ईश्वरकृपा हुई तो पुनः भेंट होगी, तब तक यदि सामान्य संसार का मोह होने लग जाये तो ऐसा विचार करो कि बेटे-बेटियों की संख्या बढाना तथा चार तिनके जमा करके घर बांधना ही यदि संसार कहलाता है, तो ऐसे ससार तो कौवे और चिडियां भी करती हैं, परन्तु यदि परिवार का इससे भव्य अर्थ लेना हो, तो मानव के समान उसके योग्य संसार सजाने में हम भी तो कृतकार्य हो चुके हैं, हमने अपने दो-चार मटकों को तोडफोड़ डाला जिससे आगे चलकर हजारों के घरों में शायद सुवर्ण का धुआं उठेगा, फिर भी घर करनेवाले कितने लोग प्लेग के शिकार बन ही जाते है, और घर बेचिराग हो जाते हैं, विवाह मंडप से भी पति-पत्नी को विलग कर मृत्यु के दातों तले दबाकर दैव कई जोड़ियों को विजोड़ बना ही देता है, यहां संकटों से सामना करना सीखो।"

(आजन्म कारावास-ले० विनायक दामोदर सावरकर, पृ० 18-10 भाग)

पाठकवर्ग! सोचें इन शब्दों मे कितना जीवन तत्त्व, जीवन का यथार्थ स्वरूप, मौत को ललकारने वाला साहस एवं भौतिक संसार की अस्थिरता का चित्रण है?

आप अंडेमान मे पोर्ट ब्लेयर की कोठरी नं0 123 मे बन्द रखे गये, वहा पर आपको सबसे भयंकर कैदी माना गया था, इस वीर को जो लन्दन से बैरिस्टरी उत्तीर्ण था निम्न कोटि के कैदियो के साथ ही उन्हीं के स्तर पर नारियल की रस्सी बाटने, दिनभर तेल निकालनेवाले कोल्हू को खींचकर तेल निकालने जैसे पाशविक तथा कठोर कार्य भी स्वाधीनता के लिए करने पड़े टबों मे नहाने के अभ्यासी को केवलमात्र तीन कटोरी जल से स्नान करना पडता था, पढने-लिखने की कोई सुविधा न थी, वर्ष में केवलमात्र एक ही पत्र और औ वह भी अपनी कुशल-मंगल के समाचार का लिखने की आज्ञा थी, इतने पर भी वह पत्र भी तो घरवालों को सैंन्सर होकर मिलते थे, यहा रहते हुए भी आपने दीवारों पर लिखकर साहित्यसृजन का अपूर्व कार्य किया, साथ ही आप यहां रहते हुये बन्दियों में हिन्दी का प्रचार करते थे, उन्हें हिन्दी भाषा का ज्ञान तथा नैतिक शिक्षा देने के लिए आप महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत अमरग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश का विशेष तथा अधिक उपयोग किया करते थे, पाठक उन्हीं के शब्दों में इस तथ्य को पढ़ने का कष्ट करें – ''अंडमान में हिन्दी पुस्तको की भर्ती करते फिरते अन्तः स्थवाचनालय रखे गये थे, जिनका वर्णन इसी ग्रंथ में अन्यत्र है, जिन वाचनालयों मे अर्थशास्त्र, राजनीति, राजकीय आंदोलन आदि नीवनतम पुस्तकें भी नित्य आती रहती थीं, जिनसे प्रौढ विषयों का ज्ञान होने में सुविधा मिलती थी, 'सत्यार्थ प्रकाश' की ओर मैने विशेष ध्यान दिलवाया, राजवंदी भी उसे बारबार पढ़ते रहे, स्वामी दयानन्द जी का यह ग्रथ कुछ अपवाद छोडकर हिन्दू संस्कृति के उच्चतम सिद्धांत मन पर अंकित करता है, हिन्दू धर्म का राष्ट्रीय स्वरूप व्यक्त करता है तथा है एक अदम्य उत्साही थाती का प्रचारक।''

(आजन्म कारावास, भाग 3, ले0 वी0 दा0 सावरकर, पृ0 299)

अडमान की जेल में आपके जीवन का एक लम्बा हिस्सा मुसीबतो मे गुज़रा, आपका जर्जर शरीर उन महान् कष्टों की एक लम्बी तथा पुरानी गाथा सिद्ध होती थी, जो आपने-अपने जीवन में

बर्बर, परम अत्याचारी तथा दानवता की पराकाष्ठा तक जा पहुचानेवाले अंग्रेज शासकों के द्वारा दिये जाने पर सहर्ष झेले थे आपसे पूर्व ही आपके बडे भाई श्री गणेश दामोदर सावरकर उसी जेल मे बंदी थे, परन्तु आपकी वहा उपस्थिति का उन्हें ज्ञान नहीं था, जब एक दिन चन्द मिन्टों के मिलाप से जो कि अचानक हो गई थी, वे आपकी वहां पर उपस्थिति जान पाये तो उन्हें अपार हर्ष की अनुभूति हुई, 14 वर्ष का कारागार भुगतकर जब आपको विशेष कारण से अंडमान से लाकर आपकी जन्मभूमि जि0 रत्नागिरी (महाराष्ट्र) मे स्थानबद्धता के साथ-साथ आपकी जुबाबन्दी भी कर दी, तब आप वहां पर हिन्दी भाषा के प्रचार का मौलिक काम करने लग गये थे, जेल से आप मुक्त हुए तो देशवासियो ने बडे उत्साह से आपका स्वागत कर आपके प्रति सम्मान प्रकट किया था, रत्नागिरी जिले में तो उस समय दीपावली की भांति कई दिन तक रात्रि को घरों पर दीपक जलाये गये थे, आपने आर्यसमाज द्वारा आयोजित शोलापुर के सम्मेलन को आशीर्वाद प्रदान कर हैदराबाद मे किये जाने वाले आर्यसत्याग्रह का मार्गदर्शन कराया था, देश की स्वाधीनता के लिए अपना सर्वस्व होम देनेवाले इस नरकेसरी के लिए स्वतन्त्र भारत में राष्ट्रीय सरकार के दिल में किसी प्रकार की सम्मान की भावना नहीं थी, इससे अधिक बढकर कृतघ्नता तथा अहसानफरामोशी और क्या होगी ? अपने जीवन के अन्तिम समय में इस देशभक्त ने जो कष्ट सहने पडे वे स्वतन्त्र भारत की सरकार के माथे पर बदनुमा तथा अमिट काले धब्बे हैं, जो भारत को पराधीन करने के लिए अनेक प्रकार के छलबल करते रहे, जिसका प्रत्येक कार्य भारत के विनाश, अपयश, गहरी गुलामी के ही निमित्त होता था, उस मि0 चर्चिल के मरने पर तो स्वतन्त्र भारत की सरकार राष्ट्रीय झण्डा झुकाकर तथा उसके शोक में ससद् का अधिवेशन तक स्थगित कर मानसिक गुलामी का परिचय देने में गौरव का अनुभव कर सकती है, लेकिन भारतमाता की गुलामी की मजबूत जंजीरों को छिन्न-भिन्न करने के उद्देश्य से अंडमान की कराल कोठरियों में अपनी उफनती जवानी को गला देने वाले

जो भारत की आजादी रूपी भवन की नींव के पत्थर हैं, उसकी मृत्यु पर शोक प्रस्ताव तक भी नहीं।

हाय रे भारत! तेरे यहां तुझ पर मर–मिटनेवालों का यही सम्मान ? शहीदों तथा देशभक्तो के अरमानों और शहादत के साथ इन कृतघ्न काग्रेसियों का इतना क्रूर मजाक ? इतना ही नहीं बल्कि स्वतन्त्र भारत की गांधीवादी सरकार की नज़रों में यह व्यक्ति सदैव खटकता रहा, इसलिए केवलमात्र बदनाम करने के कुटिल उद्देश्य से उन्हें गांधी हत्याकाड में फंसाया गया था, जब स्वतन्त्र भारत की लोकसभा में सरकारी सहायता देने का प्रश्न आया तब एक कांग्रेसी सदस्य ने इनको साम्प्रदायिक कह कर इनको आर्थिक सहायता देने का विरोध किया था, परन्तु ठीक इसके विपरीत शेख अब्दुल्ला जैसे देशद्रोहियों को जेलो में भी देशद्रोह का अपराधी होने की स्थिति मे जो सम्मान तथा सुविधायें दी गई थीं, क्या वे किसी राजकीय अतिथि के सम्मान से कम थीं ? मास्टर तारासिंह जैसे जोकि देश की खण्डता तथा विघटनवादी प्रवृत्तियों का प्रतीक बन गया था, उसको स्वतन्त्र भारत की संसद् की श्रद्धांजलि समर्पित करना तथाकथित धर्मनिरपेक्ष काग्रेस सरकार की बुद्धि के दीवालियेपन तथा विकृत चिन्तन का द्योतक नहीं है क्या ? शायद सावरकर का हिंदू होना ही सबसे बड़ा अपराध हो, क्योकि स्वतन्त्र भारत की काग्रेस सरकार का दृष्टिकोण तो यही सिद्ध होता है।

जब 1957 में दिल्ली के सारे आर्यजगत् ने आपका अभिनन्दन किया तब उस असवर पर बोलते हुये आपने कहा था आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द के सम्बन्ध में मेरी श्रद्धा किसी से छिपी नहीं है, महर्षि का सत्यार्थप्रकाश पढ़कर मैं संतोष प्राप्त करता हूं, मैं जिस स्वाधीनता का चिन्तन करता हूं उसमें महर्षि दयानन्द का सत्यार्थप्रकाश सहायक है इसलिए मैं स्वामी दयानन्द का पक्का चेला हूं (इसके आगे आपने कहा) इस समय देश में आर्यसमाज ही एक ऐसी संस्था है जो प्रत्येक प्रकार के राजनीतिक स्वार्थो और सन्देहों से ऊपर है, इसी में देश के कल्याण की अधिक क्षमता है।

(नवभारत टाइम्स, हिन्दी दैनिक, दिल्ली 16–8–57 अंक का)

ऋषि दयानन्द सरस्वती के इन देशभक्त वीर शिष्यो ने भारत देश की पराधीनता की बेड़ियों को तोडने के लिए अपने परिवारों को बिलखता छोड़, मातृभूमि से दूर अंडमान जैसी नारकीय ज़मीन पर वहां की तंग, गंदी तथा अन्धेरी कोठरियां में अपनी उभरती तथा मुस्कुराती जवानिया गलाकर रख दी थीं, काश! कि आज के तथाकथित इतिहासकार इनके बलिदानों का यथार्थ विवरण आनेवाली पीढ़ियों तक पहुंचाकर तथा उनसे भारत की भावी पीढ़ियों को प्रेरणा देकर इनके तथा अपने देश के प्रति कुछ कृतज्ञता प्रकट कर पाते, महर्षि दयानन्द सरस्वती की इसी राष्ट्रीय भावना से प्रभावित एवं प्रेरित हो, देश की स्वाधीनता के निमित्त अपना सर्वस्व होमनेवाला इन देशभक्तों में सावरकर जी के पश्चात् उनके मुख्य शिष्य मदनलाल धींगड़ा का नाम आता है, "आर्यसमाजी विचार रखनेवाले क्रांतिकारियों में से पहला नाम मदनलाल धींगड़ा का है, जिसने लंदन में कर्जन वायली की हत्या की थी।

(आर्यसमाज का इतिहास–भाग 2, पृ0 365)

जब धींगडा इण्डिया हाउस के सम्पर्क से देशभक्ति के रंग मे रग गये, तब उसने स्वयं ही वीर सावरकर जी से अपने दल में दीक्षित करने की प्रार्थना की, वीर सावरकर जी के कहने पर धींगडा ने अपना हाथ मेज पर टिका दिया, सावरकर ने एक तीखा सूआ लेकर पूरे जोर के साथ उसके हाथ पर मार दिया, सूआ मदन के हाथों में से पार निकलकर मेज़ में जा गडा, परन्तु मदन के मुख पर दुःख या विषाद का कोई चिन्ह दृष्टिगोचर न हुआ, सावरकर ने उसे बडे प्रेम के साथ अपनी छाती से लगा लिया और कहा कि आज से आप मेरे दल में दीक्षित हो गये हो, ऋषि दयानन्द सरस्वती के इसी वीर शिष्य ने भरे जनसमूह के देखते कर्ज़न वायली को गोली से उडाकर भारतमाता के अपमान का प्रखर तथा करारा प्रतिशोध लिया था, इस पर जब मुकद्मा चला तब लन्दन की अदालत मे वक्तव्य देते हुए धींगड़ा ने कहा था कि– "मैंने अनुभव किया कि पराधीनता हमारे परमात्मा के अपमान के समान है, मातृभूमि की सेवा ही श्रीराम

और श्रीकृष्ण की सेवा है, मेरे पास न धन है न बुद्धि है। मेरे जैसे निर्धन पुत्र के पास माता की भेट चढाने के लिए अपने रुधिर के अतिरिक्त कुछ नहीं, मैंने वही भेंट दे दी।

भारत में आज एक ही पाठ पढाने की आवश्यकता है और वह यह है कि मरा कैसे जाता है और उसे सिखाने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि हम स्वयं मरकर दिखायें, इस कारण मैं मर रहा हूं, मैं अपनी मृत्यु पर गर्व करता हूं।

(भारतीय स्वाधीनतासंग्राम का इतिहास, पृ0 182)

यह थी पवित्र भावना उन लोगों की, जो कि देश की स्वाधीनता के लिए अपने सिर-धड की बाजी लगा गये, राष्ट्रीय स्वाधीनता की उस कार्य-परम्परा का जो महर्षि के शिष्य श्यामजी कृष्ण वर्मा के द्वारा विदेशों में आरम्भ की गई थी, उसका थोडा-सा दिग्दर्शन कराया गया है, इसके अतिरिक्त भारत में ही सीधे आर्यसमाज तथा ऋषि दयानन्द सरस्वती से ही स्वाधीनता की प्रेरणा प्राप्त कर लोगों ने इस सम्बन्ध मे जो अद्भुत साहसिक कार्य किया है, उसका किंचित् वृत्तांत उपस्थित किया जाता है, इस ओर जब लेखक की नज़रे जाती है तब सर्वप्रथम हमारे सामने देशभक्त आर्यवीर स0 अजीतसिंह का नाम आता है, आप भारत के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी देश की आजादी के लिए अपना बलिदान करनेवाले अमरशहीद भगतसिंह के चाचा थे।

श्री अजीत सिंह

आपने आर्यसमाज से ही स्वाधीनता का मंत्र सीखा था, आपके पूज्यपिता श्री अर्जुनसिंह जी आर्यसमाज के आरम्भिक नेताओं, कार्य-कर्त्ताओं, उपदेशको में मुख्य स्थान रखते थे, 'जो सिख होते हुए भी आर्यसमाजी अधिक थे, सरदार अजीतसिंह जालन्धर के रहनेवाले थे, और वहीं के डी0 ए0 वी0 स्कूल में उन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी।

(भा0 स्वा0 सं0 का इहिहास, पृ0 113)

जब सन् 1906-1907 मे पंजाब सरकार ने भूमि के सम्बंध मे किसानों के रक्त का शोषण करनेवाला एक काला तथा कठोर कानून बनाया, तब इन्होंने डा0 गोकुलचन्द नारंग, चौ0 रामभजदत्त, पं0 रामचन्द्र, डा0 ईश्वरीप्रसाद, महाशय कृष्ण तथा पंजाब में फौजी शासन के ख्यातनामा अभियुक्त देशभक्त महाशय रत्नचन्द्र जैसे प्रसिद्ध देशभक्त आर्यसमाजियों को साथ लेकर लाला लाजपतराय के नेतृत्व में "भारतमाता सोसाईटी" नामक संस्था की स्थापना की थी और सरकार के उस कठोर तथा रक्तशोषक काले कानून के विरुद्ध एक गरम आन्दोलन चलाया था, उस समय लाला लाजतपराय को गिरफ्तार कर माण्डला के किले में अनिश्चितकाल के लिए बद कर दिया गया था एवं उसी सम्बन्ध में अजीतसिंह को पकडने के लिए अंग्रेज पुलिस ने रात-दिन एक कर दिया था, परन्तु महाशय कृष्ण की सम्मत्ति से महाशय रत्नचन्द्र ने पुलिस की परेशानियों का तमाशा देखने के अभिप्राय से दो महीने तक इन्हें अपने घर में ही छिपाये रखा, पुन: किसी की भूल के कारण वे पकडे गये और इनको देश-निर्वासन का दंड लाला जी के साथ ही मिला था, उसके बाद मैं तो इन्होंने भी विदेशों में जाकर अपने सहयोगी सूफी अम्बाप्रसाद तथा राजा महेन्द्र प्रताप के साथ भारत की स्वाधीनता के हेतु अनुपम साहसिक कार्य किए, अंत में जब आप भारत लौटे, तब सन् 1946 में आर्यजगत् की प्रसिद्ध राष्ट्रवादी शिक्षा संस्था गुरुकुल विश्वविद्यालय कागडी के वार्षिकोत्सव पर वहां के अधि ाकारियो ने इन्हें निमन्त्रित कर एक महत्त्वपूर्ण सम्मेलन का अध्यक्ष बनाकर सम्मानित किया, उस अवसर पर बोलते हुए आपने आर्यसमाज के प्रति अपनी भक्ति, निष्ठा तथा प्रेम का परिचय दिया था।

प्रिय पाठको! अजीतसिह वह आर्यवीर था जिसने भारत की आज़ादी के लिए अपने यौवन के 38 वर्ष विदेशो की खाक छानने में बिता दिये, वहां भूखे-प्यासे नगे रहते हुए आपने क्या-क्या कष्ट नहीं झेले ? कितने वर्ष बिना छत के ही खुले आकाश के नीचे आपने बिताये। कैसे आपने उनकी भाषा सीखकर उस सर्वथा ही परिचयहीन

देश में अपना निर्वाह किया होगा वह तो एक अज्ञात तथा अनकही कहानी है और वह भी एक-दो वर्षों की नहीं बल्कि पूरे 38 वर्ष की है, सन् 1910 ई0 में जबकि नया-नया विवाह हुआ था, उठती जवानी तथा उठते अरमान थे, लेकिन अपने सभी अरमानों की होली जलाकर, सारी तमन्नाओ को पैरों के नीचे कुचलकर, सारी सांसारिक इच्छाओं को दफनाकर, यह आजादी का दीवाना एक दिन अपनी पत्नी से "परसो आ जाऊंगा" यह कहकर देश से लापता हो गया, उस देवी हरनाम कौर के लिए वह "परसों" शब्द एक-दो दिन या दस-बीस वर्ष एक तो क्या पूरे 38 वर्ष के बाद ही आया, जबकि उस देवी का यौवनरूपी बसंत बुढ़ापे के पतझड़ के रूप में बदल चुका था, स्वयं अजीतसिंह भी भरी जवानी लेकर गया था, परन्तु बदले में जर्जर बुढ़ापा लेकर लौटा था।

एक बार तो पहले ही दर्शन में देवी ने अपने पति को पहचाना भी नहीं परन्तु बाद में अजीतसिंह के अपने कुल, सम्बन्धियों तथा उन-उन नामों एवं घटी घटनाओ का सही-सही विवरण उपस्थित किए जाने पर देवी के लिए उनके अपने पति होने का विश्वास करने के सिवाय और कोई चारा नहीं रह गया था, उनका शरीर जर्जरित हो गया था, फिर भी उनकी आत्मा में दृढ़ विश्वास था कि "जिस आजादी के लिए मैं जिन्दगी भर जुझता रहा, उसे बिना देखे कैसे मर सकता हूं? आखिर ऐसे जाबांज़ बहादुर सपूतों के तप, त्याग, साधना एवं बलिदानों के फलस्वरुप भारत के प्रांगण में स्वतन्त्रता देवी ने प्रवेश किया। वह सौभाग्यशाली दिन 15 अगस्त 1947 की बेला निकट आ पहुंची, अपने सपनों को अपने सामने साकार होते देखकर अपने खून-पसीने की कमाई को अपने दरवाज़े पर अपने चरणों में लोट-पोट होते हुए देखकर प्रस्तर प्रतिमायें भी सजीव हो उठती हैं, वे तो सहानुभूति तथा संवेदनापूर्ण हृदय रखनेवाले थे, लेकिन साथ ही अपनी आंखों के सामने ही भारतमाता का अंगभंग होते हुए देखकर उनका हृदय चीत्कार कर उठा, उनकी आंखों से खून के आंसू गिरने लगे, उनका हृदय टूक-टूक हो गया और उनके मुख से अचानक ही निकला "न जवाहरलाल देख रहा है, जिन्ना, दोनों तरफ खून की नदिया

बह जायेंगी, मैं भला उसे कैसे देख सकता हूँ? ना, 'मैं उसे नहीं देखूंगा, मैं तो चला ही जाऊंगा।''

14 अगस्त की रात्रि को डलहौज़ी नगर में वे रेडियो पर आज़ादी का आंखों देखा हाल सुनते रहे, 15 अगस्त को प्रातः अचानक उठे और बोले सरदारनी जी! मेरी ज़िन्दगी का मकसद पूरा हो गया, अब मैं जा रहा हूं, लो मेरा आखिरी ब्यान सुन लो, दुनियां भर में मेरे दोस्त फैले हुये हैं। वे शिकायत करेंगे कि बिना हमसे कुछ कहे ही चला गया, जब पारिवारिक लोगों ने उनकी इस बात पर विश्वास न करके उनकी अन्तिम वसीयत लिखने की टालमटोल की तब वे बोले खैर मत लिखो, दुनियां के लोग तुम्हारी ही शिकायत करेंगे, इतना कह वे सोफा पर बैठ गये और अपनी पत्नी हरनाम कौर को बुलाकर बोले कि ''मैंने तुमसे शादी की थी, तुम्हारी सेवा करना मेरा फर्ज़ था, पर मैं भारतमाता की सेवा में लगा रहा, कुछ भी हो कसूर हुआ ही, पुनः गंभीर मुद्रा में बोले- 'सरदारनी जी मुझे माफ कर देना, इतना कहकर उठकर अपने दोनों हाथों से श्रीमती हरनाम कौर के पैरों को छुआ, परन्तु सरदारनी जी चौंककर पीछे हट गई और अजीतसिंह जी ने पैर ऊपर कर सोफे पर लेट कर एक लम्बी ध्वनि ''जयहिंद'' के साथ अपने नश्वर शरीर को छोड़ परलोक चले गये।

(युगद्रष्टा भगतसिंह और उनके मृत्युंजयी पुरखे – ले0 वीरेन्द्र सिन्धु पृ0 100-101)

पाठकवृन्द ! अपनी खून पसीने की कमाई को अपनी ही आंखों के सामने अपने लोगों द्वारा लुटते देखकर, अपने ही लोगों के द्वारा अपने सिद्धान्तों को चूर-चूर किये जाते देखकर कौन स्वाभिमानी पुरुष होगा जो संसार में ज़िन्दा रहने की कल्पना कर सकता है ? बहुत से शूरमा ऐसे थे कि जो अपना बलिदान देकर राष्ट्र स्वाधीनता लाये परन्तु यह वीर उनमें से था जो अपना खून-पसीना एक करके देश को स्वाधीन करने में समर्थ हुये, परन्तु उसका फल चखने से पहले ही अपना बलिदान दे गये। देश के निमित्त इनके द्वारा किये गये उपकारो को क्या स्वतन्त्र भारत की पीढ़ी इन्हें भूल सकती है ?

राजा महेन्द्रप्रताप

इनके साथ ही देश की स्वाधीनता के क्षेत्र में पर्दापण कर उसके लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर करनेवाले देशभक्त आर्यवीरों में राजा महेन्द्रप्रताप का नाम आता है, पहले लोगों की ही भांति राजाजी को भी अपना राजनैतिक तथा स्वाधीनता प्राप्ति का मार्ग निर्धारण करने में आर्यसमाज का वातावरण तथा विचारधारा ही सहायक रही है, आर्यसमाज जब अपने आरम्भिक काल में राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं की स्थापना में संलग्न था तब आपने वृन्दावन में स्थित अपनी भूमि का एक बड़ा हिस्सा बागीचे सहित आर्यसमाज को दान में दिया था, आज जिसमें गुरुकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन जैसी विशाल संस्था खड़ी है, आर्यसमाज के राजनैतिक संत, देशभक्त आर्यवीर रामप्रसाद बिस्मिल के गुरु श्री स्वामी सोमदेव जी महाराज के भक्तों में आपका प्रमुख स्थान था।

आगरा की आर्य मित्रसभा के वार्षिकोत्सव पर आपके (स्वामी सोमदेवजी) व्याख्यानों को श्रवणकर राजा महेन्द्रप्रताप जी बड़े मुग्ध हुये, राजा साहब ने आपके पैर छुये, और आपको अपनी कोठी पर लिवा ले गये, उस समय से राजा साहब अधिकतर आपके उपदेश सुना करते थे, और आपको अपना गुरु मानते थे।

(अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा, पृ0 28)

आर्यसमाज के इन अलमस्त फकीरों के चरणों में बैठकर ही राजा साहब ने भारत की स्वाधीनता के तराने सीखे थे, इसी स्वाधीनता की मस्ती के कारण आपको अपनी रियासत तथा अन्य सभी भौतिक सम्पत्ति से भी हाथ धोने पड़े थे, एक दिन रात के बारह बजे ही अचानक आपने देश छोड़ने की तैयारी कर ली, सामने ही नव-विवाहिता पत्नी खड़ी थी, राजा साहब उसे समझा रहे थे कि देवी! यह जवानी विषय भोगों में गंवाने की चीज नहीं है, आज बन्धन में पड़ी भारतमाता देश की जवानियों की ओर अधीरताभरी नजरों से देख रही है, अतः यदि आज यह मेरी जवानी देश की स्वाधीनता

के काम आ जाये, तो मेरा जन्म सफल है वहां उससे भी अधिक बढ़कर तुम्हारा जन्म धन्य होगा, और आनेवाली कल की पीढ़ियां तुम्हारे इस त्याग के यश का गुणगान करेंगी, देवी ने पूछा कि वहां से कब लौटोगे ? उत्तर में कहा कि देवी कह नहीं सकता कि कब लौटूं ? और ज़िन्दा लौट भी पाता हूं कि नहीं ? इतना कह चल दिये, और रुपोश होकर भारत से बाहर जा पहुंचे, जहां विदेशों, विशेषकर सीमा प्रांत पर आप लगातार 31 वर्ष तक भारत की आजादी की अलख जगाते रहे, उस काल में आप कहां-कहां पर गये, किस-किस से भेंट की, किस-किस से आज़ादी के लिये सहयोग की भिक्षा मांगी कितने जंगल, पर्वत गुफायें छान मारी, कभी भूखे-प्यासे, कभी सर्दी-गर्मी में नंगे बदन, कभी कांटों से भरे जंगलों में बिना जूतों के मारे-मारे फिरे, वह इतिहास तो भारत का एक अमूल्य किन्तु अलभ्य और प्रेरणास्पद अध्याय है जो कि उन्हीं के साथ परलोक चला गया है, विदेशों में आप एक आर्य सेना निर्मित कर भारत पर आक्रमण करके उसे विदेशी अंग्रेजों के पंजे से मुक्त कराने की योजना को भी क्रियान्वित करना चाहते थे, परन्तु उपयुक्त तथा विश्वस्त सहयोगियों, सहकर्मियों तथा साथियों के अभाव में यह आपका सपना-सपना ही रह गया, अंग्रेजों ने आपकी जो सम्पत्ति ज़ब्त की थी, वह आज स्वतन्त्र भारत होने पर भी आपको जीते-जी कभी वापिस न मिल सकी, यह है स्वतन्त्र भारत में स्वदेशभक्ति, स्वदेशनिष्ठा, देश की आज़ादी के लिए किये जाने वाले तप, त्याग, साधना, बलिदान का पुरस्कार तथा मूल्य ? इससे अधिक इन शहीदो के प्रति हमारी और क्या कृतघ्नता होगी ?

हरिशचन्द्र विद्यालंकार

इन्हीं के साथ स्वाधीनता के सदुद्देशय से सदा के लिए अपनी जन्मभूमि तथा हरदिल अजीज, अपने प्यारे वतन को छोड़ विदेशों में जाकर अपने जीवन को होमनेवाले श्री पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार (ज्येष्ठ सुपुत्र श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज) का नाम देखते हैं,

पंडित जी गुरुकुल कांगडी के सबसे पहले स्नातको में थे, अध्ययनकाल में इनका झुकाव राष्ट्रीयता की ओर अधिक था, स्नातक होने के पश्चात् तो आपने देश के विभिन्न भागों में जाकर अपने ओजस्वी भाषणो के द्वारा उग्र राष्ट्रीयतापूर्ण विचार प्रकट करने आरम्भ किये। यह वह समय था जबकि अंग्रेजी सरकार के सन्देह रूपी बादल आर्यसमाजी सस्थाओं पर उमड-घुमडकर मंडरा रहे थे अतः नौकरशाही का ध्यान आपकी ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक ही था, जब आपको यह निश्चय हो गया कि अपने देश मे रहते हुये स्वाधीनता का यथेष्ट कार्य नहीं किया जा सकता तो राजा महेन्द्रप्रताप के साथ उनके प्राइवेट सैक्रेटरी के रूप में आप भी अपने देश को छोड विदेशो में चले गये, वहां जाकर आज़ादी के इस दीवाने तथा परवाने ने अपने लक्ष्य की पूर्ति में क्या-क्या जोखिम उठाये, किस-किस स्थान पर मारा-मारा फिरा और अंत मं उसका क्या हुआ, इसका आज कोई प्रत्यक्ष तथा विस्तृत एवं मौलिक वर्णन उपलब्ध नहीं है, परन्तु इसमे कोई सन्देह नहीं कि आर्यसमाज से स्वाधीनता की घुट्टी पिये हुए इस नरवीर ने विदेशों मे रहते हुये शरीर में अन्तिम प्राण के रहते हुये देश की स्वाधीनता के लिए जो अपूर्व एवं परोक्ष कार्य किया होगा वह यदि आज प्रकाश में आ जाये तो निश्चय ही भारतीय स्वाधीनता संग्राम की वह एक रहस्यमयी, रोमांचकारी एवं गर्व करने वाली कहानी सिद्ध होगी, काश कि आज का प्रभावी आर्यसमाज उसे खोजकर जानने का प्रयत्न कर पाता, क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि आज का आर्यसमाज अपनी बहुमूल्य ऐतिहासिक सम्पत्ति के प्रति गहरी उपेक्षा तथा प्रमाद बरत रहा है, अतः आज आर्यसमाज को जगाने की बड़ी भारी आवश्यकता है, क्योंकि उसकी उपेक्षा, प्रमाद एवं उदासीनता के कारण उसका यथार्थ इतिहास मिट्टी मे मिलाया जा रहा है, यह कैसे ? पाठक ज़रा स्वयं पढ़े, देखें और उचित निर्णय करें –

इतिहास के ये शत्रु

"यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि अंग्रेज बहुत गुप्तचर रखते थे, इन गुप्तचरो में एक विशेष गुप्तचर महेन्द्रप्रताप का निजी मंत्री हरिश्चन्द्र था, जिसने बर्लिन समिति को तरह-तरह का धोखा देकर बहुत रुपये लिये थे, यह महाशय स्व0 श्रद्धानन्द के कोई थे, ऐसा डा0 दत्त ने लिखा है।"

(भारतीय क्रान्तिकारी आंदोलन का इतिहारा-ले0 मन्मथनाथ गुप्त, पृ0 150)

इस लेख के द्वारा श्री मन्मथनाथ जी गुप्त ने देशभक्त हरिश्चन्द्र को देशद्रोही सिद्ध करने का व्यर्थ प्रयास किया, साथ ही इस सम्बन्ध में कोई मौलिक एवं पुष्ट प्रमाण भी तो उपस्थित नहीं किया, यदि गुप्त जी कम्युनिज्म का काला चश्मा अपने नेत्रों से हटाकर देखने का ईमानदारी के साथ सच्चा प्रयास करें तो उन्हें मालूम हो जायेगा कि बिना किसी स्वार्थ के रूस के दुमछल्लों या एजेंटों की भांति जिन्होंने 1942 मे देशभक्तो की पीठ में छुरा घोपा तथा भारत की आजादी के साथ गहरी गद्दारी की, देश की आजादी के लिये किये आर्यसमाजियो के त्याग, तप, साधना, कष्टसहिष्णुता एवं बलिदानों से युक्त केवलमात्र स्वदेश में निष्ठा रखने वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में ऐसा मिथ्या, भ्रामक, प्रमाण एवं तथ्यहीन व्यर्थ की पंक्तियां लिखकर वे इतिहास के साथ घोर अन्याय के सिवाय और कुछ भी तो नहीं कर रहे हैं, श्रीयुक्त गुप्त जी के थोथे मन्तव्यों की पोल आगे भी यथास्थान प्रकट की जायेगी, अब प्रस्तुत संदिग्ध प्रकरण के निराकरण के लिए कुछ तथ्य उपस्थित किये जाते हैं।

1 अपने अमेरिका प्रवासकाल मे देशभक्त लाला लाजपतराय ने जो डायरियां लिखी थी वे कुछ समय हुआ पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ ने सानफ्रांसिस्को से प्राप्त करके अपने यहां सुरक्षित रखी हैं, उनमें एक स्थान पर अमेरिका में किये गये, हरिशचन्द्र की स्वाधीनता विषयक कार्यो का उल्लेख उपलब्ध होता है, जिसका आशय

यह है कि वह वहां के क्रांतिकारियों के पास ठहरा हुआ है, तथा भारतीय स्वाधीनता सग्राम के लिए वहा से धनराशि एकत्रित कर तथा शस्त्र संग्रह कर उन्हें गुप्तरूप से भारत भिजवाने की चिन्ता में है।

2 20 मार्च 1919 को अहमदाबाद में मिल मज़दूरों तथा मालिको से सुलह-सफाई में वे (स्व0 श्रद्धानन्द जी) सम्मिलित हुये, वहां 50 हज़ार मज़दूरो के सामने आपका भाषण हुआ, फिर शाम को 15 हजार के सामने सत्याग्रह विषय पर दूसरा भाषण हुआ, इससे वायसराय चेम्सफोर्ड घबरा गया, उसने भारत सचिव मि0 माण्टेग्यू को एक तार भेजा कि गांधी जी और स्वामी श्रद्धानन्द जी दोनों मिल गये है, जिसका (स्वामी श्रद्धानन्द का) एक बड़ा लड़का ब्यूनों एरिया (अमेरिका) मे एक क्रांतिकारी का मेहमान है, ब्यूनों एरिया दक्षिण अमेरिका के एक प्रजातंत्र राज्य की राजधानी है।

(स्वामी श्रद्धानन्द जी – ले0 सत्यदेव विद्यालंकार, पृ0 477-78)

इसी बात को स्वामी श्रद्धानन्द जी ने एक अन्य स्थान पर निम्न शब्दों में लिखा है।

3. 25/26 और 27 को मेरे (स्व0 श्रद्धानन्द के) तीन व्याख्यान हो चुके थे, जब लार्ड चैम्सफोर्ड (उस समय के वायसराय) ने भारत सचिव मि0 मानटिग्यू को एक पारिभाषिक तार (Ciphete Cable) भेजा, जिसका अंग्रेज़ी भाषा में अनुवाद कोई दैवी शक्ति मुझे दे गई थी, वह लेख तो महात्मा गांधी को दिखाकर मैंने फाड डाला था, परन्तु उसका शब्द-शब्द मुझे स्मरण है, तार यह था।

The agittation is proceeding apace. Mahatma Munshi Ram who has? Now assumed the name of Swami Shradha Nand, has joined hand with Gandhi he has been, a well know religious head for a long time and has gained considerable reputation as a social reformer also. He appears to be anxious to gain notoriety as a political agitator too. It is still to be seen what stamina he has got when the time for suffering comes. His elder son.for some time the guest of the well known revolutionist as Buenos Aryes. His younger son is running a rabid Anti Government Vernacular daily in Delhi. Let us wait and see.

अर्थात् आंदोलन खूब चल रहा है, महात्मा मुंशीराम ने जिसने अब स्वामी श्रद्धानन्द नाम रख लिया है, गांधी के साथ हाथ जोड़ लिये हैं, बहुत काल से वह प्रसिद्ध नेता रहा है और सामाजिक सुधार में उसने बहुत नाम पैदा किया है, अब मालूम होता है कि राजनैतिक आंदोलन में भी मशहूर होना चाहता है, अभी देखना है कि उसमें सहन करने का कितना पराक्रम है, उसका बड़ा लड़का कुछ काल तक प्रसिद्ध राजनैतिक विप्लवकर्त्ता का व्यूनो एरिया (दक्षिण अमेरिका के एक प्रजातन्त्र राज्य की राजधानी) में अतिथि रहा है, उसका छोटा लड़का दिल्ली में गवर्नमेंट के विरुद्ध देशी भाषा का गर्म दैनिक निकालता है, हम प्रतीक्षा करते हैं कि क्या होता है ?

(बन्दीघर के विचित्र अनुभव-ले0 स्वामी श्रद्धानन्द जी, पृ0 12-14)

4. स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की राष्ट्रभक्ति में तथा राष्ट्रवादी विचारों में किसी को भी सन्देह का अवसर नहीं है, अपनी सुदृढ़ देशभक्ति के कारण मार्ग निर्धारण में उनकी महात्मा गांधी से भी न पटी, स्वामी जी के स्वभाव की यह विचित्रता थी कि देश की अखण्डता के प्रश्न पर उत्पन्न हुये अपने मतभेदों को जनसमुदाय के सम्मुख रखने में आनाकानी अथवा विलम्ब नहीं करते थे, 'मुंह में राम बगल में छुरी' ऐसे बुगलाभगत तथा भीतर से पूरे कट्टर साम्प्रदायिक परन्तु बाहर से राष्ट्रवादी होने का दिखावा करते थे, ऐसे लोगों के कांग्रेस में प्रभावी हो जाने के कारण स्वामी जी को वहां से पृथक् हो उन छद्मवेशियों के कुटिल उद्देश्य के विरुद्ध अभियान चलाना पड़ा, कैसे सुनिये-

जब यूरोप का प्रथम युद्ध छिड़ा, तब दिल्ली के एक गर्म हमाम में नहाते हुये मोहम्मद अली ने एक दिन आसफअली से कहा-क्या ही अच्छा हो कि इस समय अफ़ग़ानिस्तान भारत पर हमला कर दे, अतः उन्होंने भारत पर हमले पर निमन्त्रण देते हुये अफ़ग़ानिस्तान के शाह को पत्र लिख दिया, उसके परिणामस्वरूप अफ़ग़ानिस्तान का वह नादिरशाह बन्नू तथा कोहाट तक पहुंच भी गया था, परन्तु

वह पत्र अचानक स्वामी श्रद्धानन्द के हाथ लग गया और उन्होंने उसे अपने अंग्रेजी समाचारपत्र 'लिब्रेटर' में प्रकाशित कर दिया, जब मौलाना मोहम्मद अली से पत्र लिखने के विषय में पूछताछ की गई तो उसने कह दिया कि 'हां मैंने लिखा है, परन्तु यह सब कुछ महात्मा गांधी जी की अनुमति से ही किया गया है ', बाद में देखा तो मालूम हुआ कि उस पर महात्मा गांधी के हाथ का संशोधन भी था, इस नीति ने लाला लाजपत राय तथा स्वामी श्रद्धानन्द जैसे देशभक्तों को कांग्रेस से दूर कर दिया, इसी के परिणामस्वरुप 1926 के चुनावों में लाला लाजपतराय ने कांग्रेस के मुकाबले उम्मीदवार खड़े किये, जिन्होंने स्थान-स्थान पर कांग्रेसियों को पटका, इस समय इन लोगों का नारा था कि कांग्रेस को वोट देना अफ़ग़ानिस्तान को भारत पर हमले करने का निमन्त्रण देना है।

(दैनिक वीरप्रताप, जालन्धर 17-11-1960 में महाशय कृष्ण का सम्पादकीय)

इस प्रकार के प्रखर राष्ट्रवादी श्रद्धानन्द के शरीर से उत्पन्न तथा उन्हीं के द्वारा स्थापित राष्ट्रीयता के प्रतीक गुरुकुल कांगडी में शिक्षित होने से जो उस परम देशभक्त श्रद्धानन्द का आध्यात्मिक मानसपुत्र भी था, उससे देशद्रोह की आशा करना बालू से तेल निकालने के विचार से कहीं कम नहीं है, जबकि स्वामी जी के संसर्ग से देशभक्ति का पाठ पढ़कर किसी अन्य साधारण व्यक्ति ने भी ऐसा कुकर्म करने का साहस न किया हो।

5 सन् 1897 में लोकमान्य तिलक पर अंग्रेजों ने प्रथम अभियोग चलाया, न्याय का नाटक रचकर उन्हें दण्डित किया गया, अंग्रेजों के इस अन्याय पर जबकि अन्य राजनैतिक नेता कुछ भी कहने का साहस न जुटा पाये तब महात्मा मुंशीराम ने अपने 'सद्धर्म प्रचारक' में लिखा था "सरकार ने तिलक को भले ही दण्डित किया हो, परन्तु भारतीय जनता तो उन्हें निर्दोष मानती है", 1908 में पुनः जब तिलक पर मुकद्मा चलाकर उन्हे माण्डला के किले मे बन्द कर दिया था, तब भी स्वामी श्रद्धानन्द ने लिखा था 'अंग्रेज जाति

दिखाना चाहती है कि लोकमान्य तिलक अच्छे व्यक्ति नहीं हैं, परन्तु भारत की जनता जानती है कि उसके हृदय में लोकमान्य का स्थान है। इतिहास में महापुरुषो को सदा कष्ट सहने पड़ते हैं, भारत की जनता की दृष्टि मे लोकमान्य निर्दोष हैं।' इसी प्रकार लाला लाजपतराय को माण्डला में बन्द किया गया तब भी इस नरशार्दूल ने लिखा था, "आर्यसमाज का एक नेता फंसा है, वह बार-बार चैलेंज करता है, साबित करो मेरा कसूर क्या है? परन्तु नीचे से लेकर सैक्रेटरी ऑफ स्टेट (इंग्लैण्ड का भारत मंत्री) तक सब मुंह छिपाते फिरते हैं।"

(आर्यजगत् हिन्दी साप्ताहिक, दिल्ली 27-9-1981, पृ० 5)

क्या ऐसे दृढ़तम देशभक्त तथा प्रखर राष्ट्रवादी व्यक्ति का दैहिक तथा आध्यात्मिक पुत्र उसकी विचारधारा के विपरीत देशद्रोही हो सकता है? नहीं कभी नहीं।

6. जो आर्यसमाजी राष्ट्रीय स्वाधीनता के कार्यक्षेत्र में आये उनका कांग्रेस के अन्य नेताओं के साथ-साथ, समय-समय पर मतभेद होता रहा है, परन्तु केवलमात्र मतभेद होने मात्र से ही उन्होंने देशभक्ति के क्षेत्र से पीछे हटने का विचार तक मन में नहीं आने दिया, फिर विश्वासघात करने का तो प्रश्न ही उत्पन्न कैसे हो सकता है? इतना ही नहीं बल्कि कांग्रेसी नेताओं से अपनी निन्दा सुनकर भी वे देश की स्वाधीनता के मार्ग पर बिना कदम रोके निरन्तर चलते गये।

"ऐसे समय आये जब कांग्रेस के नेताओं में आर्यसमाज और आर्य-समाजियों के बारे में सर्वथा ही निर्मूल, भ्रमात्मक विचार फैल गये, परन्तु जिन आर्यजनों ने वेदों से स्वाधीनता का पाठ पढा और महर्षि दयानन्द से यह शिक्षा प्राप्त की कि अच्छे से अच्छा भी विदेशी राज्य स्वराज्य की बराबरी नहीं कर सकता, वे अन्त तक स्वाधीनता के रणक्षेत्र में डटे रहे, न उन्हें अंग्रेजी सरकार का दमन बेदिल कर सका और न कुछ भ्रान्त राजनीतिज्ञ नेताओं की विरोध भावना लक्ष्य से च्युत कर सकी, वे अंत तक सत्याग्रह संग्राम की अगली पंक्ति में जान-जोखिम में डाल कर लड़ते रहे।"

(आर्यसमाज का इतिहास-भाग 2, पृ० 112)

मै एक भी ऐसे आर्यसमाजी को नहीं जानता कि जिसने कुछ अदूरदर्शी राष्ट्रीय नेताओं के दुर्व्यवहारों के कारण स्वाधीनता यज्ञ में अपनी आहुति देने में संकोच किया हो, यह दृढतापूर्वक कहा जा सकता है कि स्वराज्य की अन्तिम मुहिम की सफल समाप्ति तक महर्षि दयानन्द के शिष्य अपना धर्म समझकर सेना की अगली श्रेणी में लडते रहते रहे।

(आर्यसमाज का इतिहास – भाग 2, पृ0 368)

पाठ्कवर्ग! गम्भीरता से सोचे कि दूसरों द्वारा अपने प्रति मतभेद, निन्दा तथा दुर्व्यवहार आदि को सहते हुये भी कहीं पर एक भी सामान्य आर्यसमाजी भी स्वाधीनता प्राप्ति के क्षेत्र में पीछे न हटा, क्योंकि महर्षि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश की शिक्षा यही थी कि अच्छे से अच्छे विदेशी राज्य से अपना राज्य लाख दर्जे उत्तम होता है, तथा देश का स्वातन्त्र्संग्राम और धर्म जिनके विचारो में एक ही हो, अलग-अलग नहीं, ऐसे वातावरण में पले हरिश्चन्द्र के तो देशद्रोही होने की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती है, अतः श्री मन्मथनाथ गुप्त का उपरोक्त वर्णन सर्वथा ही निराधार, निष्प्रमाण एवं बुद्धि तथा तर्क के विपरीत एवं इनसे रहित है, इस कारण उपेक्षणीय एवं निन्दनीय है, इससे अधिक इस विषय पर कुछ लिखना विवेकशील पाठ्कों की सत्यासत्य निर्णायक बुद्धि से खिलवाड करना ही होगा।

एक कल्पना या सत्यता

हरिश्चन्द्र जी के सम्बन्ध में कई तरह की बातें सुनने में आ रही है, जिनमें यह भी है कि गतिविधियों से घबराकर सरकार ने उन्हे विदेशों में ही रोके रखा, उपयुक्त समय आने पर वे नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के साथ पनडुब्बी में बैठ्कर जर्मनी जा पहुंचे, सुभाष और हिट्लर के मिलन के समय हरिश्चन्द्र जी भी वहीं पर उपस्थित थे, हरिश्चन्द्र जी के कहने पर ही हिट्लर ने अपनी नाज़ीवादी पार्टी का चिन्ह स्वस्तिक रखा था, इन्हीं की संगति के प्रभाव से हिट्लर अपने आपको आर्यवंशी कहता था, इससे भी आगे बढ़कर बहुत से

लोगो का विचार तो यहां तक है कि हरिश्चन्द्र ही हिटलर का रूप धारण कर विश्व के सम्मुख प्रकट हुआ, ये सब कथन कहां तक सत्य हैं ? अभी तक तो बिना पुष्ट प्रमाणों के साधिकार कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ऐतिहासिक, मौलिक पुष्ट प्रमाणो की अनुपस्थिति मे कुछ भी कहना आत्मप्रवंचना के सिवाय और कुछ न होगा, अन्त में उनका क्या हुआ इसकी यथार्थ जानकारी देनेवाला कोई भी आज विश्वस्त, ठोस एवं पक्का प्रमाण तथा वर्णन उपलब्ध नहीं है, परन्तु लेखक का यह दृढ विश्वास है कि वे भारत की स्वाधीनता के लिए प्रयास करते-करते विदेशों में ही शहीद हो गये।

दिल्ली षड्यंत्र में आर्य क्रांतिकारी

इतिहास के क्रम से इन देशप्रेमी आर्यवीरो के पश्चात् दिल्ली षड्यंत्र में भाग लेने वाले आर्यवीरों का वर्णन मिलता है, भारत विख्यात इस अभियोग में फांसी के तख्ते पर झूलनेवाले आर्यवीरों मे डी० ए० वी० कालेज लाहौर के प्रोफेसर प्रसिद्ध देशभक्त देवतास्वरूप भाई परमानन्द जी के कनिष्ठ भ्राता भाई बालमुकुन्द जी प्रमुख थे, आपकी इस ओर प्रवृत्ति में मुख्य कारण आर्यसमाज की शिक्षा, वातावरण तथा संगीत रहे हैं।

भाई बालमुकुन्द

"भाई बालमुकुन्द जी भाई परमानन्द जी के चचेरे भाई थे, आपने डी० ए० वी० कालेज से बी० ए० की परीक्षा पास की थी, 1910-1911 में पंजाब में राजनैतिक अशान्ति का जो बवंडर उठा, उसने बहुत से नवयुवकों को क्रांतिकारी बना दिया, भाई बालमुकुन्द जी भी उन नौजवानों में थे।"

(आर्यसमाज का इतिहास-भाग 2, पृ० 365)

इनका कुल सदा से ही देशभक्त एवं धर्मप्रिय रहा, मुगलकाल में भी आपके पूर्वज भाई मतिदास को जब मतान्ध क्रूर औरंगजेब ने पकड़वाकर इस्लाम मजहब स्वीकार करने को बाधित किया, तब

उनके अपने धर्म पर दृढ़तापूर्वक डटे रहने की घोषणा कर दिये जाने पर दंड स्वरूप बादशाह के आदेश से उनके नौकरो ने भाईजी के सिर पर लकडी चीरने का आरा चलाना शुरू किया परन्तु भाई मतिदास आरे से चिरते जाते हुये भी प्रसन्न मुद्रा में थे, इस प्रकार हम देखते हैं कि भाई परमानन्द तथा भाई बालमुकुन्द को अपनी वंशपरम्परा से ही देशभक्ति और धर्मनिष्ठा प्राप्त हुई, जोकि आर्यसमाज के सम्पर्क में आकर और अधिक निखर गई, आपने कुछ दिन तक जौधपुर के राजकुमारों को पढ़ाने का कार्य भी किया, यह कार्य उन्होंने महात्मा हंसराज जी के आदेश से किया था, उससे पहले उन्हीं के आदेशानुसार उनके निर्देशन में आर्यसमाज का प्रचार कार्य भी करते रहे, जब 23 दिसम्बर 1912 ई0 को लार्ड हार्डिग्ज ने नये वायसराय के रूप में नई राजधानी दिल्ली में धूमधाम से प्रवेश किया और जबकि यहां की जनता में अपने प्रभुत्व का सिक्का जमाने के उद्देश्य से उक्त नगरी में उनका शाही जुलूस निकाला जा रहा था, तब कुछ देशभक्तों ने उस पर बम फेंककर यह प्रकट कर दिया था हम तुम्हारी इस थोथी तथा दिखावे की शोभा से कुछ भी प्रभावित नहीं हैं, उन्हीं राष्ट्रवीरों में भाई बालमुकुन्द भी अग्रणी थे, जिसके परिणास्वरूप ब्रिटिश सरकार को इनके गले में फांसी की जयमाला डालकर अपनी क्रोध की अग्नि को शान्त करना पडा था, इनके महान् बलिदान के साथ इनकी धर्मपत्नी श्रीमती रामरखी का भी एक आर्यललना के रूप मे श्रेष्ठ तथा उज्जवल चरित्र उभर कर सामने आता है, इस आर्य महिला की वह गौरवगाथा हम प्रत्यक्षदर्शी के शब्दों में ही उद्धृत कर रहे हैं, जिससे स्वतन्त्र भारत की देवियां कुछ सीख सकें, 'गिरफ्तार होने से एक वर्ष पहले भाई बालमुकुन्द का विवाह हुआ था, इनकी धर्मपत्नी श्रीमती रामरखी परम सुन्दरी ललना थीं, उम्र उनकी नई ही थी, जिस दिन इनके पति गिरफ्तार हुये वे उसी दिन से व्याकुल हो गई और अनेक प्रकार से देह सुखाने लगीं, फिर जब भाई बालमुकुन्द को फांसी का हुक्म सुनाया गया, तब ये उनसे मिलने गई, किन्तु इनके मर्माश्रुओ ने जी भरकर स्वामी के दर्शन न करने

दिये, घर लौटकर यह एक प्रकार से अधमरी दशा में समय बिताने लगीं, एक दिन यह अपने कमरे में थीं कि बाहर से रोने का कोलाहल सुनाई पड़ा, कमरे से बाहर आने पर श्रीमती रामरखी को असल बात मालूम हुई, वह अब और सहन न कर सकी, पति की मृत्यु का समाचार पाकर साध्वी खासी निरोग दशा में पति का ध्यान लगाकर मानो पति से जा मिली, मिट्टी में मिल जाने के लिए ही मानो उसकी देह लोक में पड़ी रही गई, ऐसे पति-प्रेम और आत्मोत्सर्ग की तुलना है कहीं ? इस घटना का स्मरण होते ही देह और मन पुलकित होकर कंटकित हो जाते हैं, बालमुकुन्द की गृहिणी! तुम धन्य हो, ऐसी पत्नी के बिना क्या ऐसा पति हो सकता है ? हाय रे भारत के नसीब! ऐसी पत्नी और ऐसे पति का बना रहना भी तेरे भाग्य में न था।

(बंदी जीवन-ले० शचीन्द्रनाथ सान्याल, पृ० 54)

प्रिय पाठक! ये थे वे दम्पति जिन्होंने आर्यसमाज के वातावरण में पलकर राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए स्वेच्छा या सोत्साह तथा अपना धर्म मानकर अपना सर्वस्व होम दिया था, इसी कांड में इनके साथ ही शहीद होनेवाले देशभक्त प्रतापसिंह बारहट भी आर्यसमाजी विचारध ारा की ही देन थे।

प्रतापसिंह बारहट

यह राजस्थान में स्वाधीनता के प्रति रूचि, उत्साह का आविर्भाव उत्पन्न करनेवाले महर्षि दयानन्द के अमरशिष्य श्री कृष्णसिंह बारहट के पौत्र थे, जिनका वर्णन पाठक द्वितीय अध्याय में पढ़ चुके हैं, प्रताप के पिता केसरीसिंह बारहट भी अपने पिता तथा पुत्र की भांति जीवनभर स्वाधीनता के लिए जूझते रहे, इस प्रकार इस परिवार की तीन पीढियां कृष्णसिंह, इनके दो पुत्र केसरीसिंह तथा ज़ोरावरसिंह तथा पौत्र प्रतापसिंह ने स्वराज्य प्राप्ति के निमित्त अपना जीवन खपा दिया, प्रताप के पिता श्री केसरीसिंह जी बारहट कोटा के राज्य-विरोधी षड्यंत्र में आजन्म कालेपानी की सजा पा चुके थे, परन्तु स्वास्थ्य अच्छा न होने के कारण अंडमान की बजाय यहीं की जेलों में दंड भुगतते रहे,

इनके छोटे भाई के सम्बन्ध में तो यहां तक कहा जाता है कि – "ठाकुर केसरीसिंह बारहट के परिवारवालों का तो दावा है कि लार्ड हार्डिंग पर बम बसन्तकुमार विश्वास ने नहीं ठाकुर ज़ोरावरसिंह ने फेंका था, इस केस में ठाकुर जोरावरसिंह का वारट निकला था, पर वे फरार हो गये और सन् 1938–1939 में जब कुछ प्रांतों में कांग्रेस की मिनिस्ट्री बन जाने के कारण उनका वारंट रद्द हो जाने की सम्भावना होने लगी थी, फरार अवस्था में ही उनका देहान्त हो गया था।"

(बंदी जीवन, पृ0 397)

प्रतापसिंह बारहट की माता के सम्बन्ध में लिखा है–प्रताप की माता की दुःखों की उस समय सीमा न थी, आज एक सम्बन्धी के पास रहती तो कल दूसरे के घर जाकर अतिथि बनती, अन्त में अपने पिता के घर जाकर किसी तरह दिन काटती रही, प्रताप के मामा के घर की हालत भी विशेष अच्छी नहीं थी, विधाता जब किसी के प्रति निर्दयी होता है तब उसकी निष्ठुरता के निकट संसार की सब निष्ठुरताये फीकी पड जाती हैं।

(बंदी जीवन – ले0 शचीन्द्रनाथ सान्याल, पृ0 100)

पाठक! आप जानते हैं कि उनकी यह दुर्दशा क्यों हुई? स्वाधीनता का कार्य करने के कारण ब्रिटिश सरकार के द्वारा उनकी सारी पैतृक सम्पत्ति जब्त घोषित कर दी गई थी, देश पर अपना सर्वस्व आहुत कर देनेवाले इस परिवार का बेटा यह वीर प्रतापसिंह बारहट था, इसने भारत के प्रसिद्ध क्रांतिकारी शचीन्द्रनाथ सान्याल का दांया बाजू बनकर जो अद्‌भुत ऐतिहासिक, साहसिक कार्य किया है, वह हमारे लिये अभिनन्दनीय है, देश के लिये अपने सर–धड की बाजी लगाये यह वीर जब फरार अवस्था मे घूम रहा था, तो एक स्टेशन मास्टर के पास चला गया, जोकि कभी इनके दल का एक विश्वस्त सदस्य था, परन्तु किसी कारण से अब यह पुलिस से मिल चुका था, जिसके बारे में प्रताप को नहीं मालूम था, प्रताप को उसने अपने कमरे में सुलाकर उसके हथियार चुपके से निकाल लिये, तथा पुलिस को बुला लिया, पुलिस ने उस विवश तथा शस्त्रहीन प्रतापसिंह को

पकड़ लिया, क्रांतिकारियों का भेद लेने के लिये उसे पशु की भांति बडी बेरहमी से पीटा गया, बर्फ की सिल्लियों पर घंटों नंगा लिटाये रखा और भयंकर यन्त्रणायें दी गई, परन्तु इतना होने पर भी अन्त में प्रताप ने अपनी दृढ़ता दिखाते हुये पूरे साहस के साथ कहा-देखो बहुत सोचा-विचारा, अंत में तय किया है कि कोई बात न खोलूंगा, अभी तक तो केवल मेरी माता कष्ट पा रही है, किन्तु मैं गुप्त बातें प्रकट कर दूं तो और भी कितने लोगों की मातायें ठीक मेरी माता के समान दुःख पायेंगी, एक माँ के बदले और कितनी माताओं को तब हा हाकार करना होगा ? इस देशभक्त आर्य परिवार के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुये देशभक्त शचीन्द्रनाथ सान्याल अपने ग्रंथ 'बंदी जीवन' में लिखते हैं 'नहीं मालूम आज भारत में कितने पिता है, जो सरदार केसरीसिंह जी की भांति सब जान-बूझकर अपने को और अपनी संतान को इस प्रकार देश के कार्यो मे बलि दे सकेंगे, भारत का दुर्भाग्य है कि प्रताप सा युवक आज इस जगत् में नहीं, बरेली जेल मे अंग्रेजों का दण्ड भोगते-भोगते उसका नश्वर शरीर उस दिव्य आत्मा का साथ न निभा सका।

(बंदी जीवन, पृ0 12)

बलराज

इसी विख्यात राजनीति षड्यंत्र के तीसरे आर्यसमाजी अभियुक्त थे, दयानन्द कालेज लाहौर के प्रथम अवैतनिक आचार्य, प्रसिद्ध आर्यनेता महात्मा हंसराज के बडे सुपुत्र श्री बलराज भल्ला, उन स्थितियों में इस परिवार पर क्या बीती यह प्रत्यक्षदर्शी के ही शब्दों में पढ़े- 'राजनीति के सम्बन्ध में उनकी (म0 हंसराज की) कडी परीक्षा बलराज के मुकदमें के समय हुई बलराज पर राजद्रोह का मुकदमा चला, मैं उन दिनों लाला हंसराज के साथ रहता था, पुलिस ने मकान की तलाशी में कोई कसर न छोडी, जो चित्र दीवार पर लटके थे उनके शीशे उतारकर देखा कि पीछे कोई काग़ज तो नहीं है, युनिवर्सिटी के कलेंडर, पुस्तक, प्रकाशकों की सूचियां, आदि सब कुछ पुलिस ले

गई, लाला हसराज के वकील मित्र मुकद्में की पैरवी करते रहे, लेकिन उन्होंने किसी प्रकार की आर्थिक सहायता लेने से इंकार कर दिया, उन्हे कहा गया कि यदि वे चाहे तो बलराज छूट सकता है परन्तु ऐसे सुझाव के बाबत वह यही कहते थे कि यदि बलराज निर्दोष है तो सरकार को छोड़ देना चाहिए, यदि वह दोषी है तो मैं उसे निर्दोष कैसे कह सकता हूं? अपनी बाबत तो उन्हे संदेह हो नहीं सकता था, उन्हें यही चिन्ता थी कि बलराज घबराकर अनुचित व्यवहार न कर बैठे, बलराज को उसकी इच्छा की सूचना मिल गई थी, मुकदमा बहुत देर तक चलता रहा, अंत में बलराज को सात वर्ष की सख्त कै़द की सज़ा सुनाई गई, उनकी माता बीमार हो गई और चाहती थी कि बलराज को देख ले, परन्तु सरकार इस पर राजी न हुई, लाला हंसराज धर्मपत्नी को सदा के लिए खो बैठे और पुत्र को सात वर्ष के लिए। बलराज की कै़द के वर्षो में उन्होंने पखे का प्रयोग बिल्कुल छोड़ दिया, बलराज पंखे के बिना रह सकता था, तो पिता भी रह सकता था। आर्यसमाज के काम में उनकी लगन पहले की सी रही, मिलने वालों को पता भी नहीं लग सकता था, कि वह किसी असाधारण स्थिति में से गुजर रहे हैं, बलराज का या पत्नी के देहान्त का जिक्र शायद कभी कहीं होता हो।

(आर्यसमाज के त्यागी तपस्वी सन्त, पृ0 76-77)

यह थी आर्यो की देशनिष्ठा। देश को स्वाधीन करने के लिए काल-कोठरी में पड़े हैं। माता अपने जिगर के टुकड़े पुत्र के दर्शन की प्रबल लालसा को अपने हृदय में संजोये, संसार से कूच कर जाती है, परन्तु इतने पर भी पिता और पुत्र दोनों ही अविचलित हैं, पाठ्कवर्ग! इससे भी अधिक देशप्रेम की निष्ठा तथा परिभाषा और क्या हो सकती है?

जगत्राम हरियाणवी

इस षड्यंत्र के साथ ही जो गदरपार्टी का भी सक्रिय कार्यकर्त्ता था, जिसने भारत की आज़ादी के लिए अपने को तिल-तिल कर जलाया था, ऐसे एक अन्य देशभक्त आर्यवीर जगत्राम हरियाणवी का नाम भी इतिहास के पन्नों में पढ़ने को मिलता है, इनका जन्म जि0 होशियारपुर के हरियाणा नामक ग्राम में हुआ था, इसलिए इनके नाम के साथ हरियाणवी शब्द जुड़ा था, इनकी शिक्षा पहले डी0 ए0 वी0 स्कूल में हुई, फिर डी0 ए0 वी0 कालेज में प्रविष्ट हो वहां से बी0 ए0 परीक्षा उत्तीर्ण की उस समय कालेज में भाई परमानन्द जी प्रोफेसर थे, इन लोगों की संगति से आपकी राष्ट्रीयवृत्ति में निखार आया, जिससे कि आप देश की स्वाधीनता के क्षेत्र में कूद पड़े, ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध अनेक गंभीर षड्यंत्र करने के आरोप में आपको गिरफ्तार कर न्यायालय ने मृत्यु दंड दिया, जोकि बाद में आजन्म कारावास के रूप में बदल दिया गया था, आपको काल कोठरियों में रखा गया था, जहाँ कि छः वर्ष तक आपको सूर्य के प्रकाश के दर्शन तक न हुये थे, परन्तु भारत के इस सच्चे सपूत ने यह सभी पाशविक यातनायें सहर्ष झेली थीं, भारत के स्वतन्त्र होने पर आप रिहा कर दिये गये, परन्तु इसके बाद में आपका कोई पता नहीं चल सका कि आप जीवित हैं, अथवा परलोक सिधार गये?

पं0 सोहनलाल पाठक

इन्हीं के साथ गदरपार्टी में सम्मिलित होकर राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए अपनी उठती जवानी को देश की स्वाधीनता के हेतु अर्पित कर देने वाले पं0 सोहनलाल जी पाठक आर्यसमाजी विचारधारा वाले सज्जन थे, सोहनलाल पाठक पट्टी जि0 अंमृतसर के रहने वाले थे, वे कट्टर आर्यसमाजी थे, पट्टी आर्यसमाज के मेम्बर थे, डी0 ए0 वी0 हाईस्कूल में हैडमास्टर भी रहे, सन् 1908 में जब लाला हरदयाल जी एम0 ए0 आई0 सी0 एस0 के इम्तिहान के बगैर दिये वापिस हिन्दुस्तान आ गये तो सोहनलाल जी उनके पास जाने लगे

और उनकी आपस में मित्रता हो गई, उन्हीं दिनों उनकी धर्मपत्नी का देहान्त हो गया, फिर लाला लाजपतराय जी ने दयानन्द ब्रह्मचारी आश्रम भुजंग में खोला, तब लाला जी ने पं0 सोहनलाल जी को इस आश्रम में टीचर रख दिया।'

(विचित्र जीवन चरित्र, पृ0 564)

तत्पश्चात् पाठक जी पार्टी के अनुसार छावनियों में गदर की योजना का प्रचार करते रहे, उसी प्रचार कार्य को करते हुए एक देशद्रोही के द्वारा बर्मा के अन्दर पकड़वा दिये गये, न्यायाधीश ने आपको क्षमा याचना के लिये कहा तब आप बोले कि ''क्षमा तो अंग्रेजों को हमसे मांगनी चाहिए, क्योंकि वे हमारे देश पर बलात् कब्ज़ा किये बैठे हैं, और इतने पर भी हमें धमकाते हैं'', जब आपसे आपकी अन्तिम इच्छा पूछी गई तो आपने कहा कि मृत्यु के बाद मेरी लाश को जमीन में गाड़ा न जाये बल्कि अग्नि में वैदिकविधि से अन्त्येष्टि की जाये, उस समय बर्मा में मृतकों को गाड़ने की ही परम्परा थी, इस कारण से इन्होंने यह अपनी अन्तिम इच्छा प्रकट की थी, अन्त में ब्रिटिश सरकार ने आपको राजा के प्रति विद्रोह करने के कारण फांसी पर चढ़ा दिया, आप कहा करते थे कि राज्य भिक्षा में नही मिलते, भिक्षा में तो रोटियां भी नहीं मिलती, राज्य तो डंडे के ज़ोर से मिला करता है, आप बड़ी ही उग्र विचारधारा के थे।

बाबा पृथ्वी सिंह आज़ाद

पाठक निम्न उदाहरण को भी ध्यान से पढ़ने का कष्ट करें कि जिससे अनुमान हो जायेगा कि आर्यसमाज की राष्ट्रवादी विचारधारा ने किन-किन लोगों को किस तरह प्रभावित किया है।

''सन् 1907-1908 में पंजाब में आर्यसमाज का बड़ा ज़ोर था, देश से प्यार करनेवाला और अंग्रेजों से नफरत करनेवाला हर एक हिन्दू अपने जोशीले भाषणों और देशप्रेम के गीतों से धूम मचा दिया करता था, मैं आर्यसमाज का सदस्य तो कभी नहीं बना, लेकिन

अपने आपको आर्यसमाजी समझने अवश्य लगा था, आर्यसमाजियों के उन भाषणो और गीतों का मुझ पर बहुत असर होता था, सन् 1907 में मैंने एक प्रभावशाली उपदेशक का भाषण सुना, उसका आशय था कि युवकों को चाहिये कि वे किसी भी प्रकार के नाच या गाने में रस न लें, क्योंकि इससे चरित्र का पतन होता है।''

(क्रान्ति पथ का पथिक (मेरी आत्मकथा) – ले0 पृथ्वीसिंह, पृ0 19)

क्रान्तिवीर भाई हृदयराम

आप भी लगभग 30 वर्ष की आयु से अपने आर्यसमाजी मित्रों के साथ क्रान्ति के कार्यों में संलग्न हो गये थे, 1914 में आप पूर्णतया क्रान्ति यज्ञ में दीक्षित होकर कार्य करने लग गये थे, आप रासबिहारी बोस के साथियों में रहे, 1910 में लाहौर में आपने बम, पिस्तौल आदि हथियारों के प्रशिक्षण का एक केन्द्र खोला, साथ ही वहां क्रांति का साहित्य भी प्रकाशित किया करते थे जिससे कि आप अधिक दिन तक पुलिस की निगाहों से सुरक्षित न रह सके, परिणामस्वरूप 14 फरवरी 1915 को आपको आपके साथियो के साथ पकड़ लिया गया, और ब्रिटिश शासन का तख्ता उलटने, षड्यंत्र रचने, शस्त्र संग्रह करने तथा अनेक हत्याओं में संलिप्त होने के अपराध में आप सबको फांसी का दण्ड दिया गया जो कि बाद में कालेपानी के दण्ड के रूप में बदल दिया गया था, अंडमान में आप भाई परमानन्द, सावरकर जैसे प्रसिद्ध क्रांतिकारियो के संग में रहे, वहां आपने कोल्हू चलाना, चक्की पीसना, हटंरों की मार खाना आदि अमानवीय यातनायें सही हैं, दस वर्ष के पश्चात् 1926 में आप वहां से रिहा हुये, अन्त मे ये हिन्दू महासभा में सम्मिलित हो गये थे, स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जब हिमाचल प्रदेश के प्रमुख कांग्रेसी नेता ने आपसे काग्रेस में आने को कहा तब आपने उसे कहा था कि ''स्वतन्त्रता से पूर्व भी मेरा कभी चरखे और तकली पर विश्वास नहीं रहा और न ही मैंने किसी वर्ग विशेष के तुष्टीकरण को राष्ट्रीय एकता का मार्ग माना है, मैं

तो स्वामी दयानन्द का अनुयायी हूं, जिन्होंने सिद्धांतो के लिये सर्वस्व समर्पण को ही वरेण्य माना।"

(आर्य क्रान्तिकारी-ले0 बनारसीदास एम0 ए0, पृ0 115-118)

ऐसे ऋषि दयानन्द के अमर शिष्यों के कारण जिन्होंने भारत की स्वतन्त्रता के भवन की नीव में अपने को पत्थर बनाकर गला दिया, इस देश को आज़ादी के दर्शन हुये।

कोटाकाण्ड के आर्यवीर

अपना कार्य सुचारू रुप से चलाने के लिए समय-समय पर क्रांतिकारियों के द्वारा विवश होकर कंजूस तथा विदेशी शासन के भक्त धनिकों के यहा जो धन लूटा जाता था, उन्हीं घटनाओं में कोटाकाण्ड भी आता है, जिसका वर्णन संक्षेप मे इस प्रकार मिलता है, "ठाकुर केसरीसिह बारहट, हीरालाल जालौरी, महात्मा मुंशीराम (बाद में स्वामी श्रद्धानन्द जी) के दामाद डा0 गुरुदत्त तथा अन्य सज्जनों ने जोधपुर के एक दुश्चरित्र महन्त को समझाकर देश के लिए धन लेना चाहा, उसके मना कर देने पर उसकी लाठी छीनी, (जिसमें सोने की गिन्निया भरी होने का विश्वास था) परन्तु उस पोली लाठी में कोयले भरे थे, जवाहरात उसने कहीं अन्यत्र छिपा दिये थे, जवाहरातों को इस लाठी मे छिपाये जाने की सूचना उन्हें मिली थी।

(हमारा राजस्थान, पृ0 309)

इसी षड्यंत्र के कारण श्री केसरीसिंह को कालेपानी की सज़ा हुई थी उनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गई थी, इस प्रकार इस कांड मे भी हम दो आर्यवीरों को हिस्सा लेने का वर्णन पढ़ते हैं।

मैनपुरी षड्यंत्र के नेता पं0 गेन्दालाल दीक्षित

ऐतिहासिक इस घटनाचक्र के पश्चात् मैनपुरी का प्रख्यात ऐतिहासिक घटनाक्रम आता है, इस कांड के नेता भी जिनका नाम श्री पं0 गेन्दालाल दीक्षित था दृढ़ आर्य विचार के देशभक्त युवक थे, आपके सहयोगी के शब्दों में आपका वह वृत्तांत पढ़ें-

"आपका जन्म आगरा जिले के प्रसिद्ध गांव बटेसर के पास 20 नवम्बर 1888 में हुआ था, इनके पिता श्री भोलानाथ दीक्षित थे, दीक्षित जी औरेय्या के डी0 ए0 वी0 स्कूल में शिक्षक का कार्य करते थे, पंडित जी आर्यसमाजी थे, उन दिनों का आर्यसमाज आज के आर्यसमाज से भिन्न था, उसमें जीवन का स्फुरण था तथा कुछ अंशों तक क्रांतिकारी शक्ति थी, पंडित जी के हृदय में देश की दुर्दशा पर क्षोभ तो था ही, इस पर देश में उस समय एक अग्नियुग जोरों से चल रहा था, पंडित जी ने कहा कि बस हम क्यों चुप बैठै? हम भी कुछ कर गुज़रें।"

(भा0 क्रा0 आ0 का इतिहास, पृ0 103)

यहां भी लिखते-लिखते श्री गुप्त जी अपने गुप्त स्वभाव के अनुसार कीचड में पैर मार ही गये। आज का आर्यसमाज क्या है? यह तो इस पुस्तक का परिशिष्ट रूप में लिखित जिसमे स्वाधीनोत्तरकालिक वर्णन है, के पढने से ज्ञात हो जायेगा, जिससे आर्यसमाज का एक देशभक्त, देश की अखण्डता के लिये हर सम्भव प्रयत्न करनेवाले के रूप में चित्र उभरकर पाठक के सामने आयेगा, यहां तो इतना मात्र संकेत कर देना ही पर्याप्त होगा कि आज भी आर्यसमाज उस वर्ग के समान नहीं है जो कि भारत का अन्न खाकर, यहां की वायु में रहकर, यहां की ज़मीन को अपनी गंदगी से भ्रष्ट करनेवाले लोगों के समान जीवन के आदर्श के लिये मास्को तथा पेकिंग की ओर हरदम नज़रें गड़ाये हुये, उन्हीं के इशारों पर उनकी पाशविक तथा ओछी सभ्यता के गीत गाकर अपने देशवासियों को देशद्रोह तथा राष्ट्रघात के गुप्त मागो का सकेत करे। आर्यसमाज के सामने स्टालिन तथा चाउ एन लाई जैसे पदलोलुप एवं नरपशुओं के रक्त से सने, घृणित जीवन आदर्श नहीं है, यह तो सात्विक, त्यागी, बलिदानी, साधनशील, विश्वहितैषी, मानवता के पुजारी ऋषियों, मुनियों तथा वीरों का पूजक है, इसलिये गेन्दालाल जैसे देशभक्त आर्यवीर देश को प्रदान किये जिन्होंने अपनी मातृभूमि, संस्कृति तथा सभ्यता की रक्षा के निमित्त अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया था,

दीक्षित जी ने सर्वप्रथम 'शिवाजी समिति' बनाकर युवकों का सगठन आरम्भ किया, इस प्रकार देश के स्वाधीनता का कार्य करते हुये एक स्थान पर पुलिस से मुठभेड़ हो जाने के कारण इनके कुछ साथी मारे गये, शेष दीक्षित जी के साथ गिरफ्तार कर लिये गये, इनको ग्वालियर के किले में रखा गया, वहा एक व्यक्ति पुलिस का मिलनेवाला था, इन्होंने पुलिस से यह कहकर कि मैं आपसे मिलकर सारा भेद देना चाहता हूं, उसकी निकटता प्राप्त कर ली, पंडित जी ने उसे रात्रि में न जाने क्या पाठ पढ़ाया कि उसके समेत ही जेल से निकल भागे, इनके पीछे छाया की तरह पुलिस दिन-रात लगी हुई थी, कहीं पर भी सिर छिपाने को जगह तक न मिलती थी, इस देशभक्त आर्यवीर के जीवन का अंत बडा ही करुणाजनक, मार्मिक तथा दर्दनाक था, रोग से शरीर जर्जर, साथ मे पुलिस का भय, ऐसी दुरवस्था में-

"एक देशभक्त अपनी जन्मभूमि से दूर अपनी अन्तिम शय्या पर लेटा हुआ है, उसके सहयोद्धा मित्र पास नहीं हैं, केवल उसकी स्त्री उसके पास है, इसके अलावा पुलिस पीछे लगी हुई है, ऐसी अवस्था में जब मृत्यु करीब थी, उसकी स्त्री रोने लगी, पं0 गेन्दालाल दीक्षित थोड़ी देर तक अपनी स्त्री की ओर देखते रहे, फिर बोले-तुम रोती हो तो रोओ किन्तु आखिर इस रोने से क्या हासिल होगा? दुःख तो मुझे भी है, जिस बात का मैंने बीडा उठाया था और मैंने उसे कितना सिद्ध किया? मर तो मैं रहा हूं, किन्तु जिस कारण मैं मर रहा हू, वह पूरा कहां हुआ? सच बात तो यह है कि उसके पूरा होने की आशा भी नहीं देख रहा हूं, मैं इस बात को देखकर मर रहा हूं कि मैंने जो कुछ किया था, वह छिन्न-भिन्न हो गया, मुझे केवल इतना ही दु.ख है कि मां के ऊपर अत्याचार करनेवालों से बदला नहीं ले सका, जो मन की बात थी वह मन में रह गई, मेरा शरीर नष्ट हो जायेगा, किन्तु मैं मोक्ष नहीं चाहता, मैं तो चाहता हूं कि बार-बार इसी जन्मभूमि में जन्म लूं और बार-बार इसी के लिए मरूं, ऐसा तब तक करता रहूंगा, जब तक कि मेरा देश गुलामी की जंजीरो से छूट न जायें।"

(भ0 क्रा0 आ0 का इतिहास, पृ0 107-108)

इस प्रकार एक उच्चतम ध्येय तथा पवित्रतम कामनाओं को अपने दिल में संजोये, यह देशभक्त आर्यवीर इस संसार से कूच कर जाता है, अमरशहीद रामप्रसाद बिस्मल के शब्दों में "भारतवर्ष की महान् आत्मा विलीन हो गई और देश ने जाना भी नहीं।"

काकोरी केस के आर्यवीर

भारतीय स्वाधीनता संग्राम के प्रसंग में मैनपुरी घटना के पश्चात् काकोरी रेल डकैती की घटना घटी थी, इस घटना का विशेष महत्त्व इसलिये भी है कि भारत के केवल मात्र दस नौजवानों ने जिनमें अधिकांश की आयु 20 वर्ष से अधिक नहीं थी, सशस्त्र सैनिकों की उपस्थिति में सरकारी खजाने को लूटा था, पाठकों को यह भी आश्चर्य होगा कि आयु की दृष्टि से इनमें अधिक संख्या ग्रामीण भाषा में 'बच्चों' की थी, इस दल का नेता देशभक्त अमर शहीद आर्यवीर रामप्रसाद बिस्मिल था, इनको कांटों से भरे मार्ग पर चलने की प्रेरणा आर्यसमाज के एक महान् सन्त श्रद्धेय स्वामी सोमदेव जी से मिली थी, आर्यसमाज का सौभाग्य है कि बिस्मिल की आत्मकथा उपलब्ध है, जो इन्हीं ऐतिहासिक तथ्यों को उजागर करती है, अन्यथा इस वीर को भी साम्यवाद अथवा विदेशों से स्वाधीनता की प्रेरणा लेने वाला कह दिया जाता, उसी आधार पर निम्न तथ्य उपस्थित किये जा रहे हैं।

स्वामी सोमदेव जी महराज

"माताजी के अतिरिक्त जो कुछ जीवन तथा शिक्षा मैंने प्राप्त की वह पूज्यपाद श्री 108 स्वामी सोमदेव जी महाराज की कृपा का परिणाम है, आपका नाम श्रीयुत ब्रजलाल चोपड़ा था, पंजाब के लाहौर शहर में आपका जन्म हुआ, जब लाला लाजपतराय को देश निर्वासन का दंड मिला, एक समाचार-पत्र की सम्पादकीय के लिये डिक्लेरेशन दाखिल किया, डी0 सी0 उस समय किसी के भी समाचार पत्र के डिक्लेरेशन को स्वीकार न करता था, जब आपसे भेंट हुई तो वह बड़ा प्रभावित हुआ, और उसने डिक्लेरेशन मंजूर कर लिया, अखबार

का पहला ही अग्रलेख 'अंग्रेजों को चेतावनी' के नाम से निकला, लेख इतना उत्तेजनापूर्ण था कि थोड़ी ही देर में समाचार की सब प्रतियां बिक गई, और जनता के अनुरोध पर उसी अंक का दूसरा संस्करण प्रकाशित करना पडा, डिप्टी कमिश्नर के पास रिपोर्ट गई, उसने आपको दर्शनार्थ बुलाया, वह बडा क्रुद्ध था, लेख को पढ़कर कांपता और क्रोध में आकर मेज पर हाथ दे मारता, लेकिन अन्तिम शब्दों को पढ़कर चुप हो जाता, उस लेख के कुछ शब्द इस प्रकार थे, 'यदि अंग्रेज अब भी न मानेंगे तो वह दिन दूर नही कि सन् 1857 के दृश्य फिर दिखाई दें, और अंग्रेजों के बच्चों को कत्ल किया जाये, उनकी रमणियों की बेइज्जती हो इत्यादि ''किन्तु यह स्वप्न है'' ''किन्तु यह स्वप्न है'' इन्हीं शब्दों को पढ़कर डिप्टी कमिश्नर कहता था कि हम तुम्हारा कुछ नहीं कर सकते, अंग्रेजी की योग्यता आपकी बड़ी उच्चकोटि की थी, आपका शास्त्र-विषयक ज्ञान बडा गंभीर था, इतना साफ निर्भीक बोलनेवाला मैंने आज तक नहीं देखा, सन् 1913 ई0 में आपका पहला व्याख्यान शाहजहांपुर में पुनः सुना, आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर आप पधारे थे, वहां तीन वर्षो तक आपको हर साल आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर बुलाया जाता रहा, सन् 1915 ई0 में कतिपय सज्जनों की प्रार्थना पर आप आर्यसमाज मन्दिर शाहजहांपुर में ही निवास करने लगे, इसी समय से मैंने आपकी सेवा सुश्रूषा में समय व्यतीत करना आरम्भ कर दिया, राजनीति मे भी आपका ज्ञान उच्चकोटि का था, एक बार महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) को आपने पुलिस के प्रकोप से बचाया, आचार्य रामदेव जी तथा श्रीयुत कृष्ण जी से आपका बड़ा स्नेह था, यद्यपि आर्यसमाज के सिद्धान्तों को सर्वप्रकारेण मानते थे, किन्तु परमहंस रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ तथा महात्मा कबीरदास के उपदेशों का वर्णन प्रायः किया करते थे, आपके कुछ लेख तथा पुस्तकें आपके एक भक्त के पास थीं, जो योंही नष्ट हो गई, कुछ लेख तथा पुस्तकें श्री स्वामी अनुभवानन्द जी शांत ले गये।

(रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा, पृ0 24-31)

पाठकगण! ये थे आर्यसमाज के वे सन्त जिन्होंने समर्थ रामदास की भांति बिस्मिल के रूप में आधुनिक शिवाजी को तैयार कर भारतीय संस्कृति, सभ्यता, तथा स्वाधीनता के लिये अपना सर्वस्व होमने को प्रेरित तथा सन्नद्ध किया था, परन्तु एक ओर हमारा आर्यसमाज भी है जिसने अपने इतिहास के लिये गौरवास्पद इस राष्ट्रीय साधु के जीवन-चरित्र तथा उनके चित्रादि की गंवेषणा के सम्बन्ध में गहरा, क्रूर मौन एवं उपेक्षा धारण कर अपने आलस्य तथा उपेक्षा का परिचय दिया है, काश! कि हम इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की खोज कर सकते होते, आर्यजगत् के इस राजनैतिक संत ने नररत्न देश को दिया, प्रसंगवश उसका वर्णन किया जाता है।

रामप्रसाद बिस्मिल

आप शाहजहांपुर (उत्तर प्रदेश) के श्री मुरलीधर जी के घर उत्पन्न हुये थे, जिनके पूर्वज चम्बल नदी के किनारे तोमरधार में निवास किया करते थे, बिस्मिल जी बचपन से ही उद्दण्ड प्रकृति के थे, कुमारावस्था में इनमें कुछ बुराइयां घर कर गई थी, परन्तु आर्यसमाज के सत्संग से आपने सभी दुर्गुणो को त्यागा, बलिदान पथ के पथिक बने कैसे? उन्हीं के शब्दों में ही सुने। 'मुशी जी ने आर्यसमाज सम्बन्धी कुछ उपदेश दिये, इनके बाद मैंने सत्यार्थप्रकाश पढ़ा, इससे तख्ता ही पलट गया, सत्यार्थप्रकाश के अध्ययन ने मेरे जीवन के इतिहास में एक नवीन पृष्ठ खोल दिया, मैं थोडे दिनों मे ही कट्टर आर्यसमाजी हो गया, आर्यसमाज के अधिवेशन में आता-जाता, जब कोई सन्यासी आता तो उसकी हर प्रकार से सेवा करता।' आगे आपने लिखा है कि मेरे आर्यसमाजी बनने पर पिताजी ने दूसरों के बहकाने पर मुझे कहा कि या तो आर्यसमाज से त्यागपत्र दे दो, अथवा घर छोड दो, पिताजी का यह आदेश सुनकर बिस्मिल जी एक कुरता तथा पाजामा पहने घर से निकल गये, और आर्यसमाज मन्दिर में चले गये, परन्तु इनके पिताजी वहां से पकडकर इन्हें फिर घर ले आये।

जब मै आठवें दर्जे मे था, उसी समय स्वामी सोमदेव जी सरस्वती आर्यसमाज शाहजहांपुर में पधारे, कुछ सज्जनों के अनुरोध से कुछ दिनो के लिये स्वामी जी आर्यसमाज मन्दिर शाहजहांपुर मे ठहर गये, मैं आपके पास आया-जाया करता था, प्राणपण से मैंने स्वामी जी की सेवा की, और सेवा के परिणामस्वरूप मेरे जीवन में नवीन परिवर्तन हो गया, वास्तव मे आप मेरे गुरुदेव तथा पथ प्रदर्शक थे, कुछ नवयुवको ने मिलकर आर्यसमाज मन्दिर मे आर्यकुमार सभा खोली थी, जिसके साप्ताहिक अधिवेशन प्रत्येक शुक्रवार को हुआ करते थे, कुमार सभा से ही मैंने जनता के सम्मुख बोलने का अभ्यास किया, बहुदा कुमार सभा के युवक मिलकर शहर के मेलों में प्रचारार्थ जाया करते थे, बाजारो मे व्याख्यान देकर आर्यसमाज के सिद्धान्तों का प्रचार किया करते थे, मै नित्यप्रति नियमपूर्वक हवन भी किया करता था।

(बिस्मिल की आत्मकथा, पृ0 15-18)

इसी प्रकार आगे चलकर उक्त पुस्तक में लिखा है, कि देहली मे कांग्रेस का अधिवेशन होने से पहले आपने अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली ? नामक जब्त पुस्तक छपवाकर दिल्ली में अधिवेशन के अवसर पर बेचने का निश्चय किया था, वहां तलाशी होने पर पुस्तक की सारी प्रतियां आर्यसमाज के कैम्प मे जमा कर दीं जहां से सुरक्षित पुन: आप उनको ले गये, इस प्रकार देश की स्वाधीनता के वृक्ष को अपने रक्त से सींचनेवाले ये वीर आर्यसमाज के ही वातावरण में पले थे तथा उसकी घुट्टी पीकर ही इस मार्ग की ओर बढ़े थे, जब काकोरी स्टेशन के निकट रेलगाड़ी रोककर अल्पवयस्क और केवल मात्र दस युवकों ने सरकारी खज़ाने को लूटा, तब राजद्रोह के अपराध में आपको गिरफ्तार कर मृत्यु दण्ड दिया था, और आप हंसते-हंसते गोरखपुर की जेल में दिसम्बर 1927 को फासी के फन्दे पर झूल गये, और अपने इस अद्‌भुत कार्य से राष्ट्रीय इतिहास में सदा के लिये अमरपद प्राप्त कर गये, आप एक अच्छे कवि भी थे, 'बिस्मिल' आपका कवि के रूप में ही एक उपनाम

थीं, शहीद होते समय आपकी क्या भावनायें थी, यह उनके अपने रचित तथा उनके प्रिय निम्न कुछ पद्यो से पाठक जान सकते हैं–

मरते बिस्मिल रोशन लहरी अशफाक अत्याचार से,
होंगे पैदा सैकड़ों इनके रुधिर की धार से।
शहीदों के मंजारों पर जुडेंगे हर वर्ष मेले,
वतन पर मिटनेवालों का यही बाकी निशां होगा।
इलाही वह भी दिन होगा जब अपना राज देखेंगे,
जब अपनी ही जमीं होगी और अपना ही आसमां होगा।
दिल फिदा करते हैं, कुरबां जिगर करते हैं,
पास जो कुछ है वह माता की नजर करते हैं।

एक भ्रामक विचार

इस आर्यवीर के सम्बन्ध में श्री मन्मथनाथ जी गुप्त अपने ग्रथ में लिखते हैं – 'पं0 रामप्रसाद ने लकड़पन से आर्यसमाजी शिक्षा पाई थी, बाद मे भी वे कट्टर तो नहीं किन्तु आर्यसमाजी बने रहे।

(भा0 क्रा0 आ0 का इतिहास, पृ0 230)

यहां श्री गुप्त जी के विचार उनकी निष्पक्ष तथा विशुद्ध मानोवृत्ति के सूचक नहीं हैं, काश! कि गुप्त जी साम्यवादी चश्मा आंखों से हटाकर उसके सही रंग को देख पाते, लेकिन वे भी तो मजबूर हैं, उनके मत की असत्यता प्रमाणित करनेवाले निम्न प्रमाण हैं–

1. "मैं यथानियम जाड़े–गर्मी तथा बरसात में प्रात:काल तीन बजे उठकर सन्ध्यादि से निवृत्त हो नित्य हवन भी करता था, प्रत्येक पहरे का सिपाही देवता के समान मेरा पूजन करता था, यदि किसी के बाल–बच्चे को कष्ट होता था तो वह हवन की भभूत ले जाता था।

(बिस्मिल की आत्मकथा, पृ0 112)

पाठकवर्ग! इस स्थान पर बिस्मिल जी अपने अन्तिम कारावास के अन्तिम समय की जीवनचर्या का वर्णन कर रहे है, जिसने जेल में अपने अन्तिम समय मे भी संध्या–हवन का त्याग नहीं किया, क्या उसके दृढ़ आर्यसमाजी होने में अब भी कुछ सन्देह है?

2. परमात्मा से मेरी यह प्रार्थना है कि वह मुझे इसी देश में जन्म दे, मैं उसकी पवित्र वाणी का अनुपम घोष मनुष्यमात्र के कानों तक पहुंचाने में समर्थ हो सकूं।

(आत्मकथा, पृ0 132)

इस वाक्य के द्वारा उस आर्यवीर देशभक्त ने दो आर्यसमाज के सिद्धांतो को अपनी अन्तिम इच्छा के रूप में प्रकट किया, इसमें प्रथम तो पुर्नजन्म को स्वीकार किया, दूसरे महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज के ध्येय मुख्य वेदप्रचार को अपने भावी जीवन का लक्ष्य प्रकट किया, इतना सब कुछ होने पर भी क्या अपने अन्तिम समय में बिस्मिल जी के पक्के आर्यसमाजी होने में किसी भी बुद्धिमान को थोडे भी सन्देह की गुजाईश रहती है?

3 फांसी के निकट जाकर उन्होने कहा – I wish the down fall of British Empire, अर्थात् मैं ब्रिटिश साम्राज्य का विनाश चाहता हूं, फिर वह तख्ते पर चढ़े और ''विश्वानि देव सवितर्दुरितानि' मन्त्र का जाप करते हुए फंदे से झूल गये।

(आत्मकथा सम्पादकीय)

फांसी के तख्ते पर खड़ा होकर भी वेदमंत्र का पाठ करना, क्या उनके दृढ आर्यसमाजी होने का सूचक नहीं है? मंत्र भी वह है जो महर्षि दयानन्द का अधिक प्रिय है, ऋषि दयानन्द सरस्वती ने इस मंत्र को वेदभाष्य करते समय प्रत्येक अध्याय तथा मंडल के आरंभ में दिया है, साथ ही अपने प्रत्येक ग्रन्थ मे उल्लेख किया है, इतने पर भी बिस्मिल के कच्चे आर्यसमाजी रह जाने का रहस्य तो श्री गुप्त ही जान सकते हैं, क्योकि उनके अतिरिक्त इस रहस्य को कोई नहीं जान सकता है, इस प्रकार के गुप्त रहस्यों के वही एकमात्र ज्ञाता हैं।

4 फांसी से पूर्व आपकी (बिस्मिल की) यह अन्तिम इच्छा थी कि मेरे शव को आर्यसमाज को दे दिया जाये, गोरखपुर आर्यसमाज ने उनके शव की अभूतपूर्व शोभायात्रा निकाली और वैदिक-रीति से संस्कार किया।

(आर्य प्रतिनिधिसभा, उत्तर प्रदेश का इतिहास, पृ0 171)

गुप्त जी से हम इतना ही कहना चाहेंगे कि आपके कामरेडों की भांति बिस्मिल ने अपनी लाश को कब्रिस्तान में दफनाने को क्यों नहीं कह दिया? और इतने पर भी यदि आपका गुप्त मस्तिष्क बिस्मिल को प्रखर तथा दृढ़ आर्यसमाजी मानने को उद्यत नहीं हो, तो आपके चिन्तन का खुदा ही रखवाला है, इन सभी प्रमाणों से सिद्ध है कि बिस्मिल जी मरते दम तक प्रखर तथा प्रगाढ़ आर्यसमाजी बने रहे, इतने मात्र ही से गुप्त जी के उपरोक्त कथन का अनौचित्य, अप्रामाणिकता के विपरीत कथन तथा साम्यवादी विचारधारा के कारण आर्यसमाज के प्रति विद्वेषपूर्ण दृष्टिकोण, एक सच्चे इतिहासकार व्यक्ति एवं यथार्थवादी लेखक न होने का प्रमाण स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो रहा है–इतिहास का यह एक और भी तथ्य है कि सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम के पश्चात् सशस्त्र क्रांति कर राजद्रोह के अपराध मे उत्तर प्रदेश का यदि कोई व्यक्ति सर्वप्रथम फांसी पर चढा तो वह यही देशभक्त आर्यवीर रामप्रसाद बिस्मिल था, क्या इतिहासकार आर्यसमाज के इस गौरव को भूलकर कृतहनता का पाप अपने सिरमाथे लेने को तैयार हैं? यदि नहीं तो अपनी लेखनियों से इसका वर्णन कर कृतज्ञों की पंक्ति में आने का साहस दिखायें, बिस्मिल की मौत के बाद इनके परिवार की दुर्दशा को लिखते लेखनी थर्राती है, एक ओर तो बिस्मिल ज़िन्दाबाद के नारों से आकाश गूंजता था, दूसरी ओर चुनाव में वोट बटोरने के लिए बिस्मिल द्वारों का निर्माण किया जाता था, तीसरी ओर शहीद परिवार सहायक फंड के नाम से लाखों की राशि से बगुलाभक्तों की तोन्दे फूलती जा रही थी, लेकिन इतना सब कुछ होने के बावजूद भी बिस्मिल का छोटा भाई रमेश पथ्य तथा दवादारु तक के लिए एक–एक पैसे के अभाव में टी० बी० के भयानक रोग से तड़प–तडप कर तथा घुट–घुट कर मर जाता है, वृद्धा माता एक–एक दाने के लिए तरसती है, युवती बहन के पास अपनी लाज ढांपने तक के लिये फटे–चीथडे तक मुहैय्या न थे, देश को पराधीनता से मुक्ति दिलाने के लिए जो अपने परिवारों के दीपकों को बुझाकर परिवारों को गहरे अंधकार में डाल गये, बुढापे के दुखड़े

झेलने के लिए मा-बाप को अकेला छोडकर उठती जवानी में फांसी के फंदों पर झूल गये, ऐसे शहीदों के प्रति क्या हमारी यही श्रद्धा है? देशवासी सोचें कि हमारी इस जघन्यतापूर्ण मनोवृत्ति को देखते हुये क्या कोई युवक देश पर मर-मिटने के लिए उत्साहित होगा? काश! कि हमारे देशवासी उन शहीदों के तप, त्याग, बलिदान एवं सेवाओ का वास्तविक मूल्यांकन करने का विवेक तथा साहस जुटा पाते।

ठाकुर रोशनसिंह और विष्णुशरण दुब्लिस

बिस्मिल के साथ काकोरी कांड में अमर शहीद ठाकुर रोशनसिंह तथा विष्णु शरण दुब्लिस ये दोनो ही सज्जन आर्यसमाजी विचारधारा वाले हैं, 'बाद में शहीद होने वाले श्री रोशनसिंह उन्हीं (रामप्रसाद बिस्मिल) के पदों का अनुसरण करते थे।'

(साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दिल्ली, 13-7-1958)

'वे लम्बे तगडे बलिष्ठ युवक थे, अपने को कट्टर आर्यसमाज मानते थे' 'शुरु-शुरु में हवनादि भी बहुत करते थे, यद्यपि वे कट्टर धार्मिक बने रहे' उन्होंने सजा सुनकर ओइम्- ओइम् जोर से कहा।'

(भारत के क्रान्तिकारी - ले0 मन्मथनाथ गुप्त, पृ0 170-171)

'पर समय-समय पर वे उसी दिल बहलाने के तरीके से ओइम्-ओइम् शब्द जो उनका अदम्य साहस सूचित करता था सुनाई पड़ता था।'

(पूर्वोक्त पुस्तक, पृ0 172-173)

फांसी पर चढ़ते ही उन्होने 'वन्दे मातरम्' का नाद किया, और ओइम का स्मरण करते हुये लटक गये, 'आर्यसमाजी विधि से श्मशान-भूमि में उनका दाह संस्कार हुआ।'

(पूर्वोक्त पुस्तक, पृ0 174)

पाठक! इतने प्रमाणों के पश्चात् आप समझ ही गये होंगे कि अमर शहीद रोशनसिंह के दिल पर आर्यसमाज की कितनी गहरी छाप थी, इन्हीं का एक सम्बन्धी कुंवर अभिलाषचन्द्र आर्यसमाज के प्रसिद्ध

उपदेशक विद्यालय 'मुसाफिर महाविद्यालय आगरा' में विद्याध्ययन किया करता था, जब कभी वह साथियों के साथ दिल्ली आता तो लाल किले पर यूनियन जैक लहराता हुआ देखकर उसकी आंखों में खून उतर आता, परन्तु वह अपनी विवशता सोच दिल मसोसकर रह जाता, यह उक्त विद्यालय के स्नातक जोकि स्वयमेव स्वाधीनता सेनानी रहे हैं का कथन है, फांसी से कुछ दिन पूर्व ही रोशनसिंह ने अपने एक मित्र को पत्र में लिखा था कि 'आप मेरे लिए हरगिज़ रंज न करें, मेरी मौत खुशी का बायस होगी, दुनियां मे पैदा होकर मरना जरूर है, दुनियां में बदफेल करके मनुष्य अपने को बदनाम न करे, मरते वक्त ईश्वर की याद रहे, ईश्वर की कृपा से मेरे साथ ये दोनों बातें हैं और अन्त में आपने पद्य में लिखा था–

जिन्दगी जिन्दादिली को जान ऐ रोशन,
वरना कितने मरे और पैदा होते जाते हैं।

श्री विष्णुशरण दुब्लिस के सम्बन्ध में पाठक इतिहास के निम्न प्रमाणों को देखें। विष्णुशरण दुब्लिस यहां (आर्यसमाज मवाना जि० मेरठ) के नवयुवक कार्यकर्त्ता रहे हैं, इन्होंने सन् 1921 के स्वतन्त्रता आन्दोलन में बीच बाजार में गोरे अधिकारियो की बेतों की मार हंसते-हंसते सही है, इनको काकोरी षड्यंत्र केस में बंदी बनाकर अंडमान भेज दिया था।

(आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का इतिहास, पृ० 34)

इस देशभक्त आर्यवीर के ऊपर आर्यसमाज का ही प्रभाव था कि जब काकोरी केस के अभियुक्तों में चार को फांसी का दंड सुनाया गया, तो यह वीर अदालत में रोता हुआ कहने लगा कि मुझको फांसी का दंड क्यों नहीं दिया ? भारतमाता के पुत्रों में क्या मैं ही ऐसा नालायक हूं कि जिसे इस महानतम राष्ट्रीय पुरस्कार से वंचित किया जा रहा है, अग्रेज मैजिस्ट्रेट इस युवक की इतनी निर्भयता देख आश्चर्यचकित रह गया, यह है इन देशभक्त आर्यवीरों की गौरवपूर्ण, साहसिक तथा रोमांचकारी यशस्वी गाथायें जोकि हमारे आज़ादी के इतिहास का सुनहरा तथा गर्वीला अध्याय है, जिनसे आनेवाली पीढिया देश की मुहब्बत की धुन की प्रेरणा ले सकती हैं।

भगतसिंह का दल और आर्यसमाज

काकोरी की घटना के पश्चात् भारतीय स्वाधीनता के संग्राम क्षेत्र में यदि किसी का नाम चमकता दिखाई देता है तो वह है क्रांति का प्रतीक, शहीदशिरोमणि वीर भगतसिंह, जिसे राष्ट्रीय क्षेत्र में 'इंकलाब जिन्दाबाद' जैसे जीवन्त और क्रांति की भावना के द्योतक, व्यापक नारे का प्रवर्तक माना जाता है, उत्तर भारत में उस समय इस वीर की इतनी अधिक ख्याति फैल गई थी कि सशस्त्र क्रांति और भगतसिंह दोनो ही शब्द पर्यायवाची बन गये थे, स्वयं गांधीवादी लोगों के कथनानुसार उस समय भगतसिंह की कीर्ति गांधी जी से किसी भी अंश मे कम न थी, इस प्रकार का स्वातंत्र्य वीर भी आर्यसमाज की ही देन है, प्रायः अन्य प्रान्तवासियों को इसके नाम के आगे "सिंह" शब्द लगा देखकर उसके आर्यसमाजी होने का सहसा विश्वास नहीं होता, वे तो उसे एक विशुद्ध सिक्ख के रूप में ही जानते तथा मानते हैं, ऐसे सज्जनों के भ्रमनिवारण के लिए इतिहास के कुछ तथ्य प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

1. सरदार अर्जुनसिंह (वीर भगतसिंह के दादा) ने ऋषि दयानन्द के दर्शन किये थे तो मुग्ध हो गये और उनका भाषण सुना तो नवजागरण की सामाजिक सेना में भर्ती होकर आर्यसमाजी हो गये, वे उन थोड़े से लोगों में से थे जिन्होंने स्वयं ऋषि दयानन्द से दीक्षा ली थी, यज्ञोपवीत अपने हाथों से पहनाया था, यह सरदार अर्जुनसिंह का पुनर्जन्म था, हवनकुंड उनका साथी हो गया और संध्या प्रार्थना सहचरी...सचमुच सरदार अर्जुनसिंह का आर्यसमाजी होना एक बड़ा क्रांतिकारी कदम था, कई शास्त्रार्थों में वे ही आर्यसमाज के प्रमुख वक्ता रहे, आर्यसमाज के उत्सवों में दूर-दूर भाषण के लिए जाते थे, वे अपने क्षेत्र के प्रमुख आर्यसमाजियों में गिने जाते थे, अब वे किसान भी थे, हकीम भी थे, आर्यसमाजी नेता भी।

(युगद्रष्टा भगतसिंह और उनके मृत्युंजयी पुरखे – ले० वीरेन्द्र सिंधु, पृ० 3–6)

2 सन् 1950 ई0 में दिल्ली के विभिन्न क्षेत्रों के अन्तर्गत शहीद भगतसिंह की बरसी मनाई जा रही थी, एक जलसे में मैं, पं0 लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति पूर्व महोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के साथ जा रहा था, रास्ते में शहीद भगतसिंह की चर्चा आरम्भ हो गई, तो स्व0 प0 लोकनाथ जी ने मुझे बताया कि शहीद भगतसिंह तो मेरा शिष्य था, मैंने पूछा यह कैसे ? तो पंडित जी ने उत्तर दिया कि मैं अपनी प्रचारयात्रा में मुलतान से लाहौर आर्यसमाज के कार्यक्रम पर आया, बच्छेवाली आर्यसमाज मंदिर में मेरा व्याखान हुआ, जब मैं आर्यसमाज मंदिर से विदा होकर बाहर निकलने लगा तब एक सोलह वर्षीय नवयुवक ने मेरे चरणों का स्पर्श किया, और कहा पूज्य पंडित जी मैं आपके करकमलों से यज्ञोपवीत की शिक्षा लेना चाहता हूं, मैने पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है ? काम क्या करते हो ? तो उस नवयुवक ने बताया कि मैं शहीद किशनसिंह का पुत्र हूं, भगतसिंह मेरा नाम है और दयानन्द कालेज में पढता हूं, मैंने अपने घर में और मित्रों में आपकी विद्वत्ता की बडी प्रशंसा सुनी है, अतः मैंने अपने मन में निश्चय किया हुआ है कि यज्ञोपवीत की दीक्षा आपके हाथो से लूं, पं0 लोकनाथ जी ने बताया कि मुझे अपनी इच्छा के विरुद्ध उस दिन लाहौर में रुकना पड़ा, और दूसरे दिन मैंने शहीद भगतसिंह का विधिवत् यज्ञोपवीत संस्कार कराया, जब मैंने गायत्री का उपदेश किया तो प्रस्तरमूर्ति के सदृश बड़ी श्रद्धा और प्रेम से उपदेश को श्रवण करता रहा, उसने जीवनपर्यन्त गायत्री का जप करने की प्रतिज्ञा की, पं0 जी ने कहा कि मुझे क्या पता था कि वह साधारण युवक भारतमाता की परतन्त्रता की बेडियां काटने के निमित्त अपना जीवन समर्पित कर देगा, पं0 जी ने आंखों में आंसू भरकर कहा कि भगतसिह मेरा परमशिष्य था।

3 सन् 1946 में सोहरावर्दी की हकूमत में नवाखाली का हत्याकांड हुआ, सार्वदेशिक सभा की ओर से आर्यवीर दल के प्रमुख नायक श्री ओमप्रकाश जी त्यागी को नवाखाली के हिन्दुओं की सुरक्षा एवं सेवा के लिये कलकत्ता भेजा गया, श्री स्व0 डा0 श्यामाप्रसाद

जी मुकर्जी ने श्री त्यागी जी के साथ एक सौ आर्यवीर दल के सैनिकों को भेजने का प्रस्ताव रखा, श्री त्यागी जी ने मुझे लिखा कि सौ आर्यवीर जल्दी कलकत्ता भेजे, मैंने राजस्थान का दौरा किया, और केवल रियासत अलवर से आर्यवीर दल के सौ नौजवान नवाखाली के हत्याकाड में पीड़ित बन्धुओं की सहायता के लिये जाने के लिये तैयार हो गये, उन्हें तुरन्त कलकत्ता भेज दिया गया, श्री त्यागी जी उन्हें लेकर नवाखाली गये, वहां का इतिहास बड़ा लम्बा है उसे छोड़ते हुये मैं इस प्रसंग को केवल इतना बताना चाहता हूं कि नवाखाली के हत्याकांड में हजारों हिन्दुओं को बचाने के पश्चात् श्री त्यागी अपने साथियो के साथ कलकत्ता पहुंचे, तो वहां उनका भव्य स्वागत हुआ, श्री त्यागी जी आर्यसमाज मन्दिर, 19 कार्नवालिस स्ट्रीट में ठहरे, उस समय आर्यसमाज कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता का बूढ़ा चपरासी तुलसीराम था, तुलसीराम जी ने त्यागी जी के कान में एकांत में कहा कि लोग आपका बड़ा स्वागत कर रहे हैं, एक छोटा सा स्वागत मैं भी करना चाहता हूं, कल प्रातःकाल का भोजन मैं स्वयं बनाकर खिलाऊंगा, जो ऐतिहासिक होगा और जो आप जीवनपर्यन्त भूलेंगे नहीं, श्री त्यागी ने स्वीकार कर लिया, और दूसरे दिन आर्यसमाज मन्दिर के ऊपरवाले एक छोटे कमरे में श्री तुलसीराम जी ने त्यागी जी को भोजन के लिये बुलाया, जब त्यागी जी भोजन के लिये बैठे तो तुलसीराम ने अपनी जेब से एक चाबी निकली, और सामनेवाली अलमारी को बड़े प्रेम से खोला, और उसमें से एक थाली और एक कटोरा बड़े प्रेम से निकाला, उसमें दाल, शाक और फुलके परोसकर त्यागी जी के सामने रखे, त्यागी जे भोजन करते-करते हंसकर कहा-तुलसीराम जी आप तो ऐतिहासिक भोजन कराने की बात कह रहे थे, वही दाल व फुलका, इसमें इतिहास की कौन सी बात है ? बूढ़े तुलसीराम ने बडे गर्व के साथ कहा त्यागी जी ! अंग्रेजी राज्यकाल मे सेन्ट्रल असेम्बली में क्रांतिकारी नवयुवक शहीद भगतसिंह ने अंग्रेजी सरकार को सावधान करने के लिये बम फेंका था, उससे लगभग छः मास पूर्व भगतसिंह लगातार तीन मास इसी आर्यसमाज

मन्दिर में ठहरा था, वह प्रातःकाल उठते ही वेदमंत्रों का उच्चारण उच्च स्वर से करता था, और समाज मंदिर में यज्ञ होने से पूर्व सभी यात्रियों को जगा देता था और कहता पवित्र यज्ञ की ज्वाला जलने लगी है यह समय सोने का नहीं है, जागो।

तुलसीराम ने बताया कि भगतसिंह बड़ी श्रद्धा से यज्ञवेदी पर बैठता था और बड़े प्रेम के साथ संध्या तथा यज्ञ में भाग लिया करता था, जब वह यहां से विदा होने लगा तो उसने इसी कमरे में मुझे बुलाकर एकांत में कहा मैं जा रहा हूं और कोई बड़ा काम करूंगा, जिसकी सूचना आपको मिल जायेगी, उसने कहा तुलसीराम जी! मेरा धार्मिक स्वरूप आपने देखा है मेरे जीवन की राजनैतिक घटनाओं को सारा संसार देखेगा, भगतसिंह ने कहा भारतमाता की आज़ादी के लिए बलिदान होनेवाले क्रांतिकारी के पास अपनी यादगार कायम (रखने) करने के लिए कोई जायदाद या बैंक बैलेंस नहीं है, तुलसीराम जी। मेरे पास केवल यह थाली और कटोरा है, इसे आप संभाल कर रखिये और जब कोई नवयुवक देश धर्म और समाज की सच्ची सेवा करता हुआ इस समाज में ठहरे, तो इसी थाली में उसे भोजन कराके बड़े प्रेम से कह देना "यह भगतसिंह की है।"

(श्री लाला रामगोपाल जी तत्कालीन महामंत्री, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधिसभा नई दिल्ली द्वारा लेखक को लिखे गये दि0 25-4-1966 के 3418 संख्यक पत्र से उद्धृत)

सम्भवतः कुछ पाठकों के मन में यह विचार उत्पन्न हो जाये कि भगतसिंह के यज्ञोवपीत संस्कार की घटना अपनी संस्कृति का गौरव बढाने के उद्देश्य से कुछ आर्यनेताओं ने मनघड़न्त ही बनाकर लिखी हो, ऐसे सज्जनों के सन्देह निवारणार्थ इस सम्बन्ध में अन्य ठोस तथा मौलिक प्रमाण उपस्थित किये जाते हैं।

4. पूज्य पिता जी नमस्ते, मेरी ज़िन्दगी मकसद आला यानी आज़ादी-ए-हिन्द के असूल के लिए वख़फ हो चुकी है इसलिए मेरी जिन्दगी में आराम और दुनियावी ख्वाहशात बायसे कशिश नहीं है, आपको याद होगा कि जब मैं छोटा था तो बापूजी ने मेरे यज्ञोपवीत

के वक्त ऐलान किया था कि मुझे खिदमते वतन के लिये वक्फ कर दिया गया, लिहाज़ा मैं उस वक्त की प्रतिज्ञा पूरी कर रहा हूं, उम्मीद है आप मुझे माफ करेंगे। आपका ताबेदार भगतसिंह।

(युगद्रष्टा भगतसिंह और उनके मृत्युंजयी पुर्खे, पृ० 146)

अपने मन में भारतराष्ट्र की पराधीनता के अमरसंकल्प को लेकर वीर भगतसिंह ने सदा के लिये घर-बार का त्याग कर दिया था, तब जाते हुये अपने पिता किशनसिंह जी के नाम पत्र छोड़ गये थे, उसकी ही प्रतिलिपि ऊपर उद्धृत की गई है, जिसमें स्वयं ही स्वीकार किया है कि उसका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ था, एक पुत्र भरी जवानी में शहीद हो गया, और दूसरा देश से जलावतन हो गया, तीसरा हथकड़ियों की चौसर पर आकर बेड़ियो की शतरंज जीवनभर खेलता रहा, पर जब उनके बड़े पोतों जगतसिंह और भगतसिंह का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ तो उन्होंने एक को अपनी बांई भुजा में और दूसरे को दांई भुजा में भरकर संकल्प किया 'मैं अपने दोनों वंशधरों को इस यज्ञवेदी पर खड़े होकर देश की बलिवेदी के लिये दान करता हूं, बाद में उन्होंने ही शिष्टाचार और राष्ट्रीय शिक्षा एवं विचार की शिक्षा उन्हें दी, जब उनके पोतों का यज्ञोपवीत हुआ, तो दोनों के सिर पर बाल थे, हिन्दुप्रथा के अनुसार उनका मुंडन होना था।'

(पूर्वोक्त पुस्तक, पृ० 9)

यहां इतना ही विशेष है कि उक्त अवसर पर जब बाल मूंडने का अवसर आया तो दादी श्रीमती जयकौर के आग्रह पर बाल बिना मुंडाये ही यज्ञोपवीत संस्कार किया गया, उक्त ग्रंथ की लेखिका के सम्बंध में इतना ही पर्याप्त होगा कि श्रीमती वीरेन्द्र सिन्धु अमर शहीद भगतसिंह के छोटे भाई श्री कुलतार सिंह की सुपुत्री है, इस ग्रंथ में दिये गये वक्तव्यानुसार अपने पारिवारिक जनों द्वारा संग्रहीत लिखित अथवा मौखिक सामग्री के आधार पर ही इस महत्वपूर्ण ग्रंथ को लिखा है, आशा कि इतने से ही विवेकी तथा निष्पक्ष पाठकों को इस ग्रंथ की प्रामाणिकता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रहेगा।

5 इस गांव में वैदिकधर्म प्रचार यानि आर्यसमाज का जलसा कराने की धुन दादाजी को सवार हुई, सब गांव एक ओर, शहीद अर्जुनसिंह एक ओर, जलसा तो कर ही डाला भगतसिंह के परिवार के आर्यसमाज आंदोलन में भाग लेने का कारण मस्तिष्क की चेतनता तो थी ही, आरम्भ में पंजाब में जितने भी क्रांतिकारी हुये हैं, सभी आर्यसमाज परिवारों या वातावरण की उपज थे, और बाद में कांग्रेस का प्रभाव फैल जाने पर भी अधिकता ऐसे लोगों की ही रही, पंजाब में क्रांति की ज्वाला भड़काने का श्रेय बंगाल के आन्दोलन को नहीं बल्कि उस समय की विद्रोही आर्यसमाजी मनोवृत्ति और सिक्खद्रोह से बचे हुये असन्तोष को ही है।

(विप्लव, मासिक हिन्दी, लखनऊ, मार्च 1959, पृ0 58-59)

पाठक ऊपर दिये लेख का उदाहरण वीर भगतसिंह के साथी और प्रसिद्ध साम्यवादी विचारधारा के हिन्दी लेखक यशपाल जी का है, जिनके कथन को किसी आर्यसमाजी की मनघडंत बात कहकर उपेक्षा नहीं कि जा सकती है, जैसा कि प्रायः लोगों के कहने की आदत सी बन गई है।

6. अप्रैल 1965 में आर्यसमाज के उत्सव पर समीप के ग्राम में विद्यमान श्री रणवीर (भगतसिंह के सबसे छोटे भाई) को सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया गया, किसी कारणवश अपने उपस्थित न हो सकने की सूचना देते हुये उन्होंने समाज के मंत्री को जो पत्र लिखा वह यहां ज्यों का त्यों दिया जा रहा है।

आदणीय मंत्री जी

सादर नमस्ते

आपकी माताजी और छोटे भाई राजेन्द्रसिंह के नाम 2 से 4 अप्रैल को हो रहे उत्सव में सम्मिलित होने के निमन्त्रण मिले, इनके लिये और उन भावों के लिये जो इन पत्रों से जान पड़ते हैं, मैं आपका अति धन्यवादी हूं, आर्यसमाज में मेरे दादा शहीद अुर्जनसिंह जी भी शामिल हुये थे, फिर मेरे पिता किशनसिंह जी भी, और चाचा शहीद अजीतसिंह जी को भी महात्मा हंसराज जी के साथ समाज का कार्य

करने का शुभ अवसर प्राप्त रहा, हम चारों नहीं बल्कि पाचों भाई यानि शहीद भगतसिह जी भी डी0 ए0 वी0 स्कूल में पढते रहे हैं, और हमारे विचार और मानसिक उन्नति भी बड़ी हद तक आर्यसमाज की देन है, इसलिये तथा और बहुत से दूसरे उपकारों के लिये हम आर्यसमाज के ऋणी हैं, आपके बुलाने पर हाज़िर होकर आज्ञा का पालन करने की खुशी हमें ज़रूर हो पाती, मगर माताजी दूर पंजाब में है, और इतनी जल्दी उनका वहां से आना मुश्किल है, आप फिर कभी अपनी सोहबत का मौका देंगे तो ज़रूर फायदा उठाया जायेगा आर्यसमाज के उपकारों से लदा हुआ आपका एक सेवक रणवीरसिंह, ग्राम चक्रपुर, डाकखाना बाजपुर, नैनीताल।

(देखें सार्वदेशिक साप्ताहिक, नई दिल्ली, मई 1965 मुखपृष्ठ)

पाठकवृन्द! यह पत्र उस राष्ट्रभक्त परिवार का आर्यसमाज के प्रति अपना स्नेह तथा आदर को प्रकट करनेवाला एक मुंह बोलता चित्र है, जिस पर और किसी विशेष टीका टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है।

7. देहरादून स्थानीय आर्य वीरदल की ओर से आयोजित एक सम्मान समारोह में भाषण करते हुये अमर शहीद भगतसिंह के दोनों भाइयों श्री कुलतारसिंह और श्री रणवीर सिंह ने महर्षि दयानन्द के चरणों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये कहा कि महर्षि दयानन्द के सम्पर्क ने हमारे परिवार को देश पर मरना सिखाया, और हमारा परिवार आर्यसमाज का बहुत ऋणी है, श्री कुलतारसिंह ने कहा कि जब महर्षि दयानन्द पंजाब के शहर होशियारपुर में पधारे तो हमारे पितामह शहीद अर्जुनसिंह जी उनके प्रवचन सुनने के लिये कई मील पैदल चलकर होशियारपुर पहुंचे, महर्षि के सम्पर्क ने उन्हें पक्का आर्यसमाजी बना दिया, हमारे पिता और चाचा आर्यसमाज के विचारों में ही पले, हमारे भाई भगतसिंह हिन्दी के एक कुशल लेखक थे, और यह आर्यसमाज के कारण सम्भव हुआ, श्री रणवीरसिंह ने कहा कि आज के इस निराशापूर्ण वातावरण में आर्यसमाज से ही आशा

की जाती है कि वह चरित्रोत्थान द्वारा राष्ट्र को सबल बना सकता है।

(दैनिक हिन्दी वीर अर्जुन, दिल्ली के 15-10-1966 के पृ0 5 कालम 5 पर)

8. एक दिन स्कूल में छुट्टी थी, दूसरे लोग मकान पर मौजूद नहीं थे, मैं अपनी सनक मे मेज पर बैठा कोई लेख या कहानी लिख रहा था, मेज के नीचे टीन की क्या चीज़ पड़ी है ? यह ख्याल न कर उस पर जूते मारकर रख लिये थे, सम्भव है अचेतनरूप से यही धारणा रही हो कि रद्दी की टोकरी की तौर पर कोई डिब्बा है, लिखते समय विचारों को ठेलने के लिये मेज के नीचे उस टीन की चीज को जूते से ऐड दिये जा रहा था, जीने पर भारी कदमो से धमधम करते हुये एक वृद्ध सिख सज्जन अपने ग्रामीण वेश में ऊपर दफ्तर में आ गये, मैने एक दफा नजर उठाकर उनकी तरफ देखा और लिखने में तन्मय रहा, सरदार जी के ऐसे अनेक सम्बन्धी गांवों में आते-जाते रहते थे, इन सज्जनों की दाढ़ी खूब पशस्त बर्फ की तरह श्वेत और चेहरा खूब तेजोमय गुलाबी रग का था, मैंने उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया, आगन्तुक भी मुझसे आदर की प्रतीक्षा न कर एक कुर्सी खींचकर चुपचाप दीवार के पास बैठ गये, मैं मालिक बना बैठा लिखता रहा, और मेज़ के नीचे टीन की चीज़ पर जूते की ठोकरें भी जमाता रहा, अचानक वजनी गालियों से भरी एक करारी डांट सुनकर आंख उठाकर देखा कि वयोवृद्ध भव्य मूर्ति की आंखे लाल और चेहरा क्रोध से तमतमा उठा है, और वे हाथ मे एक मोटी लाठी को फर्श पर ठोक रहे हैं, गधा, उल्लू, नास्तिक, बदमाश, सिर तोड़ दूंगा, उनके हाथ की लाठी मेरे सिर पर पड़ना ही चाहती थी कि वृद्ध ने अपने आवेश को कठिनता से वश में कर मेज के नीचे संकेत करते हुये फटकारा, उल्लू! यही तेरी तमीज़ है, मेज के नीचे झांककर देखा तो अपने जूतों के बीच पाया एक औंधा पड़ा हुआ हवनकुंड, सब कुछ समझ में आ गया, उपेक्षा के कारण पहचानने मे भूल हुई थी, भगतसिंह से सुन रखा था कि दादाजी नित्य हवन करते है, जहां

जाते है पोटली में हवनकुंड और हवन–सामग्री साथ बाध ले जाते है।

(सिहावलोकन भा0 – ले0 यशपाल, पृ0 26)

भगतसिंह के दादा शहीद अुर्जनसिंह की साम्प्रदायिक आस्था वैदिकधर्म के आर्यसमाज ढग की थी, भगतसिंह के पिताजी से मेरा घनिष्ठ परिचय रहा, उनके दादा को भी जानता हूं सिर पर केश होने के बावजूद यह लोग सिख की अपेक्षा आर्यसमाजी ही अधिक थे, शहीद किशनसिंह आर्यसमाज के समाज सुधार के कार्यक्रमों में भारी दिलचस्पी रखते थे, लाहौर में आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव होने पर वहां अवश्य दिखाई दे जाते थे, भगतसिंह का पूरा परिवार ही आर्यसमाज की आरम्भिक प्रगतिवादी भावना से प्रभावित था, भगतसिंह के परिवार ने आर्यसमाज के प्रभाव से सामाजिक चेतना और प्रगतिभावना को अपनाया, स0 किशनसिंह डी0 ए0 वी0 स्कूल और कालेज को राष्ट्रीय संस्था मानकर इनके संस्थापकों के सहायक रहे हैं।

(सिंहावलोकन – भाग 1, पृ0 23–24)

पाठकगण! उक्त उद्धहरण उन्हीं यशपाल के हैं जो अपनी साम्यवादी विचारधारा के लिये विख्यात है, जिस कारण इन पर किसी भी तरह से किसी प्रकार के पक्षपातादि का आरोप नहीं लगाया जा सकता है।

10. सन् 1957 ई0 में भूतपूर्व केन्द्रीय शिक्षामंत्री मौलाना आजाद के निधन से रिक्त हुए स्थान पर गुड़गांवा से लोकसभा के लिये आर्यनेता स्व0 प्रकाशवीर जी शास्त्री चुनाव लड रहे थे, उस समय श्री शास्त्री जी के प्रचारार्थ लेखक वहां गया हुआ था, उसी दौरान वीर भगतसिंह के छोटे भाई श्री कुलवीरसिह जी से भेंट हुई, एक दिन बल्लभगढ़ के चुनाव कार्यालय में बैठे हुये उनसे लेखक संकुचाते हुये पूछ ही बैठा, कि 'भगतसिंह जी का आर्यसमाज के प्रति कैसा रवैया था? 'वे तपाक से बोले कि, जो मेरा है' अपने इस सूत्र की व्याख्या करते हुये उन्होंने कहा कि उस समय मैं भी यहां से

इन चुनाव में उम्मीदवार था, परन्तु एक आर्यसमाजी नेता के कारण मैंने अपना नाम वापिस ले लिया है और अब इस आर्यनेता को सफल बनाने के लिए पूरी शक्ति के साथ उनके प्रचारकार्य जुटा हूँ, क्योकि वे मेरे धर्म बन्धु हैं, इसके बाद वेशभूषा के सम्बन्ध में पूछे जाने पर वही पहलेवाला सूत्र दोहरा दिया, उनकी वेशभूषा खद्दर का कुर्त्ता, पाजामा तथा गले में यज्ञोपवीत पहने हुये थे, आगे उन्होने बताया हम तीन पीढ़ियों से आर्यसमाजी रहे हैं और आर्यसमाज की शिक्षा का ही प्रभाव था कि हम सभी क्रांतिकारी देशभक्त बने।

11. एक बार दादा अर्जुनसिंह जी अपने किसी सम्बन्धी के यहा विवाह में गये हुये थे, वहां किसी ग्रंथी ने बातचीत के मध्य सत्यार्थप्रकाश के नाम से कल्पित उद्धरण प्रस्तुत कर खंडन करना आरम्भ कर दिया, बस क्या था कि आप उसी समय उसके आगे अड गये और बोले कि उस ग्रंथ में यह बात कहीं भी नहीं लिखी है यह तो आप अपनी ओर से ही उनके नाम पर मनघढन्त झूठ बोल रहे है, परन्तु पुस्तक उपस्थित न होने के कारण सभी श्रोता सन्देह में थे, दादा जी वहां से सायंकाल पैदल चलकर अपने घर से सत्यार्थप्रकाश लेकर अगले ही दिन प्रातः वहां आ पहुंचे और वह पुस्तक दिखाते हुये कहा कि बताओ इसमें आपकी कही बात कहां पर लिखी है ? तब वह ग्रंथी चुप होकर वहां से खिसक गया, यह थी दादाजी की सत्यार्थप्रकाश के प्रति अटूट आस्था।

(सुधारक मासिक गुरुकुल, झज्जर (रोहतक) बलिदानांक 174)

12. अजीतसिंह तथा उनके भाई किशनसिंह विख्यात क्रांतिकारी भगतसिंह के पिता तथा आगे चलकर पंजाब के एम0 ए0 एल0 दोनों एंग्लो वैदिक स्कूल जालन्धर के विद्यार्थी थे, जिन दिनों आर्यसमाजी नेता सांईदास जी के ज्येष्ठ सुपुत्र सुन्दरदास वहां अध्यापक थे, निस्संदेह यह लाला सुन्दरदास जी ही थे, जिन्होंने दोनों भाइयों को देशभक्ति का पाठ पढाया था।'

(लाला लाजपतराय – ले0 अलगूराय शास्त्री, पृ0 122-123)

13 अब भी इन लोगों के परिवारो के बच्चों के नामकरण इत्यादि संस्कार आर्यसमाजी पडित ही कराते हैं, सन् 1969 के जनवरी या फरवरी मास मे कु0 वीरेन्द्र सिन्धु का विवाह-संस्कार हुआ तो वह भी आर्यसमाजी विधि से हवनादि के द्वारा हुआ, उनके परिवार मे होनेवाले धार्मिक कृत्यों की तथा कर्मकांडों की सूचना समय-समय पर आर्यसमाजी समाचार-पत्रों में प्रकाशित होती रहती है, भगतसिंह के छोटे भाई श्री कुलवीरसिंह जी अकाली दल के सदस्य नहीं हैं, ये पहले पंजाब विधानसभा के सदस्य भी रहे हैं, तब वे जनसंघ की सीट से कामयाब हुये थे, न कि अकाली दल के सदस्य की हैसियत से चुनाव जीते थे, जो जनसंघ उस समय हिन्दुत्व का तथाकथित प्रनिनिधि तथा अकालियों की साम्प्रदायिक नीतियो की प्रतिक्रिया समझा जाता था, यद्यपि लेखक के मत से कांग्रेस के समान ही यह भी अपने जन्म से ही धर्म-निरपेक्षता का नई भाषा में ढिंढोरा पीटनेवाला होने से कांग्रेस का ही सशोधित संस्करण है, इसके अतिरिक्त आज इस परिवार में कोई भी हमारे सिख बन्धुओं के समान लम्बे-लम्बे केशो को धारण नहीं करता है।

14. अभी कुछ वर्ष पहले भारत की सरकार ने वीर भगतसिंह के डाक-टिकट जारी किये, उस अवसर पर भी अकालियों ने यह बावेला मचाया था कि भगतसिंह का फैल्ट हैट वाला चित्र बन्द करके केशों वाला चित्र ही डाक-टिकटों पर चालू रहना चाहिए, उस अवसर पर जो सत्य प्रकट हुआ वह अपने पाठको के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है। 'इस सिलसिले में दिल्ली के दैनिक 'इण्डियन एक्सप्रेस' में श्री रामगोपाल शास्त्री का एक पत्र प्रकाशित हुआ, जिसे मैं पाठकों की सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूं, ताकि उन्हें सारी ही यथार्थ स्थिति समझ मे आ जावे और वे अकालियो की देशद्रोहपूर्ण तथा देशभक्त क्रांतिकारियो की शहादत से लाभ उठाने की मनोवृत्ति को भली-भांति जान सकने में समर्थ हो सकें। पत्र इस प्रकार है-

'सरकार ने शहीदे आज़म भगतसिंह की जिसने अपने साथियों के साथ देश की स्वतन्त्रता के लिए अपना महान् बलिदान दिया, स्मृति

मे डाक-टिकट जारी करके सही काम किया है, चीफ खालसा दीवान ने भगतसिंह के उस चित्र पर आपत्ति की, जो उस टिकट पर प्रकाशित किया गया, क्योंकि उसमें भगतसिह ने फैल्ट हैट पहनी हुई है और उनके लम्बे बाल और पगडी नहीं है, चीफ खालसा दीवान को बताना चाहता हूं कि भगतसिह एक आर्यसमाजी था न कि सिख, वह लाहौर के डी० ए० वी० स्कूल में मेरा छात्र था, उसके पिता सरदार कृष्णसिंह के चाहे लम्बे बाल थे, लेकिन वे लाहौर आर्यसमाज के सदस्य थे, भगतसिह का यज्ञोपवीत-संस्कार उन दिनों एक प्रसिद्ध आर्यसमाजी पंडित लोकनाथ जी ने कराया था, सरदार कृष्णसिंह के छोटे भाई सरदार अजीतसिंह भी आर्यसमाज के सक्रिय कार्यकर्त्ता थे, शहीद भगतसिंह के दादा सरदार अर्जुनसिंह के लम्बे केश थे, परन्तु वे भी पक्के आर्यसमाजी थे, वे मेरे निर्देशों के अनुसार संस्कार-विधि पढ़ा करते थे और प्रतिदिन हवन और संध्या किया करते थे, जब लाला लाजपतराय ने लाहौर मे नेशनल स्कूल बनाया तो भगतसिंह ने डी० एव० वी स्कूल छोड़ दिया और उस नये स्कूल में चला गया, उन दिनो पजाब के गांवो में लम्बे बाल रखना एक तरह का फैशन था और भगतसिह तथा अन्य युवकों ने ये रखे हुए थे, उनका उनके धर्म से कोई सम्बन्ध न था, आज भी कई आर्यसमाजी है जो लम्बे बाल रखते हैं सबसे हैरानी की बात तो यह है कि भगतसिंह और उसके साथियों को जब फांसी हुई तो चीफ खालसा दीवान ने विरोध का एक शब्द भी न कहा, शायद यह इसलिये कि उसे अपने अभिभावकों का डर था, आज यह भगतसिंह की शहीदी का अपने लिए लाभ उठाना चाहती है, क्या चीफ खालसा दीवान को यह पता है कि नहीं कि भगतसिंह के दोनों भाइयो अर्थात् कुलवीरसिंह और कुलतारसिंह के केश नहीं हैं।

(दैनिक वीर अर्जुन नई, दिल्ली में 29-11-1963 का सम्पादकीय)

पाठक! उक्त उदाहरण में जिनके नाम की चर्चा की गई है, ये वही पं० रामगोपाल जी शास्त्री हैं जो राष्ट्रीय-स्वाधीनता के प्रसंग में जिनके सुप्रयासों का वर्णन आप लोग तीसरे अध्याय के आर्य

स्वराज्य सभा के नामक प्रकरण में पढ़ चुके हैं, ऐसे देशभक्त पुरुष के वक्तव्य के सम्बन्ध मे ननुनच का कोई किसी प्रकार का स्थान नहीं रह जाता है, खेद तो हमें अपने अकाली बन्धुओं की घृणित, कट्टर, विघटनवादी तथा विशुद्ध साम्प्रदायिक मनोवृत्ति पर है, जब सन् 1937 में भगतसिंह के पिता श्री किशनसिंह जी को कांग्रेस ने अपने टिकट पर पंजाब विधानसभा के लिए प्रत्याशी घोषित किया तब इन लोगों ने कहा था कि 'सिखो की सीट तो एक केशधारी आर्यसमाजी को दे दी गई है'', वैसे इनका दोष भी क्या है ? आखिर हैं तो उन्हीं के वशज जिन्होने 1857 में विदेशी शासकों का तन मन धन से भरपूर सहयोग किया और भारत में 90 वर्ष के लिए गुलामी को मज़बूत करने का ऐतिहासिक कार्य किया, तथा जिन्होंने हिन्दुजाति के रक्षक, गौ, वेद, वैदिक संस्कृति के त्राता वीर बन्दा वैरागी के साथ छलकपट, धोखाधडी, विश्वासघात का आदर्श स्थापित करने की दिलेरी दिखाई थी, पर इतने पर भी पक्के राष्ट्रवादी होने का दावा किया जाता है, वाह री अवसरवादिता और मतलबपरस्ती ? ''जिसके देखा तवा परात उसके गावे सारी रात'' के अनुसार राजनीति में तेरे सहारे कोई अपनी गुड्डी न चढाये तो और क्या करे ?

इस प्रकार के दृढ़ आर्यसमाजी सरदार अर्जुनसिंह जी के 1 स0 किशनसिंह 2. स0 अजीतसिंह और 3 स0 स्वर्णसिंह ये तीन सुपुत्र थे, इनमें से श्री किशनसिंह जी ही वीर भगतसिंह के पूज्य पिता जी थे, उक्त तीनों ही भाई राष्ट्रीय स्वाधीनता के पुजारी थे, वीर भगतसिंह की आरम्भिक शिक्षा डी0 एव वी0 स्कूल में हुई थी, क्योकि स0 किशनसिंह जी के विचार में यह राष्ट्रीय सस्था थी, आरम्भ से आठवीं तक भगतसिंह ने पाठ्यक्रम मे हिन्दी तथा संस्कृत दोनों ही विषय लिये हुये थे, बाद में नेशनल कालेज में भी उक्त विषय लिये हुये थे, वहां कालेज में गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक प्रसिद्ध इतिहासकार श्री जयचन्द्र जी विद्यालंकार के सम्पर्क से इनकी राष्ट्रीय

भावनाओं में निखार आया। सन् 1925 मे हिन्दी साहित्य परिषद् की ओर से श्री पं0 जयचन्द्र जी विद्यालंकार ने हिन्दी मे सर्वश्रेष्ठ निबन्ध लिखने वाले को 50 रु0 पारितोषक के रूप में देने की घोषणा की, प्रतियोगिता के लिए उन सभी निबन्धों में भगतसिंह का लिखा निबन्ध ही सर्वश्रेष्ठ निर्वाचित किया गया, इस वीर के विदेशीराज्य के विरुद्ध क्रांतिकारी जीवन का प्रारम्भ विशेषकर आर्यनेता लाला लाजपतराय जी के अमर बलिदान के साथ ही हुआ था, जब साइमन कमीशन के विरुद्ध नारे लग रहे थे, जिसकी प्रतिक्रियास्वरूप नौकरशाही, विदेशी ब्रिटिश साम्राज्य की पुलिस अपना नाच लाहौर की खुली सडकों पर दिखा रही थी, वह वीर भी अपने दलबल के साथ खडा उस अमानवतापूर्ण, बीभत्स तथा तनमन मे प्रतिशोध की भयंकर आग भर देनेवाले कांड को देख रहा था, साथ ही भविष्य में उनके प्रतिशोध के लिए कुछ कर गुजरने के हेतु भावी इतिहास का निर्माण करने का संकल्प ले रहा था, सांयकाल लाला जी की अध्यक्षता में एक विशाल जनसभा हुई, जिसमें बंगाल के शेर श्री चितरंजनदास की धर्मपत्नी माता बसन्ती देवी ने अपने भाषण में अपने दिल के दर्द को उड़ेलते हुए सिंहगर्जना के साथ कहा था, 'जब मै सोचती हूं कि भारत के तीस करोड नर-नारियों के प्यारे वृद्ध आदरणीय लाला जी के पवित्र शरीर का किन हिंसक हाथों ने स्पर्श किया ? तो मैं आत्मापमान से कांपने लगती हूं, ओ पंजाब के युवको! मै एक अत्यन्त अबला होकर तुमसे पूछती हूं, कि क्या तुम्हारा यौवन और स्वाभिमान आज जीवित जागृत है ? क्या तुम्हारा वीरतामय खून गरम है ? यदि वास्तव में है तो आज भारत की एक अबला नारी पंजाब के बहादुर युवक से इनका एक आशामय उत्तर चाहती है, देखती हूं कि पंजाब का बहादुर नौजवान मैदान में आगे निकलकर आशामय उत्तर दे पाता है कि नहीं ? भारत की इस वीर नारी के इन शब्दो को जो उसके स्वाभिमान तथा एक माता के कहने पर उसके आशानुकूल उत्तर दे अपनी जवानी सफल करने का चैलेंज दे रहे थे, अपने पौरुष के लिए एक चुनौती मानकर कुछ कर गुज़रने के लिए

मन ही मन उन्हें स्वीकार किया, लाला जी ने बोलते-बोलते अन्त में कहा "मेरे शरीर पर पड़ी एक-एक लाठी ब्रिटिश साम्राज्य के कफन के लिए कील सिद्ध होगी" तत्पश्चात् वीर भगत्सिंह लाला जी के इस राष्ट्रीय अपमान का बदला लेने को सक्रिय हो गये, इन्होंने अपना कार्य समाप्त कर कार्यालय से बाहर निकलते हुए साण्डर्स को गोलियों से भूनकर लाला जी के अपमान का करारा तथा शानदार बदला लिया, साण्डर्स को यमलोक पहुंचा यह दल दयानन्द कालेज के होस्टल में घुस गया, उस समय कालेज के पुस्तकालय में बैठे हुए श्री पं0 भगवतदत्त जी, पं0 रामगोपाल जी शास्त्री तथा ठा0 अमरसिंह जी ने इनको वहां छिपते देखा, जब पुलिस ने आकर उनसे इस सम्बन्ध में पूछताछ की तो उन्होंने अपनी अनभिज्ञता प्रकट कर दी, वहां से ये लोग वेश परिवर्तन कर विभिन्न सुरक्षित प्रदेशों मे बिखर गये। उस फरार अवस्था में वीर भगतसिंह कुछ दिन तक दिल्ली के वीर अर्जुन पत्र में श्री बलवन्तसिंह के नकली नाम से कार्य करता रहा, जिसके सम्पादक श्री पं0 इन्द्र विद्यावाचस्पति थे, वहीं कार्य करनेवाले गुरुकुल कांगड़ी के एक स्नातक श्री दीनानाथ सिद्धांतालंकार के साथ इनका परिचय हो गया, एक दिन आप बातचीत के मध्य स्नातक जी सक कह बैठे कि यदि मैं पकड़ा जाऊं तो क्या तुम मेरे विरुद्ध गवाही दोगे? स्नातक जी बोले कि वीर जी! क्या आप हमें इतना गिरा हुआ और नीच समझते हैं कि भारतमाता के बन्धन कांटने के लिए अपने जीवन की आहुति देने वालों को हम मौत के मुह में धकेलें? तब भगतसिंह प्रसन्न होकर बोले कि नहीं तुम जैसे गुरुकुल के स्नातकों से तो मुझे कभी भी ऐसी आशा नहीं हो सकती?

(दैनिक हिन्दुस्तान, दिल्ली 22-6-1964 के अंक मे स्नातक जी का लेख)

इस प्रकार देश की स्वाधीनता के लिए पूर्ण निष्ठा से कार्य करते हुए भी इन•वीरों के सम्बन्ध में कांग्रेस के नरमवादी प्रतिष्ठित लोगों

के द्वारा भ्रांत विचार फैलाये जाते थे, इस दल ने अपना उद्देश्य देशवासियों के सामने रखकर उनके भ्रम दूर करने के हेतु सैंट्रल असेम्बली में बम फेंकने का कार्यक्रम निर्धारित किया, अपने दल के उद्देश्यो तथा कार्यों के औचित्य को लक्ष्य कर एक संयुक्त विज्ञप्ति छपाई गई, भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त दोनों ही दल के निश्चयानुसार बम, पिस्तौल तथा पर्चे लेकर दर्शकों की गैलरी में जा बैठे, उस दिन सरकारी गुर्गों ने पब्लिक सेफ्टी बिल को पास करवाने का निश्चय किया हुआ था, पाठकों को ज्ञात होगा कि इससे पहले भी एक सेफ्टी बिल पेश हुआ था, परन्तु अध्यक्ष श्री बिट्ठल भाई पटेल की रुलिंग व्यवस्था के कारण स्थगित हो गया था, जब 9 अप्रैल 1929 को यह बिल उपस्थित किया गया, उस दिन मतदान हुआ, तब बिल के पक्ष में अधिक मत आये, तब अध्यक्ष पटेल खडे हुए और अत्यन्त ही खेद के साथ बोले 'तो क्या यह बिल पेश किया जाये' इनके इतना कहते ही हाल में बम का एक जोरदार धमाका हुआ और असेम्बली हाल बम के धुएं से भर गया, श्री पं० मदनमोहन मालवीय, मोतीलाल नेहरु तथा अध्यक्ष पटेल के अतिरिक्त सभी सदस्य भयभीत हो इधर-उधर छिपने लगे, धुआं साफ होने पर लोगों ने दर्शकों की गैलरी में खड़े मुस्कुराते हुए दो युवकों को देखा, उन्होंने छपे हुए लाल रंग के कुछ पर्चे नीचे फेंके, जो इस वाक्य के साथ आरम्भ होते थे "बहरों को सुनाने के लिए धमाकों की ज़रूरत होती है" दर्शकों को देखकर भगत और दत्त ने 'इंकलाब ज़िन्दाबाद' की गर्जना की, यदि वे चाहते तो भागकर अपनी जान बचा सकते थे, परन्तु पुलिस आने पर उन्होंने पिस्तौल फेंककर अपने को गिरफ्तार करने को पेश कर दिया, अंग्रेजी सरकार ने न्याय का ढोंग रचकर इन तीनों वीरों भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी का दंड दिया, फांसी पर चढ़ने से पहले भगतसिंह ने अपने छोटे भाई करतारसिंह को निम्न पत्र लिखा जिसका प्रत्येक अक्षर उसकी दिलेरी तथा बहादुरी का वज्र प्रमाण है।

अज़ीज कुलतार! आज तुम्हारी आंखों मे आंसू देखकर बहुत रज हुआ, आज तुम्हारी बातों मे बहुत दर्द था, तुम्हारे आंसू मुझसे बर्दाश्त नहीं होते, बर्खुरदार! हिम्मत से शिक्षा प्राप्त करना और सेहत का ख्याल रखना, हौंसला रखना और क्या लिखूं?

उसे फिक्र है हमदम नया तर्जे ज़फा क्या है,
हमें यह शौक देखे तो सितम का इन्तहा क्या है।
घर से क्यों खफा रहे खर्च का क्या गिला करें,
सारा जहां अदू सही आवे मुकाबला करें।
कोई दम का महमां हूं ऐ अहले महफिल,
चिरागे सहर हूं, बुझा चाहता हूं।
मेरी हवा में रहेगी ख्याल की बिजली,
यह मुश्ते खाक है फानी रहे या न रहे।
अच्छा आज्ञा, 'खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं'
हौंसले से रहना, नमस्ते।

तुम्हारा भाई भगतसिंह

राजकीय नियमों के विपरीत इन तीनों को सायकाल के समय ही चुपचाप फासी पर लटका दिया गया, अहा! क्या ओजस्वी दृश्य था भारतमाता के ये तीनों सपूत एक-दूसरे के हाथों में हाथ डाले हुए बड़ी मर्दानगी के साथ गाते हुए फासी पर चढ़ने जा रहे हैं, मानो शहदत के साथ विवाह करने को मौत के दरवाजे पर बारात सज़ाकर जा रहे हों, वे मस्ती के साथ गाये जा रहे थे-

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है ज़ोर कितना बाजुवे कातिल में है।

वह 23 मार्च, सन् 1930 का दिन था, संसार की नज़रों से बचाकर यह कहा जाता है कि आधी रात के समय इन वीरों की लाशों को सतलुज नदी के किनारे ले जाकर टुकड़े-टुकडे कर मिट्टी का तेल छिडक कर जला दिया गया था, हाय! हमारे शहीदों का यह अपमान? करोड़ों जनों के श्रद्धापात्रों की यह दुर्दशा? सच है कि गुलामी किसी भी देश के लिए सबसे भीषण अभिशाप होता है, यह

था देश पर मिटने वाले इन वीरो का अन्तिम संस्कार और यह अंग्रेज जाति के पैशाचिक एवं कुत्सित हृदय की प्रतिहिंसा की दूषित भावना ?

वीर भगतसिंह के साथ शहीद होनेवाले श्री सुखदेव भी आर्यसमाजी परिवार की ही देन थे, इनका जन्म लायलपुर में हुआ था, आरम्भिक शिक्षा धनपतमल आर्य हाई स्कूल में हुई थी, इनके चाचा, श्री अचिन्त्यराय जी पहले आर्यसमाज के उत्साही, कर्मठ उपदेशकों में रहे हैं, बाद में वे कांग्रेस के कर्मठ कार्यकर्त्ता तथा नेता के रूप में विख्यात हुये, वीर सुखदेव भी अपने बाल्यकाल में आर्य कुमारसभा के वर्षों तक मंत्री रहे, पुनः आप लाहौर के नेशनल कालेज में आ गये, जहां आपको भगतसिंह आदि का सम्पर्क प्राप्त हुआ, उन्हीं के साथ देश की आजादी के लिये फांसी की जयमाला आपके गले में डाली गई, भगतसिंह आदि के शवदाह आदि की जांच के लिये कांग्रेस ने एक कमेटी नियुक्त की थी, उस कमेटी के अध्यक्ष के पूछने पर गवाह लाला अचिन्त्यराम जी ने कहा था कि यदि सुखदेव का शव मुझे दे दिया जाता तो मैं आर्यसमाज की विधि के अनुसार उसके शव की अन्तेष्टि करता।

(भारत सन् 57 के बाद – ले0 शंकरलाल तिवारी, पृ0 155)

यशपाल

इस दल मे कार्य करने वाले श्री यशपाल थे जो कि हिन्दी साहित्य के विख्यात कथाकार, नाटककार एवं उपन्यासकार भी हुये हैं, ये मूलतः कांगड़ा के निवासी थे, परन्तु इनकी माताजी के विधवा हो जाने से अपने दोनों ही बच्चों के साथ मुलतान आ गई थी, आपका परिवार भी आर्यसमाजी वातावरण तथा संस्कारों से ओतप्रोत था, उनके (यशपाल के) परिवार के आर्यसमाजी होने के कारण उनकी सारी प्रारम्भिक शिक्षा गुरुकुल कांगड़ी में हुई थी।

(भा0 स्वा0 सं0 का इतिहास, पृ0 259)

सात-आठ वर्ष की अवस्था मे मेरी माता ने मुझे स्वामी दयानन्द के आदर्शों के अनुकूल आर्यधर्म का तेजस्वी और ब्रह्मचारी प्रचारक बना देने की आशा से गुरुकुल कांगडी में भर्ती करा दिया।

(सिंहावलोकन भा0, पृ0 44)

मुलतान में इनकी माताजी, ने एक आर्य कन्या पाठशाला में अध्यापन द्वारा आजीविका चलाते हुये, शिक्षा के लिये यशपाल को गुरुकुल में भेज दिया, पाठकों को स्मरण रखना चाहिये कि वहां इनको सर्वथा ही निःशुल्क शिक्षा दी गई थी, यशपाल ने भी अपने क्रांतिकारी जीवन के संस्मरण सिंहावलोकन में इस तथ्य को स्वीकारा है कि गुरुकुल का वातावरण हममें स्वातंत्र्य के भावों को प्रबुद्ध करता था, साथ ही अपनी सभ्यता, संस्कृति के प्रति स्नेह तथा राष्ट्रप्रेम के भाव प्रचुरित किया करता था, परन्तु वहां इनका स्वास्थ्य ठीक न रहने से इनको बीच में ही अपना अध्ययन छोड़कर आना पड़ा, इनकी माताजी भी लाहौर आकर आर्यकन्या पाठशाला में अध्यापिका हो गई और इनको शिक्षा के लिये नेशनल कालेज में भर्ती करा दिया, वहां से इनकी माता जी फिरोज़पुर जाकर आर्यकन्या पाठशाला में अध यापन कार्य करने लगीं, ये भी कुछ समय के लिये वहां गये, वहां से आर्यकुमार सभा तथा आर्यसमाज के कार्यों में रुचिपूर्वक बढ-चढकर भाग लेते थे, आगे चलकर भारत के स्वाधीनता संग्राम में जो बढ़-चढ़कर प्रशंसनीय सहयोग इन्होंने दिया उसका उद्‌भावक तथा प्रेरक आर्यसमाज ही था, दिल्ली के पुराने किले के पास वायसराय की ट्रेन को बम से उडानेवाले आप ही थे, जब आप ट्रेन उड़ाकर पुलिस के अधिकारी के वेश में जा रहे थे तथा घटनास्थल की ओर आ रही पुलिस ने आपको अपना उच्चाधिकारी समझकर सैल्यूट दिया, आप भी सैल्यूट लेकर चलते बने, इस प्रकार अनेक घटनाओं में इनका हाथ जानकर वारंट जारी कर दिये गये।

एक दिन इलाहबाद में एक देवी के घर ठहरे हुये थे कि पुलिस ने पक्की सूचना पर उस मकान को घेर लिया, दोनों ओर से गोलियां चलीं, परन्तु अंत में आपको गिरफ्तार कर आजन्म कारावास का दंड

दिया गया, बाद में जब 1935 के आस-पास विभिन्न प्रांतों में कांग्रेस के मंत्रिमण्डल बने तब आपको अन्यों के साथ ही बिना शर्त रिहा कर दिया गया, जेल में ही आपने अपने दल की एक क्रांतिकारिर्णि देवी प्रकाशवती के साथ विवाह कर लिया था, जोकि भारत के क्रांतिकारियों के जीवन में एक महान् पतनकारी एवं राष्ट्रीय चरित्रहीनता की दुर्घटना सिद्ध हुई, अपनी जीवितावस्था में ही आपने अपने क्रांतिकारी जीवन की घटनाओं को सिंहावलोकन नाम से तीन भागों में प्रकाशित किया था।

हंसराज वारलैस

सम्भवतः 1960 ई० का अक्टूबर का महीना था, लेखक यमुनानगर गया था, वहां हंसराज जी के वैज्ञानिक चमत्कारों की धूम मची हुई थी, तत्पश्चात् अपनी शिक्षा संस्थान दयानन्द उपदेशक विद्यालय मे जाकर छात्रों को हंसराज जी को बुलाकर स्वागतपूर्वक भाषण कराने की प्रेरणा की, उन्हें विद्यालय में बुलाकर पुष्पमालाओं से स्वागत करने के पश्चात् जब उनसे भाषण की प्रार्थना की तो हंसराज वारलैस रो पड़े, बाद मे कुछ संभलकर भर्राये हुये गले से बोले कि हमने स्वाधीनता के लिये इतना कुछ कार्य किया लेकिन आज तक किसी ने भी हमारा सम्मान नहीं किया, यह मेरे जीवन में पहला ही अवसर है जबकि आपकी संस्था ने मुझ क्रान्तिकारी का पुष्पमालाओं से स्वागत किया है, इसके बाद उन्होंने कहा कि आपका ऐसा करना उचित ही है, क्योंकि आर्यसमाज एक देशभक्त संस्था है, अतः वही देशभक्तों की देशभक्ति का मूल्य जान सकती है, उस समय आपने अपने मुख से जो वृत्तांत सुनाया, यहां वही प्रस्तुत किया जा रहा है, आपने कहा कि मेरी माता छोटी आयु में ही अनाथ हो गई थी, स्वामी श्रद्धानन्द जी ने उसे आर्य कन्या महाविद्यालय जालन्धर में पढ़ाया, स्नातिका होने पर एक आर्य युवक से विवाह कर दिया, उससे हम तीन सन्तान उत्पन्न हुये, माता जी प्रतिदिन हवन किया करती थीं, आर्यसमाज के कार्यों में बढ़-चढ़कर भाग लेती

थी, अपने एक पुत्र को उन्होंने गृहस्थ बनाकर दूसरों का आश्रय बनाया, दूसरे पुत्र को धर्म की सेवा का कार्य सौंपा, और मुझे राष्ट्रसेवा के कार्य में समर्पित कर दिया, वह मुझे आर्यसमाज में ले जाया करती थीं, और मुझे कहा करती थीं कि तू अधिक से अधिक आर्यसमाज के साथ अपना सम्पर्क रखना क्योंकि इससे नवजीवन मिलेगा, अंत में आपने कहा कि आर्यसमाज ने न जाने कितने मुझ जैसे नवयुवकों को देशधर्म के लिये अपने प्राण न्योछावर करने की शिक्षायें प्रदान कीं।

अंग्रेजी राज्य में वारंट जारी होने पर जब आप गुप्तवास कर रहे थे, तो घूमते-घामते एक रात्रि को आप श्रद्धानंद अनाथालय करनाल में जाकर ठहरे, प्रातः जब वहां से चलने लगे तो वहां के अधिकारियों के परिचय पूछने पर आपने इतना ही कहा कि बस आप इतना समझ लीजिये कि कोई देशभक्त क्रान्तिकारी फरार अवस्था में घूम रहा है, तब अधिकारियों ने कहा कि कोई फरार क्रांतिकारी अपने सम्बन्ध में इतनी स्पष्टता से कभी कुछ नहीं कह सकता जैसा कि आपने कहा है, तब आप बोले कि मैं उस देशभक्त आर्यसमाज की संस्था में खड़ा हूं जहां यदि मैं अपना स्पष्ट परिचय भी दूं तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप लोगों की ओर से किसी प्रकार का कोई भी संकट आने की सम्भावना नहीं है, पुनः आपने अपने नाम सहित सारा ही परिचय दिया, उक्त घटना तब ज्ञात हुई जब लेखक कई बार अनाथालय में जाता रहा, परन्तु एक बार कोई प्रसंग छिड़ने पर वहां के प्रमुख अधिकारी ने यह रहस्य प्रकट किया, पाठक! ज़रा इस घटना से ही अनुमान लगा सकते हैं कि आर्यसमाज के प्रति देशभक्त क्रांतिकारियों पर कितना गहरा विश्वास था।

सीताराम वन्देमातरम्

इन्हीं के दल में दीक्षित एक सज्जन श्री सीताराम जी वन्देमातरम् भी देश को, धर्म को आर्यसमाज की भेंट थी, सो कैसे सुनियेगा।

'वीर राजगुरु, सुखदेव व भगतसिंह पर बन्द न्यायालय में केस

चल रहा था, जिस दिन सुनवाई होती थी कई राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता उधर चले जाते थे और वकील जब अन्दर से बाहर आते, तो उनसे अभियोग की कार्रवाई सुनते, जब तक वकील अन्दर से बाहर न आते, ये लोग बाहर ही गप्पें लगाते रहते, कभी-कभी पुलिस के साथ व कारावास के अधिकारियों के साथ कोई दिल्लगी करते रहते।'

लाहौर में हुतात्मा ख़ुशीराम जी के बड़े भाई चने बेचा करते थे, सम्भवतः उनका नाम महाशय सीताराम जी था, एक दिन चौ0 वेदव्रत आदि ने उनसे चने लेकर वीरों को अन्दर भेजे, उन चनों में एक चला हुआ कारतूस भी था, अन्दरवाले इस रहस्य को समझ गये, चने चबाकर उन्होंने वह चला हुआ कारतूस जेल के अधिकारियों को भेंट कर दिया, वह बड़े घबराये कि यह इनके पास कैसे आया? कारावास में भेजे जाने वाले सामान की और कड़ाई से तलाशी होने लगी, एक दिन कई देशभक्त कार्यकर्त्ता अभियोग की कार्रवाई सुनने पहुंचे, प्रसिद्ध देशसेवक व कवि श्री सीताराम वन्देमातरम् (कुछ समय पूर्व जिनकी मृत्यु हिसार में हो गई) कुछ विलम्ब से पहुंचे, उनको दूर से आता देखकर चौ0 वेदव्रत जी ने कहा आ गये। उन्होंने कहा आ गया, चौ0 जी ने कहा ले आये, वन्देमातरम् जी बोले ले आया, इस प्रश्न का रहस्य समझकर ही सीताराम जी ने यह उत्तर दिया था, अब वहां मंडरा रही पुलिस व गुप्तचर विभाग के व्यक्ति घबराये, उन्होंने सीताराम जी वन्देमातरम् से पूछा क्या लाये हो? सीताराम जी ने अपना थैला बगल में दबाया और कहा नहीं बताता। पुलिसवालों ने बार-बार पूछा परन्तु उसने कुछ न बताया, पुलिस ने उसे दूर ही घेर लिया, उन्होंने सड़क के मध्य अपना थैला रख दिया, और कहा देख लो आओ उठाओ पता लग जायेगा कि क्या है? किसी पुलिसवाले में इतना साहस न था कि आगे बढ़कर देखे कि इसमें क्या है? कहीं कोई बम ही न हो, कौन हाथ लगाये, भीड़ बढ़ने लगी, आवागमन में बाधा पड गई, तब बड़ी देर के पश्चात् एक पुलिसवाला आगे बढ़ा और थैले का मुख खोला तो देखा कि उसमें एक खरबूज़ा है, जब पुलिस की छाया भी दमन का दूसरा नाम था, जब क्रांतिवीरों

का प्रत्यक्ष परोक्ष सम्बन्ध भी विपदा का कारण बन जाता था, ये देश सेवक उस समय भी दिल्लगी से नहीं चूकते थे, इन दिलजलों का सदा राष्ट्र ऋणी रहेगा।

(प्रेरणा कलश - प्रथम भाग, ले0 राजेन्द्र जिज्ञासु, पृ0 135-37)

भूले बिसरे साथी श्री भवानी सिंह

ये अंत तक आज़ाद के साथ रहे, श्री कांशीराम जी के शब्दों में ये मेरे बड़े भाई चन्दोसी स्कूल में पढ़ते थे, वहीं मुझे भी पढ्ने को भेज दिया गया था, वहां पक्का आर्यसमाजी बन गया था, पिता फौज में कप्तान थे, दो बार एडवर्ड तथा जार्ज पंचम की ताजपोशी पर इंग्लैण्ड गये, ऐसे राजभक्त का लड़का आर्यसमाजी बने! यह पिताजी को अच्छा नहीं लगा, अतः चन्दौसी से दिल्ली जहां बड़े भाई हिन्दू कालेज में पढ़ते थे, उनके संरक्षण में भेज दिया, ये क्रांन्तिकारियों के प्रत्येक कार्य, कांड, एक्शन तथा डकैती में सम्मिलित रहे, बाद में ये पकड़े गये तथा कानून के विरुद्ध हथियार रखने के जुर्म में इनको कारावास का दंड हुआ था, वायसराय की ट्रेन को बम से उड़ाकर यशपाल जिस मोटर साइकिल से वापिस लौटे थे, उनके पुर्जे-पुर्जे कर विभिन्न स्थानों पर बेचनेवालों में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान था, अपने देश की स्वाधीनता के लिये यह प्रशंसनीय योगदान तथा बलिदान करने की शिक्षा तथा प्रेरणा इनको आर्यसमाज के वातावरण से ही प्राप्त हुई थी।

काशीराम

इसी दल में काम करनेवाले एक अन्य देशभक्त युवक श्री काशीराम जी जिन्होंने देश, धर्म के लिये न जाने कितने कष्ट सहे, न जाने कितने दिनों तक फरार अवस्था में घूमते रहे, दर-दर की कितनी ठोकरें उस व्यक्ति ने खाई, केवल दिल में एक ही तमन्ना थी कि मेरा देश, विदेशी शासकों से किसी प्रकार मुक्त हो जाये, उन्हें भी यह प्रेरणा आर्यसमाज की संगति तथा वातावरण से ही प्राप्त हुई थी, प्रमाणस्वरूप उन्हीं की आत्मकथा देखें।

पिताजी कट्टर आर्यसमाजी थे, नियम से सन्ध्यादि किया करते थे, उन दिनों गुरुकुलो की धूम थी, और उनका लडका गुरुकुल का ग्रेजुवेट हो, यह उनकी हार्दिक इच्छा थी, इसी कारण वृन्दावन गुरुकुल मे दाखिल करा दिया गया, महायुद्ध के समय मैं देहरादून दयानन्द हाई स्कूल में पढता था, और वहीं बोर्डिंग में रहा भी करता था, अंग्रेजो के विरुद्ध जनता के अन्दर असन्तोष फैला हुआ था, उससे हम बच्चे भी अछूते नहीं थे, कट्टर आर्यसमाजी होने के कारण रोज ही किसी न किसी मुसलमान अथवा पुलिस के सिपाही से लड़-झगड कर घर लौटता। अत्याचार को सहन करना मेरे वश में नहीं था, आर्य कुमारसभा के सिलसिले में मुझे प्रांत भर के नवयुवको के सम्पर्क में आने का अवसर मिला, मेरा सार्वजनिक जीवन हरदोई में आर्य कुमारसभा से आरम्भ हुआ, किसी जमाने में अखिल भारतीय आर्यकुमार परिषद् का मंत्री रह चुका था, उसी का सहारा लिया और आर्यसमाज में आर्यकुमार परिषद् के मंत्री की हैसियत से ठहरा, वहां (झांसी में) भी आर्यसमाज का सहारा लिया, डा0 साहब (डा0 युद्धवीर सिंह) से मेरा परिचय आर्यकुमार परिषद् के नाते हुआ था, आर्यसमाज के नाते हम पुराने मित्र हैं, प्रो0 मुंशीराम जी मेरे पूर्व परिचित थे, डी0 ए0 वी0 कालेज, कानपुर में पढ़ाते थे, और मैं आर्यकुमार सभा के कार्य से इनसे कई दफा मिल चुका था, वैसे भी हरदोई के अनेक विद्यार्थी डी0 ए0 वी0 कालेज में पढ़ते थे, इसलिए कालेज में आना-जाना होता ही रहता था, आर्य कुमारसभा के नाते (श्री सुरेन्द्रनाथ पाण्डेय से) मेरा भी आना और भाईचारे का व्यवहार इस घर से रहा, बाहर रहने के समय मैं आर्य कुमार सभा में काम कर चुका था, मीटिंग में बोलने की आदत थी, हरदोई में पब्लिक मीटिंग हुई, आर्य कुमारसभा, युवक संस्था की ओर से (हमारा) अभिनन्दन हुआ।

(क्रांति के वे दिन, ले0 काशीराम, पृ0 11 से 239)

धन्वन्तरी

इस दल के एक और सक्रिय कार्यकर्त्ता श्री धनवन्तरी भी आर्यसमाज के सम्पर्क से भारतीय राष्ट्रवाद की प्रेरणा लेकर इस कार्य

में अपना योगदान करने की ओर झुके थे, क्योंकि संकटों से जूझकर भी निरन्तर श्रेष्ठ मार्ग तथा स्वात्माभिमान के मार्ग पर चलते रहने की ही प्रेरणा का नाम तो आर्यसमाज एवं वैदिकधर्म है, धन्वन्तरी का परिवार आर्यसमाजी था, इसलिये आर्यसमाजी नेताओं से उनकी अच्छी जान-पहचान थी, उन्हें पता चला कि गुजरात में जो आर्यसमाज के मुख्य कार्यकर्त्ता पं0 आत्माराम जी हैं, उनका माणिकराव पर प्रभाव है, और इन्हीं के द्वारा यह काम हो सकता है, पं0 आत्माराम जी के दोनों लड़के पंजाब में रहते थे, और उनका धन्वन्तरी से अच्छा परिचय था, उन्हीं का पत्र लेकर धन्वन्तरी माणिकराव जी से मिले, माणिकराव जी ने उन्हें गणेश रघुनाथ वैशम्पायन के पास भेजा।

(चन्द्रशेखर आज़ाद - भाग 3, ले0 विश्वनाथ वैशम्पायन, पृ0 239)

इसी धन्वन्तरी ने आगे चलकर भारतमाता के अमर सुपुत्र श्री चन्द्रशेखर आज़ाद के नेतृत्व में स्वाधीनता के लिये ऐतिहासिक, महत्त्वपूर्ण तथा प्रशंसनीय योगदान किया था, जिसका योगदान अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

वैद्य लेखराम

इसी दल के एक और सक्रिय कार्यकर्त्ता श्री पं0 लेखराम जी वैद्य जो आज भी जीवित हैं, पहले वे रोहतक (हरियाणा) में वैद्य का कार्य किया करते थे, जब इनके दल को बम का मसाला बनाने के लिये किसी एक सुरक्षित एवं विश्वस्त तथा सुगुप्त स्थान की आवश्यकता अनुभव हुई, तब पार्टी ने आपकी दुकान को ही इस काम के लिये उपयुक्त तथा विश्वस्त स्थान समझा, और उस समय के विख्यात क्रांतिकारी यशपाल जी कई मास तक वहा रहकर बम का मसाला बनाते रहे, उस समय आपने उन्हें पूरी सुविधा, सहयोग प्रदान किये, जब पुलिस को आपकी इन गतिविधियों का ज्ञान हो गया तो बाद में आप कई वर्ष तक अपनी सुरक्षा के लिये गुप्तवेश में फरार होकर न जाने कहां-कहां भटकते रहे ? न जाने किन-किन मुसीबतों

से आपको पाला पडा, कौन से वे कष्ट हैं जो आपने अपने वतन के लिये नहीं सहे थे? न जाने कितनी बार भूखे प्यासे रहना पड़ा होगा, बस दिल में एक ही चाहना थी कि हम अपने वतन को कब आज़ाद देख सकेंगे? दि0 26-12-1964 का लेखक हिसार मे स्थित आपकी दुकान पर आपसे मिलने पहुंचा, यह पूछने पर कि आपको यह कठिनतम तथा कांटों से भरा मार्ग अपनाने की प्रेरणा कहां से प्राप्त हुई? बोले कि मैं आर्यसमाज रोहतक का एक कर्मठ कार्यकर्त्ता तथा मंत्री भी रहा हूं, आर्यसमाज की सारी ही शिक्षाएं राष्ट्रीयता, स्वाधीनता, स्वात्माभिमान इत्यादि से भरी हुई हैं, अतः वे शिक्षाएं ही मेरे इस मार्ग में प्रेरित करने का मूल स्रोत रही हैं, इस प्रकार बात करते-करते अंत में आप बड़े ही स्वाभिमान मुद्रा में बोले कि मैंने आर्यसमाज तथा स्वामी दयानन्द जी की शिक्षाओं को यथार्थ रूप में धारण किया है, अतः मैं अपने को स्वामी दयानन्द जी का पक्का चेला समझता हूं, उस समय आप बड़े भारी आर्थिक सकट से गुज़र रहे थे, परन्तु तत्पश्चात् भारत सरकार द्वारा स्वाधीनता संग्राम के सेनानी होने के नाते दिये जाने वाले आर्थिक सहयोग के कारण अब आपकी आर्थिक अवस्था लगभग ठीक ही है।

जयचन्द्र विद्यालंकार

भगतसिंह के दल को संगठित कर देशभक्ति के मार्ग पर चलाने का अधिक श्रेय गुरुकुल कांगड़ी के सुयोग्य स्नातक श्री पं0 जयचन्द्र जी विद्यालंकार को है जो अपने समय के एक महान् विख्यात इतिहासकार थे और नेशनल कालेज में इतिहास के प्राध्यापक थे, प्रत्येक प्रतिभाशाली तथा लगनशील एवं कर्मठ युवक को आप देशप्रेम की प्रेरणा दिया करते थे, इन्होंने शचीन्द्रनाथ सान्याल के साथ मिलकर उत्तर-भारत में बिखरे हुये क्रांतिदल का संगठनकर उसे देशप्रेम की दिशा में कुछ कर गुज़रने के लिये साधन सम्पन्न तथा सशक्त किया था, गुरुकुल से स्नातक होने पर इनके आचार्य स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने इनको भारतीय इतिहास के विशेष अध्ययन तथा प्रशिक्षण

के लिये विख्यात इतिहासकार श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के पास भेजा था, इतिहास के उस प्रशिक्षणकाल मे आपकी स्वाधीनता तथा देशप्रेम की वृत्ति और अधिक निखर गई थी, जब सत्याग्रह के सिलसिले मे आपकी बहन श्रीमति पार्वतीदेवी राजद्रोहात्मक भाषण देने के कारण फतेहगढ की सैंट्रल जेल में दो वर्ष का कठोर कारवास भुगत रही थी, तो आप उनसे मिलने गये, उसी समय भारत के प्रसिद्ध क्रातिकारी श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल से आपकी भेंट हुई थी, आपने उन्हे पंजाब में कार्य आरम्भ करने पर अपनी ओर से पूरा सहयोग करने का वचन दिया था, उसके बाद मे वे लाहौर आकर आपके यहा ठहरे थे, आपके द्वारा दी गई सहायता के सम्बन्ध में श्री सान्याल के ही शब्दो में पढ़ने का कष्ट करें–

'इस लोकसंग्रह के कार्य मे अध्यापक जयचन्द्र जी ही प्रधान रूप में सहायक थे, पंजाब में जो विप्लव आंदोलन की नींव पडी थी, उनका पूर्ण श्रेय श्री जयचन्द जी को ही है, कारण उनके बिना मैं अकेला पंजाब के क्षेत्र मे अल्प समय के अन्दर इतना अधिक अग्रसर नहीं हो सकता था, तिलक स्कूल और पालिटिक्स के छात्रों से जो मैं परिचित हुआ वह जयचन्द्र जी की ही कृपा से, आपकी सहायता से ऐसे आदमी भी मिले थे, जिन्हें मैं अत्यन्त कष्टसाध्य एवं विपत्संकुल स्थानों में भेज पाया था।

(बंदी जीवन – ले0 शचीन्द्रनाथ सान्याल, पृ0 301–302)

पाठकवर्ग! आर्यसमाज के गुरुकुलों के स्नातकों के सम्बन्ध में इससे अधिक बढ़कर उनके राष्ट्रीय कार्यों का प्रमाणपत्र और क्या हो सकता है? गुरुकुल के किसी भी स्नातक ने राष्ट्रीय स्वाधीनता के प्रसंग में कभी किसी प्रकार का कोई विश्वासघातक कार्य किया हो, ऐसा हमें भारतीय सग्राम में कहीं पर भी कोई प्रमाण नहीं मिलता है।

मुंशीराम शर्मा 'सोम'

कानपुर में जब कभी इस दल के सदस्यों को जाना होता तो बिना किसी संकोच व भय के ही नहीं बल्कि अपनत्व के नाते दयानन्द कालेज के प्राध्यापक श्री मुंशीराम जी शर्मा 'सोम' के यहां इनका निवास स्थान होता था, श्री 'सोम' जी को यह भलीभाति मालूम था कि ये क्रांतिकारी हैं तथा इनके वारंट हैं, यदि पुलिस को मेरे स्थान पर उनकी उपस्थिति का ज्ञान हो जाता है, तो कितनी भयानक विपत्ति आ सकती है ? इसकी कोई भी कल्पना नहीं है, परन्तु यह सब कुछ जानते हुये भी सोम जी इनको अपने यहां जहां, भोजन, विश्राम, वस्त्रादि के साथ ही पुलिस के भय से अपना सिर छिपाने का आश्रय देते थे वहां आर्थिक रूप से भी इनका भरपूर सहयोग किया करते थे, जिससे कि राजकीय प्रकोप की जोखिमें भी सिर पर लेने में संकोच नहीं करते थे।

आप (श्री पं० मुंशीराम जी शर्मा सोम) उग्र राजनैतिक भावनाओं के व्यक्ति थे, आपकी प्रेरणा से अनेकों नवयुवकों ने क्रांतिकारी सस्थाओं में भाग लिया।

(आर्य प्रतिनिधिसभा – उत्तर प्रदेश का इतिहास, पृ0 212)

पाठक जरा सोचें, कि जान जोखिम में डालकर देशभक्तों की सहायता करते समय उनके दिल में मौजूद अपने देश के प्रति प्यार की मात्रा का अनुमान लगाया जा सकता है क्या ? यह आर्यसमाज के राष्ट्रीय वातावरण का प्रभाव नहीं था तो और क्या था ?

सत्यदेव विद्यालंकार

हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध लेखक स्व0 श्री सत्यदेव जी विद्यालंकार भी उन विशिष्ट व्यक्तियों में से थे जिन्होने समय-समय पर क्रांतिकारियों का यथाशक्ति वैचारिक तथा आर्थिक सहयोग किया, समयानुसार अपनी लोह लेखनी द्वारा उनके गौरवपूर्ण कार्यो का वर्णन कर भारतीय जनमन में उनके प्रति आदर व प्रेम तथा श्रद्धा के भाव उत्पन्न किये, इनके साथ ही विपत्ति के समय उन्हें सिर छिपाने का

भी महान् सहयोग किया, लोगों के मन में सिर धड़ की बाजी लगाने वाले उन युवकों के प्रति सम्मान भावना उत्पन्न करके उनका विशिष्ट स्थान बनाया, यह आपका एक बड़ा भारी योगदान था।

कुछ बहनें

क्रांतिकारियों के इस दल मे कार्य करनेवाली उन चन्द बहिनों का योगदान भी कभी भुलाया नहीं जा सकता, जिनकी सहायता की बदौलत कई बार इनको बड़ी-बड़ी मुसीबतों से बचने में सहयोग की प्राप्ति हुई, उन बहनों को भी इस कार्य की प्रेरणा आर्यसमाजी वातावरण की शिक्षा-दीक्षा के प्रभाव से ही हुई है, ऐसी बहनों में सुशीला दीदी प्रमुख थीं, ये आर्यसमाजी नेता लाला देवराज जी द्वारा स्थापित आर्य कन्या महाविद्यालय जालन्धर की स्नातिका थीं, वहां की शिक्षा के परिणामस्वरूप ही ये राष्ट्रीय स्वाधीनता के इस क्षेत्र में आ गई, बम्बई में एक सरकारी उच्चाधिकारी अंग्रेज पर सबके देखते-देखते जिन दो स्त्रियों ने गोली दागी थी, उन में से अमरशहीद भगवतीचरण की पत्नी दुर्गा भाभी के साथ दूसरी सुशीला दीदी जी ही थीं, इनका राष्ट्रीय स्वाधीनता की प्राप्ति में त्याग, बलिदान, सहयोग इतिहास में अमर रहेगा, इस दल का अधिक सहयोग करने वाली आर्यसमाजी बहन दिल्ली के प्रसिद्ध आर्यसमाजी नेता लाला नारायण जी ठेकेदार की सुपत्री बहन सुमित्रा दीदी जी थीं, आप अपने पिता जी से आग्रह करके समय-समय पर इनको आर्थिक सहयोग दिलवाती रहती थीं, जो कि कई बार बहुत मुसीबत के समय उनके लिये वरदान सिद्ध होता था, इनके अतिरिक्त दिल्ली के भू0 पू0 महापौर स्व0 श्री चौ0 देशराज जी की धर्मपत्नी श्रीमती चन्द्रवती जी ने इस प्रसंग में बड़ा भारी कार्य किया, जब अंग्रेजी सरकार का एक पालतू गुंडा कांग्रेस की महिलाओं में घूमकर अचानक ही छेड़छाड़ करने लगा, तब इस आर्यललना ने चप्पलों से उसकी ऐसी मरम्मत की थी कि वह वहां से तुरन्त भाग गया और उसने उसी में अपनी जान की कुशलता समझी, इनका सारा ही परिवार आर्यसमाजी

विचारधारा से ओत-प्रोत तथा आर्यसमाज में सम्मानपूर्ण स्थान रखता है।

"10 जुलाई 1907 को सरलादेवी ने लाहौर के आर्यसमाजी नेता रोशनलाल की धर्मपत्नी को हिन्दू महिला शिक्षा कोष स्थापित किये जाने के सम्बन्ध में पत्र लिखा, भारतीय महिलायें घर गृहस्थी के कार्यो में सुदक्ष हैं लेकिन अब उन्हें राष्ट्रीय मामलों में सक्रिय होना है।"

(भारतीय राष्ट्रवाद एवं आर्यसमाज आंदोलन, पृ0 95)

"रवीन्द्रनाथ टैगोर की भतीजी प्रसिद्ध आर्यसमाजी कार्यकर्त्री श्रीमती सरला देवी ने स्वराज्य के संदेश को जनसाधारण, विशेषकर महिलाओं तक पहुंचाने में उल्लेखनीय योगदान किया है। मई 1908 को एक जनसभा में भाषण करते हुये उन्होंने कहा कि देशभक्ति मानव समाज का विशेष गुण है, जर्मन, अमेरिकन, फ्रांसीसी, अंग्रेज आदि इस धरती पर कोई भी जाति ऐसी नहीं है जो अपने देश से प्यार न करती हो।"

(पूर्वोक्त पुस्तक, पृ0 50)

श्रीयुत कृष्ण जी

धन द्वारा इन लोगों का सहयोग करने वाले इन्हीं उदार एवं देशभक्त आर्यपुरुषों में दिल्ली के श्रीयुत कृष्ण जी का भी नाम आता है, आप दिल्ली में कोयले का व्यापार किया करते थे, दिल्ली में अजमेरी गेट के पास ही आपकी दुकान थी, श्री यशपाल जी अपने संस्मरणों में लिखते हैं कि श्री कृष्ण जी हमें अपने पुत्रों से भी अधिक बढ़कर प्रेम किया करते थे, किसी भी और कैसे भयानक कष्ट तथा संकट के समय भी हम बिना किसी संकोच के उनके घर जा पहुंचते थे, गांधीवाद से प्रभावित होने पर भी वे सदा ही इनका सब प्रकार से सहयोग करने में संकोच नहीं करते थे, जबकि उन्हें इनके सशस्त्र क्रांतिकारी होने का पूरा ब्यौरा मालूम था, एक बार यशपाल मथुरा रोड पर मोटरसाइकिल चलाते हुये अंधेरे के कारण टक्कर हो

जाने से घायल हो गये वह किसी तरह बस से चलकर सीधे कृष्ण जी के घर जा पहुंचे, 10-12 दिन तक कृष्ण जी अपने व्यय से इनका इलाज कराते रहे, बाद में उन्हे इसी सम्बन्ध में पुलिस द्वारा पकड़कर बहुत अमानवीय यातनायें दी गई, इनकी पत्नी के भाई ध्रुव जी को तो पुलिस के डंडों की वह मार पड़ी थी कि कई मास तक शरीर सूजा रहा था, परन्तु इतने पर भी इन लोगों ने कभी क्रांतिकारियों का सहयोग न करने का विचार तक मन में नहीं किया, इतना ही नहीं बल्कि पहले की अपेक्षा और अधिक सहयोग करने पर तत्पर रहने लगे थे, उक्त कृष्ण जी का परिवार तथा वे स्वयं भी प्रखर आर्यसमाजी थे, ऐसा यशपाल जी का मत है, इस दल की ओर से समय-समय पर जो पर्चे बांटे जाते थे उनका सारा ही व्यय तथा उनके प्रकाशनादि की सारी गुप्त व्यवस्था भी श्री कृष्ण जी ही किया करते थे और ये पर्चे भी आर्यसमाजियों के छापेखाने में छपते थे क्योंकि अन्य छापेखाने अपने ऊपर न तो यह संकट झेलने को तैयार होते थे और न ही देशभक्त क्रांतिकारियों का उन पर विश्वास होता था, साथ ही क्रांतिकारी अपने इस गुप्त कार्य को आर्यसमाजियों के छापेखाने में सुरक्षित अनुभव किया करते थे, प्रमाणस्वरूप देखिये-

'देहली के एक आर्यसमाजियों के प्रेस में यह अपील छपवाई थी, शीघ्रता के कारण प्रेस ने अपील की छपाई के दाम अधिक ही लिये थे, इस बात की सुविधा मुझे अवश्य मिली कि इस प्रेस ने मेरी अपील छाप तो दी, संभव था कि दूसरे प्रेस इस काम को न करते।'

(बंदी जीवन, पृ0 308-309)

चन्द्रशेखर आज़ाद

भगतसिंह के बाद उत्तर भारत में सशस्त्र क्रांति का पूर्ण नेतृत्व यदि किसी के हाथ में आया तो वो भारत का अमरपुत्र अमर शहीद चन्द्रशेखर आज़ाद था, आपके यदि धार्मिक दृष्टि से पूर्णतया आर्यसमाजी नहीं कह सकते तो राजनैतिक दृष्टि से तो अवश्यमेव आप आर्यसमाज के अत्यन्त ही निकट थे, पाठक निम्न उद्धरण पढने

का कष्ट करेंगे, जिससे कि हमारे कथन की पुष्टि हो सके, तुम्हें जो विश्वासी और हथियारबंद आदमी मिले उन्हें ले आओ, और मुझे कल शाम को आर्यसमाज हाल में मिले, सबसे शाम तक कानपुर आर्यसमाज मंदिर में पहुंचने के लिये कहकर उन्हीं पैरों लौट आया आप ज़रा ख्याल रखें, इन्हें तंग न करें, आप जानते ही हैं कि आर्यसमाज का काम करना आजकल कितना मुश्किल हो गया है ? जब काम हो जायेगा तब हम तीन फायर करेंगे, तुम यहां से हटकर सीधे आर्यसमाज चले जाना। वे दोनों (आज़ाद तथा भगवतीचरण) आर्यसमाज हाल की तरफ से आते दिखाई दिये।

(चन्द्रशेखर आज़ाद - ले0 पूर्णचंद्र सनक, पृ0 12-18)

जब आज़ाद बनारस में रहा करते थे तब अचानक ही पुलिस द्वारा उनकी अनुपस्थिति में उनकी कुटिया की तलाशी लेने पर 'वैदिक संध्या' नामक पुस्तक की एक प्रति के अतिरिक्त कोई विशेष चीज हाथ नहीं आई थी, उस समय के अनुसार 'वैदिकसंध्या' का अर्थ ही आर्यसमाजी ढंग की संध्या होता था, पाठकों को इससे यह भी ज्ञान हो जायेगा कि आज़ाद जी के ऊपर धार्मिक संस्कारों की भी किसी न किसी अंश मे छाप थी। इन उदाहरणों के आधार पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि आज़ाद की मान्यता के अनुसार भी आर्यसमाज एक देशभक्त संस्था थी, तथा उनके नाम से कार्य करने में गौरव की अनुभूति मानता था, आर्यसमाज मन्दिरो में निवास, विश्राम, गुप्तसभायें करने में उसे किसी प्रकार के अनिष्ट की आशंका या विपत्ति आने का भय नहीं था, क्योंकि आर्यसमाज की प्रखर एवं उत्कट देशभक्ति का सिक्का उसके दिल पर जमा हुआ था, अतः अपना कार्य चलाने के निमित्त वह आर्यसमाज से सम्पर्क रखता था।

देशभक्त कुं0 चान्दकरण शारदा

जिन्होंने समय-समय पर इन देशभक्त क्रांतिकारियों को सब प्रकार का प्रश्रय देते हुये अपनी उत्कट देशभक्ति का परिचय दिया उन लोगों में राजस्थान के प्रसिद्ध आर्यसमाजी देशभक्त कुं0

चान्दकरण शारदा का नाम भी आता है, इन्होंने भारत की आज़ादी के लिये उनेक बार कारागार की यातनायें सही हैं, अपनी यौवनावस्था में देश के युवकों में स्वाधीनता के प्रति अनुराग उत्पन्न करने के लिए अजमेर के बाज़ारो, चोराहों पर खड़े होकर वन्दे मातरम् के जयघोष के साथ अपने साथियों से निम्न भजन गवाया करते थे-

"नहीं रखनी, नहीं रखनी यह जालिम सरकार, नहीं रखनी"

इनका राजस्थान के अनेक देशभक्त क्रांतिकारियों के साथ प्रगाढ परिचय था, साथ ही निकट का सम्पर्क भी था, 1930 में अचानक चन्द्रशेखर आज़ाद का अजमेर आगमन हुआ, उस समय वे अपने आप को सरकारी गुप्तचरों की दृष्टि से बचाकर दिल्ली जाने की फिराक में थे, वे शारदा जी के निवास स्थान पर शारदा भवन में आ गये, उसके पश्चात् किस प्रकार भारत के इस महान् क्रांतिकारी को शारदा जी ने अपनी जान जोखिम में डालकर सुरक्षित दिल्ली भिजवा दिया, यह वृत्तांत एक प्रत्यक्षदर्शी शारदा जी के बड़े पुत्र श्रीकरण शारदा के मुख से सुनिये "ब्यावर के क्रांतिकारियों के सहयोगी सेठ दामोदरदास राठी तो शारदा जी के समधी थे, क्रांतिकारी आंदोलन को आर्थिक सहायता देना राठी जी का खास काम था, वैश्य होकर भी गज़ब के साहसी थे, श्यामजी कृष्ण वर्मा तथा अरविन्द घोष जैसे क्रांतिकारियों को जोखिम उठाकर अपने यहां ठहराया करते थे, चन्द्रशेखर आज़ाद पुलिस से छुपते हुये जब शारदा भवन पहुंचे तब वहां खेलते हुये बच्चों से जिनमें मैं भी था, शारदा जी के बारे में पूछा, मैं उन्हें पूज्य पिताजी के पास ले गया, चन्द्रशेखर को देखकर पिताजी गले मिले, और आने का कारण पूछा, आज़ाद ने कहा कि पुलिस मेरे पीछे आ रही है, मेरी रक्षा करके मुझे दिल्ली पहुंचाने का प्रबन्ध करें, पिताजी ने कुछ क्षण सोचा और बच्चों को आनासागर की तरफ जहां अपनी नाव पडी थी पतवार लेकर पहुंचने को कहा, हम लोग आनासागर अपनी नाव के पास पहुंच गये, कुछ ही क्षणों में पिताजी चन्द्रशेखर को लेकर वहां आ गये, उन्होंने नाव को पानी में उतारा, और चन्द्रशेखर को उसमें बैठाकर नाव स्वयं खेने लगे,

चीफ कमिश्नर की कोठी के पास नाव को खड़ा कर चन्द्रशेखर को उसी में बैठे रहने का अनुरोध कर बजरंगगढ़ से घर लौट आये, थोड़ी देर में पुलिस आयी, पिताजी से चन्द्रशेखर के बारे में पूछताछ की गई, पिताजी ने कहा कि मुझे मालूम नहीं, तदापि पुलिस ने घर के प्रत्येक कमरे की तलाशी ली, किन्तु कुछ न मिलने पर निराश लौट गई, पिताजी प्रातः चार बजे पुनः नाव के पास पहुंचे, जहां रात्रि भर चन्द्रशेखर बैठे थे, उन्हें किनारे उताकर चौर सियावास गांव की ओर उनके साथ पैदल चल दिये, गांव में अपने मुवक्किल को बैलगाड़ी जोतने को कहा और उसमें चन्द्रशेखर को ओढाकर लिटा दिया गया, और गाडीवान को उनको किशनगढ़ रेलवे स्टेशन पर उतार देने को कहा, किशनगढ़ से रात्रि की मेल से चन्द्रशेखर दिल्ली पहुंचे।

(देशभक्त कुंवर चान्दकरण शारदा – ले० भवानीलाल भारतीय, पृ० 57)

ठा० यशपाल सिंह

स्व० ठा० यशपालसिंह जी पूर्व सदस्य लोकसभा ने भी श्री चन्द्र–शेखर आज़ाद के नेतृत्व में आजादी प्राप्ति के प्रशंसनीय प्रयास किये हैं, आप 14 वर्ष की छोटी आयु में ही आजाद के साथ ब्रिटिश सरकार की क्रूर आंखों से बचने के लिये पौष मास की कड़कड़ाती सर्दियों की रातें एक पतला सा वस्त्र ओढ़े जंगली झाड़ियों, वृक्षों पर बैठकर जागते ही जागते बिताया करते थे, केवलमात्र 15 वर्ष की अवस्था में ही भयानक राजद्रोही क्रांतिकारी अपराधी होने के कारण आपको कई–कई मास तक फांसी की अंधेरी व तंग एवं गन्दी कोठरियों में बन्द रखा गया था, आप जैसे न जाने कितने देशभक्त क्रांतिकारी आर्ययुवकों के तप, त्याग, बलिदान, साधना के परिणामस्वरुप हम आज इस आजादी का सुखोपभोग कर रहे हैं, जीवन के अन्तिम समय तक आप एक निष्ठावान् आर्य नेता की हैसियत से आर्यसमाज के हितकारक कार्यों में संलग्न रहे।

पं0 जगदीशचन्द्र शास्त्री

देश की स्वाधीनता के लिये असीम कष्ट सहने वाले इन्हीं आर्यसमाजी युवकों में प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् स्व0 पं0 जगदीशचन्द्र जी शास्त्री दर्शनाचार्य भी थे, आर्य जाति के इस वीर सपूत ने देश की स्वाधीनता के लिये अपने जीवन के 20 वर्ष गुप्तवास में व्यतीत किये, उनकी कहानी उन्हीं के शब्दों में पढ़ें, ''भारत के आकाश पर और मातृभूमि के प्रत्येक कण पर अंग्रेजी राज्य की छाप लगी थी, देश का प्रत्येक निवासी पराधीनता और दासता की श्रृंखला से निबद्ध था, रामप्रसाद बिस्मिल, सूर्यसेन, भगतसिंह और राजगुरु आदि को फांसी दी जा चुकी थी, कुछ साहसी युवकों ने इस राष्ट्रीय अपमान का बदला लेने की प्रतिज्ञा की, और यह जानकर कि मैं मातृभूमि पर बलिदान होनेवाले उपर्युक्त शहीदों के अत्यन्त निकट रह चुका हूं, वे युवक मेरे पास आये और मुझे नेतृत्व ग्रहण करने के लिये आग्रह करने लगे, मैं उन दिनों क्वेटा बलोचिस्तान में चिकित्सा कार्य करता था, संगठन बन गया, सशस्त्र कार्य करने के लिये मैंने उनको सहयोग दिया, शस्त्र संचालन की शिक्षा भी मैंने ही दी, कार्यक्रम निर्धारित करके अभी प्रस्थान को उद्यत ही हुये थे कि किसी भेदिये के कारण पुलिसवाले आ पहुंचे, सबको लेकर गाड़ी में बैठाया, और सियालकोट ले चले, निश्चय यह था कि सियालकोट पहुंचने से पहले ही गाड़ी में गोली-बारी हो और सब भाग जायें, ऐसा ही हुआ, यह घटना 5 मई 1931 की है, अगले दिन घटना का पूरा विवरण हम लोगों ने रामनगर, जम्मू कश्मीर में पहुंचकर समाचार-पत्रों में पढ़ा, तब से हमने आत्मरक्षा के उपायों का अवलम्बन करना ही अपना ध्येय बनाया, ब्रिटिश पुलिस अपने सारे हथकंडों से हमारा पीछा कर रही थी, एक साथी रेलगाड़ी में ही रह जाने के कारण पकड़ा गया था, अतः सबके वारंट और इनाम की घोषणा हो चुकी थी, हम लोग बारी-बारी से आत्मरक्षा करते हुये पंजाब से निकलकर हरि के द्वार हरिद्वार आ पहुंचे, तपस्वीजनों के वेश को धारण कर आत्मसंरक्षण

हो रहा था, वहां पहुंचकर भगवती भागीरथी में स्नान करके मैंने तो सशस्त्र कार्यक्रम के विचार को सर्वदा के लिये त्याग दिया, और उत्तराखंड में तपश्चर्या के लिये चला गया, दो वर्ष के पश्चात् मैंने प्रभाखान और हंसराज के पकड़े जाने का समाचार पढ़ा, समाचार के पढ़ते ही तत्काल मैंने उत्तराखंड का त्याग कर दिया, और कांगड़ा प्रदेश के बैजनाथ क्षेत्र में जा पहुंचा, पता लगा कि प्रभाखान को फांसी दी जा चुकी है, और हंसराज को कालेपानी का दंड मिला इत्यादि इस 18 वर्ष के कठिन अज्ञातवास में भंयकर यातनायें भी सहन करनी पड़ीं, अनेक नामों से अनेक रूपों मे अनेक प्रकार के कार्यक्रमों का उपक्रम भी करना पडा, परन्तु ध्येय केवल यही था–

कभी वह दिन भी आयेगा जब अपना राज देखेंगे,
जब अपनी ही जमीं होगी और अपना आसमां होगा।

वह दिन आ गया, और आये हुए भी 11 वर्ष हो गये, भूमिगत रहकर इतने लम्बे समय तक मैंने राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस की क्रियात्मक सहायता करना ही अपना उद्देश्य बनाये रखा, और यथाशक्ति कार्य करता रहा हूं।"

(न्यायकुसुमांजलि – अनुवादक पं0 जगदीशचन्द्र जी शास्त्री कुछ अपने विषय में)

स्वामी भीष्म जी और चन्द्र कवि

पाठकगण इतने दीर्घकाल तक कष्ट भोगना तथा राष्ट्र के हित का चिन्तन करना आर्यसमाज की शिक्षा का ही सुफल है, आर्यजगत् के इन देशभक्त वीरों में उत्तरभारत के ख्यातनामा आर्यप्रचारक स्व0 स्वामी भीष्म जी महाराज भी सम्मिलित हैं, व्यायाम से वज्र तुल्य तथा बलिष्ठ आपका शरीर युवकों के आकर्षण का विषय रहा है, आपकी सिंह के समान गर्जनापूर्ण वाणी और देशभक्ति से परिपूर्ण आज़ादी के तराने युवकों को सहसा ही देश पर मर–मिटने को प्रेरित तथा समुद्यत कर देते थे, उस समय आप यू0 पी0 के करहेड़ा नामक गांव में आश्रम बनाकर रहते थे, सशस्त्र देशभक्त क्रांतिकारी अनेक

बार आपके यहां आकर पुलिस के प्रकोप से अपनी रक्षा किया करते थे, ऐसी बड़ी मुसीबत के समय आप न जाने कितने देशभक्तों को अन्न तथा वस्त्रादि की सहायता किया करते थे, विचार-विमर्श तथा प्रेरणा की प्राप्ति के लिए तो देशभक्त युवकों को आपके पास आने का ताता ही लगा रहता था, अनेक क्रांतिकारियों ने तो अपने शस्त्र-अस्त्र आदि रखने का एकमात्र विश्वस्त अड्डा आपके आश्रम को ही बनाया हुआ था, चन्द्रशेखर आज़ाद तथा भगतसिंह तो स्वामी जी के विशेष स्नेहपात्रो में से थे, ये युवक स्वामी जी के स्वाभिमान, देशभक्ति से पूर्ण तथा निर्भीक विचारों पर मुग्ध थे, स्वामी जी भी इन्हे अपने प्रियतम शिष्यो से अधिक प्यार, सरंक्षण तथा सब प्रकार का सहयोग किया करते थे, आर्यसमाज के इन्हीं संतों की कृपा से हमारा राष्ट्र स्वाधीन हो सका, देशभक्ति तथा देश की स्वाधीनता के इन्हीं विचारों से ओतप्रोत आर्य प्रचारकों में चन्द्र कवि का अपना ही निराला स्थान है, इन्होंने एक बार किसी आर्यसमाज के उत्सव पर देशभक्ति के भावों से सुनी हुई कविताओं का संग्रह, जिन्हे सुनकर स्वाभिमानी व्यक्तियों की आंखो में सहसा ही खून उतर आता था, श्रोताओं के सामने जोशीली भाषा में पाठ किया था, जिनमें 1857 के स्वाधीनतासंग्राम की विफलता के बाद अंग्रेजों द्वारा किये गये अमानुषिक, पाशविक तथा बर्बर अत्याचारों का दर्दनाक वर्णन था, उसको राजद्रोह मानकर ही अंग्रेजी सरकार ने उन्हे आजन्म कालेपानी का दंड दिया था जो कि बाद में साधारण कारावास के रूप में बदल दिया गया था, आर्यसमाज के इन लगनशील, देशभक्त भजनोपदेशकों, कवियों, तथा प्रचारकों ने प्रखर राष्ट्रवाद के तराने गा गाकर परतंत्र भारत में जो जागृति उत्पन्न की वह तो एक अलग ही विस्तृत ग्रंथ की अपेक्षा रखता है।

सन् 1942 की क्रांति

स्वाधीनता की इस अन्तिम लड़ाई मे महात्मा गांधी के तौर तरीके पर आर्यसमाजी कार्यकर्त्ताओं ने जो सहयोग किया उसका कुछ

वर्णन पाठक पीछे पढ़ चुके हैं, जब कांग्रेस के सारे ही नेता पकड लिए गये, ऐसी अवस्था में भारतीय जनता का नेतृत्व करनेवाला कोई नेता बाहर नहीं रहा, तब जनता ने कार्यक्रम निर्धारित किया, वह था रेलवे लाईन उखाड़ना, सरकारी इमारतें जलाना, तथा इसी प्रकार सरकार की अन्य सभी प्रकार की आर्थिक हानि करना, इसके साथ देशव्यापी सारी प्रबन्ध व्यवस्था अस्त-व्यस्त कर देना, जनता का यह कार्यक्रम गांधी जी के "करो या मरो" तथा "अंग्रेजो भारत छोड़ो" वाक्यों को अपनी समझ के अनुसार तत्काल व्यवहार रूप देना था, इस क्रांति में गांधी जी के सिद्धातों तथा मान्यताओं के सर्वथा विपरीत हिंसा की भावना आ गई थी, परन्तु किसी भी अहिंसावादी नेता ने जनता के इन कार्यों के विरोध में कोई भी कठोर वक्तव्य नहीं दिया, जबकि वे इससे पूर्व वैसा करने में अपना गौरव समझते थे, सन् 1921 में जनता द्वारा चौराचौरी नामक स्थान पर कुछ सिपाहियों को थाने में रोककर आग लगा देने मात्र से ही गांधी जी ने अपना सारा ही आदोलन स्थगित कर दिया था, क्योंकि उनके मंतव्यानुसार उनके आंदोलन में हिंसा की भावना आ गई थी, इतना ही नहीं बल्कि चन्द्रसिंह गढवाली के द्वारा अपने देश भाइयों पर गोली चलाने के आज्ञा होने पर भी उस आज्ञा के मानने के इंकार करने पर गांधी जी ने हिंसा कहकर चन्द्रसिह गढवाली की निंदा की थी, परन्तु अब स्थिति विपरीत थी, इससे लेखक इस परिणाम पर पहुंचा है कि अंत में गांधी जी भी स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए अंग्रेजों की छली मनोवृत्ति को दृष्टिगत करते हुए इस प्रकार की क्रांति के किसी सीमा तक मौनरूप में यदि समर्थक नहीं भी हो गये थे तो अपने सिद्धांतों के विरुद्ध हिंसा कह निंदा करने के काम से तो रुक ही गये थे, दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि उन्हें अब तक अपनाये गये अपने मार्ग की सफलता के सम्बन्धी उपायों के विषय मे सन्देह की गुंजाइश हो गई हो, जिसे वे चुप रहकर ही मानो स्वीकृति दे रहे हों, इस क्रांति मे भी आर्यसमाजियों ने पहले की ही भांति बढ-चढ़ कर भाग लिया,

आर्यवीर दल के अनेक नवयुवकों ने जेल काटी हंटरों की मार सही और कइयों को फांसी पर भी लटका दिया गया था।

उस काल में फांसी पर लटकनेवाला अमरशहीद रमेश आर्यसमाजी घराने से ही सम्बन्धित था, आर्यसमाज मन्दिर नरेला में संध्या हवन कर रहे 70 पुरुषों को पुलिस ने बम बनाने के अपराध मे गिरफ्तार किया था तथा उनको अनेक प्रकार के भयानक तथा असहाय कष्ट दिये थे, स्वा0 ईशानद जी (भूतपूर्व चौ0 रतिराम जी) तथा स्वामी धर्मानंद जी के सुपुत्र श्री हरिदत्त जी को उस समय लगातार छः मास तक लालकिले में तहखाने में बन्द रखा गया था, जहां कि इतने लम्बे समय तक सूर्य की किरणो के दर्शन भी नहीं होते थे, इसके अतिरिक्त जो अमानवीय यातनाये दी गई थीं वे तो इससे अलग ही रहीं।

श्री आचार्य भगवान्देव जी (स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती) को खोजने के लिए पुलिस ने रात-दिन एक कर दिया था, परन्तु वे किसी भी प्रकार हाथ न आये और भूमिगत होकर उस आंदोलन में जो महत्त्वपूर्ण भूमिका उन्होने निभाई थी, वह तो अपने आप में जहां मौलिक थी, वहां साहसपूर्ण ऐतिहासिक भी थी, जिस पर हम जितना भी गर्व करें उतना ही थोडा है, पंजाब में जब सारे ही कांग्रेसी नेता शिथिल पड गये थे, तब दयानन्द कालेज लाहौर के छात्रों ने आंदोलन में कूदकर इनकी नाक बचाई थी और इस आंदोलन को अनुप्राणित करने के लिए एक गुप्त संस्था बनाई थी, जिसको कई देशभक्त उच्च सरकारी अधिकारियों का गुप्त सहयोग तथा आशीर्वाद प्राप्त था, उस समय इन देशभक्त सरकारी अधिकारियों के द्वारा उन देशद्रोही सरकारी अधिकारियों का एक योजना के अधीन जानबूझकर स्थानान्तरण भी किया जाता था, जिससे कि आंदोलन सफल हो, इस संस्था के सूत्रधार एक आर्यसमाजी युवक श्री राजेन्द्र जी थे, जो भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात् पंजाब सरकार के एक उच्च पदाधिकारी रहे हैं, इस संस्था के मत्री आर्यजगत् के विख्यात शिक्षा शास्त्री, प्रसिद्ध आर्यनेता श्री प्रिं0 भगवानदास जी थे, इसी संस्था ने देश के प्रसिद्ध

उद्योगपति तथा आर्यसमाजी श्री बाबा गुरमुखसिंह जी एवं सेठ रामनारायण जी वर्मानी के सहयोग से सत्याग्रहियों के पीड़ित परिवारों को आर्थिक सहायता देने का भी गुप्त रूप से महत्त्वपूर्ण कार्य किया था, इस आंदोलन में नागपुर के श्री कालेराम नामक एक आर्य युवक को विदेशी सरकार के प्रति विद्रोह करने के अपराध में फांसी दी गई थी, आर्यजगत् के प्रसिद्ध नेता तथा सन्यासी स्वा0 स्वतन्त्रानन्द जी महाराज को पंजाब के गवर्नर का वध करने का आरोप लगाकर नज़रबन्द किया गया था, उस समय प्रायः सभी आर्यसमाज की शिक्षा संस्थाओं के छात्रों ने इस आंदोलन में बढ़चढ़कर भाग लिया था तथा अपनी गिरफ्तारी दी थी, एवं ब्रिटिश कारावास के कष्टों को सहा था, उस समय के राष्ट्रीय नेता भी भूमिगत होकर कार्य करने के लिये इन्हीं संस्थाओं में रहने में अपनी सुरक्षा में विश्वास किया करते थे, इस सम्बन्ध में इन शिक्षा संस्थाओं के कार्यों का विशेष वर्णन तो आगे किया जायेगा।

लेखक यद्यपि उस समय बच्चा ही था तो भी ठीक प्रकार से ध्यान है कि उत्तर प्रदेश का कोई एक आर्यसमाजी युवक दिल्ली में किसी सरकारी भवन को पैट्रोल से जलाकर पुलिस की नज़रों से अपनी रक्षा करने के उद्देश्य से कई वर्ष तक गुप्तरूप से हमारे घर में रहा था, जहां उसे सब प्रकार की सहायता दी जाती थी तथा पुलिस के प्रकोप से बचाने के लिए कोई कसर बाकी नहीं रखी जाती थी, इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत की आज़ादी के लिए आरम्भ किये गये सभी पहले वाले आंदोलनों की भांति आज़ादी के इस अन्तिम संघर्ष में भी सारे ही आर्यसमाज ने सामूहिक रूप में अपने को झोंक दिया था और इस लड़ाई के मोर्चे पर अन्तिम दम तक लड़ता रहा, चाहे आर्यसमाज को इस कार्य में किनते ही बलिदान क्यों न देने पड़े हों, परन्तु आर्यसमाज ने आंदोलन के बीच से अपना कदम पीछे हटाने का नाम नहीं लिया, क्योंकि देश की स्वाधीनता आर्यसमाज के जीवन-मरण का प्रश्न था।

आज़ाद हिन्द सेना और आर्यसमाज

इस स्वाधीनता संग्राम में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने विदेशों में रहकर आजाद हिन्द सेना के माध्यम से देश की स्वाधीनता प्राप्ति के लिये एक महत्त्वपूर्ण योगदान किया, उन्होंने घोर विरोधी तथा सर्वथा विपरीत परिस्थितियों में भी प्रवासी भारतीयों की सहायता से अपने राष्ट्र की मुक्ति हेतु जो प्रशंसनीय ऐतिहासिक एवं साहसिक कार्य किया, अतीतकाल में जहां तक हमारी दृष्टि जाती है, ठीक इसी प्रकार का स्मरणीय कार्य जो हमारे अतीतकालिक गौरवशाली इतिहास की अमूल्य थाती है, आज से कई लाख वर्ष पूर्व आर्यजाति के परमप्रतापी सम्राट् राम ने ही किया था, वर्तमान युग के राम नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की सेना में भर्ती होकर अपने प्राणपण से विदेशियों की दासता से मुक्त कराने के लिये राष्ट्र की बलिवेदी पर अपना बलिदान करने का संकल्प करनेवाले उन युवको में भी आर्यसमाजी कोई कम संख्या में नहीं थे, आज़ाद हिन्द सेना के तीन प्रमुख नायकों में श्री सहगल तो प्रत्यक्ष ही आर्यसमाजी थे, उनके पिता श्री म0 अछरूराम जी पंजाब के माने हुये कानूनदा थे, यह तो किसी से भी छिपा नहीं कि अछरूराम जी का आर्यसमाज क्षेत्रों में कितना महत्त्वपूर्ण तथा ऊंचा स्थान था, महाशय जी स्वयं ही कहा करते थे, कि मुझे अपने आर्यसमाजी होने पर अभिमान है, क्योंकि इसी से प्राप्त हुई प्रेरणा के कारण मैंने अपने बेटे को स्वाधीनता संग्राम की भट्टी मे झोंक दिया है, हमारा पाठ्को से यही प्रश्न है कि इससे अधिक उनके देशभक्त आर्यसमाजी होने का और क्या प्रमाण हमसे लेना चाहते हैं ? इस प्रकार देश के असंख्य युवकों के स्वातन्त्र्य समर में जूझने के कारण जिनमें बहुत संख्या आर्यसमाजियों की थी, 15 अगस्त 1947 ई0 को सूर्योदय के साथ स्वाधीनता देवी ने जिसकी वर्षो से बड़ी अधीरता के साथ भारतवासी प्रतीक्षा कर रहे थे, भारत के प्रांगण में प्रवेश किया, परन्तु यह स्वाधीनता हमारे देश भारत के लिये बहुत ही मंहगा सौदा सिद्ध हुआ।

पाकिस्तान का जन्मदाता

अंग्रेजो की कूटनीति या मक्कारी इस देश के कांग्रेस के उच्चकोटि के नेताओं के भोलेपन या अपने ही सपनो की दुनियां में रहने की आदत के आधार पर इस देश से जाते-जाते भी भारत के दो टुकड़े कर हिन्दू मुस्लिम इन दो वर्गों को सदा के लिये एक-दूसरे का जानी दुश्मन बना गई, पाकिस्तान का जन्मदाता कौन है? इस सम्बन्ध ा में बहुत मतभेद हैं, अधिकाश जिन्ना को इसका जन्मदाता समझते हैं, परन्तु मि0 जिन्ना तो सन् 1940 के आसपास ही आकर कट्टर मुस्लिम लोगों के रूप में प्रकट होते हैं, इससे पूर्व तो वह भारत की राष्ट्रीयता एकता एवं अखण्डता का समर्थक रहा है, परन्तु कांग्रेस दल के उच्चतम नेताओं अथवा कांग्रेस का चार आने का सदस्य न होते हुए भी - कांग्रेस पर सदा ही जिसका अबाध आधिपत्य रहा है, ऐसे महात्माओं की अदूरदर्शिता, जिद, भोलेपन अपने काल्पनिक विचारों में ही रहने के अभ्यास ने साथ ही सबसे अधिक बढकर विदेशी अंग्रेजों की कूटनीति ने सन् 1916 के कट्टर राष्ट्रवादी मि0 जिन्ना को कालान्तर मे बेजोड धर्मान्ध, पृथक्तावाद के ध्वजावाहक के रुप में सामने लाकर खड़ा कर दिया, इतिहासकार ऊर्दू के मशहूर शायर मोहम्मद इकबाल को ही पाकिस्तान का आदि प्रवर्तक मानते हैं, परन्तु ये भी तो उसके पहले राष्ट्रीय एकता व अखण्डता के प्रबल समर्थक थे, अतः इन्हें भी पाकिस्तान का मूलोद्भावक कहना सत्यता के साथ न्याय करना नहीं हैं, इंग्लैंड जाने से पूर्व उनके राष्ट्रीय विचारों की झलक उनके निम्न गीत से मिल सकती है-

सारे जहा से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा।
हम बुलबुलें हैं इसकी यह गुलिस्तां हमारा।।

इस गीत के द्वारा भारत में साम्प्रायिक एकता का इच्छुक तथा राष्ट्रीय अखण्डता का प्रतिपादक एवं भारत देश में अपनी गहरी निष्ठा व्यक्त करनेवाला वही इकबाल जब इंग्लैड से बैरिस्ट्री पास करके लौटा तो उसकी कविताओं में कट्टर मुस्लिम मनोवृत्ति एवं साम्प्रदायिक

आधार पर अलग मुस्लिम देश की कल्पना का प्रदर्शन था, पाठ्क यह भी प्रमाण देखिये–

तुझको मालुम है लेता था कोई नाम तेरा।
कुव्वते बाजुवे मुस्लिम किया काम तेरा।।
या रब दिले मुस्लिम कोम को ज़िन्दा तमन्ना दे।
जो कल्ब को गर्मा दे और रूह का तड़पा दे।।

इस प्रकार जब इकबाल ने मुसलमानो के कल्ब (हृदय) को गर्मानेवाली दुआयें मांगना आरम्भ किया तो उत्तर भारत के मुसलमानों में साम्प्रदायिक जज़बा उभरते देर न लगी, भारत में पृथक्तावादी मनोवृत्ति के प्रचार में इकबाल की ये कवितायें बहुत हद तक सहायक सिद्ध हुई, अर्थात् इकबाल की कविताओं ने मुस्लिम वर्ग की मनोवृत्ति को कट्टर साम्प्रदायिकता का खाद–पानी देकर इस कद्र तैयार किया कि जिससे उनमें पाकिस्तान की योजना का बीज पड़ते ही वृक्षाकर होने का अनुकूल वातावरण उत्पन्न हो गया, परन्तु इतने पर भी इकबाल ही इस योजना का उद्भावक नहीं कहा जा सकता है, यह कुटिल, राष्ट्रघाती तथा विघटनकारी योजना तो इंग्लैण्ड मे ही घड़ी गई और यह पूर्णतया स्पष्ट है कि वह अंग्रेजों के छली दिमाग की ही उपज है, इसकी रूपरेखा को सर्वप्रथम उपस्थित करनेवाला चौ0 रहमतअली नामक एक मुस्लिम छात्र था, जो इंग्लैण्ड में बैरिस्ट्री पढ़ने गया था, उसके माध्यम से कुटिलमति अंग्रेज ने यह विद्वेष का जाल फैंका था, उसने अपने निवास स्थान – 16 मांटेग्यू रोड, कैम्ब्रिज, इंग्लैण्ड से ही 1933 में यह योजना प्रकाशित कर सर्वत्र प्रचारित की थी, जिसका प्रारम्भिक प्रारूप निम्न प्रकार से था–

1. हिन्दुस्तान एक देश नहीं है, यह देशसमूह है।

2. हिन्दुस्तान में एक राष्ट्र नहीं बल्कि हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र रहते हैं।

3. हिन्दुस्तान का इंडिया नाम गलत है, इसका उल्टा नाम दीनिया होना चाहिए।

4 हिन्दुस्तान में बंगिस्तान, (बंगाल), उस्मानिस्तान (हैदराबाद), म्यूनिस्तान (राजस्थान) आदि प्रदेशों को पृथक्-पृथक् मुस्लिम प्रदेशों के रूप में संगठित कर सबको सामूहिक रूप में पाकिस्तान मानना चाहिये।

यह थी वो पाकिस्तान की पहली मूलरूप मे योजना जो इंग्लैड मे चौ0 रहमत अली के द्वारा प्रसारित की गई थी, बाद में वहीं से 'पाक प्लान' का समर्थक साहित्य दुनिया के मुस्लिम देशों को भेजा जाता रहा, 1857 के बाद भारत की जतना में फूट डालने के उद्देश्य से इससे बहुत समय पहले भी जब कांग्रेस में प्रखर तथा उग्र देशभक्त आर्यसमाजियों के छा जाने के कारण अंग्रेजों को अपनी सत्ता के लिए खतरा महसूस हुआ तो उन्होंने अलीगढ़ के सर सैय्यद अहमद खां के रूप मे भिन्नता एव अलगाववाद की प्रवृति को जन्म दे प्रोत्साहित किया, फिर जब सन् 1921 तथा सन् 1931 के आंदोलनो से अंग्रेज को भारतीय जनता के सगठन का आभास हुआ तो उसने चौ0 रहमतअली की उक्त योजना के रूप में अपना कुटिल जवाब दिया था, जब अन्त में अंग्रेज को यह पक्का विश्वास हो गया कि हमें भारत छोडना ही पडेगा, जो कि अंग्रेज की मजबूरी ही थी, क्योकि द्वितीय विश्वयुद्ध में उसकी शक्ति डावांडोल हो चुकी थी, साथ ही आर्थिक सकट इतना बढ चुका था कि इंग्लैण्ड का पालन करना कठिन हो गया था, साथ ही आज़ाद हिन्द सेना के कारण अंग्रेजी सेना में भी विद्रोह हो गया था, अंर्तराष्ट्रीय स्थिति ऐसी हो गई थी कि अंग्रेज चाहते हुए भी यहां रह नहीं सकता था, तब उस अंग्रेज ने भारत के टुकडे-टुकड़े कर इस देश को सदा के लिए निर्बल बनाने की योजना को जिन्ना की मांग के रूप में परिणत करा दिया, कांग्रेस में बैठे, राष्ट्रवाद का लबादा ओढे महात्मा जी के प्यारे चेलो ने भी अंग्रेजों की इस कूटनीतिक योजना को सफल बनाने में अपना सारा ज़ोर लगा दिया, कैबिनेट मिशन के समय कांग्रेस प्रधान मौ0 आजाद के क्रिप्स तथा भारत सचिव पैथिक लारेन्स को एक गुप्त पत्र लिखकर पाकिस्तान योजना को क्रियान्वित करने पर जोर दिया था, श्री सुधीर घोष से जानकारी प्राप्तकर गांधी जी ने जब इस पत्र क सम्बन्ध में मौलाना से पूछा तो मौलाना ने स्पष्ट झूठ बोल

दिया था, गांधी जी ने भी इस रहस्य को सदा ही गुप्त रखा, नेहरू जी ने मौलाना को झाडने की बजाय सुधीर घोष को झाड़ डाली, कि तुमने इस बात की सूचना महात्मा जी को क्यों दी? इस प्रकार पाकिस्तान की योजना शत-प्रतिशत नहीं तो अस्सी प्रतिशत तो अवश्य ही अंग्रेजो के मस्तिष्क की उपज है, इसमें किसी प्रकार की कोई अत्युक्ति नहीं है।

अग्रेजों ने मुस्लिम नेताओं को समझाया कि हमारे जाने के बाद तुम्हारे जन्मजात वैरी हिन्दू क्या तुम्हें चैन से बसने देंगे? क्या हिन्दुओ के सामने औरगजेब, नादिरशाह आदि द्वारा किये गये अत्याचारो के दृश्य नहीं होंगे? और वे शक्ति तथा शासन प्राप्तकर उन अत्याचारो का गिन-गिनकर बदला नहीं लेंगे? वैसे भी तो तुम अल्पमत मे ही होगे? अत. जैसे भी हो इनसे सर्वथा ही अलग होकर अपना पृथक् देश मांगने का प्रयत्न करो, जिसके परिणामस्वरूप उस लोभ और जनून में फंसकर पंजाब तथा बंगाल मे मुस्लिम लीग की ओर से साम्प्रदायिक दंगे-फसाद शुरू कर दिये गये मज़हबी जनून मे नहाये कट्टर सामप्रदायिक लोगों ने शस्त्र बल से देश का बंटवारा करने का संकल्प ले लिया था और उनका यह संकल्प कांग्रेस के तत्कालीन नेताओं की अदूरदर्शिता, कमजोरी, जल्दबाजी, शासन करने की भूख तथा कुर्सियों के लालच के कारण सफल होते देर न लगी, उस भयानक नरसंहार के भयावह काल में आर्यसमाजियों ने अपने नेताओं के नेतृत्व में देशभक्ति तथा इस देश को अपना वतन, पावन मातृभूमि मानने वाले जो वास्तव में इस देश के मूलनिवासी हैं की रक्षा के लिए प्रशंसनीय कार्य किया, हरियाणा क्षेत्र में स्वामी रामेश्वरानन्द जी तथा आचार्य भगवान्देव जी (स्वा0 ओमानन्द जी) के नेतृत्व मे आर्यसमाजियों ने हथियार उठाकर हिन्दुओं की रक्षा की, अन्यथा यहां तो लीगी गुंडे हिन्दूजाति का बीज नाश करने में कोई कसर बाकी न छोड़ते, आर्यसमाज के इन वीतराग साधुओं का पराक्रम उस समय हिन्दू जाति के लिए एक वरदान साबित हुआ, पाकिस्तान के हिन्दुओं को सकुशल भारत पहुंचाने में आर्य वीरदल और आर्य नेताओं को साहस तथा सहयोग इतिहास का एक गर्वीला तथा स्वर्णिम

अध्याय है। लाहौर के दयानन्द कालेज और गुरुदत्त भवन उस समय पीडित हिन्दुओं के प्राणदाता सिद्ध हुये, जहां प्रतिदिन आर्यसमाज की ओर से 15 हज़ार पीड़ित हिन्दुओं के खानपान निवास तथा उन्हें सकुशल भारत भेजने की समुचित व्यवस्था एवं प्रबन्ध होता था, रावलपिंडी क्षेत्र में आर्यसमाज के महान् तपस्वी संत स्वामी आत्मानन्द जी महाराज अपना जीवन संकट में डाल वहा के हिन्दुओं को भारत भिजवाने के कार्य में संलग्न थे, उनके भक्तों द्वारा उनसे भारत जाने का बार-बार न केवलमात्र मौखिक ही आग्रह किया गया बल्कि उनके लिए वायुयान में सीट रिजर्व करा दिये जाने पर भी इस वीर सेनानी ने मना करते हुए कहा कि जब तक इस क्षेत्र का एक-एक हिन्दू तथा सिख बच्चा-बच्चा तक भारत नहीं जा लेता जब तक आत्मानन्द यहां से हिलने तक का नाम नहीं लेगा, चाहे इस काम में मेरे प्राण क्यों न चले जायें, जिन्होंने पूज्य स्वामी आत्मानद जी के दर्शन किंये है, उनको आरम्भिक दृष्टि से देखने पर वे बहुत ही शात तथा दब्बू प्रकृति के जान पड़ते थे, परन्तु उनके हृदय में कितनी देशभक्ति की ज्वाला थी, उनके दिल में स्वराष्ट्राभिमान का कितना लावा बहता था, पाठक निम्न उदाहरण से जान सकते हैं।

''स्वामी आत्मानन्द सरस्वती स्वागतकारियों के साथ नियत समय पर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की व्याख्यान वेदी पर जा सुशोभित हुये, उन्होंने अपना व्याख्यान आरम्भ करने से पूर्व वेदमंत्रों से प्रभुस्तवन किया, पश्चात् नवयुवकों को सम्बोधित करते हुए कहा-ऐ मेरे प्रिय वीरो! यह भारतमाता आपकी ओर करुण नेत्रों से निहार रही है, उसे विश्वास है कि मुझे स्वतन्त्र कराने वाले कहीं बाहर से नहीं मेरे ही कुक्षि से उत्पन्न होंगे, वह यह जानती है कि इस देश के अन्न से पला हुआ बच्चा-बच्चा इस देश की स्वतन्त्रता में अपना रक्त बहायेगा, यह आप जानते ही हैं कि इस देश ने सदा वीरों पर भरोसा किया है, इतिहास इस बात का साक्षी है कि चढती युवावस्था के नवयुवक इस बलिवेदी पर हंसते-हंसते झूल गये, यह हम मानते हैं कि आदि सृष्टि से लेकर अब तक इस देश ने अनेक शत्रुओं के

झटके झेले, यही कारण है कि यह देश अपनी संस्कृति को अब तक अक्षुण्ण बनाये चला आ रहा है, मुझे विश्वास है कि अब वह संस्कृति आप वीरों के हाथों में सुरक्षित है, जब आपने राष्ट्र का व्रत लिया है, तो आपका कर्त्तव्य हो जाता है कि स्वयं अपने आचार की दृढशिला स्थापित करके आपकी ये भुजायें निर्बल की रक्षा हेतु अन्यायी सबल के भी विनाश में अपना कौशल दिखायें, युग बीत जाते हैं किन्तु देश की रक्षा पर मर-मिटने वाले वीरों की चमकती धारणाये निरन्तर चमक-चमककर आगे आने वाली नवसन्तति को अपनी वीरता का सन्देश सुनाती है, मेरे देश के युवकों! यदि देश में आप जैसे वीर उत्पन्न नहीं होगे तो निर्बलों को लोग खसोटकर खा जायेंगे, यह देश अब आपके कर्त्तव्य की प्रतीक्षा में है, आपको यह समझ लेना चाहिये कि आप देश की रक्षा के लिए एक सैनिक के रूप में संगठित हैं, आप में इतनी शक्ति हो कि रात-दिन-महीनों नहीं वर्षों तक शत्रु से जूझते रहें। उनमें कुछ आर्यसमाजी युवक भी थे अतः उनके लिए उन्होने कहा 'प्रत्येक धर्मावलम्बियों की अपनी-अपनी मर्यादायें होती हैं, आर्यसमाज का यह मन्तव्य है कि वह चेतन के समक्ष ही नतमस्तक होता है, अत· वे ध्वज अभिवादन के समय पंक्ति से बाहर हो जाया करें, एवं अन्य सभी कार्यों में चतुरता, वीरता तथा दक्षता का सुपरिचय दे, भगवान् को ही अपना इष्ट उपास्य मानें, ओइम् की पताका अपने सम्मुख समझें।''

एक बार वीर सावरकर उधर से गुजर रहे थे, स्वामी जी ने उनका स्वागत किया। देखो- ''वीर सावरकर का परिधान श्वेत था, तो भी स्वामी जी ने विचारा वीर सावरकर ने अपने राष्ट्र के लिए वह कर्त्तव्य निभाया है, जिसका स्मरण करते ही मानव नतमस्तक हो जाता है, वीर सावरकर कोहमरी से पधार रहे थे, स्वामी जी को जब इनकी सूचना मिली तो वे गुरुकुल आंगल विद्यालय के सबके सब विद्यार्थियों को लेकर मंडल रथ्या पर आ गये, रथ्या के दोनों और विद्यार्थियों को खडा कर दिया और स्वयं वीर सावरकर के वहीत्र को हाथ के संकेत से उनका स्वागत करने के लिए रोक लिया, वीर सावरकर

के जय-जय से आकाश गूंज उठा, महाराज ने वीरशिरोमणि सावरकर को पुष्पमाला पहनाकर अपनी श्रद्धा समर्पित की, तथा चरण स्पर्श किये और कुछ देर वार्तालाप के पश्चात् उनके समय का ध्यान रखते हुए मार्ग छोड़ दिया।

(आत्मानन्द जीवनज्योति-ले0 वेदानन्द वेदवागीश पृ0 255-262)

पाठक! इतने मात्र से ही समझने का प्रयत्न करें कि आर्यजगत् इस मूर्धन्य संन्यासी ऐसे पूज्य संत स्वामी आत्मानन्द जी के साथ मृत्यु की उस भयावह छत्रछाया में साथ देनेवाले श्री भाई ओमप्रकाश जी आर्य महोपदेशक (इस ग्रंथ के प्रथम संस्करण के प्रकाशक) भी थे, आप वहां पर आर्यसमाज सुरक्षा-केन्द्र के मुख्य प्रबन्धक थे, अपनी उठती जवानी की परवाह न करते हुए रात-दिन हिन्दू जाति की रक्षा में इस वीर ने अपने प्राणों तक की बाज़ी भी लगा दी थी, आपने वहां से एक लडके को उसकी माता के आग्रह पर परमिट देकर भारत भिजवाया था, परन्तु कुछ लोगों के पुलिस को गलत सूचना देने पर आपको लडके को कत्ल करने के आरोप मे पकडकर बुरी तरह से पीटा गया, और शायद वे जान से ही मार देते परन्तु राख की ढेरी में किसी प्रकार जलने से बचा एक परमिट मिल गया, जो उस पाकिस्तानी क्रूर पंजे से आपको बचाने में सहायक सिद्ध हुआ, आपके इस महान् त्याग, साहस तथा निर्भयता को देखकर एक कम्युनिस्ट नेता ने कहा था कि यदि आर्यसमाज इसी दिलेरी तथा मानवता का नाम है तो हम आज ही आर्यसमाजी बनने को तैयार है, एक विख्यात समाचार-पत्र ने आपके कार्य के विषय में लिखा था कि यदि प्राणों को हथेली पर रख, सिर पर कफन बांधकर मृत्यु का भी चैलेंज करते हुए हिन्दू-जाति की रक्षा करनेवाले वीर के दर्शन किसी को करने हों तो रावलपिंडी में जाकर आर्यवीर श्री ओमप्रकाश जी को देखो, मैं समझता हूं कि आर्यसमाजियों की देश तथा जातिसेवा के प्रति इससे बढकर और बडा प्रमाण-पत्र क्या होगा? हिन्दुओं के प्रति हमदर्दी का दम भरनेवाले ये तथाकथित राजनैतिक नेता जब उनके सर्वथा ही लीगी गुंडों की दया पर छोड़कर लालकिले पर

स्वाधीनता का जशन तथा रंगरलियां मनाने में अपनी सार्थकता समझ रहे थे, उस अवस्था मे हजारों आर्यवीर व आर्यनेता अपने जीवन की बाज़ी लगा कर हिन्दुओं के खून से अपनी प्यास को बुझाने के उतावले लीगी गुंडों के क्रूर तथा खूनी पंजों से हिन्दुओं को बचाकर सकुशल भारत भिजवाने में अपने को धन्य-धन्य मान रहे थे, इधर भारत में दिल्ली से लेकर अमृतसर तक के सारे ही आर्यसमाज-मंदिर उन पीड़ित शरणार्थियों के लिये सराय का काम कर रहे थे, इन मंदिरों में उस समय उन शरणार्थियों के खान-पान निवास, वस्त्र तथा उपचारादि का सारा प्रबन्ध किया था।

पाठ्क इससे ही अनुमान कर सकते हैं कि रविवारीय साप्ताहिक सत्संग करने के लिए भी उन पीडित पुरुषार्थी भाइयों का सामान एक ओर हटाकर ही सत्संग का कार्यक्रम कर पाते थे, दिल्ली के प्रसिद्ध आर्यसमाज मंदिर दीवानहाल में जब स्थान नहीं रहा तब समाज के अधिकारियों ने अपने व्यय से उनके लिए सामने मैदान में तम्बुओं का प्रबन्ध किया था, निस्सन्देह यह साम्प्रदायिक नरसंहार मानव-जाति के इतिहास में एक अभूतपूर्व तथा निकृष्टतम घटना थी, जिसकी जघन्यता की मिसाल दूसरी शायद मिलनी कठिन हो, हमारे देश के तथाकथित केवलमात्र नामधारी नेताओ की इस भूल का परिणाम उन 80-90 लाख लोगों को भुगतना पड़ा, जो अपने खून-पसीने की गाढ़ी कमाई, अपना प्यारा वतन, जहां पर पीढ़ी परपीढ़ियों के निवास के कारण उनका अपनत्व का नाता जुड़ा हुआ था, अपना घर-बार सब कुछ छोड़कर जिन्हें अपना सर्वस्व लुटाकर बरबस परदेशी बनना पड़ा, जिन्होने मानवता की लाशों तथा इन्सानियत के कब्रिस्तानों पर अपनी सत्ता के सिंहासन जमाकर बड़ी खुशी के साथ अट्हास करना एवं आनन्द से किलकारियां मारना अपना परमधर्म समझा था, उनसे इस लज्जाजनक, दुःखद एवं बीभत्स नरसंहारकारी कांड पर कुछ शोकोद्‌गार प्रकट किए जाने तो दुराशामात्र था ही, लेकिन जिन्हें हम मानवता की मूर्ति, इंसानियत के अवतार, दया के देवता तथा मानवता के पथ-प्रदर्शक समझे बैठे थे, उन्होंने

भी तो अपने स्वार्थ तथा भूल से उत्पन्न इस राक्षसी कांड को जो कि मानवता के माथे पर बदनुमा दाग था, को "अनुमान की गलती" मात्र ही कहकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ ली थी, आजादी आयी, लेकिन लाखो निर्दोष निरीह प्रजा का खून बहाकर, लाखों मासूम बच्चों को गुंडों के निर्दयी भालों तथा क्रूरों का शिकार बनाकर और साथ-ही लाखों सती साध्वी देवियों के सतित्व, लाज एवं अस्मतधन को मटियामेट करके, साथ ही सबसे अधिक अखण्ड भारत का सपना लेकर अपना सब कुछ देश की स्वाधीनता के लिए समर्पण करनेवाले उन शहीदों के सपनों को पैरों तले रौंदकर, भारत देश के टुकड़े कर भारतमाता का अंगभंग करके, 15 अगस्त सन् 1947 को जब मजनूनुमा ये हमारे नेता लालकिले पर तिरंगा फहराकर स्वाधीनता-प्राप्ति की खुशियों में आकण्ठ मग्न थे, तब कई लाख लोग लुट-पिटकर अपने प्यारे वतन को सदा के लिए अलविदा कहकर, इस जन्म में पुनः कभी भी अपने प्यारे वतन को न देख सकने की टीस लिए हुए खाली हाथ सिर छिपाने तथा आश्रय ढूंढने को भारत की ओर आ रहे थे, और इन नेताओं की बुद्धि पर खून के आंसू बहा रहे थे, उस समय उनमें आर्यसमाजी भी अपनी अरबों रुपये की भौतिक तथा सांस्कृतिक सम्पत्ति को छोड़कर भारत में आकर यदि किसी एक कारण से प्रसन्न थे तो वह यही था कि उनके आचार्य महर्षि दयानन्द ने अच्छे से अच्छे विदेशी राज्य की अपेक्षा अपना राज्य अपने लिए हितकारक और उत्तम बताया था, यद्यपि महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा आर्यसमाज के विचारानुसार जो राज्य हमें मिला है, वह कटा-फटा है, तथा यह लंगड़ी आज़ादी है, परन्तु चूंकि हम दासता की ज़लालतभरी जिन्दगी एवं लानत से निकल चुके थे, अतः प्रत्येक आर्यसमाजी टूटी-फूटी ही सही पर स्वाधीनता-प्राप्ति के कारण लुट-पिटकर भी प्रसन्न ही था, क्योंकि अब के बाद वह स्वतन्त्रता के वातावरण तथा वायुमंडल में रहने का सौभाग्य तो प्राप्त कर सकेगा।

पंचम अध्याय

'भारत में अंग्रेजी राज्य ने यदि लार्ड क्लाइव और लार्ड मैकाले को जन्म दिया, तो उनके मुकाबले मे आर्यसमाज ने ऋषि दयानन्द सरस्वती और स्वामी श्रद्धानन्द को जन्म दिया, लार्ड मैकाले ने अंग्रेजी शिक्षा द्वारा जो मायाजाल इस देश में फैलाया था, उनको छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली चालू करके दिया।''

उक्त उदाहरण हमने हिन्दी जगत् के प्रख्यात लेखक तथा प्रसिद्ध देशभक्त स्व0 पं0 सत्यदेव जी विद्यालंकार की राष्ट्रवादी दयानन्द नामक पुस्तक से लिया है, इसमें 'किसी प्रकार का कोई सन्देह नहीं कि कूटनीति की खोपड़ी के धनी अंग्रेज ने भारत में अपने राज्य की जड़ें पाताल तक पहुंचा अनेक भयानक विपत्ति रूपी तूफान आने पर भी दीर्घकाल तक न हिलनेवाली तथा चिरस्थायी करने के उद्देश्य से ही इस वर्तमान शिक्षा पद्धति के रुप में एक महान् षड्यंत्र का आयोजन किया था, किसी भी राष्ट्र को चिरकाल तक अपने वश में रखने का सरल, निर्विध्न तथा सुरक्षित उपाय है कि उसके परम्परागत, प्राचीन संस्कृति, साहित्य और इतिहास को तोड़-मरोड़कर कपोलकल्पित, मनघडंत तथ्यों के सर्वथा ही विपरीत साहित्य एवं इतिहास पर उसका विश्वास जमा देना है, इससे किसी भी राष्ट्र के नागरिक अनायास ही अपनी संस्कृति, सभ्यता तथा इतिहास से नाता तोड़, अपनी ऐतिहासिक परम्परायें विस्मृत कर अपनी सभ्यता, संस्कृति, परम्पराओं तथा मान्यताओं के विनाशक शत्रुओं के अंधे अनुयायी हो जाते हैं, अग्रेजों ने भी भारत में अपने राज्य संचालन के उद्देश्य से भारतीयों को अपनी सभ्यता, संस्कृति, इतिहासादि का नशीला जाम पिलाकर और इन भारतीयों को काले अंग्रेज के रूप में परिवर्तित कर उनके ही साधारण जनता के मन में अपने भावों

के प्रतिनिधित्व के प्रति समादर भाव उत्पन्न कराने के कपटपूर्ण अभिप्राय से पाश्चात्य शिक्षा पद्धति को पूरे जोर के साथ प्रोत्साहन दिया, पाठक लार्ड मैकाले के निम्न शब्दों में ही उनके कार्य के मौलिक उद्देश्य पर ध्यान देने की कृपा करें।

We must do our best to form a class who may be interpreters between us and the millions whom we govern, a class of persons Indian in blood and colour but English in tastes, in opinion in morals and in intellect.

अर्थात् हमें इस देश में एक ऐसी जमात पैदा करने में अपने सब यत्न लगा देने चाहियें जो हमारे और उन करोडों के बीच मध्यस्थता का काम कर सकें जिन पर हमें शासन करना है, यह जमात भले ही हाड़-मांस और रुधिर में हिन्दुस्तानी रहे, पर आचार-विचार, रहन-सहन और दिल-दिमाग से अंग्रेज बन जायें।

लार्ड मैकाले ने सन् 1836 ई० में अपने चाचा को एक पत्र लिखते समय अपनी इस योजना की सफलत को बड़े ही अभिमान के साथ वर्णन करते हुये लिखा था, उसने अपनी योजना की भावी सफलता का निम्न शब्दों में वर्णन किया था।

Hindu who has received in English education, never remains sincerely attached to his religion, some continue to profess in as a matter policy. But many profess themselves pure diests and some embrace christianity, it is my firmbelief, that if our plans of education are following up, there will not be a single idolator among the respectable class in Bengal thirty years hance.

अभिप्राय यह है कि जो भी हिन्दू अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण कर लेता है, वह अपने धर्म में सच्ची श्रद्धा और विश्वास खो बैठ्ता है, कुछ केवल दिखावे के लिये उसे मानते हैं, अधिकतर सिर्फ एकेश्वरवादी बन जाते हैं, और कुछ ईसाई हो जाते हैं, यह मेरा पक्का और निश्चित विश्वास है कि यदि शिक्षा की हमारी योजना पूरी तरह काम में लायी गई तो अब से तीस वर्ष के पश्चात् बंगाल के अच्छे घरानों में एक भी मूर्तिपूजक अथवा हिन्दू न रहेगा।

इसके साथ ही भारत के सांस्कृतिक, साहित्यिक क्षेत्र में इसी प्रकार की बल्कि इससे भी अधिक भयानक जो कि इसी की पूरिका थी ऐसी योजना को लेकर अनेक पाश्चात्य विद्वान् जिनका अगुवा मैक्समूलर बना हुआ था, उन्होंने भारत देश के साहित्यिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र पर धावा बोल दिया था, पाठकवर्ग! ये थीं वे योजनायें जिनके द्वारा अंग्रेज यहां के युवकों के मस्तिष्क को बदलकर उन्हें वैदिक संस्कृति, सभ्यता, भारतीय इतिहास, परम्पराओं, रीति-रिवाजों एवं मान्यताओं का घोर शत्रु ईसाई बनाने के सुनहरे सपने सजोये हुये था, इसलिये अंग्रेजो ने अपने समय में यहां के विद्यालयों में यहां के कोमल मस्तिष्क वाले बालकों को भारत के प्राचीन गौरवशाली इतिहास को तोड़-मरोड़कर विकृतरूप में पढ़ाना आरम्भ कर दिया था, सर्वश्रेष्ठ ज्ञान वेदों को गडरियों के गीत, बच्चों की बिलबिलाहट बताकर उनके ऊल-जलूल भाष्य करा, उनके प्रति भारतीयों में अनास्था उत्पन्न करने का सुनियोजित सुगुप्त कूटनीतिक षड्यंत्र आरम्भ किया, सारांश यह है कि ऐसे साहित्य का निर्माण कराकर अध्ययन कराया गया जिसमें आर्यो की, आर्यावर्त की सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, मान्यतायें, परम्परायें, रीति-रिवाज तथा पूर्वजों के उत्तम चरित्र को विकृतरूप में उपस्थित कर उसकी अपेक्षा अपनी सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, रीति, रिवाजों आदि को श्रेष्ठतम बताकर भारत के युवकों को अपने राज्य, मज़हब तथा मान्यताओं के प्रति अत्यधिक आस्थावान् बनाने का षड्यंत्र चलाया गया था, उस वातावरण में पले हुऐ तथा शिक्षा के विचारों से प्रभावित युवक ही अधिकतर अंग्रेजी राज को इस देश के लिये वरदान समझने लग गये थे, उस युग में सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ही विदेशी साम्राज्य के इस कूटनीतिक, आत्मघाती कपटजाल को समझा था, साथ ही उसकी उस राष्ट्रघातक गहरी चाल को निष्फल कर देने के उद्देश्य से अपने साहित्य के द्वारा भारत के प्राचीन गौरव, विश्वविख्यात गौरव, विश्वविख्यात वैभव, सार्वभौम चक्रवर्ती साम्राज्य एवं समस्त भूमंडल पर एकमात्र अखुट आधिपत्य का वर्णन कर

भारतीयों के हृदय से हीनता के भावों को भगाने का साहसपूर्ण ऐतिहासिक एवं प्रशंसनीय कार्य किया था, आर्यसमाज के अजेय सेनानी स्वामी श्रद्धानन्द ने तो अपने आचार्य के उसी सपने को साकार करने के अभिप्राय से हरिद्वार के पास भागीरथी के पावन तट पर गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी की स्थापना की थी।

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी

पंजाब पुलिस की रिपोर्टो में यह दर्ज है कि सन् 1899 ई0 में जब लाला मुंशीराम अमृतसर के पं0 रामभजदत्त के साथ गुजरात, सियालकोट और गुजरांवाला का दौरा करते हुए (गुरुकुल की स्थापना के लिए) धनसंग्रह कर रहे थे, जब तक इन्होंने सरकार की निन्दा शरारतभरे शब्दों में अन्य बातों के साथ यह कहते हुए की थी कि सिपाही कितने मूर्ख हैं जो सत्रह-सत्रह, अठारह-अठारह रुपये पर भर्ती होकर अपना सिर कटवाते हैं, गुरुकुल में शिक्षित होने के बाद ऐसे आदमी सरकार को नहीं मिलेंगे।

(राष्ट्रवादी दयानंद, पृ0 95-96)

यह थी राष्ट्रीयता की वह मूलभावना जो कि गुरुकुल जैसी राष्ट्रवादी शिक्षा संस्था की स्थापना के मूल में कार्य कर रही थी, इसीलिए गुरुकुल कांगडी उस समय सर्वप्रथम राष्ट्रीय शिक्षा संस्था की प्रतीक अथवा प्रतिनिधि के रूप में सबके सामने प्रकट होकर आयी, इसके बाद तो शिक्षा के क्षेत्र में अनेक संस्थाओं का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने पराधीन भारत में कभी भी इस लीक को नहीं छोड़ा, गुरुकुल कांगड़ी ही शायद पहला शिक्षणालय था जो अंग्रेजी सरकार द्वारा संचालित शिक्षा पद्धति और नियन्त्रण से सर्वथा पृथक् रहकर मातृभाषा द्वारा बालकों को राष्ट्रीय शिक्षा देता था।

(भा0 स्वा0 सं0 का इतिहास, पृ0 133)

अंग्रेजों के द्वारा अपनी विदेशी शिक्षा पद्धति चालू करके भारतीय युवकों के मस्तिष्क पर डाले जा रहे गहरी गुलामी के संस्कारों के मायाजाल को विशुद्ध, स्वदेशी राष्ट्रीय शिक्षा देकर छिन्न-भिन्न कर

स्वातंत्र्य, स्वभाषा, स्वराष्ट्र तथा स्वदेशी का पाठ पढाने का सूत्रपात भी सर्वप्रथम आर्यसमाज की ही ओर से किया गया था, उस प्रारम्भकाल में इस शिक्षा संस्था की निम्न विशेषताएं थीं–

1. वहां के अध्यापकों में एक भी अंग्रेज अध्यापक नहीं था।
2. वहां किसी भी सरकारी विश्वविद्यालय की परीक्षायें न दिलाकर अपनी ही परीक्षायें दिलाई जाया करती थीं।
3. किसी भी सरकारी विश्वविद्यालय के निर्धारित पाठ्यक्रम की पुस्तकें भी गुरुकुल ने अपने पाठ्यक्रम में नहीं रखी हुई थी, वहां अपनी पाठ्य पुस्तकें अपने ही गठित शिक्षा बोर्ड द्वारा तैयारकर अपने ही प्रेस में प्रकाशित की जाती थी।
4. वहां पर इतिहास, भूगोल, विज्ञान, अर्थशास्त्र आदि सभी आधुनिक विषय आर्यभाषा (हिन्दी में) के माध्यम से ही पढ़ाये जाते थे।
5. वहां सरकार अथवा सरकारी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से अनुदान के नाम पर एक पाई भी आर्थिक सहायता के रूप मे नहीं ली जाती थी।
6. वहा वार्षिकोत्सवों के अवसर पर अध्यक्षता, उपाधि तथा पारितोषिक वितरणादि के निमित्त अथवा दीक्षान्त भाषण के लिए किसी भी सरकारी अधिकारी को आमन्त्रित नहीं किया जाता था।
7. अपने उत्सव के प्रबन्ध के लिए सरकारी पुलिस या सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त अथवा सरकारी छत्रछाया में पलनेवाले स्वयंसेवी संगठन के स्वयंसेवकों को न बुलाकर अपने छात्रवर्ग से ही उक्त प्रबन्ध का सारा कार्य कराया जाता था, जोकि उस समय की पुलिस के प्रबन्धों से भी सब प्रकार से उत्तम होता था।
8. वहां के सभी अधिकारी, कर्मचारी, ब्रह्मचारी विशुद्ध स्वदेशी खादी के वस्त्रों का ही प्रयोग किया करते थे।
9. गुरुकुल संसार की नज़रों से दूर एकांत बीहड़ जंगल में था।

10. गुरुकुल के छात्रों को तैरना, घुडसवारी, लाठी, भाला, तलवारादि शस्त्रों का चलाना तथा निशानेबाज़ी के साथ युद्धविद्या का भी अभ्यास कराया जाता था।
11 सन् 1922 से पहले वहां के उत्सवों पर लगनेवाली दुकानों में दुकानदारों के लिये विदेशी 'चीनी' लाना अधिकारियों की ओर से सख्त मना था, यदि कोई इस आदेश का उल्लंघन करता था तो उसे तुरन्त ही वहां से भगा दिया जाता था, क्योंकि उस समय यह 'चीनी' विदेशिता का प्रतीक समझी जाती थी।

इन सभी कारणों से यह संस्था एक लम्बे समय तक अंग्रेजी सरकार की आंखों में तीखे काटे की भांति खटकती रही, इस संस्था में विभिन्न वेश धारण कर सरकारी गुप्तचरो के चक्कर प्रतिदिन लगा करते थे, उनके लिये यह संस्था सिरदर्द बनी हुई थी, सरकारी डायरियों में गुरुकुल का नाम 'ब्लेकलिस्ट' में था, एक गुप्तचर ने तो अपनी डायरी में लिखा था गुरुकुल के उत्सव पर लगभग एक लाख दर्शनार्थियों का विशाल जनसमुदाय जुटता है, धन की अपील होने पर स्त्रियां अपने आभूषण तक उतार कर दे देती हैं, आगे उसने यह लिखा था कि गुरुकुल में पढ़े-लिखे सन्यासियों (स्नातकों) का राजनीति से क्या सम्बन्ध होगा ? यह एक विचारणीय विषय है-उसी प्रसंग में आचार्य रामदेवजी द्वारा लिखित एक रिपोर्ट की भूमिका का वर्णन करते हुये लिखा था यहां दी जानेवली शिक्षा सर्वाश में राष्ट्रीय गुरुकुल में इतिहास इस ढंग से पढाया जाता है कि उससे ब्रह्मारियों मे देशभक्ति की भावना उद्दीप्त होती है, उनमें उपदेश और आचरण दोनों से देश के लिये उत्कट प्रेम पैदा किया जाता है।

(राष्ट्रवादी दयानन्द, पृ0 96)

हिन्दी साहित्य के प्रख्यात लेखक स्व0 क्रांतिकारी श्री यशपाल जी जो अपने बचपन में इस संस्था के छात्र रहे हैं, गुरुकुल के राष्ट्रीय स्वरुप का वर्णन वे आपबीती एक घटना के रुप में एक संस्मरण सिंहावलोकन नामक प्रकाशित संस्मरणों के प्रथम भाग के पृ0 43-44 पर निम्न प्रकार से करते हैं।

प्रथम विश्वयुद्ध के समय एक सायंकाल को भोजन के बाद हम भ्रमण कर रहे थे, विश्वयुद्ध की चर्चा छिड जाने पर मैंने एक साथी के सामने अंग्रेजों की पराजय तथा जर्मनो के विजय की कामना प्रकट की, इतने मे पीछे से आचार्य रामदेव जी ने मेरे कधो पर हाथ रखकर फिर मुझे अपना विचार व्यक्त करने को कहा, मेरे कह चुकने पर बोले कि जर्मन लोग तो इनसे भी कठोर हैं, अतः वे तो इनसे भी अधिक दमन करेगे, उनके अत्याचार करने पर क्रांति होगी, मेरे ऐसा उत्तर देने पर आचार्य जी बोले कि औरंगज़ेब तथा नादिरशाह के प्रबल अत्याचारों से तो क्रांति हुई नहीं अतः दमन से क्रांति का उत्पन्न होना आवश्यक तथा अनिवार्य नहीं है, अतः तुम अभी और अध्ययन करो, इतना कुछ वर्णन करने के पश्चात् लेखक आगे लिखता है कि आचार्य जी ने समझाया, परन्तु अंग्रेज विरोधी भावना के लिये मुझे धमकाया नहीं, उस काल मे इस प्रकार की बातचीत यदि लाहौर के किसी स्कूल, अथवा सरकारी युनिवर्सिटी से सम्बन्धित किसी संस्था का कोई विद्यार्थी करता तो परिणाम काफी सख्त हो सकता था, उक्त घटना देने से पूर्व लिखे गये लेखक के निम्न शब्द भी पठनीय तथा ध्यान देने योग्य हैं, इस कम उम्र में हम विदेशी शासन के विरुद्ध किस प्रकार की राजनैतिक बातें किया करते थे इसका भी एक उदाहरण दे सकता हूं।

आगे तो आपने स्वयं ही इस तथ्य को स्वीकार किया है कि वहां इतिहास राष्ट्रीय दृष्टिकोण से जिससे छात्रों में देशभक्ति का भाव समुत्पन्न हो, पढाया जाता था, जिससे कि वहां हमें विदेशी अंग्रेजी राज्य की विरोधी भावना प्रबलरूप में मिला करती थी, इतिहास की दृष्टि से वहां कलकत्ता के 'ब्लेक होल' की घटना पर विश्वास नहीं किया जाता था, वहां के प्राध्यापकों का दृढ़ मत था कि भारत के शासक अंग्रेजों ने इंग्लैण्ड से गोरी फौज बुलाकर यहां स्थिर रखने के अभिप्राय से ही यह घटना घड़ी थी इसी प्रकार बंगाल के सेठ उत्तमचन्द के साथ धोखे, नन्दकुमार को फांसी, चेतराम के साथ अन्याय और वारेनहेस्टिंग्ज के अत्याचारों को सही-सही बताने का

साहस गुरुकुल में किया जाता था, अन्त में यशपाल जी ने इस तथ्य को मुक्तकंठ से स्वीकार किया है कि देशप्रेम की जो भावना प्राप्त हुई है, उसका लगभग सम्पूर्ण श्रेय गुरुकुल को ही जाता है, एक गुप्तचर ने अपनी डायरी में लिखा था कि गुरुकुल की दीवारो पर ऐसे चित्र लगे हैं जिनमें अंग्रेजी राज्य से पहले के भारत की अवस्था और अंग्रेजों के कलकत्ता में आने के दिनो की अवस्था दिखाई गई है, सन् 1857 के विद्रोह के दिनों की घटनाओं के चित्र भी लगाये गये हैं, बिजनौर के जिला मजिस्ट्रेट मि0 एफ0 फोर्ड ने जान आफ आर्क का वह बडा चित्र भी गुरुकुल में लगा हुआ देखा था, जिसमें वह अंग्रेजो के विरुद्ध सेना का संचालन कर रही है।

(राष्ट्रवादी दयानन्द, पृ0 97)

"गुरुकुल के ब्रह्मचारियों का बंगाल के क्रांतिकारियों की तरह नगे सिर तथा पांव घूमना अंग्रेजों के लिये संदेह और देशभक्तों के लिये आकर्षण का कारण था, गुरुकुल के इसी राष्ट्रप्रेम के परिणाम तथा वातावरण के कारण उस समय के बडे-बडे प्रसिद्ध देशभक्त व्यक्ति वहा आकर कई-कई सप्ताह तक गुरुकुल में निवास किया करते थे, प्रमाण के लिए निम्न संदर्भ देखने का कष्ट करें।"

"बहुत से ऐसे ही राष्ट्रभक्त जो सर्वतोमुखी क्रांति के समर्थक थे, गुरुकुल में आकर विश्राम किया करते थे, क्योंकि वहां अपने-आप को सरकार की दृष्टि से ओझल समझते थे, प्रसिद्ध देशभक्त लाला हरदयाल कई सप्ताह तक गुरुकुल में रहे, ईसाईयत और सरकारी शिक्षा के विरुद्ध उन्होंने जो अग्निरूपी बाण छोडे थे, उनमें से बहुत से गुरुकुल में ही तैयार किये गये थे।"

(आ0 स0 का इतिहास-भाग 2, पृ0 27)

दक्षिण अफ्रीका से अपने भारत आने से पूर्व जब गांधी जी ने अपने सत्याग्रह आश्रम के बालकों को भारत भेजा था, तब उन्हें यह आदेश दे दिया गया था कि वे भारत में सत्याग्रह आश्रम की स्थापना तक गुरुकुल कांगड़ी में ही रहें, सत्याग्रह आश्रम के बालक जिनमे गांधी जी के पुत्र देवदास गांधी भी थे, कई महीनों तक गुरुकुल कांगडी

मे रहे, गुरुकुल की इसी प्रकार प्रखर देशभक्ति तथा राष्ट्रनिष्ठा के कारण अंग्रेजी सरकार इससे इतनी आतंकित एवं भयभीत हुई थी, यहां तक कि एक बार तो उसने गुरुकुल की जब्ती के वारंट भी जारी कर दिये थे, इस घटना को एक प्रत्यक्षदर्शी तथा भुक्तभोगी के ही शब्दों मे पढने की कृपा करें –

"एक बार की बात है कि शायद सितम्बर का महीना था, पिताजी (स्वा0 श्रद्धानंद जी) स्वास्थ्य सुधार के लिये क्वेटा गये हुये थे, गुरुकुल कांगड़ी से तीन मील की दूरी पर चण्डी पहाड के नीचे बिजनौर के कलेक्टर जिनका नाम शायद फोर्ड था, डेरा डाले पड़े थे, गुरुकुल में पिताजी की अनुपस्थिति के कारण स्व0 आचार्य रामदेव जी अथवा स्व0 प्रो0 बालकृष्ण जी में से कोई महानुभाव मुख्याधिष्ठाता का कार्य कर रहे थे, गुरुकुल में खबर पहुंची कि सरकार को गुरुकुल में हथियारों के गुप्त स्टोर होने का संदेशा है इस कारण गुरुकुल की तलाशी लेने के लिए और यदि आवश्यकता हो तो अन्य कठोर कार्रवाई करने के लिये स्वयं क्लेक्टर साहब तशरीफ लाये हैं, सम्भव है दो–चार दिन में तलाशी हो जाये, शस्त्रास्त्रो का कोई गुप्त स्टोर न होते हुये भी समाचार बहुत सनसनीपूर्ण था, जिससे प्रभावित होकर गुरुकुल कार्यालय से पिताजी को इस आशय का तार दिया गया कि स्थिति गंभीर है जल्दी आइये, क्वेटा से वापिस आने पर पिताजी गुरुकुल की सवारी बैल–तांगे में बैठकर कलेक्टर के कैम्प में जा पहुचे और मिलने के लिये अपना विज़िटिंग कार्ड भेज दिया, कलेक्टर जो शायद उसी समय तलाशी के वारंट पर हस्ताक्षर कर चुका था दुविधा में पड गया, पुलिस ने तो यह रिपोर्ट दी थी कि महात्मा मुंशीराम गुरुकुल से चले गये हैं और उनके स्थान पर अनुभवहीन क्रांतिकारी नौजवान गुरुकुल का संचालन कर रहे हैं, यदि गुरुकुल की तलाशी लेनी हो तो यही अच्छा मौका है तथा भविष्य के लिए इस खतरनाक संस्था से छुटकारा पाने का भी यहां अवसर है, इस रिपोर्ट के आधार पर ही सारी तैयारी की गई थी, ऐसे समय अकस्मात् पिताजी के नाम का विजिटिंग कार्ड प्राप्त करके कलेक्टर थोड़ी देर के लिये चक्कर

में आ गया, कि क्या करें? पुलिस को लेकर गुरुकुल की ओर कूच करें या इसके गवर्नर से बातचीत करने मे समय व्यतीत करें। मि0 फोर्ड ने पिताजी को मिलने के लिये अपने खेमे में बुला लिया।

(मेरे पिता–ले0 इन्द्र विद्यावाचस्पति, पृ0 134–136)

स्वामी जी की इस भेंट से विदेशी ब्रिटिश सरकार के सारे ही संशय दूर हो गये, इस संस्था के छात्र कितने स्वाभिमानी तथा राष्ट्रभक्त होते थे यह भी एक भुक्तभोगी स्नातक के शब्दों में निम्न घटना से पाठक अनुमान कर सकते हैं "उस वर्ष हम लोग सरस्वती यात्रा के लिये धर्मशाला के पहाड पर गये थे, ब्रह्मचारियों के साथ प्रधान (पिताजी) के अतिरिक्त कई प्रसिद्ध आर्यसमाजी भी थे, एक दिन प्रात.काल के समय कुछ विद्यार्थी छावनी की ओर सडक पर घूमने जा निकले, हम लोगों के साथ अधिष्ठाता के रूप में डा0 सुखदेव जी थे, ब्रह्मचारियों के सिर नंगे थे, और हाथों में डंडे थे, हम लोग बाते करते हुये जा रहे थे कि सामने से दो गोरे घुडसवार आते दिखाई दिये, जब वे पास आये तो हम सड़क से एक किनारे होकर चलने लगे, और समझा कि हमने बीच का रास्ता छोडकर शिष्टाचार का परिचय दे दिया है, परन्तु गौरांग जाति के उन प्रतिनिधियों ने वैसा नहीं समझा, मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, मैंने देखा कि एक गोरे ने अपना घोडा मध्य रास्ते को छोड़कर मेरी ओर बढा दिया है, मैं यह अद्‌भुत बात देखकर खड़ा हो गया, गोरे का घोड़ा मेरे इतने पास आ गया कि घोड़े की थुथनी की सांस मुझे छू रही थी, विस्मित होकर गोरे के मुंह की ओर देखने लगा, वह शायद आशा रखता था कि मैं उसकी और उसके घोडे की शकल देखकर या तो भाग खडा हूंगा या ज़मीन पर नाक रगडने लगूंगा, परन्तु मैंने वैसा कुछ भी नहीं किया, और जहां का तहां खड़ा रहा, इस पर अत्यन्त क्रोधभरे स्वर में उसने कहा सलाम करो सलाम, मैने वहीं खड़े–खडे उत्तर दिया क्यों सलाम करें? इस उत्तर से और भी भडककर गोरे ने अपने घोड़े को और भी आगे बढ़ाते हुये अंग्रेजी में कहा, तुम्हें चाहिए कि हर एक अंग्रेज को सलाम करो, घोड़े का मुह बिल्कुल मेरी छाती से लग

रहा था, पर मैं वहीं अचल खडा था, और मैंने शान्तभाव से उत्तर दिया, ऐसा कोई कानून नहीं है, जो हमसे ज़बरदस्ती सलाम करा सके, गोरे ने फिर कहा तुम सलाम नहीं करेगा ? मैंने उत्तर दिया नहीं, लगभग एक मिनट तक मैं, गोरा और उसका घोड़ा उसी स्थिति में खड़े रहे, मैं और मेरे सब साथी इस प्रतीक्षा में थे कि अब क्या होता है, अंत में गोरा केवल 'बूली' साबित हुआ, और घोड़े की बाघ खींचकर यह कहते हुए वहां से चल दिया "टुम सलान नहीं करटा, अच्छा देखा जायेगा।"

(मेरे पिता पृ0 131-133)

पाठकवृन्द! अपने इसी देशप्रेम के कारण गुरुकुल समय-समय पर होनेवाले राष्ट्रीय आन्दोलनों में भी कभी भी किसी से पीछे न रहा, इतना ही नहीं बल्कि नेताओं के आंदोलन का आह्वान करने पर बलिदान के लिये देशभक्तों की पंक्ति मे हम सर्वत्र तथा सर्वदा ही गुरुकुल को आगे खड़ा पाते हैं, 1919 के पंजाब में लगे 'मार्शल लॉ' से घायल पंजाब को सान्त्वना देने के लिए स्वामी श्रद्धानन्द जी ने लाहौर में म0 कृष्ण के दैनिक प्रताप के कार्यालय के निकट चौबारे पर 'पंजाब सेवा समिति' की स्थापना की थी तो इसकी अध्यक्षता में गुरुकुल के छात्रों ने शानदार सेवा का कार्य किया था, इतना ही नहीं अब कार्यकर्ताओं की आवश्यकता थी, गुरुकुल कांगडी में महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों को सेवा के लिये भेजने का तार स्वामीजी ने वहां दिया, मैं उस समय 13 वीं कक्षा में पढता था, 13 वीं ओर 14 वीं कक्षा जो गुरुकुल की पढाई का अन्तिम वर्ष होता था, दोनों के कुछ ब्रह्मचारी लाहौर पहुंचे, जिस समय तीन ब्रह्मचारी नंगे सिर तथा नंगे पांव खद्दर की धोती कमीज़ पहने लाहौर स्टेशन पर पहुंचे तो हमें देखते ही पुलिस घबरा गई, उसने तत्काल निश्चय कर लिया कि यह बंगाल से गुप्त षड्यंत्रकारी पंजाब में आये हैं, उस समय पंजाब का वातावरण बडा भयानक था, जनता सहमी हुई थी, हम ब्रह्मचारियो द्वारा बार-बार स्पष्टीकरण देने के बावजूद पुलिस हमें थाने ले गई, कई घंटों तक हमें वहां रोका रखा गया, हम लोगों की तलाशी

ली गई, कई प्रकार के उल्टे सीधे प्रश्न किये गये, लाहौर के कुछ प्रमुख आर्यसमाजियों द्वारा इस मामले में हस्तक्षेप करने पर बड़ी कठिनता से शाम तक हम तीनों साथी रिहा हो पाये, इनमें से एक को स्वामी जी ने लाहौर में रखा, और मुझे तथा दूसरे साथी दोनों को अमृतसर सेवा के लिये भेज दिया, मई के प्रथम सप्ताह में हम दोनों वहां पहुंचे थे।

(आर्योदय साप्ताहिक दिल्ली 14-4-68 में श्री दीनानाथ सिद्धांतालंकार का लेख)

सन् 1930 ई0 महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारत की स्वाधीनता के लिये सत्याग्रह संग्राम प्रारम्भ हुआ, वह संग्राम नवयुवको का त्याग और तपस्या के लिये आह्वान कर रहा था, गुरुकुल के विद्यार्थी ऐसे समय में शान्त न रह सके, उन दिनों ब्र0 सर्वमित्र 14 वीं श्रेणी में पढ़ रहे थे, वह एक अत्यन्त होनहार विद्यार्थी थे, इनके नेतृत्व में गुरुकुल के विद्यार्थियों ने देश के प्रति अपने कर्त्तव्य पालन का निश्चय किया, गुरुकुल के अधिकारी इसके लिये अनुमति नहीं दे सकते थे, क्योंकि गुरुकुल का एक संस्था के रूप मे सत्याग्रह संग्राम में भाग लेना सम्भव नहीं था, अतः अधिकारियों से अनुमति प्राप्त न होने पर भी विद्यार्थियों ने स्वराज्य संग्राम में भाग लिया, और विवश होकर कुछ महीनों के लिये गुरुकुल के महाविद्यालय विभाग में अवकाश करना पड़ा, बहुत से विद्यार्थी कैद हो गये, और ब्र0 सर्वमित्र और उसके साथी ब्र0 सत्यभूषण देहातों में काम करते हुये बीमार पडे और स्वर्ग सिधारे, घोर विपत्तियों और प्रचंड महामारी की परवाह न कर जिस ढंग से इन ब्रह्मचारियों ने अपने प्राणों को मातृभूमि के लिये स्वाहा किया उसे हम बलिदान कहें तो अनुचित न होगा, कुछ मास के असाधारण अवकाश के बाद गुरुकुल तो खुल गया, परन्तु अनेक छात्र सत्याग्रह संग्राम में लगे रहे, सत्याग्रह के स्थगित होने पर ये फिर गुरुकुल में प्रविष्ट हुये और अपनी पढाई को पूर्ण किया, सन् 1932 ई0 में आचार्य रामदेव जी भी सत्याग्रह में भाग लेने के लिये गुरुकुल से चले गये।

(आ0 स0 का इतिहास–भाग 2, पृ0 136)

आपने (आचार्य रामदेव जी ने) इस समय पंजाब कांग्रेस के डिक्टेटर के रूप में सत्याग्रह किया और एक वर्ष के लिये जेलयात्रा की।

(पंजा का आर्यसमाज–ले0 रामचन्द्र जावेद)

इनके अतिरिक्त इस गुरुकुल के आचार्य श्री अभयदेव जी भी स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेते रहे हैं, यह है आर्यसमाज की उस राष्ट्रीय शिक्षा संस्था के देशप्रेम की कहानी, जिसे भविष्य में भारतीय युवकों के मस्तिष्क परिष्कृत करने के अभिप्राय से आर्यजगत् के सेनानी स्वामी श्रद्धानद जी ने उस युग में सर्वप्रथम आरम्भ किया था, तत्पश्चात् उसी पद्धति को आधार मानकर गुरुकुलों के रूप में अनेक संस्थाओं को जन्म दिया गया, जिनमें न जाने कितने छात्र शिक्षा दीक्षा प्राप्त कर न जाने कितने देशभक्त युवक देश की स्वाधीनता के निमित्त अपना–अपना योगदान करके कृतकार्य हुये हैं।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर

देश के प्रति निष्ठा, स्नेह तथा प्रेम रखनेवाली आर्यसमाज की इन्हीं शिक्षा संस्थाओं में शास्त्रार्थ महारथी अप्रतिम वाग्मी स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज द्वारा स्थापित गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर भी है, इसने भी भारत देश के अनेक युवकों में अपने देश, सभ्यता, संस्कृति मान्यताओं, परम्पराओं इतिहासादि के प्रति अनुराग उत्पन्न करने का कोई कम प्रशंसनीय कार्य नहीं किया है, समय–समय पर होने वाले सभी राष्ट्रीय स्वाधीनता के निमित्त आंदोलनों में इस संस्था के अधिकारी, छात्र तथा कर्मचारी भी कभी भी किसी से पीछे नहीं रहे हैं, इस संस्था के कुलपति विख्यात देशभक्त स्व0 पं0 नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ की देशसेवाओं का वर्णन पाठक पीछे पढ़ ही चुके हैं, इन पंक्तियों का लेखक जब सन् 1945–46 में इस संस्था में पढ़ता था तो यह अनुभव करता था कि प्रत्येक राष्ट्रीय पर्व सोत्साह मनाकर देशभक्ति का वातावरण तैयार किया जाता था, वहां उस समय आज़ाद हिन्द सेना के एक वरिष्ठ अधिकारी के आने

पर सब छात्रों के सामने उसका जोरदार स्वागत किया गया तथा उसका भाषण भी कराया गया था, जिसमें उसने अपनी देशभक्ति की रामकहानी सुनाई थी, इसी प्रकार एक बार स्वयं नेहरु जी के पधारने पर गुरुकुल के सारे ही छात्रों ने अपने पास से पैसे एकत्रित कर एक राशि के रुप में थैली श्री नेहरु जी को भेंट की थी, सन् 1942 का क्रांति में भाग लेने पर तो जहां अनेक छात्रों को ब्रिटिश सरकार के उत्पीड़न का भयंकर शिकार होना पड़ा, वहां अनेक स्नातक छात्र, अध्यापक एवं कर्मचारी राष्ट्रीय स्वाधीनता के इस समर में मौलिक कार्य करने के प्रयोजन से भूमिगत हो गये थे, इसके साथ ही अनेक देशभक्त क्रांति के उस कराल काल में इस संस्था में गुप्तरुप से अपना सिर छिपाकर अपने को सुरक्षित महसूस किया करते थे, यह भी एक कारण था कि वहां का सारा ही वातावरण विदेशी सरकार के प्रति तीव्र घृणा के भावों से ओत-प्रोत था, क्योंकि देशभक्तों तथा देश पर मर मिटनेवालों पर विदेशी सरकार की ओर से किये जानेवाले अमानवीय अत्याचारों का मार्मिक एवं दर्दनाक चित्रण उन छात्रों के सामने अपना सिर छिपाने के लिये वहां आनेवाले उन लोगों द्वारा मर्मभेदी भाषा में किया जाता था, जिससे कि छात्रों के कोमल मस्तिष्क में अनायास विदेशी सरकार के प्रति तीव्र घृणा के भाव उत्पन्न कर देता था।

गुरुकुल, डौरली, मेरठ

आर्यसमाज के इन्हीं राष्ट्रभक्त गुरुकुलो में देशभक्त श्री अलगुराय शास्त्री तथा प्रसिद्ध देशसेवी श्री पं0 शिवदयालु जी द्वारा स्थापित गुरुकुल, डौरली (मेरठ) भी सम्मिलित है, इसके प्रथम आचार्य श्री शास्त्री जी ही थे, राष्ट्रीय स्वाधीनता में इसका जो स्तुत्य योगदान रहा, वह पाठक निम्न प्रमाण से ही जानने में समर्थ हो सकते हैं-"उसके बाद एक वर्ष के बाद श्री पं0 अलगुराय शास्त्री के स्व0 लाला लाजपतराय जी के लोकसेवा संघ में चले जाने पर श्री पं0 लेखराम जी शास्त्री स्नातक गुरुकुल सिकन्दराबाद इसके आचार्य

बने, जो निरन्तर बीस वर्ष तक कार्य करते रहे, सन् 1946 में बसन्त पंचमी को इनका जेल की भयानक यातनाओं के कारण स्वर्गवास हो गया, गुरुकुल ने देश की स्वाधीनता के निमित्त आरम्भ किये गये सन् 1930-31 तथा 42 के आंदोलनों में विशेष भाग लिया, सन् 1942 के आंदोलन में तो इसके सारे ही अधिकारी, कर्मचारी एवं ब्रह्मचारी तथा स्नातक जेल गये थे, गुरुकुल को उस समय सरकार ने क्रांतिकारियों तथा शस्त्रास्त्रों का एक बड़ा भंडार कहकर अवैध घोषित कर दिया था तथा संस्था सीलमोहर कर दी गई थी। वैसे यह सत्य है कि समय-समय पर अनेक देशभक्त क्रांतिकारी अपना बचाव, सुरक्षा करने के उद्देश्य से यहां आते ही रहते थे, न केवल आते ही, बल्कि महीनों तक उन्हें यहां निवास तथा खानपान की सभी सुविधायें प्रदान की जाती थीं, इसी कारण सरकार इससे क्षुब्ध हो गई थी।

(आर्य प्रतिनिधिसभा-उत्तर प्रदेश का इतिहास, पृ0 120)

गुरुकुल, घरौण्डा, करनाल

देश के स्वातंत्र्य समर में भाग लेनेवाली इन्हीं आर्यसंस्थाओ में आर्यजगत् के कर्मठ सन्यासी, प्रसिद्ध देशभक्त स्वामी रामेश्वरानन्द जी द्वारा स्थापित वेदविद्यालय गुरुकुल घरौण्डा (करनाल) भी सम्मिलित हैं, सन् 1943 के आंदोलन में पूज्य स्वामी जी ने अपने युवाछात्रों के साथ मिलकर समीपस्थ रेलवे लाइन को उखाडने तथा टेलीफोन के तारों को काटकर संचार व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने का साहसपूर्ण प्रशंसनीय प्रयास किया था, इन लोगों के इस विद्रोह से क्रुद्ध हो जिला करनाल के तत्तकालीन जिलाधीश ने इस संस्था को अवैध करार दे ज़ब्त करने का कार्यक्रम बनाया था, परन्तु किसी जानकार हितैषी सज्जन के द्वारा उसके इस कार्य से उत्पन्न होने वाले भांवी, भयंकर तथा अनिष्टकारक परिणामों की आशंका व्यक्त करने पर उसे विवश हो अपना यह विचार त्यागना पडा, देश की

स्वाधीनता के लिए स्वामी जी महाराज द्वारा किया गया, तप, त्याग, साधना एवं बलिदान पाठक पीछे पढ़ ही चुके हैं।

गुरुकुल, घटकेश्वर, हैदराबाद

राष्ट्रीय स्वाधीनता के क्षेत्र में बढ़-चढ़कर कार्य करने वाली आर्य शिक्षा संस्था गुरुकुल, घटकेश्वर को कैसे भुलाया जा सकता है? केवल मात्र दक्षिण भारत के ही नहीं बल्कि सारे देश के प्रसिद्ध देशभक्त क्रांतिकारी इस संस्था में गुप्तरूप से निवास कर अपना बचाव करते रहे है, वहां के अधिकारियों, स्नातकों, छात्रों एवं कर्मचारियों ने हैदराबाद की जनता को निज़ाम के कट्टर साम्प्रदायिक खूनी पंजे से तथा पैशाचिक अत्याचारों से मुक्त होने में जो प्रशंसनीय योगदान किया वह तो वहां के इतिहास का एक अनूठा तथा गौरवशाली अध्याय है – जिसमें बताया गया है कि किस प्रकार उन शूरवीरों ने भारत की आज़ादी की होली जलाने वाले तथा भारतमाता के अस्मतधन के साथ क्रूर मज़ाक करने वाले और विदेशियों के इशारों पर नाचकर देश को खण्ड-खण्ड करने का संकल्प लेने वाले उन देश के छिपे दुश्मनों के पंजे मरोड़कर रख दिये थे, वहां छात्रों को लाठी, भाला, तलवार आदि की शिक्षा भी दी जाती थी, जिससे कि निज़ाम सदैव इस संस्था को सशंक नजरों से ही देखा करता था, निजाम के गुप्तचरों के लिए वह संस्था एक उलझी पहली तथा बडी भारी परेशानी का कारण बनी हुई थी, इसके संस्थापक वहां के प्रसिद्ध आर्यनेता श्री बंशीलाल जी व्यास थे जिन्होंने वहा एक अद्‌भुत जागृति, जीवन उत्पन्न कर दिये थे।

अन्य शिक्षा संस्थाएं

इनके अतिरिक्त इस क्षेत्र में कार्य करने वाली और अन्य अनेक आर्यसमाजी शिक्षा संस्थाओ का वर्णन मिलता है, ऐसी ही संस्थाओ में आर्यसमाज का प्रसिद्ध उपदेशक विद्यालय दयानन्द उपदेशक विद्यालय, गुरुदत्त भवन, लाहौर का नाम विशेष उल्लेखनीय है, इसके

आचार्य श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज थे, जब सन् 1930 के भारतव्यापी सत्याग्रह के सिलसिले में पंजाब प्रदेश की जत्थेबंदी का कार्य स्वामी जी महाराज कर रहे थे, सत्याग्रह की इस सुचारुता सुगुप्त नियंत्रण तथा निर्माण के सूत्रों को गूंथनेवाले चतुर मस्तिष्क की खोज में अंग्रेजी सरकार के गुप्तचरों द्वारा दिन-रात एक कर दिया जाने पर भी कोई किसी भी प्रकार सुराग न मिल सका, तो शासको ने झुंझलाकर स्वामी जी को धर पकड़ा, विद्यालय की एक-एक चीज़ की तलाशी ली गई, परन्तु उस चतुर नायक ने तो पहले ही सारी सामग्री अन्यत्र पहुंचा दी थी, यहां तक की तत्सम्बंधी पत्रव्यवहार भी किसी और पते से ही किया जाता था, उस समय के प्रायः सारे ही राष्ट्रीय नेता रात्रि को अधिकतर विद्यालय में ही विश्राम किया करते थे, कौन जानता है कि वह महापुरुष भारतीय स्वाधीनता संग्राम सम्बन्धी कितना अमूल्य इतिहास अपने साथ लेकर चला गया जिसे हम प्राप्त न कर सके, सन् 1932 में ब्रिटिश सरकार ने हरिजन एवार्ड लागू किया था, उसके विरुद्ध महात्मा गांधी के आह्वान को सुनकर स्वामी जी के आदेश पर विद्यालय के पांच छात्रों ने सत्याग्रह कर अपने को गिरफ्तार करवाया था, जिसमें सुखदेव (मारीशस), महावीर (हरियाणा), सोमदेव (लखनऊ), धर्मदत्त (रावलपिंडी) तथा नरेन्द्र (हैदराबाद) थे, ये ही नरेन्द्र बाद में पं0 नरेन्द्र के नाम से मशहूर हुये तथा आजीवन ब्रह्मचारी रहकर हैदराबाद की आज़ादी के लिये जूझते रहे।

(जीवन की धूपछांव-लेखक स्व0 पं0 नरेन्द्र जी, पृ0 30)

इन्हीं आर्य संस्थाओं में पश्चिमी पंजाब (अब पाकिस्तान) में स्थित गुरुकुल गुजरांवाला भी था, जब पंजाब में सन् 1919 में भीषण विद्रोह होने के कारण मार्शल लॉ लागू किया गया तो उस समय ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों का शिकार यह संस्था भी हुई थी, समीपस्थ रेलवे लाइन पर यहां के छात्रों ने पत्थरों का ढेर जमा कर दिया था, उसी अपराध में वहां के सभी छात्रों, अध्यापकों एवं कर्मचारियों को गिरफ्तार कर कारावास भेजा गया, असह्य यातनायें

दी गई थीं, इसी प्रकार अलीगढ में आर्यसमाज की ओर से विद्यार्थियों में वैदिक भावनायें भरने के अभिप्राय से एक 'वैदिक आश्रम' की स्थापना की हुई थी, जहां विभिन्न स्कूलो के वे छात्र जो निर्धन तथा असमर्थ थे, रहते थे, उस आश्रम के टूटने का कारण बताते हुए आर्यसमाज के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् स्व0 पं0 गंगाप्रसाद उपाध्याय जी लिखते है कि 'शनैः-शनैः आश्रम राजद्रोहियों का अड्डा हो गया था, सन् 1907 या 1908 में कई पुरुष जेल भेज दिये गये, छात्रावास के विद्यार्थियों को सरकारी स्कूल में स्थान न मिला, अंग्रेज हैडमास्टर ने बहुत सख्ती शुरु कर दी थी, आश्रम के प्रबन्ध ा को बहुत आघात पहुंचा था।'

(जीवनचक्र - ले0 गंगाप्रसाद उपाध्याय, पृ0 60)

इसी प्रसंग में आगरा के मुसाफिर महाविद्यालय जो कि आर्यसमाज का आरम्भिक उपदेशक विद्यालय था, का नाम भी उल्लेखनीय है, वहा का वातावरण भी राष्ट्रीयता के भावो से ओत-प्रोत था, एक बार विद्यालय का एक छात्र (अमर शहीद ठा0 रोशनसिंह का सम्बन्धी) अभिलाषचन्द्र बारूद आदि विस्फोटक पदार्थ लाकर अपनी अधूरी जानकारी के आधार पर एक बम बना बैठा, उसका उसने वहीं पर परीक्षण भी किया जिससे कि कई दिन तक पुलिस वहां का घेरा डाले पड़ी रही, यह गांधी युग से पूर्व रासबिहारी युग की बात है, विद्यालय के अध्यापक श्री पं0 महेशप्रसाद जी मौलवी आलिम फाजिल जो स्वयं एक प्रखर राष्ट्रवादी व्यक्तित्व के रूप मे थे, वे प्रत्येक राष्ट्रीय स्वाधीनता के आंदोलन में जेल जाते रहते थे, अंत मे सम्भवतः सन् 1921 के आदोलन मे जोरदार भाग लेने के कारण विद्यालय सदा के लिए बंद हो गया था।

(जिनका मैं कृतज्ञ हूं, ले0 राहुल सांकृत्यायन)

डी0 ए0 वी0 कालेज, लाहौर

यहां तक आर्यसमाज की उन शिक्षा सस्थाओं की देशभक्ति का परिचय दिया गया है, जो गुरुकुल पद्धति पर आधरित रही है, अब

हम अपने पाठकों के सम्मुख उन शिक्षा संस्थाओं के उन राष्ट्रीय कार्यों का संक्षिप्त उल्लेख करने जा रहे हैं, जो स्कूल कालेज के रूप में आरम्भ की गई थी, ऐसी संस्थाओं में लाहौर का दयानंद कालेज अपना प्रमुख स्थान रखता है, महर्षि दयानन्द सरस्वती की स्मृति में स्थापित यह सर्वप्रथम शिक्षा संस्था थी, आरम्भ में इसका एक स्कूल के रूप में बीज बोया गया था, जो कालान्तर मे एक विशाल कालेज के रूप में वृक्षाकार हुआ, आरम्भकाल में इसके पाठ्यक्रम में आर्षग्रंथ रखे गये थे, आर्यसमाज के प्रसिद्ध आर्यनेता त्यागमूर्ति म0 हंसराज जी ने इसके लिए सर्वथा अवैतनिक रूप मे प्रिंसिपल पद के लिए अपनी सेवायें अर्पित की थी, इस संस्था के अध्यापक मंडल तथा प्रबन्धकर्त्री समिति में एक भी अंग्रेज नहीं था, शिक्षा भी आर्यभाषा के माध्यम से ही दी जाती थी।

उस समय सरकार से एक फूटी कोडी भी अनुदान के रूप में आर्थिक सहायता नहीं ली जाती थी, छात्रों को अन्य विषय पढ़ाने के साथ-साथ धर्मशिक्षा पढ़ाने पर विशेष बल दिया जाता था, धर्म शिक्षा के अध्यापन का यह कार्य कालेज के प्राचार्य म0 हंसराज जी अधिकतर स्वयमेव ही किया करते थे, आरम्भ में इस स्कूल को सरकारी विश्वविद्यालय के साथ सम्बन्धित कराने में प्रबन्धकों ने अपनी ओर से प्रार्थना करना भी अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझा था, पंजाब में उस समय यह रिकार्ड था कि डी0 ए0 वी0 स्कूल ने अपने प्रारम्भिक प्रथम वर्ष में ही हाई स्कूल के सारे स्कालरशिप प्राप्त किये जिस पर डी0 पी0 आई0 ने उसके प्रधानाचार्य को शतशः हार्दिक बधाई दी, उसके उत्तर में म0 हंसराज ने जो उनको धन्यवाद का पत्र लिखा, सरकार ने उस पत्र को ही स्कूल के लिये मान्यता का आवेदन पत्र मानकर ही स्कूल को सरकारी मान्यता प्रदान कर दी थी, बिना आवेदन पत्र के ही डी0 ए0 वी0 स्कूल की मान्यता होना क्या शिक्षाक्षेत्र में आर्यसमाज के राजद्रोही प्रयत्नों की सफल कहानी नहीं है?

(आर्यजगत् साप्ताहिक जालन्धर 19-4-1964 का अंक)

कालेज के आचार्य म0 हंसराज स्वयं तथा कालेज का अन्य प्राध्यापक मंडल स्वदेशी वस्तुओं का ही उपयोग किया करते थे, साथ ही अपने छात्रों को स्वदेशी वस्त्रों के प्रयोग के लिये प्रेरित किया करते थे, इसी भावना से प्रेरित होकर सन् 1906 ई0 में महात्मा जी के एक शिष्य ने आर्यसमाज अनारकली में स्वदेशी वस्त्रों की दुकान खोली थी, कालेज में लगनेवाली आर्यकुमार सभा के मत्री लाला देशराज जी सूरी भू0 पू0 मंत्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधी सभा जालन्धर थे, एक दिन एक अग्रेज साबुन कंपनी का एक एजेन्ट कालेज में आकर अपने साबुन के प्रचारार्थ छात्रों को मुफ्त टिकिया देने लगा, परन्तु उन प्रखर राष्ट्रभक्त आर्यवीरों ने मुफ्त मे मिले उस विदेशी साबुन को परे फैंक अपने पैसों से भारत के नागरिको द्वारा बनाया गया साबुन खरीदकर राष्ट्रनिष्ठा का गहरा परिचय दिया था, क्या भारत के इतिहासकार आर्यकुमारों की इस देशभक्ति को कभी भुला पायेंगे ? यह था आर्यसमाज की शिक्षा सस्था के वातावरण का प्रभाव।

(साप्ताहिक आर्यजगत् जालन्धर का 10-1-1965 का अंक)

कालेज के साथ देवतास्वरूप भाई परमानन्द जी तथा अमरशहीद लाला लाजपतराय जैसे निष्ठावान् देशभक्तों का गहरा सम्पर्क होने से कालेज के छात्रों में राष्ट्रीयता की कितनी गहरी अनुभूति थी यह पाठ्क निम्न घट्ना से ही अनुमान कर सकते हैं, "लाला लाजपतराय अभी-अभी लाहौर आये थे, और उन दिनों आप डी0 ए0 वी0 कालेज तथा स्कूल में अत्यन्त दिलचस्पी लेते थे, आप नियमपूर्वक छात्रावास में जाया करते और विद्यार्थियों तथा अध्यापकों से घनिष्ठ सम्पर्क रखते थे, स्कूल के लड़के प्रतिदिन पंक्ति बांधकर छात्रावास से पाठ्शाला जाया करते, लडकों को यह पसन्द नहीं था कि कोई तांगा अथवा पैदल व्यक्ति उनकी पंक्ति के बीचों-बीच से आकर लांघकर उनकी पंक्ति में गडबड़ी पैदा करे, कालेज तथा छात्रावास के ठीक मध्य में एक अग्रेज बैरिस्टर श्री एच0 की कोठी थी, वह कोठी कोर्ट स्ट्रीट पर थी, एक दिन उनका 19 वर्ष का नौजवान लड़का घोड़े पर सवार

होकर उन लडकों की पंक्ति में से लांघ गया, घोडे की लपेट मे आने के कारण भय से लड़के इधर-उधर बिखर गये, श्री एच0 अपने सपूत की इस करतूत को देख रहे थे, और हर्षित दिखाई पडते थे, कुछ लडको ने अपने वार्डन के पास अपने मानीटर की शिकायत की, कि उसकी असावधानी से हमें इस प्रकार लज्जित होना पडा, मानीटर ने अपना दोष स्वीकार किया, और प्रार्थना की कि मुझे एक अन्य अवसर मिलना चाहिये, दूसरे दिन श्री एच0 के सपूत को भी दुबारा अपनी वीरता दिखाने का शौक चर्राया, परन्तु अब मानीटर ने उसे ऊंचे स्वर से रोकना चाहा, बैरिस्टर कुमार घोडे को दौड़ाता अपने घोडे को हवा में तड़ातड फटकारता और हिन्दुस्तानियों के प्रति घृणासूचक अपशब्द बोलता जाता था, लड़के ने अपना गामाशाही जूता उतारा जिसकी ऐडी तथा तलवे पर काफी लोहा जडा हुआ था, और अपराधी कुमार के मुंह पर दे मारा, जिससे उसके गाल पर लोहे की ऐडी का अर्धवृत्त गहरा चिन्ह पड गया, बांका सवार रोने चिल्लाने लगा, और अपने पिता की शरण ली, बैरिस्टर साहब अपने पड़ोसी तथा चीफ कोर्ट के वकील लाला लाजपतराय के पास गये, और उन्हें अपने बेटे की गाल पर अर्द्धचन्द्र दिखलाते हुये डी0 ए0 वी0 कालेज के लडको के व्यवहार की शिकायत करने लगे, कि उन्होंने मेरे बेटे के मुंह पर हिन्दुस्तानी जूता दे मारा, लाला लाजपतराय ने उसे विश्वास दिलाया कि मैं पूरी-पूरी जांच करूंगा, और देखूँगा कि आक्रमणकारी को उचित दंड दिया जाये। शाम को कचहरी से लौटते हुये आप छात्रावास गये और जांच आरम्भ कर दी, जब आपको सारी घटना ज्ञात हुई, तो आपने मानीटर की वीरता पर उसकी पीठ ठोकी, फिर आपने बैरिस्टर के पास सारी बात सुनाई, फैसला यह हुआ कि बात को जाने दिया जाये, और दोनो एक्टर परस्पर हाथ मिला लें, चूंकि श्री एच0 के बेटे को गहरी चोट लगी थी, डी0 ए0 वी कालेज के विद्यार्थी को खेद प्रकट करना चाहिये, और श्री एच0 उसे स्वीकार कर लें, लाजपतराय ने स्वयं लड़के के खेद प्रकाश का फार्मूला तैयार किया, ''मुझे खेद है कि मैंने तुम पर देशी जूते से प्रहार किया''

यह मालूम नहीं हुआ कि श्री एच0 ने अपने सुपुत्र के प्रतिशोध के गूढ व्यंग को भी समझा कि नहीं ?"

(लाला लाजपतराय जीवनचरित्र, ले0 अलगूराय शास्त्री, पृ0 492-93)

पाठकवृन्द ! यह घटना किसी अन्य टीका टिप्पणी की अपेक्षा नहीं रखती है, हम पूछ सकते हैं कि क्या किसी अन्य शिक्षा संस्था में इतने उत्कट देशप्रेम तथा स्वाभिमान की ऐसी घटना घटी है ? महाशय हंसराज जी ने अपनी इन शिक्षा संस्थाओ को सुचारु रूप से चलाने के अभिप्राय से आजीवन सदस्य बनाने की परम्परा आरम्भ की थी, एम0 ए0, डबल एम0 ए0 तथा पी0 एच0 डी जैसी महत्वपूर्ण तथा उच्चतम उपाधियों को धारण करनेवाले युवक केवल मात्र 75 रुपये मासिक पर अपना जीवन इन संस्थाओं को दान दे दिया करते थे, जबकि अंग्रेजी सरकार उनको भेंट करने के लिये उच्चतम नौकरियों की तरतरिया लिये उनकी उत्सुकता तथा अधीरता के साथ प्रतीक्षा करती रहती थी, परन्तु वे सरकारी नौकरी कर ब्रिटिश साम्राज्य के पांव इस देश में मज़बूत करना अपने धर्म तथा स्वाभिमान के विपरीत समझते थे, इससे सरकार जहां योग्य पुरुषों से वंचित हो जाती थी, वहां राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं को योग्य तथा लगनशील, कर्मठ युवक अल्पवेतन पर मिल जाते थे, जो कि देश के युवकों में प्राणपण से नवजीवन का संचार किया करते थे, यह भी देश की स्वाधीनता के लिए एक उपयोगी और वरदान रूप में विचार सिद्ध हुआ, ऐसे योग्य तथा लगनशील, कर्मठ एवं परिश्रमी कार्यकर्त्ताओं के कारण इस संस्था ने राष्ट्र की स्वाधीनता के मार्ग को निष्कण्टक बनाने में बडा भारी योगदान किया था, सन् 1942 की क्रांति में तो अंग्रेज पुलिस ने उक्त कालेज तथा इसके छात्रावास में घुसकर छात्रों और अध्यापकों तक को भी पीटा था, संस्था के होटल में तो पुलिस ने संस्था के देशभक्त छात्रों पर गोलीवर्षा भी की थी, जिनके पवित्र एवं देशभक्ति के रंग में रगे गाढे खून के धब्बों से सनी दीवारें कई मास तक पंजाब की देशप्रेमी जनता के लिये पावन तीर्थस्थली के समान दर्शनीय बनी

रही थी, प्रो0 भगवानदास (स्व0 प्रि0 भगवानदास जी) को पीटने पुलिस उनके पढ़ाने के कमरे में गई, परन्तु उनके स्थान पर उन्हीं जैसी आकृतिवाले एक अन्य प्रोफेसर को पुलिस ने पकडकर बुरी तरह से पीटा था, जबकि वह निरन्तर चिल्लाता रहा कि मैं भगवानदास नहीं हू क्योंकि भगवानदास जी के राष्ट्रीय प्रयासों से पुलिस बेहद खीजी हुई थी, इसी प्रकार मार्शल लॉ के युग में इस संस्था पर जो अत्याचार किये गये, उनका वर्णन करते हुये तो लज्जा को भी लज्जा आ जाती है, प्रतिष्ठित घराने के छात्रों तथा योग्यतम प्राध्यापकों को मई–जून की आग बरसाती दुपहरियों में कई–कई मील नंगे सिर तथा नंगे पांव चलाकर उनकी राष्ट्रभक्ति, निष्ठा तथा देश के प्रति अथाह प्यार को कुचलने, दबाने की निरन्तर कोशिशें की जाती थीं, परन्तु इतने पर भी वे आर्यवीर विदेशी सरकार के सामने झुकने या हार मानने को कभी तैयार नहीं होते थे, कानपुर के डी0 ए0 वी0 कालेज में पढ़ते समय कई क्रांतिकारी छात्र पुलिस के साथ हुई मुठभेड़ों में मारे गये थे।

नेशनल कालेज

राष्ट्रवीर लाला लाजपतराय ने पूना के 'फर्ग्यूसन कालेज' की भांति पंजाब में भी अपने कुछ साथियों के सहयोग से नेशनल स्कूल तथा नेशनल कालेज आरम्भ किये थे, इनका सरकारी विश्वविद्यालयों से किसी भी प्रकार का कोई सम्बंध नहीं होता था, अपनी ही उपाधियां होती थीं, लाहौर के इसी कालेज में श्री पं0 जयचन्द्र जी विद्यालंकार के द्वारा क्रांतिदल का सगंठन किया गया था, उत्तर के अधिक क्रांतिकारी इसी कालेज की देन हैं, वहां पर गुप्त समितियों का निर्माण किया जाता था, बंगाल, महाराष्ट्र आदि के क्रांतिकारियों से सम्पर्क सूत्र जोड़ने का एकमात्र माध्यम तथा स्रोत नेशनल कालेज ही होता था, बाद में सरकार की क्रूर दृष्टि तथा अर्थाभाव के कारण यह बन्द हो गया था जो कि स्वाधीनता संग्राम के काल में बड़ी ही दुर्भाग्यपूर्ण बात हुई।

कन्या महाविद्यालय, जालन्धर

इस प्रसंग में यदि अत्यन्त गौरव के साथ किसी और संस्था का नाम लिया जा सकता है तो वह है आर्यकन्या महाविद्यालय जालन्धर, जो कि म0 मुंशीराम जी के साले लाला देवराज जी के द्वारा भारत में कन्याओं के शिक्षण के लिये सबसे पहले आरम्भ की गई थी, इसकी स्थापना का इतिहास भी बड़ा चौंकाने वाला है, एक दिन म0 मुंशीराम अपने घर बैठे थे कि उनकी बड़ी पुत्री वेदकुमारी जो किसी ईसाइयों के स्कूल में पढती थी, अचानक ही स्कूल में सिखाया जाने वाला एक भजन बोलने लगी, भजन यह था-

ईसा ईसा बोल तेरा क्या लगेगा मोल।
ईसा मेरा राम रमैया, ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया।।
ईसा ईसा बोल तेरा क्या लगेगा मोल ?

यह सुनकर मुंशीराम जी ने सोचा कि किस प्रकार हमारी नन्हीं बच्चियों के दिमागों में ईसाइयत के भाव भरे जाते हैं ? तब उन्होंने अपने अन्य मित्रों से इस सम्बन्ध में बातचीत की तो उन सबके सामने भी यह समस्या थी, यह घटना ही कन्या महाविद्यालय को जन्म देने का कारण सिद्ध हुई, इस संस्था की नींव ही विदेशियों के चंगुल से बचाने के सदुद्देश्य से हुई थी, अतः आगे चलकर तो इस संस्था का वातावरण ही सर्वथा स्वदेशी बन गया था, उत्तर भारत में यह स्वदेशी, स्वभाषा एवं निजगौरव का प्रतीक मानी जाती थी इसकी आचार्या कु0 लज्जावती जी ही थीं, वे स्वयं ही प्रखर राष्ट्रवाद की समर्थिका थी, सन् 1929 में लाहौर में हुई कांग्रेस के अधिवेशन में वे महिला स्वयं सेविकाओं की कमांडर थीं, जालन्धर में जो भी राष्ट्रीय नेता आता था उनके अंग्रेजी भाषणों का अनुवाद वे ही बडी ओजस्वी भाषा में किया करती थीं, जब भगतसिंह आदि पर प्रसिद्ध बम केस चला तब कु0 लज्जावती जी ही थीं जिन्होंने उनका डिफैन्सी केस प्रीवी कौन्सिल तक लड़ा था, लाला लाजपतराय के सान्निध्य में रहकर इन्होंने राष्ट्र की सेवा का बड़ा भारी कार्य किया था, कन्या

विद्यालय मे प्रतिदिन तिरंगा ध्वज लहराया जाता था, इन्होंने अपने समय में सरकार द्वारा अनुदान की पेशकश किये जाने पर उसे ठुकराकर अपनी देशभक्ति का परिचय दिया था, यद्यपि उन दिनों बडी भारी आर्थिक तंगी थी, विद्यालय में प्रति सोमवार को छात्राओं द्वारा सामूहिक रूप मे 'वन्दे मातरम्' का गान भी किया जाता था, सन् 1903 मे जब एशियाई देश जापान पर यूरोपीय देश रुस ने विजय प्राप्त की तब विद्यालय की छात्राओं ने गुडिया बनाकर और बेचकर कुछ रकम जमा करके जापान की सहायता के लिए भेजी थी, इसी तरह 1906 में कन्याओं ने कांग्रेस के एक सहायता फंड में कुछ रकम भेजी, 1913 में कन्याओ ने दक्षिण अफ्रीका में चल रहे गांध ी जी के सत्याग्रह आंदोलन के लिए 150 रु0 की सहायता भेजी थी, सन् 1922-23 में जब लाला लाजपतराय धर्मशाला जेल मे थे तो छात्राओ ने अपने हाथ से सूत कातकर और उससे कपडा बनवाकर उनके लिये राखी के साथ दो कुर्ते और दो पायजामे और दो टोपियां भेजीं जिसके उत्तर में लाला जी ने आशीर्वाद भेजा ''ईश्वर तुममें पद्मिनी सरीखा सौन्दर्य, सीता सरीखा नैतिक बल और लक्ष्मीबाई सरीखी देशभक्ति पैदा करे।' सन् 1907 मे गोखले विद्यालय में पधारे तब उन्होंने संस्था की प्रगति पर गहरा सन्तोष प्रकट किया था, सेंट स्टीफन कालेज दिल्ली के प्रिंसिपल मि0 रुद्रा ने इसे अंग्रेजी नमूने की नकल नहीं है, यह कहा था, इसे सर्वांश में भारतीय तथा मातृभूमि का उज्ज्वल भविष्य कहा था, इसी प्रकार स्व0 डा0 राजेन्द्रप्रसाद, श्रीमति सरोजनी नायडू, मदनमोहन मालवीय, विट्ठल भाई पटेल आदि राष्ट्रीय नेताओ ने अपने विचार प्रकट किये थे, यद्यपि गांधी जी कभी संस्था में नहीं आ सके थे तो भी उनकी संस्था के बारे में जानकारी ज़रुर थी, 1920 में अहमदाबाद में गुजरात विद्यापीठ का उद्घाटन करते हुये उन्होंने कहा था कि गुजरात नेशनल कालेज एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय का पहला कालेज है, यह सब कन्या महाविद्यालय जालन्धर और हरिद्वार के गुरुकुल कांगड़ी का उदाहरण सामने रख कर किया जा रहा है।

(सत्य की मंजिल सेवा की राह-ले0 शादीराम, पृ0 45-68)

पंजाब नेशनल बैंक

देशभक्त लाला लाजपतराय जी ने अपने सहयोगियों के साथ 'पंजाब नेशनल बैंक, की स्थापना की थी, जिसका यह उद्देश्य था कि सरकारी बैंकों का असहयोग हो, भारतीयों के खून-पसीने की कमाई से बैकों द्वारा अंग्रेज जो लाभ उठाते हैं, उससे ये वंचित हो जायें तथा इस नये स्थापित किये जाने वाले बैंक के द्वारा लाभ रुप में प्राप्त होनेवाली आय को अपने देशी भाइयों की सहायता तथा लाभ में प्रयुक्त किया जाये, आरम्भ में यह बैक आर्यसमाजियों के बैक के रूप में प्रसिद्ध था, इसके डायरेक्टर म0 हंसराज जी के छोटे पुत्र श्री योधराज जी थे, जो इसकी बदौलत ही करोड़पति बने थे, उन्होंने अखिल भारतीय कांग्रेस को एक मुश्त ही एक लाख की सहायता देकर अपनी गहरी देशभक्ति का परिचय दिया था, एक बार वीर भगतसिह के दल को पैसों की आवश्यकता होने पर इसी बैंक में डाका डालने का आयोजन किया था, सब तैयारी हो चुकने पर केवलमात्र इस बैक के राष्ट्रीय स्वरूप को ध्यान में रखकर ही उन्होंने अपना विचार छोड़ दिया था, पाठक उन्हीं के शब्दो में पढ़ें-

"भगवती भाई ने तो इस योजना का विरोध नीति की दृष्टि से किया था, पंजाब नेशनल बैंक को लाहौर के लोग खासकर आर्यसमाजी जगत् राष्ट्रीय संस्था माने बैठे थे, भगवती भाई का कहना था कि डकैती करनी ही है तो किसी दूसरे बैंक में की जानी चाहिये।"

(सिंहावलोकन-भाग 1, पृ0 156)

पाठकगण! आर्यसमाज की शिक्षा संस्थाओ ने पराधीन भारत में जिस उग्र राष्ट्रीयता का परिचय दिया उसका संक्षिप्त विवरण ऊपर की पंक्तियों में दिया गया है, इन संस्थाओं की शिक्षा तथा प्रबन्ध कुशलता का स्वाधीनता सग्राम पर क्या गहरा प्रभाव पड़ा यदि इस सबको विस्तार से जानना चाहें तो इनका विस्तृत विवरण इनकी रिपोर्ट, नियमावली, सूचनायें तथा इतिहास आदि पढ़ने का कष्ट करें, जिससे कि सर्वांश में तद्विषयक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

●●

छठा अध्याय

आर्यसमाज अपने सामान्यतः जन्मकाल से ही विशेषकर श्याम जी कृष्ण वर्मा तथा लाला लाजपतराय के समय से ब्रिटिश सरकार के प्रबल सन्देह का विषय बन गया था, आर्यसमाज, के भयंकर राजद्रोही होने का विचार विदेशी सरकार तक कैसे पहुंचा ? यह हम आर्यसमाज के लौहपुरुष अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के शब्दो में ही यहां पर उद्धृत कर रहे हैं-

सन्देह का कारण

"गरीब हिन्दुओं को वाग्युद्ध मे सदा पछाड़ने के अभ्यासी पादरियों को जब आर्यसमाज में पले बालकों तक से पटकनी पर पटकनी मिलने लगी तब वे ओछी हरकतों पर उतर आये और उन्होंने सरकारी अधिकारियों को यह विश्वास दिलाना आरम्भ कर दिया कि आर्यसमाज से क्रिश्चियन मत को तो कम भय है अधिक भय गवर्नमेंट को है।"

(कल्याण मार्ग का पथिक, पृ0 146)

इस विश्वास के कारण जो किसी भी इतिहासकार की दृष्टि में अनुचित नहीं कहा जा सकता है कि अंग्रेजी सरकार ने आर्यसमाज को कुचलने तथा दबाने का पूर्ण निश्चय कर लिया था, स्थान-स्थान पर आर्यसमाजियों तथा आर्यसमाज से सम्बन्धित पुरुषों को उत्पीड़ित किया जाने लगा था, उस समय की सरकारी नौकरियों में विद्यमान आर्यसमाजियों पर तो मानो विपत्तियों का पहाड़ ही टूट पड़ा था, क्योंकि सरकारी नौकरी में होने के कारण उनको पीडित, दुःखी तथा त्रस्त करना सरकार के लिए बहुत ही सरल काम हो गया था, उस समय के आर्यसमाजियों पर क्या बीती ? इसका दिग्दर्शन कराने के लिए कुछ घटनाओं का सक्षिप्त संग्रह यहां प्रस्तुत किया जाता है,

इससे पाठकों को यह भी ज्ञात हो जायेगा कि विपदा और आंधी के उस तूफानी दौर तथा काल में आर्यसमाजियों ने किस प्रकार अपनी बहादुरी का परिचय दिया, वे टूट तो गये परन्तु झुके नहीं और किस प्रकार अपनी लौकिक अनित्य सम्पदाओं के सर्वस्व की बाज़ी लगाकर भी उन्होंने अपने सिद्धांतों, मान्यताओं तथा आर्यत्व की रक्षा करके उस विपत्ति की घडी में खरे उतरे, यह एक गौरव का विषय है।

आर्यसमाजियों से दुर्व्यवहार

1. मैं सायंकाल सड़क पर घूम रहा था, सामने से घोडे पर सवार नाभा के वृद्ध राजा हरिसिंह आ रहे थे, वह अक्सर लाहौर आते थे, और मैं उन्हें पहचानता था, मैंने हाथ जोडकर उनका उचित सत्कार किया, उन्होंने पूछा कि पढ़ते हो ? मेरे उत्तर देने पर पूछा कि कहां ? मैंने कहा कि दयानन्द कालेज में ? 'कहने लगे कि हंसराज से कह देना कि अंग्रेजों के साथ उलझना ठीक नहीं, जितने आर्यसमाजी तुम हो, उनके लिए तो मेरी फौज ही काफी है, राजा नाभा ने अपना सन्देश पहुंचाने के लिए अच्छा दूत चुना, उसके कथन से इतना तो पता लगता है कि उस समय का राजनैतिक वायुमंडल कैसा था ?'

(आ० स० के त्यागी तपस्वी सं० पृ० 32)

2. गुलाबचन्द एक सिख रेजिमेंट में लेखक था, वह कर्त्तव्यपरायण तथा सत्यप्रिय और परिश्रमी था, परन्तु साथ ही अधिकारियों को उत्तर देने में निर्भीक था, पहले तो उसकी इस बात की प्रशंसा होती थी, किन्तु अब उसका वही गुण कांटे की तरह खटकने लगा और उसे इसके लिये पृथक् कर दिया कि वह आर्यसमाजी है, इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्यसमाजी का अर्थ हुआ उद्दण्ड अर्थात् निर्भीक एवं सत्यवादी।

3 जिला करनाल के तीन जेलदारों में से एक आर्यसमाजी था, उसकी डायरी में लिख दिया गया कि वह जेलदार तो अच्छा है, परन्तु इसका निरीक्षण किया जाना चाहिये क्योंकि यह आर्यसमाजी है।

4. एक डिप्टी कमिश्नर ने एक नगर के प्रमुख पुरुषों को बुलाकर कहा कि यदि तुम्हारे यहां कोई आर्यसमाजी रहता है, तो उसे निकाल दो स्वयं उन प्रमुख पुरुषों में ही दो आर्यसमाजी थे, उन्होंने पूछा कि आर्यसमाजियों के विरुद्ध क्या किया जाये ? डिप्टी कमिश्नर ने कहा कि कुछ करो, तुम्हारे विरुद्ध कोई भी कार्रवाई न होगी, वे बोले कि आप स्पष्ट निर्देश करें, तो उनका पालन किया जा सकता है और आप ही स्पष्ट कार्रवाई करने से डरते हैं तो फिर हममें यह साहस कहां है ?

5. एक रेजिमेंट के सिपाही आर्यसमाजी थे, उन्हें यज्ञोपवीत उतार देने की आज्ञा दी गई, उन्होने जाट सभा के द्वारा एक निवेदन पत्र भिजवाया जिसे आपत्तिजनक समझा गया।

6. एक मुसलमान जमादार ने एक यूरोपियन लैफ्टिनेंट को विवाद मे हरा दिया, इसकी शिकायत हुई और मुसलमान को डांटकर कहा गया कि तुम आर्यसमाजी हो, उसने उत्तर दिया कि मैं तो मुसलमान हूं, अधिकारी ने उसे और डांटा और कहा कि तुम मुसलमान आर्यसमाजी हो।

7. आर्यसमाज के प्रचारक पं0 दौलतराम झांसी गये, वहां उन्होंने सिपाहियों को भी उपदेश दिया और उनसे अनाथालय के लिए चन्दा लाये, पंडित जी पर अभियोग चलाया और दंड यह दिया गया कि या तो झांसी या उसके पांच मील के अन्दर रहनेवाले तथा सरकार को 1000 से 2000 की आय पर कर देने वाले दो सज्जनों की ज़मानतें दिलाओ या एक वर्ष के कठोर करावास का कठोर दंड भुगतो, यों तो दौलतराम जी आगरे के खाते-पीते घर के थे परन्तु झांसी में अजनबी थे इसलिए झांसी में कारावास भुगतना पड़ा।

8. जोधपुर में वायसराय पधारे थे उनके मार्ग में आर्यसमाज मन्दिर पड़ता था, पुलिस ने समाजवालों से कहा कि अपना फट्टा तथा झंडा उतार लो, उनके इंकार करने पर पुलिस ने ये दोनों चिन्ह उतार लिये।

9 पंजाब की एक ब्रिगेड में आज्ञा दी गई कि सिपाही आर्यसमाज अथवा किसी अन्य राजनीतिक सभा में न जाया करें।

10 एक भारतीय रेजिमेंट के एक डाक्टर को उसके आफिसर ने त्यागपत्र का मसविदा लिखकर दिया कि इसके द्वारा समाज से सम्बन्ध विच्छेद करो, यह आज्ञा न मानने के कारण आखिर उसे सेवा छोड़नी पड़ी।

11 रोहतक में किसी ने ढिंढोरा पिटवाया कि आर्यसमाज का मन्दिर सरकार द्वारा ज़ब्त कर लिया गया है, समाज के प्रधान के पूछने पर डिप्टी कमिश्नर कार्यालय ने लिखा कि ऐसा ढिंढोरा सरकारी आज्ञा से नहीं पीटा गया, परन्तु तो भी इसके विरुद्ध सरकार ने अपनी ओर से घोषणा तक करना स्वीकार नहीं किया।

12 इन्द्रजीत शाहजहांपुर की ज़िला कचहरी में काम करता था, उसने रोगी होने के कारण अवकाश लिया, यह आर्यसमाज का उत्साही कार्यकर्त्ता था, उसे आज्ञा दी गई कि या समाज प्रचार करे या सरकार की सेवा।

13 इन्दौर आर्यसमाज का प्रधान लक्ष्मणराव शर्मा पुलिस इंस्पेक्टर जनरल के कार्यालय में हैड एकाउंटेन्ट था, उसने समाज के जुलूस की आज्ञा मांगी, इस पर उसे समाज छोड़ देने को कहा गया, ऐसा न कर सकने के कारण उसे सरकार की सेवा छोड़ देनी पड़ी।

14. इस प्रसंग में पश्चिमोत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध आर्यसमाजी नेता पं० भगवानदास जी का मामला भी स्मरणीय है, पं० भगवालदास जी सरकारी नौकरी में थे, उनका सब कार्य अत्यन्त सन्तोषजनक था, सभी सम्बद्ध अधिकारियों ने उनकी अत्यन्त प्रशंसा की थी, परन्तु जब सरकार घबरा गई तब आफिसर ने पंडित जी से यह आश्वासन लेना चाहा कि वे आर्यसमाज का कोई काम नहीं करेंगे, पंडित जी के ऐसा आश्वासन न देने पर उन पर तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगाये जाने लगे, यहा तक कि उन्हें छुट्टी तक से भी भी इकार कर दिया गया, इस पर असन्तुष्ट होकर पंडित जी ने सरकारी

नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और स्वतंत्र होकर पूर्ण रूप से आर्यसमाज की सेवा में लग गये।

(आ० स० का इतिहास - भाग 2, पृ० 32-33)

15. सन् 1906 में सर्वप्रथम आर्यसमाजियों के सेना में भर्ती पर प्रतिबन्ध लगाने की बात 124 वीं रायफल सेना के कमांडिंग आफिसर कर्नल सीनियर ने उठाई थी, उसने कहा था कि आर्यसमाज राजद्रोही संस्था है अतः आर्यसमाजियों को सेना में भर्ती नहीं किया जाना चाहिए, परन्तु तत्कालीन उच्चाधिकारियों ने इस विषय में प्रमाण की पर्याप्तता न मिलने का बहाना बनाकर उस समय प्रतिबन्ध लगाने से इंकार कर दिया था, फिर सन् 1907 मे इस मामले को मेजर स्काट ने फिर उठाया, इस पर विधि विशेषज्ञ महाधिवक्ता कर्नल थामस से कानूनी सलाह ली गई, उस पर इतना कुछ हुआ कि यदि ऐसा ही है तो सेना में भर्ती हुए जवान, अधिकारी पर यह प्रतिबंध लगा दें कि इनमे से कोई भी आर्यसमाज का सदस्य नहीं हो सकता तथा ना ही आर्यसमाज में जा सकता है, परन्तु केवलमात्र आर्यसमाजी होने मात्र से ही हर एक पर शक करना ठीक न होगा।

16. 10वीं जाट रेजीमेंट जो कि सन् 1898 में बनारस में थी, तब उसमें धार्मिक दृष्टि से आर्यसमाज का प्रभाव था, जब सन् 1899 में यह सिलचर पहुंची तो उसके सेनापति को हिन्दी में बहुत से ऐसे पत्र मिले जिन पर हिन्दी में ओइम् लिखा था, जिसे कुछ आधिकारियों ने सन्देह की नज़रों से देखा,जब 1904 में यह रेजीमेंट कानपुर पहुंची तो उसके सैनिक आर्यसमाज के सत्संगों में जाने लगे तथा आर्यसमाज से अपना सम्पर्क बढ़ाने लगे, जब अधिकारियों को यह बात विद्रोही सी जान पड़ी, तब उन्होंने उनके आर्यसमाज के सत्संगों, सभाओं में जाने पर प्रतिबंध लगा दिया साथ ही आर्यसमाजी साहित्य छावनी में लाने पर भी कठोर प्रतिबंध लगा दिया, सितम्बर 1905 में सुरजनसिंह नामक एक सिपाही इसी अपराध में दंडित किया गया था कि उसने स्वदेश प्रचार के बारे में बुलाई गई आर्यसमाज की एक सभा में भाग लिया था।

17 जुलाई सन् 1909 में आर्यसमाज की सैनिक गतिविधियो के बारे में कोहाट की रिपोर्ट प्रधान सैनिक कार्यालय में पहुंची, जिसमें 112 वीं इनफैण्ट्री (पैदल) के कुछ सिपाहियों ने आर्यसमाज में भाग लिया था, जिस पर उनको कठोर चेतावनी दे दी गई थी, दूसरी घटना बगलोर की थी वहां भी कुछ सिपाहियों ने भाग लिया था, जबकि इससे पहले ही एक सिपाही समय से पहले ही पेंशन देकर निवृत्त कर दिया था, क्योंकि वह पक्का आर्यसमाजी था, उसकी विदाई के अवसर पर बाहर के आर्यसमाज के मंत्री भी आये थे, जिनका पहले से ही उसके साथ गुप्त सम्बन्ध था, और जो समय-समय पर यहां तक कि कई बार तो धार्मिक कृत्य कराने के लिए भी वे आते रहे थे, इसी प्रकार की घटना बड़ौदा में भी घटी थी, जिसके परिणामस्वरूप सन् 1909 में सेना के सैनिकों पर पूर्णतयः आर्यसमाज के सत्संगों या सभाओं में भाग ले सकने का प्रतिबंध लगा दिया था, और अंत में मार्च 1910 ई0 में प्रधान सेनापति ने 'अत· यह निर्णय किया जाता है कि भविष्य में कोई आर्यसमाजी सेना में भर्ती नहीं किया जायेगा' कहकर आर्यसमाजियों की सेना में भर्ती पर पूर्णतया प्रतिबंध लगा दिया था।

(आर्यसमाज का इतिहास – भाग 4, ले0 रात्यकेतु विद्यालंकार, पृ0 303–319)

18. सिपाहियों को आदेश दिया गया कि सद्धर्म प्रचारक, आर्यमित्र पत्रों को न खरीदे, यह आदेश इलाहाबाद के नायक (सिपाही) को विशेषतौर से मिला, वह समाज अथवा नौकरी में से एक को छोड दे।

19 शकरपुर, लाहौर के एक प्राधानाचार्य को आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव मे भाग लेने के कारण नौकरी से बर्खास्त होना पडा।

20 एक दिन बातचीत में उन्हें यह मालूम हुआ कि मै आर्यसमाजी हूं, यह सुनते ही कर्नल हरकोर्ट खडे हो गये और बोले आप और आर्यसमाजी! आप तो बड़े धार्मिक आदमी हैं, आप आर्यसमाजी नहीं हो सकते, मैने उत्तर दिया कि मै केवल आर्यरामाजी

ही नहीं प्रत्युत स्थानीय आर्यसमाज का प्रधान भी हू तब साहब बोले परन्तु लाहौर आर्यसमाज तो एक पालिटिकल संस्था है, जालन्धर आर्यसमाज चाहे न हो, तब मैंने कर्नल साहब को आर्यसमाज के मन्तव्य तथा उद्देश्य समझाये और बतलाया कि हम लोग आर्य अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष बनाना चाहते हैं, इसका परिणाम यह हो सकता है कि श्रेष्ठो पर उनसे गिरे हुये पुरुष राज न कर सकें, इस पर साहब बड़े उदारभाव से बोले फिर हमारे यहां ठहरने का कोई हेतु न रहेगा, उन्होंने कहा कि यदि भारतवासी हमसे अधिक श्रेष्ठ मनुष्य बन जायें तो फिर हमें स्वयं बोरिया बंधन उठाकर चल देना पडेगा, उपर्युक्त घटना से पता चलता है कि उस समय भी हमारे गोरे हाकिम आर्यसमाज को सन्देह की दृष्टि से देखते थे।

(कल्याण मार्ग का पाथिक, पृ0 145-146)

21 His Arya samaj whether he wished it or not, prepared the way in 1905 for the revolt of Bengal (life of Rama-Krishna Parmhans By Roman Rollan).

' अर्थात् इस (दयानंद) के आर्यसमाज ने 1905 में बंगाल की बगावत के लिये रास्ता साफ किया, हमें पूर्ण विश्वास और दृढ़ निश्चय है कि विख्यात फ्रेंच लेखक श्री रोमां रोलां का यह कोरा सन्देह मात्र नहीं था, इसमें बड़ी भारी ऐतिहासिक सच्चाई छुपी हुई थी।

22 आर्यसमाज की इन्हीं गतिविधियों से चिढ़कर स्वामी आलाराम नामक एक भारतीय व्यक्ति ने एक पुस्तक लिखी थी, जिसमें महर्षि दयानन्द सरस्वती के ग्रंथों के उदाहरण देकर लिखा था कि 'आर्यसमाज एक राजद्रोही संस्था है'।

23 इसी प्रकार लाहौर से निकलनेवाले 'सिविल एण्ड मिलिट्री गज़ट' नामक एक अर्धगोरे पत्र में "एक भारतीय" के नाम से एक लेख प्रकाशित हुआ, जिसमे आर्यसमाज को लक्ष्य करके लिखा था, "आर्यसमाज का प्रधान उद्देश्य अंग्रेजो के शासन को उखाड़ कर भारत मे हिन्दू राज्य की स्थापना करना है।"

24. इसी वातावरण से लाभ उठाते हुए सन् 1910 ई0 में वैलण्टाईन शिरोल नामक एक अंग्रेज ने INDIAN UNREST नामक पुस्तक लिखकर प्रकाशित की थी, जिसमें आर्यसमाज को अपना लक्ष्य बनाते हुऐ लिखा था- "पंजाब की अशान्ति का उत्तरदाता मुख्यरूप से आर्यसमाज है, आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने आर्यावर्त आर्यों के लिये, का नारा लगाकर हिन्दुओं में राजद्रोह के बीज बो दिये, उनका गोरक्षा आन्दोलन भी सरकार विरोधी है, अधिकतर आर्यसमाजी अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध भावना रखते हैं, सरकार द्वारा निर्वाचित लाला लाजपतराय तथा अजीतसिंह एवं लन्दन में 'इण्डिया हाउस' नामक राजद्रोही अड्डे का संचालक श्यामजी कृष्ण वर्मा आर्यसमाजी हैं," इस वातावरण से प्रभावित होकर अंग्रेजी सरकार ने आर्यसमाजियों को सरकारी नौकरी विशेषकर सेना की नौकरी करने के अयोग्य ठहरा दिया था, आर्यसमाजी उपदेशकों को आवारा होने के लांछन लगाकर उनके विरुद्ध धारा 109 के आधार पर मुकदमे चलाये गये, आर्यसमाज के सभासदों की सूची के आधार पर दस नम्बरी बदमाशों की सूचियां तैयार की गई, अन्य धर्मस्थानों के समान आर्यसमाज मन्दिरों को धार्मिक स्थान न मानकर केवलमात्र राजनीति के विद्रोही अड्डे मानन की घोषणायें की गई, इसीलिये आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संगों, तथा अन्य धार्मिक पर्वो एवं समारोहों पर कड़ी नज़र रखी जाती थी, इसी प्रकार सब तरह से आर्यसमाजियों को स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के शब्दों में 'आउट लॉ' ठहरा दिया गया था, उस समय की परिभाषा के अनुसार आर्यसमाजी और राजद्रोही दोनों ही शब्द पर्यायवाची माने जाने लगे थे, अभिप्राय यह है कि आर्यसमाजी होने का उस समय अर्थ यह होता था कि वह अंग्रेजी सरकार का कट्टर विद्रोही है, परन्तु उस भयावहकाल में सरकार की ओर से इतना भीषण दमनचक्र चालू होने पर भी, वह दिमाग को कंपा देनेवाली अमानुषिक यन्त्रणायें दिये जाने पर भी दो- चार अपवादों को छोड़कर सर्वसाधारण रूप में आर्यसमाजी विचलित नहीं हुये, वे अपने धर्म, सिद्धान्तों, विचारों तथा भावनाओं

पर अड़े रहे, वे टूट तो गये, परन्तु अन्याय के आगे झुके नहीं, उस भीषणकाल में आर्यसमाज के स्तम्भ स्वामी श्रद्धानंद जी महाराज ने अपने 'सद्धर्म प्रचारक' पत्र द्वारा आर्य जनता को अपने धर्म पर दृढ़ रहकर उन विपत्तियों को डटकर मुकाबला करने का तेजस्वी, शक्तिमान् तथा साहसपूर्ण, उपदेश देकर महान् ऐतिहासिक कार्य किया था, स्वामी जी ने आर्यो को चेतावनी तथा आत्मिकबल का उपदेश देते हुये लिखा था–

आर्य पुरुषो! क्या तुमको परमात्मा पर सच्चा विश्वास नहीं है? यदि है तो दो हाथवालों की खातिर सहस्रबाहु का क्यों अनादर करते हो? दो भुजावाला जिस रोज़ी को छीन सकता है, क्या सहस्रबाहु उससे बढ़कर रोज़ी तुम्हें दे नहीं सकता? इसलिये संसार को धर्म पर न्यौछावर करना ही आर्यत्व है, वैदिकधर्म की सेवा के लिये कायरों के उद्यत होने का क्या काम?

स्वामी के चेतावनी भरे इन ओजस्वी शब्दों ना जादू का सा असर किया, जिसके परिणामस्वरूप अनेक असह्य कष्ट आने पर भी आर्यसमाजी अपने निश्चित तथा स्वीकृत मार्ग से विचलित होने का विचार तक मन में भी नहीं कर सके, यह उस महान् सर्वस्व त्यागी तथा अवसर की नाड़ी को पहचानने वाले दूरदर्शी नेता के नेतृत्व की महान् सफलता थी, जिसने मझधार में डूबने को तैयार आर्यसमाज की नौका को कुशल मल्लाह बनकर पार लगाने का साहसपूर्ण कार्य तथा वीरतायुक्त ऐतिहासिक कार्य किया, अंधकार में भटक रहा आज का आर्यसमाज ऐसे निःस्पृह, दूरदर्शी नेतृत्व की आशा में है, परमात्मा आज के आर्यसमाज के नेतृत्व में स्वामी श्रद्धानंद का महान् साहस भरने की कृपा करें, जिसकी आज के आर्यसमाज को सबसे बड़ी आवश्यकता है।

सातवां अध्याय

इस अध्याय में भारत के विभिन्न प्रान्तों, स्थानों तथा रियासतों में घटी घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन होगा, जिनके मौलिक उद्देश्यों मे राष्ट्रीय वृत्ति की झलक दिखाई देती है, यद्यपि इन घटनाओं में वर्णित कईयों के वृत्तान्त पाठक प्रत्यक्षरूपेण राष्ट्रीय वृत्ति को अनुभव न करें, किन्तु इन सभी घटनाओं ने प्रत्यक्ष नहीं तो परोक्ष रुप में भारतीय स्वाधीनता सग्राम की सफलता को अवश्य ही प्रभावित किया है। ऐसी घटनाओं में लाहौर का 'पंजाबी' नामक अखबार पर चला मुकदमा अपना विशेष स्थान रखता है।

इस अखबार के स्वामी लाला लाजपतराय एक धनीमानी आर्यसमाजी युवक थे। मि0 ए0 के0 व्यथोले नामक एक महाराष्ट्रीय सज्जन सम्पादक थे, परन्तु इसका नियन्त्रण तथा सचालन लाला लाजपतराय जी के द्वारा ही होता था। वे लेख भी देते थे और प्रूफ भी जाचंते थे। यह पत्र बंगाल के 'वन्दे मातरम्' तथा महाराष्ट्र के 'केशरी' की कोटि का राष्ट्रीय पत्र था। सरकार इसकी गतिविधियों से चिढ़कर इस पर प्रहार करने का अवसर देख रही थी। इस पत्र में एक पुलिस कांस्टेबल की रहस्यमय मृत्यु के बारे में छपे एक लेख को आपत्तिजनक मानकर पत्र के स्वामी और सम्पादक को गिरफ्तार कर लिया गया। जब इन्हें सज़ा सुनाई गई तो उपस्थित अपारदर्शक जनसमूह ने दोनों ही अभियुक्तों का करतल ध्वनि से स्वागत किया और इनकी गाड़ियों के पीछे दौड़ लगाई, उस जनसमूह ने पुलिस के साथ भी मार-पिटाई की, साथ

अंग्रेजों पर भी हमले किये, बस अंग्रेजी सरकार की दृष्टि में यही विद्रोह की पुनरावृत्ति थी।

लाला लाजपतराय ने उन्हें ज़मानत पर छुड़ा लिया, कई पेशियां होने के पश्चात् जब न्यायाधीश ने सज़ा घटाकर सुनाई तो उस दिन बड़ी भारी संख्या मे पुलिस तैनात थी, पुलिस तथा जनता में डटकर टक्कर हुई, जब उन अपराधियों को जेल ले जाने लगे तब लालाजी ने उनसे हाथ मिलाये, इस पर जशवन्तराय ने लालाजी के चरणस्पर्श किये, परन्तु जनता के डर से पुलिस उन्हें जेल ले जाने में असमर्थ थी, जिसके परिणामस्वरूप जशवन्तराय जी की ही गाड़ी में पुलिस उनको ले गई, जनता की उत्तेजना उस समय चरमसीमा को पार कर गई थी, अतः लालाजी का समझाना भी सर्वथा ही व्यर्थ सिद्ध हुआ, इस कारण सरकार ने इस सब विद्रोह का मूल लालाजी को ही समझा, इस मुकद्दमे के मध्य ही लालाजी के जामाता श्री जयचन्द जी जो अभी युवक ही थे, अपनी युवापत्नी तथा एकमात्र नवजात शिशु को छोड़कर स्वर्ग सिधार गये इतना होने पर भी इस वज्र–प्रहार को भी लालाजी ने एक स्थितप्रज्ञ, आत्मवेत्ता की भांति सहन किया, आगे चलकर उनकी एकमात्र स्नेहमयी विधवा पुत्री ने भारत की स्वाध ीनता के लिए स्तुत्य तथा प्रशंसनीय कार्य किया जो कि लालाजी की सत्प्रेरणा का ही परिणाम था।

रावलपिण्डी का काण्ड

लाला लाजपतराय जी ने तथा सरदार अजीतसिंह ने कुछ आर्य युवकों के सहयोग से पंजाब में भारतमाता सोसाइटी नामक एक क्रान्तिकारी संगठन का निर्माण किया था, सन् 1907 ई0 में पंजाब सरकार ने कृषि योग्य भूमि पर अन्यायपूर्वक एवं अनावश्यक बहुत अधिक टैक्सों की वृद्धि कर दी, जिस कारण पंजाब में कृषि आन्दोलन किसान विद्रोह का रूप धारण कर गया, लाला जी अपने साथियों के साथ इसमें कूद पड़े। लायलपुर, लाहौर, रावलपिण्डी, ये पंजाब के तीन प्रसिद्ध नगर उक्त आन्दोलन के केन्द्र बन गये, जनता के

बुलावे पर लालाजी अपने साथियों के सहित लायलपुर गये, वहां देशभक्त जनता ने आपका तथा आपके सहयोगी लाला जशवन्तराय का रेलवे-स्टेशन पर इनता जोरदार तथा भव्य स्वागत किया कि बग्घी के घोडे खोलकर जनता स्वयं ही इसमें उनके स्थान पर जुत गई और आप सबका विशाल स्तर पर जुलूस निकाला, साथ ही विशाल स्तर पर एक बड़ी भारी सार्वजनिक सभा का भी आयोजन किया गया, उस सभा में जब प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि श्री बांकेदयाल ने अपना प्रसिद्ध देशभक्ति से पूर्ण राष्ट्रीय गीत ''पगडी संभाल ओ जट्टा'' गाया तो जनता के जोश का ठिकाना न रहा, तथा अपनी सीमाओं को पार करने लगा, उस सभा मे लाला लाजपतराय जी, सरदार अजीतसिंह तथा चौ0 रामभजदत्त जी के देशभक्ति से ओत-प्रोत जोशीले तथा जोरदार भाषण हुये, अन्त में लालाजी ने वह प्रार्थना-पत्र पढ़ा, जिसे वे सरकार को देने के उद्देश्य से अपने साथ लाये थे, पुनः रामभजदत्त जी के अनुरोध पर सरदार अजीतसिंह ने अपना भयंकर विद्रोहात्मक भाषण दिया, जिसमें विदेशी अंग्रेजी सरकार के लिए भीषण बगावत के खतरनाक, जलते अंगारे बरयाये गये थे, तत्पश्चात् ये सारे नेता रावलपिण्डी पहुंचे, वहां पर भी इसी प्रकार की एक हंगामी मीटिंग की गई, जिसमें पिण्डी के प्रसिद्ध आर्यसमाजी नेता हंसराज साहनी, भाई गुरदास साहनी आदि प्रमुख आर्यसमाजी वकीलों ने बढ-चढकर भाग लिया, उनके इस कार्य से आतकित हो सरकार ने इन वकीलों के वकालत के लाइसेंस छीनने का निश्चय किया, जिस दिन नोटिस की सुनवाई होनी थी, उस दिन जिला कचहरी में अपार जनसमूह एकत्रित हो गया, उस समय भंयकर दगा हुआ, क्रुद्ध जनता ज़िलाधीश तथा जिला जज की कोठी में घुस गई और वहां मौजूद सारा सामान तोड-फोड़ डाला, अंग्रेज तथा उसके पिट्ठू गद्दार भारतीयों को भी पीटा गया, शाम को एक विशाल जनसभा में गर्म अति जोशीले भाषण हुये, जिसके परिणामस्वरूप उसी रात को रावलपिण्डी के प्रमुख आर्यसमाजी वकीलो को गिरफ्तार

कर लिया गया, इसमे मुख्य तथा एक विशेष कारण यह था कि रावलपिण्डी उत्तर भारत का उस समय का सबसे बडा सैनिक अड्डा होने के कारण सरकार उसे विद्रोह की जलानेवाली लपटो से अछूता रखना चाहती थी, इसी कारण लाला लाजपतराय जी तथा सरदार अजीतसिंह को तत्काल अचानक ही पकडकर बिना मुकदमा चलाये ही अनिश्चित काल के लिये माण्डले के किले में कैद कर दिया, मि0 शिरोल ने अपनी पुस्तक में आर्यसमाज एव आर्यसमाजियो के राजद्रोही होने का यह भी एक हेतु दिया कि रावलपिण्डी के राजनैतिक विद्रोह मे सबसे बड़ा हाथ वहां के आर्यसमाजियों का ही था, पाठकों को ध्यान रहे कि उस कृषक आन्दोलन के मध्य ही लालाजी ने स्वदेशभक्ति तथा स्वदेशी के प्रचार के लिए अमृतसर, अम्बाला, फिरोज़पुर तथा अन्य अनेक नगरो में भ्रमण कर भाषण भी दिये थे, अतः सरकार का इस किसान आन्दोलन को भी अंग्रेजी सरकार के प्रति एक भयकर विद्रोह अथवा स्वाधीनतासंग्राम का एक मजबूत अंग समझ लेना अस्वाभाविक न था, क्योंकि यह आन्दोलन भी तो स्वाधीनता की प्रेरणा तथा राष्ट्रद्रोह की भावना से किसी भी तरह से अछूता तो न था।

पटियाला का अभियोग

महाराजा पटियाला के यहां अंग्रेजी सरकार की नौकरी से रिटायर्ड 'बार्बर्टन नामक एक अंग्रेज पुलिस विभाग का मुख्य अधिकारी बन गया था, वह स्वभाव का बिल्कुल रूखा था, रियासत के वित्त-विभाग से उसकी खटपट चल रही थी, क्योंकि उक्त विभाग के ऑडिट आफिस ने उसके अनेक बिलो पर आपत्तियां उठाई थी, रियासत के वित्त विभाग में अनेक प्रमुख आर्यसमाजी कार्यरत थे, अतः 'बार्बर्टन' ने एक पत्थर से दो फल तोडने का निश्चय किया, एक तो अपनी बेईमानी से शत्रु आर्यसमाजियों को जेल पहुंचवा दे,

और दूसरा महाराजा की नज़रों में ईमानदार तथा हितैषी बनकर अपनी गद्दी स्थिर कर ले, अतः उसने महाराजा के मन में आर्यसमाजियो के राजद्रोही होने के भाव बैठाने का सफल प्रयास किया, जिसके परिणामस्वरूप रातभर मे रियासत के 85 प्रमुख आर्यसमाजियों को गिरफ्तार कर लिया गया, और रियासत भर के आर्यसमाज मन्दिरों पर सरकारी मोहरबन्दी कर दी गई, उनके घरों की तलाशी लेने पर जब कुछ भी हाथ न आया तो रामायण, महाभारत, सत्यार्थप्रकाश आदि और ऋषि दयानन्द के फोटो ही उठाकर जैसे-तैसे कागजों की खाना पूरी की गई, रियासत ने मुकद्मा चलाने के लिये लाहौर के प्रसिद्ध अंग्रेज वकील मि० एडवर्ड ग्रे को पैरवी का काम सौंपा, आर्यजगत् की ओर से 'आर्यरक्षा रक्षा समिति' बना दी गई, पैरवी के लिये अनेक प्रसिद्ध वकीलों के साथ महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द जी) जी भी तैनात हुये, जिन्हें कई वर्षों से अलमारी मे बन्द पड़ा अपना वकालत का लाइसेस निकालना पडा, रियासत ने दक्षिणेश्वर बम केस के समान भंयकर स्तर पर मुकद्मा तैयार किया, दो-तीन पेशियों तक तो अभियोग पत्र ही न्यायालय में नहीं पहुंच सके, काफी टालमटोल के बाद अभियुक्तों को दोषी सिद्ध करने के अभिप्राय से मि० ग्रे का जो भाषण हुआ, उसका लक्ष्य केवलमात्र आर्यसमाज को राजद्रोही ही सिद्ध करना था, जब समाचार-पत्रो के द्वारा जनता में यह भाषण पहुंचा तो सबको यह आश्चर्य हुआ कि इतने छोटे, निर्मूल तथा कच्चे आधारों पर इतना बड़ा, भारी तथा भयंकर मुकद्मा चलाने का निश्चय किया गया, अन्त में अपनी कमजोरी को अनुभव करते हुये रियासत ने शिमला के एक अर्धगोरे पत्रकार को बीच में डालकर सन्धि की बातचीत आरम्भ कर दी, आखिर अभियुक्तों को रियासत छोड़ने का आदेश दे एवं भविष्य में सावधान रहने का आश्वासन लेकर अभियोग वापिस ले लिया गया, इन अभियुक्तों में रायबहादुर ज्वालाप्रसाद जी (श्री धर्मवीर जी, गवर्नर बंगाल तथा पजाब के पूज्यपिता जी), श्री लाला नारायणदत्त जी

ठेकेदार, लाला नन्दलाल जी, लाला मुरारीलाल जी तथा बाद में नेता जी श्री सुभाषचन्द्र बोस के साथी बनकर अंग्रेजों की आखो खटकनेवाले प्रसिद्ध राष्ट्रवादी नेता श्री लाला शंकरलाल जी थे, जब ये रियासत की जेलो में पड़े सड रहे थे तो इनमे से एक के घर बच्चा पैदा हुआ परन्तु उचित दवादारू तथा देखभाल के न होने के कारण वह चल बसा, इसी प्रकार एक अन्य अभियुक्त के बच्चे की आंखे जाती रहीं, एक अभियुक्त की माता तथा दूसरे की धर्मपत्नी की मृत्यु हो गई, परन्तु इतना सब कुछ होने पर भी आर्यजगत् को यह जानकर सन्तोष होगा कि इनमें कोई एक भी अभियुक्त किसी प्रकार से पीछे हटने को तैयार न हुआ, इस प्रकार हम देखते है कि आर्यसमाज इस अग्नि-परीक्षा में भी सोने का अग्नि में पडकर कुन्दन समान बनकर निकलना और अपने सम्मान की रक्षा में पूर्ण समर्थ सिद्ध हुआ।

कराची का केस

"1902 मे इलाहाबाद में और 1905 में कराची मे ऐसे मुकदमे चलाये गये, जिनमे सत्यार्थप्रकाश को राजद्रोही ग्रन्थ और आर्यसमाज को राजद्रोही संस्था ठहराने के कुचक्र रचे गये थे, कराची में तो आर्यसमाज की तलाशी लेकर उसके मन्त्री के विरुद्ध राजद्रोह का मुकदमा भी दायर कर दिया गया था।"

(जीवन संघर्ष, पृ0 66)

नेपाल में भी

इसी प्रकार नेपाल में प्रसिद्ध आर्यवीर तथा अमरबलिदानी शहीद शुक्रराज जी शास्त्री को कैसे भुलाया जा सकता है? उस समय नेपाल में राणा वंश का सर्वथा, निरंकुश शासन था, उनकी एकाधिपत्य की प्रखर प्रवृत्ति, मनमानी, उद्दण्डता तथा पाखण्ड और अग्रेजों के प्रति विश्वस्त भक्ति उनके सर्वविदित गुण थे, जब शुक्रराज जी गुरुकुल सिकन्दराबाद में शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, तो पीछे से इनके पिता जी

को राजद्रोही करार देकर जेल में डाल दिया था, जहां वे कैदियों में भी वैदिकधर्म का प्रचार किया करते थे, जब शास्त्री जी स्नातक होकर वहा पहुचे तो इनके वे वैदिकधर्म के प्रबल तथा धुआंधार प्रचार से जिसमें प्रत्येक मनुष्य को उसका जन्मजात स्वतन्त्रता अधिकार अच्छी तरह से प्रचारित एवं प्रसारित किया गया था, मानव के इस स्वाधीनता मूलक प्रचार तथा अभियान से शासकदल घबरा उठा तथा इनको अपने मार्ग से दूर करने का उपाय तथा अवसर ताकने लगा, आखिर एक दिन इनको धोखे से पकड़कर नेपाल के मुख्य शासक युद्ध शमशेर के सामने उपस्थित किया गया, जो शास्त्री जी के उस समय नमस्ते करने पर उबल पडा और बोला कि शास्त्री! तुम हर बात पर शरारत करते हो, तुम्हें पता नहीं कि यहां एक हाथ से सलाम करने का सरकारी आदेश है? तुमने दोनों हाथों से नमस्ते करने की गुस्ताखी की है, जिसकी सजा तुमको जल्दी ही दी जायेगी और फिर कहा कि नेपाल के इतिहास में इस भूमि पर यही एक व्यक्ति है जो तूफान मचा सकता है तथा उथल-पुथल कर सकता है, तब बिना मुकद्मा चलाये ही इनको फासी का आदेश दे दिया, जनता में विद्रोह की आशंका से शास्त्री जी को नेपाल से भारत जानेवाली सडक पर खडे एक वृक्ष पर रस्सी से बांधकर रात्रि के 12 बजे फांसी पर लटका दिया गया, आठ घंटे तक इनकी लाश वृक्ष पर ही लटकती रही, सरकारी आदेश से इनकी छाती पर एक तख्ती लिखकर लटका दी गई थी, जिसमे यह वाक्य अंकित था 'सारे देश को भडकानेवाला क्रांतिकारियों को गुरु आर्यसमाजी होने के कारण ऐसे ही दण्ड का अधिकारी था''। आर्यवीर की वीरता देखिये कि जब ईटों पर खडा कर फांसी का फन्दा इनके गले मे कस दिया गया, तब इस साहसी आर्यवीर ने अपने पैरों से स्वयं ही ईंटों को परे सरका कर मृत्यु का स्वयमेव आलिंगन किया, फांसी का वह पवित्र तथा शहीदी स्थान आज भी उसी सड़क पर भारत-नेपाल की सीमा पर ''पचली घाट''

नाम से विख्यात है।

(शहीद के कलम से – ले0 शुक्रराज शास्त्री तथा वाक्पतिराज शास्त्री)

इसे राष्ट्रीय वलिदान के अतिरिक्त और क्या नाम दे सकते है ? यह था आर्यवीर का रोमांचकारी, अनुपम तथा साहसिक वलिदान।

हैदराबाद में आर्यसमाज का संघर्ष

सन् 1658 ई0 मे आबिद कुलीखां नामक एक मुस्लिम बुखारा से घूमता हुआ भारत पहुंचा, यहा औरंगजेब के राज्य में खुशामद तथा चालाकी से ऊंचे ओहदे तक पहुंच गया, पुनः मुग़लवंश की निर्वलता का लाभ उठाते हुये अपने स्वामी के प्रति विद्रोह (जो कि उनका स्वाभाविक गुण कहा जा सकता है) तथा विश्वासघात कर दक्षिण का शासक वन बैठा, इसी के वंशज एक निज़ाम ने राज्य के लिए नादिरशाह के काल में अपने अन्तरग मित्र का छलपूर्ण वध कराया था, इतिहास से स्पष्ट है कि यह रियासत चालाकी तथा स्वामीद्रोह की वुनियाद पर खडी हुई है, इस रियासत के शासकों की नीति का निश्चय अवसरवादिता के आधार पर होता है, भारत के इतिहास में स्वेच्छा से अपने गले में अंग्रेजों की दासता की जंजीरो को पहनने वाले नरेशो में पहला नम्बर इसी रियासत के निज़ाम का है। अधीनतापूर्ण सन्धि (Subsidiary alliance) को भी सर्वप्रथम निज़ाम ने ही स्वीकार किया था, जिसका अभिप्राय यह था कि अपनी रियासत मे रियासत के व्यय से अपनी रक्षार्थ अंग्रेजी सेना को रखना होता था, ऐसी सन्धियों से देशी नरेशो की स्वतन्त्रता धीरे-धीरे समाप्त होने लगी, भारत के इतिहास में गुलामी के इस जहरीले बीज को बोने का उपक्रम इस निजाम ने ही किया था, अन्तिम निज़ाम उस्मान अली अलीगढ़ का स्नातक होने के कारण संसार को मुस्लिम झडे के नीचे लाने के उद्देश्य से सभी वैध एवं अवैध तरीके अपमाने में अपने को आधुनिक 'आलमगीर' से कम नहीं समझता था, ऐसे

पराधीन मनोवृत्ति वाले तथा मतान्ध पुरुष को अपने राज्य में स्वतन्त्रता का उपासक तथा राष्ट्रवादी भावों से भरपूर आर्यसमाज पनपते हुये कैसे भा सकता था ? अतः उसने आरम्भ से ही आर्यसमाज के गले को घोटकर मारने के उपाय तथा हर सम्भव प्रयास आरम्भ कर दिये थे, चूंकि अंग्रेजों की नीति ही निजाम की नीति थी, अतः हैदराबाद मे आर्यसमाज के संघर्ष को केवलमात्र धार्मिकता की रक्षा के निमित्त संघर्ष कहना युक्ति, तर्कहीन तथा इतिहास के साथ उपहास करना होगा, लेखक के इस विचार को आगामी नवें अध्याय में दिये गये मिलिट्री एक्शन नामक प्रकरण को पढ़कर पाठक भली–भांति समझ सकेगे, इसी प्रकार हैदराबाद मे आर्यसमाज द्वारा किये गये सफल सत्याग्रह के मूल में भी केवलमात्र धार्मिक स्वतन्त्रता के अधि ाकारों की प्राप्ति की भावना ही निहित नहीं थी, अतएव निज़ाम ने उस उठती हुई राष्ट्रीय वृत्ति को दबाने के हेतु अनेक कुचक्र चलाये, सर्वथा ही झूठे अभियोग बनाकर लम्बी–लम्बी सजायें दी गई, गुण्डों द्वारा आक्रमण करवा कर जनता को दबाने के प्रयास किये गये, डाके डलवाये गये, स्त्रियो का अपहरण तथा कत्ल करवा देना तो सामान्य सी बातें हो गई थीं, इन सभी भीषण कष्टो, संकटो का बहादुरी के साथ सामना करते हुए वहां जिन आर्यवीरो ने इतिहास में नये आयामों का निर्माण किया, स्वाधीनता की भावना स्वाभिमान के विचारों को जीवित जागृत रखने तथा प्रोत्साहित करने का गौरवशाली कार्य किया, उनमें से कुछ का संक्षिप्त सा विवरण उपस्थित किया जा रहा है।

श्री विनायकराव विद्यालंकार

आप वहां के प्रसिद्ध आर्यनेता श्री केशवराव जी कोरटकर के सुपुत्र थे, गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी से शिक्षा प्राप्त कर लन्दन बैरिस्ट्री के लिये गये थे, वहां से बैरिस्टर बनकर आने पर हैदराबाद में आप अपनी प्रैक्टिस करते थे, जिन आर्यवीरों पर निजाम तथा उसके चमचे या गुर्गे जाली मुकदमें बनाकर उन्हें फंसा लेते थे, आप उन देशभक्तो की निःशुल्क पैरवी किया करते थे, आपके ही नेतृत्व

मे वहा के वकील संघ ने निज़ामी अत्याचारो के विरोधस्वरूप उनकी अदालतों का बहिष्कार किया था, आपके इन्हीं कामों से चिढकर निज़ाम के इशारे पर ही वहां के लीगी गुण्डो ने आपके मकान पर सशस्त्र आक्रमण भी किया था, सन् 1945 में गुलबर्गा में हुए आर्य महासम्मेलन के अवसर पर लीगी मज़हबी गुण्डों के आक्रमण करने पर आप भी बहुत सख्त घायल हुए थे, आपने अनेक वर्षों तक वहां आर्यसमाज का नेतृत्व किया था, सन् 1939 के आर्यसत्याग्रह के अवसर पर आपको आर्यजगत् की ओर से आठवां सर्वाधिकारी नियुक्त किया था, आपकी इन्हीं सेवाओं के कारण हैदरावाद के स्वतन्त्र होने पर आप वहां के मन्त्रीमंडल में वित्तमंत्री बने थे, इतिहास में आपकी सेवायें सदैव स्मरण रहेंगी।

श्री पं0 नरेन्द्र जी

हैदराबाद के दूसरें कर्मठ कार्यकर्त्ता दक्षिणकेशरी श्री पं0 नरेन्द्र जी थे, जो बाद में सन्यारा लेकर स्वामी सोमानन्द के नाम से विख्यात हुये, इन्होने श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के आचार्यत्व में दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय लाहौर में शिक्षा प्राप्त की और वहां से राष्ट्र सेवा का व्रत लेकर हैदराबाद पहुंचे, एक सुयोग्य, विदुषी तथा सुन्दर देवी ने जब अपने साथ आपसे विवाह करने का प्रस्ताव किया तब आप बोले कि 'जब तक मेरा हैदराबाद गुलाम है, तब तक मैं विवाह करके ऐशो आराम की ज़िन्दगी कैसे गुज़ार सकता हूं?' वहां के नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में घूमकर आपने जो अभूतपूर्व जागृति उत्पन्न की तथा वहां की जनता को निजाम के अत्याचारो का सक्रिय विरोध करने को जो कटिबद्ध किया उससे निज़ामी सत्ता के हाथ पांव-फूल गये, इस कारण आपको अनेक निर्मूल तथा झूठे लांछन लगाकर जुबांबन्दी तथा कारावास का दंड दिया गया, गुलबर्गा में हुये आर्य महासम्मेलन के अवसर पर गुण्डों द्वारा किये गये सशस्त्र आक्रमण में आपके पैर की हड्डी टूट गई थी, बाद में उनके स्थान पर डाक्टरों ने उपचार कर बकरे की हड्डी चढ़ाकर ठीक कर दिया था, आपके

इन्हीं राष्ट्रीय कार्यों से चिढ़कर निजाम की पुलिस ने आपको अचानक ही पकडकर बिना मुकद्मा चलाये ही हैदराबाद के कालेपानी 'मन्नानुर' नामक स्थान में बन्द कर दिया था, जहां कई-कई मील तक भयानक, सुनसान एवं एकान्त घना जंगल तथा हिंसक जन्तुओं का निवास था, वहां पर आपको महीने में केवलमात्र अपने घर एक ही पत्र लिखने का आदेश था और वह भी केवल कुशल समाचार तक ही सीमित होता था, अखबार, पुस्तक, कागज, कलम आदि किसी तरह की कोई भी सुविधा प्राप्त नहीं थी, सर्वथा ही एकान्त कोठरी में आपको रखा गया था, आप उस अवस्था में वहा डेढ वर्ष तक रहे, उसी दौरान की बात है कि आपकी वृद्धा माता जी सख्त बीमार हो गई, उनके बचने की आशा न देखकर निजाम ने कहा कि, यदि तुम क्षमा मांग लो तो तुम्हें विशाल तथा पुष्कल धनराशि भी प्रदान की जायेगी, साथ ही माता जी के दर्शन भी कर सकोगे, परन्तु वाह रे आर्यवीर! वृद्धा माता अपने लाडले बेटे के बिछोह में घुल-घुलकर संसार छोडकर चली गयीं है, पर माता के मोह में फंसकर तूने अन्यायी के आगे गिड़गिड़ाना तथा झुकना किसी भी हालत मे स्वीकार नहीं किया, जब 15 अगस्त, सन् 1947 को राष्ट्रीय स्वाधीनता के उपलक्ष्य में सारा देश खुशियों में डूबा हुआ था तथा हमारे नेता दिल्ली में लालकिले के ऊपर तिरंगा लहराकर खुशियों में फूले नहीं समा रहे थे, अपने को धन्य-धन्य तथा कृतकृत्य समझ रहे थे, उस अवस्था में भी यह आर्यवीर क्रूर निज़ाम की तंग, गन्दी तथा बदबूदार जेल की कोठरियों में जंजीरों से बधा स्वाधीनता के सुख तथा खुशियों से वंचित हो, विवश पडा हुआ था, यह आज़ाद होने पर भी सर्वथा पराधीन था, इसके लिए तो अभी दासता की काली रात्रि बाकी ही थी, आर्यसमाज के इन जवांमर्द वीरों ने जान की बाजी लगाकर हैदराबाद की जनता को निजाम के क्रूरतापूर्ण गुलामी के पंजे से निज़ात दिलाई थी, देखते हैं कि भारत के इतिहासकार कब इन वीरों के कार्यों का गौरवपूर्ण शब्दों में उल्लेख करके इनके प्रति कृतज्ञता

प्रकट कर पाते है ?

श्याम बंशी भाई

हैदराबाद के इन्हीं आर्यवीरों में हुतात्मा भाई श्यामलाल तथा भाई बंशीलाल चमकते नक्षत्र हैं, ये दोनों ही भाइ अपने मामा श्री दत्तात्रेय जी की प्रेरणा पर ही आर्यसमाज की सेवा में जी जान से जुट गये थे, दोनो ने ही स्थान-स्थान पर व्यायामशालायें चलाकर वहां की युवाशक्ति में जागृति की एक जबरदस्त लहर उत्पन्न कर दी थी, इसी कारण ये वहां की जनता की दृष्टि में हीरो बन गये थे, अपने पैर उखड़ते देखकर निजामी सत्ता ने इन पर झूठे मकद्मो का जाल फेका, भाई श्यामलाल को जेल में डाल दिया गया, वहां इन्हें ऐसा गन्दा तथा निकृष्ट कोटि का भोजन दिया गया जो इनकी प्रकृति तथा अवस्था के सर्वथा के सर्वथा प्रतिकूल था, इतने पर भी अपना अभीष्ट सिद्ध होता न देखकर अन्त में एक रात को जेल के अधि ाकारियो ने इनको दवाई के बहाने से तीखा ज़हर देकर आपका प्राणान्त कर दिया, अपने इस कुकृत्य तथा पाप को छिपाने के अभिप्राय से निजामी सत्ता हुतात्मा भाई श्यामलाल का शव आर्यसमाज के अधिकारियो को अन्त्येष्टि कर्म करने देने को उद्यत न थी, परन्तु उस समय आर्यजगत् के एक चतुर तथा बुद्धिमान् उपदेशक श्री पं० रुचिराम जी ने जेल अधिकारियों के पास जेल के सर्वोच्च अधिकारी के नाम से भाई श्यामलाल का शव आर्यो को सौंपने के आदेशात्मक नकली तार देकर शंव प्राप्त कर लिया था।

(वीर सन्यासी ले० राजेन्द्र जिज्ञासु, पृ० 61-62 तथा जीवन ज्योति, ले० खण्डेराव कुलकर्णी, पृ० 127-128)

उस शव की उच्चकोटि के डाक्टरों से अन्त्य परीक्षा कराई गई, उसकी रिपोर्ट लेने के पश्चात् शव को दाहसंस्कार के लिए श्मशान में ले गये, वहां भाई जी के सारे सम्बन्धी, महात्मा नारायण स्वामी जी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, आदि आर्यनेता तथा अन्य जनसमुदाय उपस्थित था, जब आर्यजगत् के वृद्ध सेनापति तथा भीष्म पितामह

महात्मा नारायण स्वामी जी ने भाई जी कि चिता को दाग दिया, उस समय निज़ाम के अत्याचारों की प्रतीक भाई श्यामलाल की चिता को धू-धू कर जलती हुई देखकर भाई जी की वृद्धा नानी अपने बाल बिखेर कर हृदयबेधक करुणक्रन्दन करने लगी, उस दृश्य को देखकर धैर्यशाली महात्मा नारायण स्वामी का भी हृदय डोल उठा और उन्होंने रोते हुए वहीं श्मशानभूमि में ही घोषणा कर दी कि 'आर्यसमाज के धीरज का बांध टूट गया है, अब आर्यसमाज अन्याय के प्रतिकार के लिए सत्याग्रह के मैदान में निकल चुका है' इस प्रकार भाई श्यामलाल का बलिदान यतीन्द्रनाथ दास तथा टिहरी के अमरबलिदानी श्री देवसुमन एवं स्वतन्त्र भारत मे भारतमाता के मुकुट कश्मीर की रक्षार्थ बलि होने वाले श्री श्यामप्रसाद मुकर्जी के बलिदान से किसी भी अंश में कम न होकर कहीं अधिक ही है, आर्यसमाज के इस सत्याग्रह ने निजाम की पाताल तक पहुंची हुई जड़ों को एक ज़ोरदार झटका देकर उखाड दिया, निज़ाम जैसी मज़बूत सत्ता जो विश्व का सबसे अधिक धनीमानी था वह थर्रा उठा, विख्यात हिन्दुवादी नेता डा0 मुंजे के शब्दों में कहें तो 'पर्वत अपने स्थान से हिल गया था' इस सत्याग्रह को संगठित करने, आरम्भ करवाने तथा निजाम के राज्य में जनव्यापी सशक्त आंदोलन के रूप में बना देने का अधिक श्रेय हुतात्मा श्यामलाल के भाई श्रीयुत भाई बंशीलाल जी को ही था।

श्री बंशीलाल जी व्यास

वहां के इन्हीं कार्यकर्त्ताओं में श्री बंशीलाल जी व्यास का अपना एक अनुपम स्थान था, आपने गुरुकुल घट्केश्वर नामक सस्था स्थापित कर दक्षिण में स्वाधीनता का अपूर्व कार्य किया था, आपके ऊपर भी निजाम सरकार ने कई बार प्रहार किये, परन्तु सभी कष्टों को झेलते हुए आपने अपने निश्चित ध्येयमार्ग का परित्याग करने का विचार तक मन में नहीं आने दिया और निरन्तर स्वाधीनता स्वाभिमान एवं स्वदेशी के मार्ग पर आगे बढ्ते गये, राष्ट्रीय आंदोलन के कार्यकर्त्ताओ में व्यास जी का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान था पाठक निम्न घट्ना से ही अनुमान

लगा सकते हैं, सन् 1945-46 मे जब पूर्वी बंगाल में मि0 सोहरावर्दी की हुकूमत के समय उसके इशारे तथा आशीर्वाद से भयंकार सांप्रदायिक दंगे आरम्भ हुये तव गांधी जी ने उन्हें शांत करने के अभिप्राय से वहां की पैदल यात्रा आरम्भ की, उन दिनों गांधी जी का यह नियम था कि रात्रि को वे अकेले ही एकांत में सोया करते थे, रात्रि मे उनके साथ उनके स्वयंसेवकों के अतिरिक्त किसी और को न तो ठहरने की आज्ञा थी और न ही ऐसी कोई व्यवस्था ही थी, उन्हीं दिनों व्यास जी गांधी जी से किसी कार्य से मिलने गये, रात्रि होने पर गांधी जी के स्वयंसेवकों द्वारा उक्त व्यवस्था की बात सुनकर व्यास जी सोच में पड गये, परन्तु गांधी जी ने कहा कि ये रात्रि में मेरे पास ही सोयेंगे क्योंकि ये देशभक्त आर्यसमाज के विशिष्ट कार्यकर्त्ता हैं, जिसके परिणामस्वरूप वे उस रात्रि को वहीं गांधी जी के पास ही सोये।

श्री शेषराव जी बाघमारे

ये निलंगा नामक स्थान के निवासी प्रसिद्ध वकील थे, शरीर से बहुत हृष्ट-पुष्ट थे, अपनी जवानी के दिनों मे पाँच-पाँच हजार दण्ड-बैठक लगाया करते थे, न जाने कितनी बार अराजक तत्त्वों, रजाकारो, विघटनात्मक शक्तियों के साथ इनका टकराव होता था, परन्तु हर बार ही उन्हें मुंह की खानी पड़ती थी, ये इतने बहादुर थे कि इन्होंने अपनी जवानी में पैदल ही केवल लाठी से शेर को मार गिराया था, इसलिए उनकी उपाधि ही 'बाघमारे' हो गई थी, देशभक्त व्यक्तियों के मुकदमों की बिना फीस के ही पैरवी किया करते थे, निलंगा में इनका ऐसा दबदबा था कि अराष्ट्रीय, अराजकीय तथा विघटनकारी शक्तियां इनके भय से मनमानी करने में अपने को विवश पाती थीं, इनको उस क्षेत्र या हनुमान कहा का सकता है, अन्त में वानप्रस्थ बन आनन्द मुनि नाम से इन्होंने विरक्तिपूर्ण जीवन व्यतीत किया था।

हैदराबाद में किये स्वातंत्रता संघर्ष के प्रसंग में आर्यसमाजियों के प्रयत्नों की यह अत्यन्त ही संक्षिप्त तालिका दी गई है, इन पंक्तियों का लेखक इस प्रयत्न में है कि वहां के आर्यसमाजियों के एतद्विषयक

किये गये संघर्षो का विस्तृत विवरण जनता के सामने आ सके, जिससे कि पाठकजन आर्यसमाज के गौरव से सुपरिचित हो सकें, अन्त में इतना कहना आवश्यक समझता हूं कि हैदराबाद में आर्यसमाज द्वारा किए गये संघर्षों का सम्बन्ध राजनीतिक स्वाधीनता के साथ विशेष है यह कथन तथा विचार पाठको की समझ में भली-भांति तभी आ सकेगा जबकि वे इस प्रकरण के साथ परिशिष्ट नामक प्रथम अध्याय में लिखे गये 'मिलिट्री एक्शन' नामक प्रकरण को मिलाकर पढने का कष्ट करेंगे, और अन्त में आर्यसमाज के प्रमुख नेताओं की सेवा में एक निवदेन करना अपना पावन कर्त्तव्य समझता हूं, वह यह कि हैदराबाद के चप्पे-चप्पे पर तथा हर कंकर पर, हर एक ईट पर, और पत्थर पर आर्यसमाजी शूरमाओ के तप, त्याग, बलिदान, शूरता, वीरता तथा स्वाभिमान एवं संघर्ष की कहानियां, जवांमर्दी की ओजस्वी घटनायें अंकित है, जीवन एव मौत के उस संघर्ष मे अपनी जान की बाजी लगाकर जिन्होने वहां के इतिहास का निर्माण किया, जो वहां की स्वाधीनतारूपी भव्य भवन की नींव के पत्थर बनकर नीचे दब गये, ऐसे कुछ आर्यवीर आज भी जीवित है, अतः समय रहते परिस्थितियों का तकाजा है कि उनके मुख से वह गौरवपूर्ण इतिहास निकलवाकर पुस्तक के रूप में संसार के सामने लाया जाना चाहिए अन्यथा कराल काल के तीव्र प्रवाह में बहकर इतिहास की वह बहुमूल्य निधि उन्हीं के साथ चली जायेगी, आज के राजनीतिक दल परोक्षरूप में उनका लाभ उठा रहे हैं, परन्तु दूसरी ओर हम हैं कि जो अपने पूर्वजों के इन प्रशंसनीय प्रयासों को प्रकाशित करने में भी भारी और घोर प्रमाद तथा उपेक्षा दिखा रहे हैं, अत· आर्य नेताओ! समय तेजी से भागा जा रहा है, खबरदार, संभल जाओ, अन्यथा फिर पछताये क्या होत है, जब चिडियों चुग लिया खेत।

मारीशस में भी बगावत

मारीशस मे आर्यसमाज की स्थापना उसी भांति हुई, जैसे हवा कहीं से किसी बीज को उडाकर ले जाये, और किसी दूर की भूमि पर जा पटके, और वह बीज वहां ही उग जाये, मारीशस मे आर्यसमाज

का बीज बोनेवाले और उसे अंकुरित करनेवाले महारथी थे श्री रामशरण जी मोती, वीर खेमलाल जी वकील, श्री केहरसिंह (चीदा गांव, ज़िला फिरोज़पुर) श्री रामजीलाल तथा श्री चुन्नीलाल जी आदि (चिमानी, ज़िला रोहतक) श्री लेखराम जी (आदमपुर, ज़िला हिसार) श्री हरनामसिंह (झज्जर, हरियाणा) श्री मन्शासिंह जी (जालन्धर) तथा श्री गुरुप्रसाद गोपाल जी आदि मारीशस के ही थे, रामशरण मोती जी ने पंजाब से कुछ पुस्तकें मगाई थीं, उनमें रद्दी में आर्यपत्रिका लाहौर के कुछ पन्ने थे, उन्हें पढकर वह प्रभावित हुये, उस दुकानदार से उन्होने आर्यपत्रिका का पता लगाया, इस पत्रिका को पढ़ते-पढ़ते वह आर्यसमाजी बन गये, साहस के अंगारे वीर खेमलाल जी के आर्य बनने की कहानी विचित्र है, एक सैनिक टोली मारीशस आई, इनमें कुछ आर्यपुरुष थे, उनकी बदली हो गई, जाते-जाते वे कुछ पुस्तकें वहीं दे गये, श्री भोलानाथ हलवरदार एक सत्यार्थ प्रकाश की प्रति श्री खेमलाल को दे गये, खेमलाल सत्यार्थप्रकाश पढकर दृढ आर्य बन गये, श्री रामशरण मोती जी ने खिरदी जागोल में आर्यसमाज का कार्य आरम्भ किया, तो खेमलाल जी ने मारीशस की राजधानी पोर्टलुइस व क्यूर पाइप में वेदध्वजा फहरा दी।

पोर्टलुइस के आर्यपुरुष एक हास्टल में एकत्रित होते थे, ये लोग पाखण्ड खण्डन खूब करते थे, मारीशस में सरकारी नियमानुसार किसी शव का दाहकर्म नहीं किया जा सकता था, बीसवीं शताब्दी के आरम्भ की घटना है कि मारीशस में एक सैनिक टुकड़ी आई, जिसमें कुछ हरियाणा व पंजाब के आर्य सैनिक भी थे, इनमें से किसी की मृत्यु हो गई, नियमानुसार उसे दबाने को कहा गया, आर्यवीर सैनिको ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया, सरकार ने पुलिस की सहायता से शव को भूमि में गाड़ना चाहा, परन्तु ये सैनिक विद्रोह पर तुल गये, सरकार को ललकारा देखते हैं कि हमारे सैनिक का शव कौन छूता है ? सरकार झुक गई, आर्यो की मारीशस मे यह पहली बड़ी जीत थी, मारीशस में यह पहला दाहकर्म था, यही लोग जाते-जाते सत्यार्थप्रकाश एक-दो मित्रो को दे गये, आर्यसमाज का बीज बोनेवाले यही थे। ●●

प्रिय पाठकगण! हमने संक्षेप से भारत के ही नहीं बल्कि भारत के बाहर भी घटी उन घटनाओं का, व्यक्तियों का संक्षिप्त सा विवरण

आठवां अध्याय

इस अध्याय में कुछ चुनिन्दा घटनायें दी जा रही हैं, जिनसे आर्यसमाज का राष्ट्रप्रेम, स्वाधीनता प्राप्ति के लिये उत्सुकता, त्याग, बलिदान, देश को विघटन करनेवाली शक्तियों के सुगुप्त षड्यंत्रों, कूटनीतिक चालों से देश को बचाने का भाव निहित है, घटनाओं से आर्यसमाज का देशप्रेम भली-भांति सिद्ध है।

1. दर्दनाक सच्ची कहानी

फूल खिला था, बुलबुल उसकी खूबसूरत, मुलायम पंखुडियो को छू-छूकर गा उठती थी, गुलंची ने निहायत बेरहमी से फूल तोड लिया, उनकी पंखुडियों को अलहदा-अलहदा करके टोकरे में डाल दिया, बुलबुल चीखी-चिल्लाई, लेकिन बेसुध, आखिर बेहोश होकर गिर पडी और फूल के पास ही तडप-तड़प कर मर गई।

गर्मियों के दिन थे, वह जेल में थे, मैं घर पर थी, छः महीने से मैं इसी घडी की इन्तज़ार में थी, लोग कहते थे तू! बावली न बन, वे छूट जायेगे और आ जायेंगे, मैं कहती थी वह दिन कब आयेगा ? वह सूरज कब नमूदार होगा ? वह रात कब खत्म होगी ? और वह शुभ घडी किस वक्त आयेगी ?

दिल्ली काहे को कभी देखी थी, लेकिन वे दिल्ली में ही रखे गये थे, वहीं मुकद्मा चल रहा था, मैं वहां पहुंची, देखा जेल की कोठरियां बड़ी भयानक हैं और उन तंग कोठरियों के अन्दर सावन-भादों की गर्मियों मे उनको दिन-रात वहीं रहना पडता है, मैंने पूछा क्या चारपाई मिलती है ? कहने लगे क्या भोली बनी है ? यहां चारपाई का क्या काम ? तो फिर काहे पर सोते हो ? एक कम्बल जमीन पर बिछाकर सोता रहता हूं।

मैं आपने घर वापिस आई, रात को लोग खुली छतों पर चारपाइयां बिछाकर सोये, मैं सबसे निचली कोठरी में घुस गई, एक ऊनी कम्बल बिछाया और उस पर लेट गई, मच्छर भिनभिनाने लगे, कान के इर्द-गिर्द चक्कर लगाने लगे, ऐसा मालूम होता था कि सायरन दे रहे हैं और कह रहे हैं कि-नादान, क्या ऐसी कोठरियों में गर्मी के दिनो में कम्बल के ऊपर नींद आया करती है? मै उठ बैठी, झरोखे में से चन्द्रमा की किरणे आ रही थीं, मैंने झुककर उसे देखा और पूछा-क्या चमकनेवाले! क्या तू उनके कमरे में भी चमकता है? क्या तू देखता है कि वे भी रात इसी तरह से जागते और करवटे बदलते काट देते हैं? चन्द्रमा की ओर बार-बार देखने पर भी मुझे कोई उत्तर नहीं मिला, मैं फिर लेट गई, मच्छरों ने मेरा शरीर काट-काटकर फोड़ा बना दिया, अगली रात को भी मेरा बिस्तर इस कोठरी के अन्दर ही था, तीसरी रात मच्छर मुझ अबला पर असहाय और दीन पाकर आक्रमण कर चुके थे, कि अचानक मेरी सहेली आ गई, कहने लगी, क्या मरने पर कमर बांध ली है? मैंने कहा-क्यों मैं कैसे मरने लगी हूं? उसने कहा-ये ढग तो मरने के ही हैं। मैंने पूछा क्या जो इस तरह से सोते हैं, वे ..., सहेली हां-हां मर तो जाते ही हैं, मेरी आंखे तर हो गई, आसू टपक पड़े, सहेली हैरान रह गई, अपने-आपको कोसने लगी, मैंने कहा किसी का कोई दोष नहीं है, मेरे भाग्य फूट चुके हैं, वे जेल में जिस तरह सोते हैं, तो क्या मैं उसी तरह न सोऊं?

अचानक मुझे उनको देखने की अनुमति मिली, फिर दिल्ली पहुंची, इस बार हाल पूछा तो कहने लगे, हम एक ही समय खाना खाते हैं, मैंने कहा रोटी कैसी होती है? तो उन्होने रोटी का एक टुकड़ा मुझे दे दिया, उसे मैं ले आयी, देखा उसमें चने भी हैं, गेहूं भी है और भी कुछ पड़ा हुआ है। मैंने घर पहुंचकर उसी तरह का अनाज बनाया, पीसा और रोटी पकाई और एक वक्त खाना खाकर दूसरे पहर पानी पर गुज़ारा किया, इसी तरह कई महीने बीते गये, मुकद्मा लगातार चलता रहा और आखिर एक दिन जबकि मैं अपनी कोठरी

में बैठी उनका चिन्तन कर रही थी, तो बाहर से रोने की आवाज आई, मेरा कलेजा और जोर से उछलने लगा, मेरे माथे पर पसीना आ गया, दिल को थामे मैंने बाहर आकर देखा वे उनका नाम ले-लेकर बातें कर रहे हैं, फांसी का हुकुम हो गया।

उनको आखिरी बार देखने मैं फिर दिल्ली पहुंची, उसी जेल में जहां जवानों की जवानियां खत्म कर दी जाती है, जहां नरम और नाजुक पंखुडियों को मसल दिया जाता है, मैं भी वहीं पहुची, दर्शन किये, दिल कहता था कुछ बात कर लें, होठ कहते थे हमारे अन्दर हरकत करने की ताकत नहीं है, हां उनके लब हिले और आवाज़ आई, प्राणप्यारी! संसार असार है, जो आया है, उसे जाना है, कोई किसी का साथी नहीं है। अपने-आपको सौभाग्यवती समझो कि मैं देशहित के लिए अपनी आहुति देता हूं, मेरे कानों ने इस आवाज को सुना और छमछम आंसू बरसाने शुरु कर दिये, बार-बार आंसुओं को रोकती थी कि जी भर कर देख तो लूँ, लेकिन रुकते ही न थे, अगले रोज़ हवन-सामग्री इकट्ठी कर दी गई, लोग कहने लगे आज उनका अन्त्येष्टि-संस्कार होगा, मैने कहा, यह अच्छा मौका मिलेगा, मैं उनसे अब मिलाप करूंगी, लेकिन थोडी ही देर के बार सब लोग वापिस आ गये और कहने लगे कि लाश नहीं मिलती।

फिर क्या हुआ ? मैं आगे बयान नहीं कर सकती, आज 15 दिन से मैं व्रत कर रही हूं और अब वह घड़ी करीब आ रही है, जब मेरा मनोरथ पूरा हो जायेगा, इतना कहकर देवी चुप हो गई, यह दर्दभरी दास्तां सुनकर मेरे रोगटे खड़े हो गये, आंखों से आंसू बहने लगे, दिल में दर्द होने लगा, देवी ने फिर अनाज का एक दाना भी न खाया और पानी का एक घूंट तक न पीया, पन्द्रह दिन छोड, 18 दिन इसी तरह निराहार गुज़ार दिये, एक ही जगह बैठ उनका ध्यान लगाये हुये जिस पर उसका ध्यान टिकता था, देवी ने तपस्या की और आखिर एक दिन जबकि आसामान बिल्कुल साफ था, सूरज चमक रहा था, लोग अपने कारोबार में लगे थे, कि देवी अपनी जगह से उठी, खुद ही साफ-सुथरा पानी लाई, स्नान किया और शुद्ध वस्त्र

पहनकर फिर पहली जगह पर लेट गई और कहने लगी प्यारे! बहुत दिन तक परीक्षा ले चुके, आज तो दामन न छोड़ूगी, अब जुदा न रह सकूंगी, 'यह कहा और प्राण खींचकर छोड़ दिये, लोग कहने लगे 'भाई बालमुकुन्द की धर्मपत्नी सती हो गई', मैंने कहा गुल पर बुलबुल निसार हो गई, यह बनावटी नहीं असलियत है, कहानी नहीं हकीकत है।

2. निज़ाम पर बम

हैदराबाद दक्षिण रियासत का शासक अपने कट्टर साम्प्रदायिक रुख के लिये विख्यात था। भारत स्वतन्त्र हो चुका था, परन्तु हैदराबाद मुग़लकाल का शासक बनने का स्वप्न ले रहा था। अतः रियासत में सैनिक तैयारियां चल रही थी। शस्त्र संग्रह का काम ज़ोर से चल रहा था। हिन्दुओं पर अत्याचार हो रहे थे। भारत सरकार से टकराव की पूर्ण तैयारी थी। ऐसे समय में नारायणराव नामक आर्यवीर के मन में कुछ कर गुजरने की तमन्ना जागी। इसने जगदीश तथा गंगाराम नामक दो युवकों के साथ निजाम पर बम फैंककर उसे समाप्त करने का कार्यक्रम बनाया। तीनों ने एक्शन के स्थान का निर्णय किया, एक निश्चित दिन तीनों अलग-अलग स्थानों पर अपना कार्य करने के लिए खड़े हो गये। तीनों ने ही पकड़े जाने की स्थिति में भेद न खुले इसलिये उससे पूर्व ही आत्महत्या करने के उद्देश्य से ज़हर की शीशियाँ भी साथ ले ली थीं। पहले नारायणराव ने निज़ाम की मोटर पर बम मारा परन्तु बम टकराकर बाहर गिर कर फट गया। दूसरा वार करने से पहले ही पुलिस ने उसे दबोचा। उसको अमानवीय यातनायें दी गई। तीन दिन तक ऊपर हाथ किये खड़ा रखा गया, बर्फ की सिल्लियों पर लिटाया गया, मारपीट की तो कोई हद नहीं थी परन्तु उसने अपने साथियों का नाम न बताया। उन्हीं दिनों लौहपुरुष वल्लभभाई पटेल की दिलेरी से हैदराबाद पर पुलिस ऐक्सन हुआ और मौत की घड़ियों का इन्तज़ार करता नारायणराव जेल से मुक्त हुआ। मुक्त होने पर हैदराबाद के मुक्तिदाता पटेल ने

नारायणराव को दिल्ली बुलाया और उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुये उसे कहा 'तुमने निजाम पर बम फेंका हमने गोली चलाई आओ तुम और हम भाई-भाई, परन्तु नारायणराव उस तेजस्वी व्यक्तित्व के सामने आँखों में अश्रु लिये मौन खड़ा था। अपने को मौत के मुख में धकेलकर हैदराबाद को मुक्त करानेवाले उस वीर को उसी हैदराबाद में ब्लैक लिस्ट में नाम होने से नौकरी न मिलने के कारण एक-एक दाने का मोहताज बनना पडा। आर्यसमाजी नेता स्व0 पं0 विनायकराव विद्यालंकार की कृपा से उसका नाम ब्लैक लिस्ट से निकला और आजीविका प्राप्त हो सकी। दूसरी ओर भारत की सेना से सशस्त्र टक्कर लेनेवाला देशद्रोही निज़ाम राजप्रमुख बनाया जाता है। कांग्रेस की इस धर्मनिरपेक्षता और उदारता पर कौन आंसु नहीं बहायेगा।

3. ऊमरी की बैंक डकैती

उसी हैदराबाद मे ऊमरी नामक का एक स्थान है। जिसके एक बैंक में निज़ाम का पैसा जमा था। वहां के आर्यवीरों ने सोचा कि क्यो न निजाम की यह हराम की कमाई लुटकर देश के कार्यो में व्यय की जाये। यह विचार कर कुछ आर्यवीरों ने एक निश्चित योजना के अधीन युवकों के तीन दल बनाये। निश्चित दिन वे तीनो ही ग्रामीणों के वेश में ऊमरी पहुंचें जिनमें से एक दल ने स्टेशन को घेर कर उसका चारों ओर से सम्पर्क काट दिया। दूसरे दल ने पुलिस थाने पर हमला करके वहां शस्त्रास्त्रों को अपने कब्ज़े में कर लिया। इतने मे पूर्व से निर्धारित निश्चित प्रदत्त संकेत के अनुसार तीसरे दल ने स्टेट बैक में प्रवेशकर हथियारों के बलबूते पर वहां विद्यमान सारी ही राशि को जो कि लगभग 3,00,000 हाली रुपया (निजाम का) थी, को बैलगाडियो में लादकर जल्दी निज़ाम की सीमा से बाहर होने का प्रयत्न करने लगे। निरन्तर तत्परता के परिणामस्वरूप वे उस सीमा से निकलकर बरार (मध्यप्रदेश) में प्रवेश कर गये। जहां उन्होंने

वह सारी ही राशि एक पैसा अपने पास रखे बिना कांग्रेस के नेताओं के पास पहुचा दी। उन्होने वह राशि सरदार वल्लभभाई पटेल को सौंप दी। सरकार के सामने जब वह राशि पहुची और वृत्तान्त सुनाया तब सरदार ने कहा कि उन आर्यवीरों के चरणो में मेरा नमस्कार हो। उनको मेरा सन्देश देना कि मेरे पुत्रों मेरा हार्दिक आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। पाठकवर्ग। स्वदेशभक्ति तथा ईमानदारी का इससे अधिक उदाहरण क्या होगा ?

4. एक जाँबाज़ जासूस

जब हैदराबाद में भारत की ओर से स्व0 के0 एम0 मुन्शी को जनरल एजेन्ट बनाकर भेजा गया। तब उन्हे किसी ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो वहां के सारे गुप्त भेद उन्हें लाकर दे सके। इसके लिये उन्होने वहा प्रसिद्ध आर्यसमाजी नेता श्री पं0 विनायकराव विद्यालंकार को कहा। उन्होने एक युवक का नाम सुझाया। उस युवक ने भी जान की बाजी लगाकर उस काम को करके अपनी प्रखर देशभक्ति का परिचय दिया। उस समय निज़ाम अपनी सैन्यशक्ति में वृद्धि कर रहा था, अन्य स्थानों से मुसलमान लाकर अपनी रियासत में बसा रहा था। इससे मुस्लिम सैनिक भी उसे मिल जाते थे, साथ ही अपनी रियासत मे हिन्दुओं की अपेक्षा मुस्लिम जनसंख्या बढ़ाने का भी षड्यंत्र था इसके साथ ही हिन्दुओ पर अत्याचार करने की मुसलमानों को खुली छूट दी हुई होने से रियासत से उन्हें भागने पर मजबूर किया जा रहा था। विदेशो से चोरी-छिपे हथियार मंगाये जा रहे थे, जो बीदर, वरंगल आदि की हवाई पट्टियों पर रात्रि को उतारे जाते थे। इस काम मे सिडनी काटन नामक अंग्रेज मदद करता था। वरंगल एयर स्ट्रिप के नज़दीक खेत में एक युवक किसान रात्रि में जाग रहा है, मानो किसी की प्रतीक्षा हो। रात्रि में वहां एक हवाईजहाज़ उतरने की आवाज़ होती है। वह युवक किसान झोंपड़ी से कम्बल ओढ़कर बाहर निकलता है। रेंगता हुआ उस स्थान तक पहुंच जाता है, जहां से वह जहाज से उतरते सामान को भली प्रकार

से देख सके। उसने देखा कि हथियारों की पेटियां उतर रही है वहां से ट्रक पर लादकर सामान हैदराबाद की ओर चल पड़ता है। इतना ही नहीं उस युवक ने अपने विश्वस्त व्यक्तियों द्वारा यह भी मालूम कर लिया कि जहाज का क्या नम्बर है ? ट्रक का क्या नम्बर है ? कितनी सख्या में किस क्वालिटी के हथियार आये हैं, यह सब उसने अपने उन विश्वस्त व्यक्तियों द्वारा मालूम कर लिया जोकि सरकारी सेवा मे थे तथा जिनमें देशभक्ति का माद्दा था और अपनी जानपर खेलकर यह काम करते थे। इतना ही नहीं बल्कि वही युवक अखबार की एक दुकान पर खाली बैठा रहता था। डाकिया आता और डाक एक लडका लेता, जिसमे इसी युवक द्वारा जो कि वरंगल के गुप्त समाचार होते थे, इसी युवक ने निज़ाम की आर्डिनेन्स फैक्टरी में भी किसी (येनकेन) प्रकार से प्रवेश कर सारा भेद ले दिया था। इस प्रवेश में उसी फैक्ट्री मे काम करनेवाले कुछ देशभक्त लोगो ने उसे सहयोग दिया। फैक्टरी में दाखिल होते समय कोडवर्ड का जो प्रयोग होता है उसका भी ज्ञान पहले ही प्राप्त कर लिया गया था। प्रवेश करने पर वहां के सारे ही हालात का जायजा लिया गया। वहां विद्यमान सामग्री के परिणाम का भी आनुमानिक ज्ञान प्राप्त कर लिया गया। इतना ही नहीं प्रत्युत अपने विश्वस्त व्यक्तियो को निज़ाम सरकार की सेवा एवं सेना मे भी भर्ती करा दिया। जिससे वहां होनेवाली सभी देशद्रोही साज़िशों की सही खबर दिया करते थे। निज़ाम की सेना में कितने सैनिक हैं ? उनकी गुप्त मीटिंगों में क्या-क्या चर्चायें होती है ? बाहर किन-किन देशों से सम्पर्क है ? भारत सरकार के विरुद्ध किस-किस स्थान पर क्या-क्या तैयारियां हैं ? निज़ाम की व्यक्तिगत कितनी सेना है ? कब-कब और किस-किस दिन कहां-कहां पर हिन्दुओ पर आक्रमण की योजनायें हैं ? इत्यादि सभी प्रकार की जानकारी वह युवक भारत के जनरल एजेन्ट के0 एम0 मुन्शी को देता था। निजाम सरकार की सेवा तथा सेना में जितने भी विश्वस्त व्यक्ति मिल सकते थे, जोकि उनके गुप्त षड्यंत्रों की सही-सही सूचना दे सकते थे उन सबसे उसका सम्पर्क था। वह युवक और कोई नहीं

बल्कि हैदराबाद के प्रसिद्ध आर्यनेता श्रीयुत रामचन्द्रराव वन्दे मातरम् थे। पाठक उनके त्याग तथा बलिदान का अन्दाज़ा इसी से लगा सकते हैं कि निजाम की जेलों में इसी व्यक्ति को बेतों से पीटा गया था परन्तु हर बेंत पर यह व्यक्ति 'वन्दे मातरम्' बोलता जाता था। तभी से इसका नाम वन्दे मातरम् पड गया। पाठक! ऐसे नवयुवको ने प्राण हथेली पर रखकर सिर पर कफन बांधकर देशभक्ति का कार्य किया। निज़ाम के अत्याचारी एवं पूर्ण साम्प्रदायिक शासन को जड़ से उखाड़ फेंकने में ऐसे लोगों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। परन्तु उत्तर भारत के कितने लोग हैं जो उन्हें जानते हैं ? उन्हीं के तप-त्याग के फल हम खा रहे हैं।

5. वीर वैरागी की परम्परा में

दक्षिण-भारत की हैदराबाद रियासत पर निज़ाम उस्मान अली का साम्प्रदायिक जहरीला खूनी पंजा जमा हुआ था, वैसे भी निजाम मोमिनों के अन्धे मज़हबी गढ़ अलीगढ विश्वविद्यालय का स्नातक होने से संसार को इस्लाम के झण्डे के नीचे लाने के अपने अमानवीय उपायों के कारण आलमगीर औरंगज़ेब का वास्तविक अवतार अपने को मानता था, अतः अपने राज्य में मुस्लिम गुण्डों को वैदिक धर्मियो पर अमानवीय अत्याचार करने की खुली छूट दी हुई थी, जबकि साम्प्रदायिक एकता एवं सद्भाव का झूठा दम भरनेवाले सारे राजनीतिक दल निज़ाम के विरुद्ध मुख खोलने में विवश तथा भीरु थे, उस समय भी आर्यवीरों ने ही जीवन की बाजी लगाकर निजाम के बर्बर अत्याचारों का सामना किया था, कैसे सुनिये-

ज़िला बीड (वर्तमान में महाराष्ट्र में) धारुर नामक स्थान है, जहां आर्यवीर दल का सिक्का जमा हुआ था, मुस्लिम गुण्डो से आर्य महिलाओं की रक्षा करने में सर्वदा आर्यवीर आगे रहते थे, एक बार एक मकान में हिन्दू देवियां सत्संग कर रही थीं, मुस्लिम गुण्डों ने अवसर पाकर उस स्थान पर हमला बोल दिया, आर्यवीर दल के दो वीर सैनिक लाठियां लिये देवियों की रक्षार्थ गुण्डों से भिड़ गये, गुन्डे

ने निशाना साधकर एक पत्थर आर्यवीर को मारा, परिणास्वरूप पत्थर की चोट से आर्यवीर का घुटना टूट गया, और वह नीचे गिर पडा, उस आर्यवीर ने अपने दूसरे साथी को कहा कि तुम देवियों को मकान के पिछले हिस्से से सकुशल बचाकर ले जाओ, इधर मैं उन गुण्डों को रोके रखता हूं, परिणामस्वरूप महिलाएं तो सुरक्षित बच निकलीं, परन्तु उन आततायी गुण्डों ने उस जीवित आर्यवीर को पकड़ा और घसीटते हुये चौराहे पर ले जाकर बांधकर डाल दिया, इसके पश्चात् सुखा घासफूस तथा लकडियां एकत्रित कर उस आर्यवीर को जीवित ही अग्नि में जला दिया, जलने से पूर्व उस आर्यवीर ने वहां के आर्यो को सन्देश देते हुये कहा था, कि मेरे साथियों! मेरा ज़िन्दा अग्नि में जलाया जाना तुम भूल न जाना तथा मेरे निर्दोष खून का बदला अवश्य लेना, जिससे कि परलोक में मुझे आत्मिक शांति मिल सके, ऐसा कहा जाता है कि इस घटना के ठीक 20 या 25 दिन बाद ही मिलिट्री ऐक्शन हुआ, और उसी स्थान पर उस समय वहां के आर्यवीरों ने अनेक मुस्लिम गुण्डों को उसी प्रकार राख बनाकर उस आर्यवीर के खून का शानदार बदला लिया था, उस बलिदानी आर्यवीर का नाम 'अमर शहीद कांशीराम' है, धारुर में उस चौराहे का नाम 'अमर शहीद कांशीराम' चौक है, जो आज भी उस वीर के बलिदान की स्मृति को ताजा कर देता है।

6. ओइम् का झण्डा लगाना भी अपराध

जिला धाराशिव में ईट नामक ग्राम है, वहां पर एक आर्यवीर दम्पति रहते थे, जिनका नाम श्री कृष्णराव ईटेकर था, वे अपने ग्राम में आर्य उपदेशकों को बुलाकर प्रचार कराया करते थे, स्वयं भरी बन्दूक लेकर उपदेशक महोदय के पास खडे रहते थे, ताकि कोई दुर्घटना न हो, यदि कभी कोई सुननेवाला न भी होता था तो अपनी देवी को श्रोता बनाते और इस प्रकार धुन का धनी यह आर्यवीर वैदिक धर्म के प्रचार एवं रक्षा में सदा तत्पर रहता था। हम वैदिक धर्मी है इस बात का परिचय देने के लिए अपने मकान पर सदा ओइम्

ध्वज लगाये रखता था, स्थानीय मुस्लिम गुण्डे उससे बहुत ही चिढ़ते थे, तथा घबराते भी थे। अतः वे उसकी घात में लगे रहते थे, जब सीधी अंगुली से घी निकलता न देखा तब उन गुण्डों ने छलबल का सहारा लिया, एक दिन पुलिस का थानेदार गुण्डों के दलबल के साथ उनके मकान पर जा धमका और कृष्णराव को बुलाकर धमकाने लगा, निर्भीक कृष्णराव भी मुंहतोड़ उत्तर देता जाता था, थानेदार ने घर पर ओइम् का ध्वज लगाने पर आपत्ति की तो कृष्णराव ने उसी निर्भयता से उसका प्रतिवाद किया, इस प्रकार अप्रत्याशित तथा निर्भीक उत्तर से थानेदार बौखला उठा और मज़हबी जुनून के ज़ोर मारने पर उसने तुरन्त अपनी बन्दूक से कृष्णराव की छाती पर गोली दाग दी, गोली की आवाज़ सुनते ही उसकी धर्मपत्नी ने स्थिति को भाप लिया और अपनी बन्दूक भरकर रणचण्डी का रूप धारण किया, तथा आपने पति के हत्यारे तथा गुण्डों पर टूट पड़ी, देखते ही देखते उसने कई गुण्डों को धराशायी कर दिया, गुण्डे अधिक संख्या मे थे अतः उन्होंने उस मकान को चारों ओर से घेर लिया। वीर कृष्णराव की लाश को उसके मकान में फेंककर उन गुण्डों ने मकान पर मिट्टी का तेल छिड़क कर उस मकान को आग लगा दी, वह देवी तब भी बराबर उन मजहबी गुण्डों से लोहा लेती रही परन्तु अन्त में वह देवी उन आततायियों द्वारा पति की लाश के साथ ही उसके मकान में भस्म कर दी जाती है, धन्य थे वे दम्पति जिन्होंने अपना धर्म नहीं छोड़ा। किन्तु सहर्ष बलिदान होना स्वीकारा, कृष्णराव दम्पति का बहाया हुआ निर्दोष खून जो निज़ामी इतिहास के काले पन्नों पर तथा मज़हबियों के माथे पर एक काला बदनुमा अमिट धब्बा है, क्या मुस्लिम मजहब में आनेवाली पीढियां अपने सांप्रदायिक सद्भावपूर्ण आचरणों से इसे पोंछने का साहस कर सकेंगी ? काश! कि सांप्रदायिक एकता की रात-दिन दुहाई देने वाले राजनीतिक दल सांप्रदायिक भेदभाव के उत्पादक एवं पोषक स्थान तथा सामग्री को समझने का यत्न कर पाते।

7. बहिनों के अपमान का प्रतिशोध

1946 का ज़माना था, जबकि श्री त्यागी जी के नेतृत्व में लगभग एक सौ आर्यवीर लीगी गुण्डों से पीड़ित नवाखाली (बंगाल) में हिन्दुओं की रक्षा में जुटे हुये थे, आर्यवीर अनेक बाधाओं को पार करते हुये पीड़ितों तक वस्त्र तथा भोजनादि की सहायता पहुंचाते थे, कई स्थानों पर तो उफनती हुई नदियों का सामना करना होता था, एक स्थान पर एक देवी का मृत शरीर मिला, जिस पर लीगी गुण्डों द्वारा निर्दयतापूर्वक किये गये तेज़ छुरों के बावन घाव विद्यमान थे, इस भयंकर दृश्य को देखकर कई आर्यवीरों के नेत्रों से आसुओं का प्रवाह बहने लगा, तो कई वीरों के अन्तःस्थल में प्रचण्ड मन्यु जागृत हो उठा, सायं के समय एक पर्वतीय मार्ग से एक आर्यवीर किसी कार्यवश जा रहा था, उसने अपने आगे एक लीगी गुण्डे को भी जाते हुये देखा, उसे देखते ही उस आर्यवीर की आंखों के सामने आर्यललना का 52 घावों से छलनी हुआ शरीर तैरने लगा, और तत्काल उसका क्रोध जागृत हुआ, तभी उस आर्यवीर ने पीछे से झपटकर उस गुण्डे की गर्दन को पकड लिया, जैसे ही उस गुण्डें ने चिल्लाने के लिए मुंह खोला वैसे ही उस आर्यवीर ने अपने बगल में लटक रहे रिवाल्वर को हाथ में पकडा और उसकी नली उसके मुख मे डालकर घोड़े को हाथ की अंगुली से दबाया, और देखते-देखते उसका शरीर भूमि पर निर्जीव लेट गया, रात्रि में त्यागी जी ने सभी आर्यवीरों को एकत्रित किया और झाड लगाते हुये कहा कि कुछ आर्यवीर अनुशासन भंग कर हिंसा पर उतारु हो गये हैं, इस प्रकार हम यहां जिस लक्ष्य के लिये आये हैं ऐसे मनमाने कार्यो से उनमें बड़ी बाधायें खड़ी हो जायेंगी, और हमारा आर्यवीर दल संगठन बदनाम भी हो जायेगा, इस प्रकार त्यागी जी अपने साथियों को समझा रहे थे कि उस आर्यवीर से न रहा गया ओर उसने तभी सबके बीच में खडे होकर कहा कि त्यागी जी एक और आप हमें छुरों से बीन्धे गये 52 घाव वाले हमारी बहिनो के शरीर दिखाकर हमारा जोश उभारते हो और फिर आप

हमसे आशा करते हो कि ऐसे कारुणिक दृश्य देखकर अपनी बहिनों की इज्जत लुटते हुये देखकर भी हम चुप बैठ जाये ? त्यागी जी ने कहा कि तुम्हारी वीरता तथा स्वाभिमान की प्रशंसा करता हूं परन्तु भाई मेरे समय देखकर चलो, इस आर्यवीर का नाम श्री प्रहलादराय आर्य भिवानी (हरियाणा) है जो आज वृद्धावस्था में भी आर्यवीर दल के कार्यो में सदैव तत्पर रहते हैं।

8. ईट का जवाब पत्थर से नं0 1

आर्यसमाज अजमेर का वार्षिकोत्सव हो रहा था, भारत के विख्यात वक्ता कु0 सुखलाल आर्य मुसाफिर गरज रहे थे, वे अपनी ओजस्वी वाणी से कबर-पूजा का खण्डन करते जा रहे थे, वहां से कुछ दूर पर ही मुसलमानों का प्रसिद्ध पूजा स्थल 'हज़रत चिश्ती की दरगाह' है, कुंवर जी के भाषण को सुनकर विवेकहीन मुस्लिम वर्ग का अंधा सांप्रदायिक जोश उफन पडा और देखते ही देखते कई सौ मुसलमानों का झुण्ड घातक शस्त्रों से लैस हो वहां एकत्रित हो गया, तथा 'अल्ला हो अकबर' के नारे आकाश में गूंजने लगे, उसमें से अधिक जोशीले युवक आगे बढे और कुंवर जी को मारने, काटने की धमकियां देने लगे, इससे उपस्थित जन-समुदाय में बेचैनी उभरने लगी और कुछ श्रोता इधर-उधर खिसकने लगे, वातावरण बहुत गर्म हो उठा, स्थिति की भयंकरता को भांपकर एक लम्बा-तगड़ा नौजवान रिवाल्वर हाथ में थामे जल्दी से स्टेज पर आगे आया तथा उत्तेजित जनसमुदाय की ओर रिवाल्वर की नली तानकर गर्जता हुआ बोला, खबरदार! यदि किसी ने कुंवर साहब को छूने की हिम्मत की तो मेरे इस रिवाल्वर से उसकी लाश यहीं पर लोटती नज़र आयेगी, यदि कुंवर साहब की तर्कों का जवाब आपसे नहीं बन पाता तो सज्जनों की तरह चुप बैठो, और यदि इसके विपरीत आपने कोई ऐसी वैसी-हरकत करने की चेष्टा की तो विश्वास रखो तुम यहां से ज़िन्दा बचकर नहीं जा सकोगे, तुम्हें पता नहीं हम ऋषि दयानन्द के सैनिक अपने सरधड़ की बाज़ी लगाकर कार्य-क्षेत्र में उतरे हैं, यह सभा है, इस

कारण यहां सभ्य लोगों की तरह आचरण करो, उस आर्यवीर के तेजस्वितापूर्ण व्यक्तित्व तथा इस वीरोचित उत्तर से वे इस्लाम के पालतू मिट्टी के शेर वहां से खिसकने लगे और 'अल्ला हो अकबर' के नारे लगाते हुये अपने-अपने घरों की ओर चले गये, इस आर्यवीर का नाम राजस्थान-केशरी, कर्मनिष्ठ श्री जियालाल जी आर्य है।

9. ईट का जवाब पत्थर से नं0 2

1919 ई0 के जलियावाले बाग के काण्ड के हीरो महाशय रतनचन्द उर्फ रत्नों के यौवनकाल का एक प्रसंग - उनकी अल्हड अवस्था थी, शरीर से बलिष्ठ थे, पाखण्डी धूर्तों के बहकावे मे आकर आर्यसमाजी उपदेशकों पर ढेले तथा पत्थर बरसाया करते थे, जिन स्टूलों पर खड़े होकर वे उपदेश किया करते थे, कभी-कभी उनके नीचे से सरकाकर उनको नीचे गिराकर मज़ा लूटते थे, उनका विश्वास था कि परमेश्वर ने एकता तथा शक्ति तो मुसलमानों को ही दी है तथा धन दौलत एवं फूट और कमज़ोरी हिन्दुओं को दी है, हिन्दू कमजोर तथा मुसलमान दबंग हैं यह उनका दृढ विश्वास था, एक दिन वे अपने किसी घनिष्ठ प्रिय सम्बन्धी के आग्रह पर लाहौर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुये, उस समय वहां एक युवा आर्य-सन्यासी ओजस्वी व्याख्यान दे रहा था, व्याख्यान का विषय कुरान का खंडन और वैदिकधर्म का मण्डन था, लाहौर वैसे ही मुसलमानों का गढ था और इतना ही नहीं बल्कि यह शास्त्रार्थो का युग था, इस कारण उत्सव में कई हजार मुसलमान भी बैठे थे, कुरान का खण्डन सुनकर उनके मजहबी जुनून मे उबाल आया और वे वहां दंगा-फसाद करने पर उतारू हो गये, इतने में ही एक रौबीले चेहरे का हृष्टपुष्ट दबग जवान स्टेज पर आगे आया और दंगाइयों को सम्बोधित कर चेतावनी भरे शब्दों में कहा कि हमारा सन्यासी युक्ति और प्रमाण के साथ बोल रहा है इतने पर भी यदि किसी भाई को शंका होती है तो उसे बाद में समाधान का समय दिया जायेगा, अत कोई सज्जन बीच में गडबड कर व्यवस्था भंग करने की कोशिश

न करे, हम आप लोगों के साथ सज्जनता से पेश आना चाहते है, परन्तु यदि आपने सभ्यो जैसा व्यवहार न कर बीच में बाधा डालने की कोशिश की तो आप यहां से जैसे आये थे वैसे नहीं जा सकोगे, उस अवस्था में मैं अपने स्वयंसेवकों को आदेश दूंगा कि वे ऐसे दंगाइयों की अपनी डण्डों से ऐसी मरम्मत करें कि उन्हें अपने घर जाकर कई दिनों तक अपनी पीठों की मालिश तथा सिकाई करनी पडे, अतः आप यहां सभ्यता का व्यवहार करें क्योंकि यह सभ्यों की सभा है. महाशय जी ने कहा कि इतना सुनते ही सभी लोग चुपचाप बैठ गये और सारा कार्यक्रम शान्तिपूर्वक होता रहा, आर्यसमाज के इसी दबदबे ने पौराणिक रतनचन्द को महाशय रतनचन्द के रूप में बदलकर देश को एक बहादुर योद्धा दिया, जिसे सशस्त्र-क्रांति में भाग लेने के अपराध में पहले फांसी और फिर बदलकर आजीवन कालेपानी का दण्ड दिया गया था, जो देश के स्वतांत्रय सेनानियों मे एक नक्षत्र है। जिस आर्यवीर के साहस ने आर्यसमाज तथा देश को ऐसा तपस्वी योद्धा दिया, उस आर्यवीर का नाम चौ0 रामभजदत्त था, जो कि स्वयं भी राष्ट्रीय स्वाधीनता का प्रखर योद्धा था।

10. हम आये लाज बचाने

1946 का भयकर समय था जबकि मि0 सोहरावर्दी के आशीर्वाद से मुस्लिम गुण्डे बंगाल के नवाखाली ज़िले में हिन्दुओं के निर्मम संहार का कार्य कर रहे थे, अखिल भारतीय दल के प्रधान सेनापति श्री ओमप्रकाश पुरुषार्थो उस समय कई सौ सशस्त्र आर्यवीरों के साथ वहां शिविर लगाकर हिन्दुओं की सुरक्षा के कार्य में जुटे हुये थे, उधर पास ही श्रीमती सुचेता कृपलानी के नेतृत्व में कांग्रेस का शिविर भी अपना कार्य कर रहा था, परन्तु कांग्रेस के लगभग सभी कार्यकर्त्ता सुरक्षा कार्य करने की अपेक्षा आर्यसमाजी शिविर के कार्यकर्त्ताओं की निन्दा कर उनके मार्ग में बाधा बन सुरक्षा-कार्य को शिथिल करने में ही अपनी समस्त शक्ति लगा रहे थे, परन्तु आर्यवीरों का कार्य ऐसा न होने पर भी पहले की अपेक्षा

और अधिक लग्न तथा उत्साहपूर्वक चलने लगा, वहां के क्षेत्र के लीगी गुण्डों का तो कार्य तथा स्वभाव ही हिन्दुओं पर अपना साम्प्रदायिक क्रोध उतारना होता था, परन्तु शस्त्रधारी आर्यवीरों के सामने आने में वे मोमिन बहादुर सदा कतराया करते थे।

आखिर एक दिन योजनाबद्ध तरीके से उन्होंने कांग्रेस के शिविर पर हिंसात्मक आक्रमण कर दिया, वहां शिविर को लूट-खसोट तथा जलाकर वे गुण्डे सुचेता जी को बालों से पकड़ घसीटते हुये अपने प्रभावी क्षेत्रों की ओर ले जाने लगे, उस शिविर का एक कार्यकर्त्ता उनकी आंखों से बचकर पुरुषार्थी जी के पास आया और घबराकर रोते हुये सारी स्थिति का वर्णन कर दिया, तत्काल पुरुषार्थी जी ने अपने आर्यवीरों को उन गुण्डों पर सशस्त्र आक्रमण का आदेश दे दिया, आदेशानुसार आर्यवीरों ने उन मुजाहिदों का नशा झाड़ दिया, अन्त में पुरुषार्थी जी सुचेता के पास पहुंचते हैं जो अपने खुले बालों समेत धूल में सनी पडी थी, जब पुरुषार्थी जी ने उनको उठाया, तब वे डबडबाये नेत्रों से बोलीं-भैया! तुम आ पहुंचे, प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा कि-गुण्डों द्वारा बहिनों का अपमान होते देखकर ऋषि दयानन्द के सैनिक चुप कैसे रह सकते हैं? अतः बहिन तुम्हारे पास आने का यही समय था, सो हम अपने कर्त्तव्य की पूर्ति के लिए समय पर आ पहुंचे, सुचेता जी की स्थिरता, अधोदृष्टि तथा मौन ऋषि दयानन्द के वीर सैनिकों के प्रति अपनी मूक कृतज्ञता का स्पष्ट इज़हार कर रही थी।

11. राजस्थानी परम्परा की पुनरावृत्ति

1947 का वर्ष देश के इतिहास में सदा अपशकुन के रूप में स्मरण किया जाता रहेगा, भारत-विभाजन के समय साम्प्रदायिक उन्माद की लपटो में उत्तर-भारत झुलसा जा रहा था, पाकिस्तान बनने की घोषणा के साथ ही पश्चिमी पंजाब से हिन्दुओं का निष्क्रमण आरम्भ हो चुका था। कराची की धनपतमल आर्य कन्या पाठशाला में हज़ारों हिन्दू-शरणार्थी भारत जाने की बाट देख रहे थे, एक दिन

अचानक ही योजनाबद्ध तरीके से कई सौ मुस्लिम गुण्डों ने उक्त स्थान पर आक्रमण कर दिया, उन्हीं शरणार्थियों में आर्यवीर दल सिन्ध प्रान्त के प्रमुख कार्यकर्त्ता श्री नारायणराव जी सपरिवार थे, आर्यवीर का प्रचण्ड मन्यु जागृत हुआ और वह छ. फुटा जवान अपने कुछ चुने हुये साथियों के साथ लाठी लेकर उनसे भिड गया, वहां जमकर लडाई हुई, अचानक वीर नारायणराव शहीद हो जाता है, इध ार इनकी पत्नी को ज्ञात हुआ तो आर्य सुपुत्री ने रणचण्डी का रुप धारण किया तथा अपनी वीर सखियों के साथ भवानी बन उन दुष्टों पर टूट पड़ी, इस दृश्य को देखकर तो प्रत्येक हिन्दू अपनी रक्षा के लिए कटिबद्ध हो उठा और आंखे झपकते ही वे लीगी शूरमा नौ-दो-ग्यारह हो गये, वह देवी अपने पति नारायणराव की लाश के पास बैठ गई, अनेक स्त्री-पुरुष उसके पास शोक-संवेदना प्रकट करने लगे, प्रत्युत्तर में वह वीरांगना बोली यह शोक करने का समय नहीं है, मेरा वीर पति जाति की रक्षा में शहीद हुआ है, अतः उसके बलिदान पर दुःख न मनाकर हमें उनके तेजस्वी-जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिये। प्रिय पाठको! राजस्थान की वीर क्षत्राणियों के गौरवशाली इतिहास की क्या यह पुनरावृत्ति नहीं है?

नवम अध्याय

परिशिष्ट -।

ऐसा कहा जाता है कि प्रचीनकाल के किसी राजा के न्यायालय में एक मुकदमा आया, जिसमें यह था कि एक बच्चे के सम्बन्ध में दो स्त्रियां अपना बच्चा होने का दावा करती थीं, राजा ने बहुत विचार-विमर्श के उपरांत निर्णय किया कि जल्लाद को बुलाओ और उस बच्चे के तलवार से बराबर दो टुकड़े कर दोनों को बराबर बांट देने की बात कही, जिस स्त्री का वह बच्चा नहीं था, वह बोली कि सरकार आपने बहुत अच्छा न्याय किया, परन्तु जिस देवी के तन से वह बच्चा पैदा हुआ था, वह कांपती, रोती तथा गिडगिड़ाती हुई बोली, राजन्! आप किसी भी हालत मे ऐसा न करें, आप मेरे जिगर के टुकड़े के टुकड़े न कराइये, मैं इस पर से अपना अधिकार छोड़ती हूं, ये जीवित बच्चा इसको ही दे दीजिये, जिससे ये बच्चा जीवित रहेगा तो कम से कम मैं इसे अपनी आंखों से देखकर अपने दिल को ध ैर्य, शांति तथा तसल्ली तो दे सकूंगी।

यद्यपि देश की स्वाधीनता के लिये जो संघर्ष कई शताब्दियों से चल रहा था उसकी समाप्ति का दुःखमिश्रित परिणाम हमें विभाजन तथा स्वाधीनता के रूप में 15 अगस्त 1947 को मिल गया था, चूंकि आर्यसमाज उस संग्राम में विशाल स्तर तथा परिमाण मे अपना सर्वात्मना बलिदान तथा त्याग करने के कारण स्वतन्त्र भारत को अपने औरस पुत्र की ही भांति मानता था, अतः स्वाधीन भारत में जो भी ऐसे कांड हुए हैं जिनसे देश की स्वतन्त्रता, राष्ट्रीयता, एकता को खतरा हुआ उनका सबसे अधिक विरोध तथा प्रतिकार आर्यसमाज ने कर अपने स्वतन्त्र देश की सच्ची माता होने की भावना को प्रकट किया, जैसे कि उपरोक्त कथानक में वास्तविक माता ने अपने बच्चे

के जीवन को बचाकर अपने वास्तविक मातृत्व का परिचय दिया था, आर्यसमाज की इसी भावना तथा कार्यतालिका का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने के अभिप्राय से परिशिष्ट रूप मे यह अध्याय लिखा जा रहा है, स्वातंत्र्योत्तरकाल में सबसे पहला खतरा 1947 के देशविभाजन के समय भयानक एवं विशाल स्तर पर हुये नरसंहार के रूप में उपस्थित हुआ, उस समय की गई आर्यसमाज की सेवाओं का कुछ संक्षिप्त विवरण पहले दिया जा चुका है, उस काल का कुछ विवरण यहां भी दिया जा रहा है।

1947 का नरसंहार

सम्पूर्ण मानवजाति के इतिहास में ऐसा शर्मनाक, जघन्य, कुत्सित तथा बर्बर कांड कभी हुआ हो ऐसा इतिहास में ढूंढने पर भी मिलना असम्भव है। हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के जानी दुश्मन बन गये थे, एक दूसरे के अस्तित्व का नामोनिशां मिटा देने पर तुले हुये थे, जब इस भावी संकट का आभास आर्यसमाज को हुआ तभी आर्यसमाज के नेताओं, प्रचारकों, कार्यकर्त्ताओं एवं उपदेशको ने उस संकट से डटकर टक्कर लेने तथा उस पर विजय प्राप्त करने के लिए हिन्दुओं को सावधान होकर तैयारी आरम्भ करने का प्रचाराभियान शुरु कर दिया था, 1942 में लाहौर में आर्यसमाज बच्छोवाली के वार्षिकोत्सव पर भाषण करते हुए आर्यजगत् के विख्यात सन्यासी स्वा0 स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने अपने भाषण में स्पष्ट कहा था ''लड़ाई तुम्हारे दरवाजे पर आ पहुंची है, अतः तैयार हो जाओ, नहीं तो घाटे में रहोगे।''

(वीर सन्यासी–ले0 राजेन्द्र जिज्ञासु, पृ0 198)

आर्यसमाज की इस चेतावनी का ही यह प्रभाव हुआ कि हिन्दुओ ने भावी संकट का ध्यान कर ज़ोर–शोर के साथ शस्त्रास्त्रों का संचय करना आरम्भ कर दिया, लेखक को भली–भांति स्मरण है कि जब उस आनेवाली संकट की घड़ी के प्रति सामान्यजन बहुत ही बेखबर तथा उदासीन थे, तब हमारे ग्राम और विशेषकर घर में भाले, पिस्तौल,

बन्दूक, खाली कारतूस तथा बारुद आदि आत्मरक्षा के निमित्त हिन्दुओं को स्वल्पमूल्य पर प्रदान किये जाते थे, घर में बड़ी मात्रा में बारुद, देशी पिस्तौल तथा बन्दूक एवं छोटी तोपों का निर्माण धडाधड़ होता था, कहने का भाव यह है कि जहां–जहां भी आर्यसमाज का प्रभाव था वहीं–वहीं पर देशद्रोही लीगी गुण्डों से प्रबलतम टक्कर लेने के गढ बनते जा रहे थे, शायद राजनैतिक प्रभावी लोगों द्वारा हिंसा, अहिंसा, सांप्रदायिकता की अपनी मनघड़न्त कल्पनाओं को सिद्धांत रूप देकर विज्ञापित इस युग में आर्यसमाज के इस कार्य को हिंसा का व्यर्थ आक्षेप लगाकर निंदा की जाये, लेकिन पाठक सन् 1947 के कट्टर मजहबी जुनून से भरे वातावरण पाशविक हिंसा के खतरनाक दौर में पहुंचने की कृपा करे, जिस समय अंधी सांप्रदायिकता के भीषण प्रवाह तथा तीव्रधारा में सज्जनता, अहिंसा, सहिष्णुता, शांति एव विश्वबन्धुता तथा निष्पक्ष भावना तिनकों की भांति बहे जा रहे थे, उस समय खून के प्यासे, मानवता तथा सज्जनता के कातिल, उन लीगी गुण्डों के आगे सहिष्णुता तथा क्षमाभाव का प्रदर्शन करना समय स्थिति के प्रतिकूल आर्यसमाज को निर्बलता का दिखावा एवं उन रक्तपिपासु हत्यारों को अपने कुत्सित कर्म में प्रेरित तथा उत्साहित कर देश जाति को भयानक हानि के सिवाय और क्या हो सकता था ? अतः आर्यसमाज ने देशकाल परिस्थिति और नीति को देखते हुए जो कठोर कदम उठाया वह समयोचित ही था, तत्कालीन चोटी के कांग्रेस नेताओं के द्वारा अपनाई गई तथाकथित नीति की असफलता से भी आर्यसमाज के इस कालोचित कदम का प्रबल समर्थन होता है, आर्यसमाज का यह कार्य सांप्रदायिक आधार पर न होकर उस समय की भीषण परिस्थितियों में राष्ट्र रक्षा के उद्देश्य से और विरोधियो के गन्दे इरादों की प्रतिक्रिया के रूप में ही किया गया था, यह वह समय था जबकि सब ओर से 'लड़ के लिया है पाकिस्तान हंस के लेगे हिन्दुस्तान' के गगनभेदी नारे गूंजते थे, भारत की मुस्लिम रियासतों के नवाब मुस्लिमवर्ग में हथियार बांट रहे थे, पेशावर से दिल्ली तक हिन्दुओं का सफाया कर

पाकिस्तान बनाने की गुप्त योजनायें साकार रूप धारण करती जा रही थीं, नीचे ही नीचे बारूदी सुरंगे बिछाकर दिल्ली के यमुना ब्रिज को उडाने की योजनायें बन चुकी थी, उस समय आर्य वीर दल ने हिन्दुओं की रक्षा का अपूर्व कार्य किया, आर्यनेता लाला रामगोपाल जी शालवाले तथा श्री ओमप्रकाश त्यागी ने दिल्ली के मुस्लिमवर्ग की उक्त घातक योजनायें भारत सरकार को पकड़वाकर जहां हिन्दुओं को महाविनाश से बचाया वहां एक साहसिक ऐतिहासिक कार्य द्वारा देश की सेवा की, अन्यथा भारत का दिल दिल्ली गुण्डों के नापाक इरादों तथा योजनाओं के द्वारा पाकिस्तान में मिला दिया जाता और भारत बेदिल देह के समान रह जाता, पाकिस्तान से विस्थापित होकर आये भाइयों की जो भोजन, वस्त्र, औषधियों से सहायता की गई वह आर्यसमाज की पीड़ितो के प्रति सेवाभाव, आत्मीयता तथा सहानुभूतिशीलता का ज्वलन्त प्रमाण है, इस प्रकार स्वाधीनता संग्राम के इस मधुर फल आज़ादी को हम पौराणिको की रामुद्रमंथन कल्पना का अलंकार दे सकते हैं, जैसे रामुद्र मन्थन के परिणामस्वरूप अमृत जैसे मधुर फल के साथ मदिरा और विष आदि कटुतम फल भी प्रकट हुए ठीक वैसे ही स्वाधीनता सग्राम रूपी समुद्रमथन से स्वाधीनता रूपी अमृत के साथ विभाजन रूपी विष और सांप्रदायिक उन्माद रूपी मदिरा की भी प्राप्ति हुई, उस भयानक काल में भी आर्यसमाज रूपी शिव ने भारतराष्ट्र के कल्याण को ध्यान में रखते हुए विभाजन के विष को अपने कंठ में धारण कर परोपकारिता तथा जनहितैषिता का परिचय दिया।

मिलिट्री ऐक्शन

जब अंग्रेज, भारतीयों के हाथ में शासनसूत्र सौंप गये तब भारत लगभग 600 से भी अधिक रियासतों में बंटा हुआ था, परन्तु नवभारत के निर्माता, लौहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल के नीतिनिपुण, राजनीतिज्ञ तथा कूटिनीतिक मस्तिष्क ने उन सबको खून का एक भी कतरा बहाये बिना ही शांतिमय उपायों से भारतसंघ में

सम्मिलत करा लिया, उस समय भी पृथक्तावादी मनोवृत्ति का प्रतीक हैदराबाद का निजाम किसी भी तरह भारतसंघ में सम्मिलित होने को तैयार न हुआ, इतना ही नहीं प्रत्युत उसने अपनी रियासत की एक सवतन्त्र मुस्लिम राष्ट्र होने की घोषणा भी कर दी, हैदराबाद के प्राचीन मानचित्र के अनुसार उसने बरार, उत्तरप्रदेश तथा आंध्रप्रदेश के ज़िलों पर भी अपना अधिकार जतलाना शुरू कर दिया, गोवा को पुर्तगाल से खरीदने के प्रयास होने लगे, संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता के सपने देखे जाने लगे थे, साथ ही अंग्रेजों की जूतियां चाटकर 'ब्रिटिश कामनवेल्थ' में सम्मिलित होने की योजनायें बनने लगी थीं, अपनी इन योजनाओं की पूर्ति के लिए निज़ाम ने अपने राज्य में 'मजलिस इत्तेहादुल मुसल्मीन' नामक मतान्ध संस्था के सैनिकों के रुप में तीन-चार लाख रजाकरो की प्राईवेट सेना को खड़ी कर ली थी, तथा कारिम रज़वी के नेतृत्व में भारत सरकार से सैनिक टक्कर लेने के मंसूबे बांधे जा रहे थे, इधर कम्युनिस्ट पार्टी से गठजोड़ कर जनता को कुचलने का प्रोग्राम आरम्भ कर दिया था, राज्य की ओर से पुलिस, सेना, रजाकर तथा कम्युनिस्टो की तानाशाही के विरुद्ध सिर उठाने वालों को बिना पूछे ही गोली से उडा दिये जाने के आदेश दिये जा चुके थे, परन्तु इतनी भीषण, भयंकर तथा प्रतिकूल परिस्थिति होने पर भी वहां के आर्यसमाजियों ने उनका विरोध कर स्वाधीनता दिवस मनाया, उस संघर्ष में हिन्दुओं विशेषकर आर्यसमाजियों पर जो अमानुषिक अत्याचार किये गये पाठक उसकी कुछ कल्पना निम्न घटनाओ को पढकर कर सकते हैं।

आर्यसमाज के चोटी के नेताओ, उपदेशकों, कार्यकत्ताओं को बिना मुकद्मा चलाये ही जेलों मे ठूंस दिया गया, अपने राज्य की सामान्य हिन्दू प्रजा के लूटपाट, हत्या-आगजनी, अपहरण का बाजार सरेआम गर्म किया गया, 'परकाल' नामक स्थान पर ध्वजदिवस के लिए एकत्रित जनसमूह पर बड़ी बेरहमी के साथ गोलियां दागी गई, जिसमें लगभग 150 हिन्दू घायल हुये, तथा 250 हिन्दुओं को बिना अपराध के ही गिरफ्तार किया गया, पीडित जनों के लिए आर्यसमाज के द्वारा अनेक सहायता शिविर खोल दिये गये, ग्राम धारुर, जिला

वीड में गुण्डो से हिन्दू महिलाओं की रक्षा कर रहे, आर्यवीर काशीराम को उन लीगी गुण्डो के द्वारा चौराहे पर सूखी घासफूस डालकर जिन्दा ही अग्नि के अन्दर जला दिया गया था, इसी प्रकार घोडेवाडी जिला, बीदर के श्री गोविन्दराव आर्य को रजाकारो ने जीवित पकडकर अग्नि की भेंट कर दिया था, ज़िला उस्मानाबाद के ईटें नामक गांव में श्री कृष्णराव आर्य तथा उनकी धर्मपत्नी गोदावरी को अपने मकान पर 'ओइम्' का झडा लगाने के आरोप मे लीगी गुण्डों ने नृशंसतापूर्वक मारकर अग्नि में झोक दिया था, हिन्दू देवियों का अपहरण, सतीत्वविनाश तो एक सामान्य बात बन गई थी, यह सब कुछ हिन्दू विशेपकर आर्यसमाजियों के भारत सरकार के पक्ष का समर्थन करने का ही परिणाम था, क्योंकि हैदराबाद स्टेट काग्रेस तो पहले ही अवैध घोषित होने से भंग हो गई थी, अतः वहां की स्वाधीनता का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व अब आर्यसमाज पर ही आ पडा था, ऐसी अवस्था में हैदराबाद के नरशार्दूल श्री शेषराव जी वाघमारे आर्ययुवकों का संगठन कर सशस्त्र क्रांति के द्वारा रजाकारों का कडा तथा सफल मुकाबला कर रहे थे, इसी प्रकार श्री एबोले रेड्डी ने बमों के धमाके के साथ सशस्त्र क्रांति का आरम्भ किया, आप 'पोचमपल्ली' तालुका में मेडचल में 65 हथगोलों के साथ बन्दी बनाये गये थे और 14 महीने के बाद मुक्त हुए थे, उसी काल में पं0 नरेन्द्र जी, श्री पं0 विनायकराव जी, श्री बंशीलाल जी व्यास, श्री भाई बंशीलाल जी इत्यादि न जाने कितने आर्यसमाजी कार्यकर्त्ताओं ने अपनी जान हथेली पर रखकर हैदराबाद की जनता को निज़ामी गुलामी के पजे से मुक्त कराने का ऐतिहासिक कार्य किया, उसी काल की घटना है कि श्री नारायणराव पवार ने आलसैन्स स्कूल के पास निज़ाम की मोटर पर उसकी हत्या करने के अभिप्राय से बम फेंका था, मोटर उस समय लगभग 40 मील प्रतिघंटा की गति से जा रही थी, बम से उसका पिछला हिस्सा ही नष्ट हुआ, मोटर आगे न जाकर घटनास्थल पर ही आ गई, यदि आगे बढ़ती तो मैथोडिस्ट स्कूल पर गंगाराम उर्फ गण्डैय्या और बुगलकुण्डागली के मोड़ पर जगदीश इसी उद्देश्य से बम और पिस्तौल लिये तैयार खडे थे, धीरे-धीरे इन सबको पकड़

लिया गया और इनको बीस-बीस वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड मिला, स्मरण रहे कि ये सभी आर्यसमाज के सक्रिय कार्यकर्त्ता थे, ऐसे क्रांति के कामो में सहयोग प्राप्त करने की इच्छा से श्री प0 नरेन्द्र जी नाना पाटोल पथरी सरकार तथा सेनापति बापट से भी मिले थे, निज़ाम पर बम फेकने का अभिप्राय यह था कि इसके मरने पर इसके पुत्रो में सम्पत्ति के बंटवारे पर झगड़ा होगा, उनमे से कोई न कोई अवश्य ही भारत सरकार के सहयोग की याचना करेगा जिससे कि हैदराबाद के भारत में विलय होने का मार्ग प्रशस्त तथा सरल हो जायेगा, इसी प्रकार प0 रुद्रदेव जी महोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा, हैदराबाद, श्री रामकोट्या और श्री सूर्या जी ने यूरपालम तथा गगनेरी स्टेशनो के बीच विजयवाडा से आनेवाली मालगाडी पर बम फेंककर नष्ट कर दी थी, दूसरे दिन मुस्लिम गुण्डों ने समीपस्थ ग्राम को जलाकर भस्म कर दिया था, इस पर पं0 रुद्रदेव जी ने विजयवाड़ा को लौट रही गाड़ी को बम फेंककर ड्राईवर सहित भस्म कर दिया था, श्री विनयकुमार, सत्यनारायणसिंह, मनमोहन जी, श्री पं0 विनायकराव जी को गुप्त सामग्री पहुंचाते रहे, इधर हैदराबाद मे स्थित सरकार के प्रतिनिधि श्री के0 एम0 मुंशी को निजाम सरकार के गुप्त निर्णयों, सैनिक हलचलो तथा सिडनीकाटन द्वारा लाये जानेवाले शस्त्रास्त्र आदि की सूचना दी जाती थी, इस महत्त्वपूर्ण कार्य का सम्पूर्ण श्रेय श्री रामचन्द्र राव 'वन्दे मातरम्' तथा उनके भाई श्री वीरभद्र राव 'वन्दें मातरम्' तथा श्री कर्णसिंह जी एवं उनके दल को जाता है, इसी प्रकार सीमा पर इस आंदोलन में भाग ले रहे, आर्यसमाजियों की सहायता सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली और महात्मा खुशहालचंद जी (सन्यास के बाद आनन्द स्वामी) करते रहे है, महात्मा जी तो आंदोलन के अन्त तक दो हजार रु0 मासिक की सहायता देते रहे थे, आर्यसमाज के प्रसिद्ध उपदेशक श्री पं0 रुचिराम जी गुप्तरूपेण निजाम के यहां से महत्त्वपूर्ण सामग्री भारत सरकार तक पहुचाते रहे हैं, पाठक यह स्मरण रखे कि ऊपर जो नाम दिये गये हैं, वे सारे के सारे ही आर्यसमाजी थे, ऐसी भयंकर

स्थिति में भी भारत सरकार गांधी जी की 'अहिंसा परमो धर्मः' की नीति पर बड़ी ही शान के साथ आचरण कर रही थी, आखिर तग आकर भाई बंशीलाल एक दिन दिल्ली पहुंचकर सरदार पटेल से मिले और बोले कि 'भारत सरकार ने यदि कुछ भी न करने का निश्चय ही किया हुआ हो तो हमें सीधा कह दिया जाये, या फिर हमें शस्त्र दे दिये जायें जिससे कि उसके बाद हम जाने और हमारा काम जाने, उससे कम से कम हम अपनी रक्षा करने में तो समर्थ हो सकेंगे' इस पर पटेल ने कहा कि 'आप अपना संघर्ष जारी रखो, हम शस्त्रास्त्र तो नहीं बांट सकते, परन्तु विश्वास रखिये कि समय आने पर कोई प्रभावशाली कार्रवाई करने से कभी नहीं चूकेंगे।'

(हैदराबाद का स्वाधीनता संघर्ष और आर्यसमाज, पृ0 22 ले0 श्री पं0 नरेन्द्र जी आर्य प्रतिनिधिसभा, हैदराबाद)

इस प्रकार निजाम की ओछी करतूतों तथा हथकण्डो पर उतर आने के कारण सीधी अंगुली से घी निकलता न देख मिलिट्री-एक्शन का निर्णय कर सरदार पटेल ने भारतीय सेनाओ को हैदराबाद की ओर कूच करने का आदेश दे दिया, ऐसा कहा जाता है कि सेनाओं के प्रस्थान करने से पूर्व पटेल ने आर्यसमाज के नेताओं से कहा था कि हम तुम्हारे पूर्ण विश्वास तथा भरपूर सहयोग की आशा पर ही यह कदम उठा रहे हैं, आर्यनेताओं द्वारा सहर्ष पूर्ण सहयोग का आश्वासन मिलने पर भारतीय सेनाओं ने हैदराबाद को घर दबाया, जहां-जहां रजाकारों तथा निज़ामी सेना के मोर्चे और गढ़ थे, वहां-वहां आर्यसाजियों के मार्गदर्शन, निर्देशन तथा विश्वस्त सूचनाओं के आधार पर उनके सहयोग से भारतीय सेनाओं ने रजाकारों को आत्म-समर्पण करने पर विवश कर दिया था, इस प्रकार कई हज़ार आर्यसमाजियों ने स्वयं शस्त्र लेकर मिलिट्री-एक्शन को सफल करने में अमूल्य सहयोग प्रदान किया, हैदराबाद में भारतीय सेनाओं की सफलता आर्यसमाज के आन्दोलन तथा सहयोग का ही सुखद परिणाम है, इस प्रकार 250 वर्ष से चले आ रहे मतान्ध एवं निरंकुश तथा अवसरवादी शासन जो कि स्वतन्त्र भारत में अंग्रेजों की गुलामी

की अन्तिम दम तोडती निशानी के रूप में बचा था, का शानदार तथा शिक्षादायक अन्त हो गया और वहां की जनता ने स्वतन्त्रता के वायुमंडल में सुख-शान्ति का सांस लिया, उक्त एक्शन की सफलता के पश्चात् सरदार पटेल ने कहा भी था कि "आर्यसमाज के सहयोग के बिना इस एक्शन की सफलता नहीं हो सकती थी" तात्त्विक दृष्टि से तो निजामी-सत्ता का पतन आर्यसमाज के सत्याग्रह की सफल समाप्ति के साथ ही हो गया था, उस सत्याग्रह ने निज़ामी-सत्ता के वृक्ष की जड़ों पर से मिट्टी उखाड़ कर परे फैंक दी, मिलिट्री-ऐक्शन ने तो वायु का एक झोंका बनकर उस वृक्ष को धराशायीमात्र किया था।

काश्मीर समस्या

जब भारत का दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन हुआ, काश्मीर एक ऐसी रियासत थी जो तटस्थ-नीति को अपनाये हुये थी, उसकी यह नीति कई मास तक जारी रही, इसी समय पाकिस्तान के इशारे पर कबाइलियों ने कशमीर पर फौजी आक्रमण कर दिया, उस समय आर्यसमाज के प्रसिद्ध नेता स्व0 मेहरचन्द जी महाराज (भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश सर्वोच्च न्यायालय भारत) काश्मीर के प्रधानमंत्री थे, वे महाराजा की ओर से दिल्ली सैनिक सहायता मागने आये, लेकिन हमारे भोलेबाबा प्रधानमंत्री ने काश्मीर के भारतसंघ से अलग होने की स्थिति में सैनिक सहायता देना भी उसकी स्वतन्त्रता पर प्रहार करना समझा, दूसरा यह कि काश्मीर मुस्लिम बहुसंख्यक रियासत थी, अतः हमारे प्रधानमंत्री इस न्यायोचित कदम से भी अपने को साम्प्रदायिक कहलवाना पसन्द नहीं करते थे, परन्तु एक ओर तो हैदराबाद रियासत जनसंख्या की दृष्टि से हिन्दूबहुल थी, शासक मुसलमान होने पर भी स्वतन्त्र भारत का अंग बन चुकी थी, इसी प्रकार काश्मीर जनसंख्या की दृष्टि से चाहे मुस्लिम बहुसंख्यक थी और वहां का राजा हिन्दू था, तो क्या वह भारत का अंग न बनकर पाकिस्तान का अग बन जानी चाहिये थी? उस पर भी पहलेवाली

रियासत के समान नियम क्यों न लागू हो ? परन्तु चूंकि पाकिस्तान इस बात का ज़बरदस्त प्रोपेगण्डा कर रहा था, भले ही उसकी यह बात सर्वथा बेतुकी हो, परन्तु हमारे प्रधानमंत्री न्यायोचित बात कहने का भी साहस न करके बस अपने को साम्प्रदायिक कहलवाना पसन्द नहीं करते थे, क्योकि पाकिस्तान इसी आधार पर उन्हें काश्मीर को हडपनेवाला कहता था, ऐसी स्थिति में महाजन जी ने महाराजा को समझा-बुझाकर भारतसंघ में अपनी रियासत के विलीनीकरण पर राजी कर लिया और वे तद्विषयक सारे कागज़ात लेकर पुनः दिल्ली पहुंचे, परन्तु वहां फिर इस सम्बंध में नेहरू जी का ढीला तथा लटका चेहरा, उदासीन रुख तथा उपेक्षित व्यवहार देखकर महाशय जी को रोष आ गया, जिस पर उनकी नेहरु जी से अच्छी खासी झड़प हुई, पटेल जी तो पहले से ही महाजन जी से सहमत थे, परन्तु नेहरु जी को साम्प्रदायिक कहलाने की चिन्ता घुन की तरह खाये जा रही थी, सौभाग्य से इस मुलाकात के समय पास के ही एक कमरे में शेख अब्दुल्ला थी विद्यमान था, उसने भी सारी स्थिति का अन्दाज़ा लगाया तथा काश्मीर की गद्दी का राजा बनने का सुअवसर जानकर शेख ने एक चिट नेहरु जी के नाम भिजवाई, जिसका आशय यह था कि रियासत का विलीनकरण कर लिया जाना चाहिये और जल्दी से जल्दी अपनी सेनाये काश्मीर भिजवाओ, इस चिट के आने से पहले महाजन जी ने यहां तक कह दिया था कि यदि आप सैनिक सहायता नहीं देते तो हमें जहां से भी मिलेगी हम लेंगे और काश्मीर को किसी भी हालत में जाने न देकर बचायेंगे, परन्तु इतने पर भी नेहरु जी टस से मस नहीं हुये और जब शेख अब्दुल्ला की चिट आयी तो तुरन्त ही ठंडे दिमाग से बोले कि-"अच्छा शेख भी ऐसा ही चाहता है तो चलो हम काशमीर को भरपूर सैनिक सहायता देते हैं" इससे यह तो सिद्ध होता ही है कि नेहरु जी को काश्मीर की मूल-समस्या से कोई रुचि नहीं थी, उन्हें तो केवलमात्र शेख अब्दुल्ला की रुचि में ही रुचि थी, महाजन जी की दृढ़ता से काश्मीर का भारतसंघ में विलय हो पाया, महाराजा महाजन जी से इतने प्रभावित थे कि मृत्यु से

पूर्व अपनी कई करोड की सम्पत्ति काश्मीर में शिक्षा के प्रसारार्थ महाजन जी के व्यक्तिगत नाम से ही रजिस्ट्री कर गये थे, जिससे आजकल जम्मू मे एक उच्चकोटि का कालेज चल ही रहा है, पाठकगण! यह था आर्यसमाज के एक उच्चकोटि के देशभक्त नेता का देशप्रेम तथा ओजस्वी प्रभाव का गर्वीला इतिहास जो कि काश्मीर के रक्षक के रूप में सिद्ध हुआ।

पंजाब का भाषा फार्मूला

स्वतन्त्र भारत में कांग्रेस सरकार ने अल्पमत के तुष्टिकरण के थोथे सिद्धान्त के नाम पर जो अक्षम्य भूलें की, उनमें प्रमुख तथा अत्यन्त घातक भूलें पंजाब में लागू किये गये, 'सच्चर फार्मूला' 'रिजनल फार्मूला' आदि नामों वाले फार्मूले थे, वास्तव में तो देश की एकता के भेदक सिक्ख होमलैंड अथवा पंजाबी सूबे की नींव यहीं से रखी गई थी, अंग्रेज जब यहां से जाने लगा तो एक अकाली नेता जो कि सम्पूर्ण अकाली दल की नीति का प्रखर प्रवक्ता था, साथ ही अन्य अराष्ट्रीय नेताओं की भांति जिसको अंग्रेजों के प्रति सच्ची श्रद्धा थी, उस मास्टर तारासिंह ने एक नारा दिया कि "हिन्दुओं को मिल गया हिन्दुस्तान और मुसलमानों को मिल गया पाकिस्तान, लेकिन हमें क्या मिला? इसी नारे को शब्दभेद से स्वतन्त्र भारत में अकाली गुंजाते रहे हैं, और इसी प्रकार की आड में सरकार में ब्लेकमेल करने की कोशिशें करते रहे हैं, जिसके परिणामस्वरुप हिंसा के आगे भीगी बिल्ली बन जानेवाली इस कमजोर सरकार ने विभिन्न फार्मूले खालिस्तान का बीज बोने का पाप किया है, जो समय पाकर सिक्ख होमलैंड के रूप में हरा-भरा वृक्ष बन गया है, आर्यसमाज के दूरदर्शी नेताओं ने उसी समय इस राष्ट्रघाती तीति का विरोध किया था, आर्यजगत् के विख्यात सन्यासी स्वामी स्वतन्त्रानन्द ने समाचारपत्रों में कई लेख लिखकर इसका प्रखर विरोध किया था, साथ ही इसके भविष्य में होने वाले घातक परिणामों से सावधान भी किया था, उन्होंने भाषावार प्रान्तों की रचना को राष्ट्र की एकता

के लिये एक महान् घातक तथा खतरा और हानिकारक बाताया था, आज इस भविष्यद्रष्टा का कथन सर्वथा सत्य सिद्ध हो रहा है।

गोवा सत्याग्रह

स्वतन्त्र भारत की छाती पर गोवा भी दुःखदायी फोडा बना रहा, भारत सरकार की कमज़ोर नीति को देखते हुये भारत की देशभक्त जनता ने उसे सत्याग्रह द्वारा भारत का अंग बनाने का दृढ निश्चय किया, इस सत्याग्रह में आर्यसमाज सदा की भाति कभी पीछे न रहा, कई आर्यवीर गोवा मे सत्याग्रह करते हुये पूर्तगीज़ सरकार के हंटरों, कोड़ों तथा गोलियों की मार से शहीद हो गये थे, कई हज़ार आर्यवीज दल के सैनिक जत्थेबंदी कर सत्याग्रह के लिये तैयार बैठे थे, परिस्थितिवश सत्याग्रह स्थगित हो गया, इस सत्याग्रह को आर्थिक सहयोग देने में आर्यसमाज किसी प्रकार पीछे न रहा, तन तथा ध ान से यथाशक्ति सहयोग किया।

पंजाब का हिन्दी सत्याग्रह

स्वतन्त्र भारत के संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार करके आर्यसमाज तथा ऋषि दयानन्द जी के इस विषयक मन्तव्य की दूरदर्शिता को सरकार ने स्वयं ही स्वीकार किया था, परन्तु तुष्टिकरण के आधार पर पंजाब मे विभिन्न फार्मूलों की आड लेकर राष्ट्रभाषा के साथ जो ब्लेकमेलिंग तथा तुर्पचाल के कष्टपूर्ण नाटक खेले गये, वे धीरे-धीरे अपना सही रंग दिखाने लग गये थे, जिसके परिणामस्वरूप पंजाब प्रदेश के हिन्दीभाषी हरियाणा क्षेत्र मे भी केवल मात्र पांच प्रतिशत लोगों की भाषा 95 प्रतिशत लोगो को पढ़ने के लिये बलात् थोप दी गई, जबकि आयोग के प्रतिवेदन में 30 प्रतिशत लोगों की भाषा ही दूसरी भाषा के रूप में मान्य की गई थी, इस प्रकार पंजाब के विरुद्ध हिन्दी भाषा क्षेत्र में भी अवसरवादी तथा भीरू शासकों की नीति ने राष्ट्रभाषा को गुरुमुखी का दबेल बनाकर रख

दिया था, सभी शान्तिमय उपायों से भी कोई न्यायपूर्ण हल निकलता न देखकर आर्यसमाज को विवश हो, सत्याग्रह का सहारा लेना पडा, जिसमे आर्यसमाज का लगभग दो करोड़ रुपया व्यय हुआ तथा लगभग बीस व्यक्तियों का बलिदान हुआ, इनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बलिदान फिरोजपुर सेंट्रल जेल में आर्यवीर सुमेरसिंह का हुआ, वहां 350 शांत एवं धर्मकार्यों में संलग्न तथा धर्मग्रंथों के स्वाध्याय में निरत सत्याग्रहियों को जेल के अधिकारियों ने लम्बी सज़ा भुगत रहे, बदमाश तथा कातिल, डाकू कैदियों के द्वारा लोहे के सरियों लाठियों, चमड़े की पेटियों, जलाने की लकडियों द्वारा बड़ी ही बेहरमी के साथ पिटवाया, सत्यार्थप्रकाश पढते हुये वीर सुमेरसिह का लोहे के सरियों के तीव्र प्रहार से बलिदान हुआ, लेखक भी उस समय वहीं पर उन्हीं सत्याग्रहियों में था, तथा वीर सुमेरसिंह को नित्यप्रति उपनिषदों का स्वाध्याय कराया करता था, आर्यसमाज का यह आन्दोलन राष्ट्रभाषा हिन्दी जो कि सारे देश को एकता के सूत्र में पिरोने में समर्थ है, कि अभिवृद्धि के लिये ही था, जो कि आर्यसमाज की राष्ट्र की अखण्डता की भावना का परिचायक है, जब सत्याग्रह चल रहा था तो 15 अगस्त को आर्यनेताओं ने अपना राष्ट्रीय पर्व जानकर सत्याग्रह को स्थगित रखा, यह था आर्यसमाज का देश प्रेम। परन्तु इन बेरहम, निर्लज्ज शासकों ने आर्यसमाज की इस राष्ट्रभक्ति का क्या पुरस्कार दिया? 15 अगस्त 1957 को एक ओर दिवंगत प्रधानमंत्री नेहरु जो संसार को राष्ट्रीय दिवस पर शन्ति का संदेश देने का ढोंग रच रहे थे, और दूसरी ओर उनकी पुलिस का दानवदल रोहतक के समीप बहू अकबरपुर ग्राम में कल्पनातीत निर्मम अत्याचार ढा रहा था, वहां उस दिन बूढ़ों की मूंछें तक उखाड़ी गई, बीमारों, असमर्थों तक को पीटा गया, उन भोली-भाली ग्रामीण महिलाओं की गोदियों से दुध मुंहे बच्चे छीन-छीनकर जमीन पर पटक दिये गये, माताओं, बहिनों, बेटियों तक के कपड़े फाड़कर उन्हें सरेआम अपमानित किया गया, और उनकी ज़मीन तथा पशु तक भी कुडक कर लिये गये, कहां तक लिखें। उन अत्याचारों को देखकर

तो औरंगजेब, चंगेज़जखां, हलाकू, नादिरशाह के दानवी कृत्य भी सज्जनता, सौम्यता की श्रेणी में सम्मिलित होने को उत्सुक दिखाई देने लगे थे, राष्ट्र की रक्षा, एकता तथा अखण्डता के लिये आर्यसमाज ने घोर अपमान के इस कड़वे घूंट को भी पीया, अन्त में आर्यसमाज की मांगो के औचित्य को स्वीकार करते हुये भी मांगो को मानने का झूठा आश्वासन देकर सन्धि का पालन न करके सरकार अपने ही हाथों से हिन्दी के गले पर तेज धार वाला छुरा फेरकर राष्ट्रभाषा के कातिलों की पंक्ति मे जा खडी हुई। क्या इतने पर भी विवेकी पाठक आर्यसमाज की देशभक्ति, देश की एकता तथा अखण्डता मे संशय कर सकते हैं ?

पंजाबी सूबे का विरोध

सरकार ने तो अपनी अदूरदर्शिता, नासमझी का जो बीज बोया, वह उचित समय पाकर 15 अगस्त, 1961 को पंजाबी सूबे की प्राप्ति के लिये आमरण अनशन के रुप मे अंकुरित हुआ, वास्तव में इन विघटनकारी तत्वों का जन्मदाता तो एक अग्रेज ही था, मैकालफ नामक एक अंग्रेज ने सिक्खी को स्वीकार किया था, ग्रंथ साहब का अंग्रेजी अनुवाद करते हुये कई बाते उसने ऐसी लिखीं कि जो हिन्दुओं और सिखो के बीच सदा के लिये खाई बन गई, उसी मेकालफसिंह की कठपुतली बनकर अकालियो ने पृथक्तावादी आन्दोलन चलाया, पहले मा0 तारासिंह पश्चात् सन्त फतेहसिंह उसी परम्परा के प्रतीक रहे हैं, अब जिसे लोगोंवाल ने अच्छे रूप में प्रस्तुत किया है, मास्टर जी ने जानबूझकर अपना अनशन 15 अगस्त के राष्ट्रीय दिवस से आरम्भ किया, उस समय भी पंजाब को विनाश की भयंकर ज्वालाओं से बचाने के लिये अपने जीवन की बाज़ी लगाने वाले कर्मठ सन्यासी स्वा0 रामेश्वरानन्द जी के रूप मे आर्यसमाज ही आगे आया, स्वामी जी ने जानबूझकर अपना अनशन 16 अगस्त से आरम्भ करते हुये अपने वक्तव्य में कहा था कि 15 अगस्त हमारे राष्ट्र की स्वाधीनता

का दिवस है अतः इस प्रसन्नता के दिन अनशन करके मैं अपने राष्ट्रीय नेताओं को परेशानी में नहीं डालना चाहता तथा विदेशों के सामने अपने देश का उपहास उड़ते हुये देखकर हमें पश्चाताप न हो इसलिये मैं अपना अनशन 16 अगस्त से आरम्भ कर रहा हूं, पाठ्कवर्ग! यह था आर्यसमाज का राष्ट्र की स्वाधीनता तथा अखण्डता के प्रति प्रेम और सहानुभूति, स्वामी जी के इस जवाबी अनशन के फलस्वरूप मास्टर जी अपनी राजनीतिक चाल में सफल न हो सके, और तब असफल होकर शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी द्वारा दिये गये 'झूठे बर्तन मांजन तथा संगत के जूते साफ करना दंड, भोगकर शान्त हो गये थे, यह आर्यसमाजी राष्ट्रीय मनोवृत्ति की एक ऐतिहासिक शानदार सफलता ही समझनी चाहिये, जिससे हमारे राष्ट्रीय नेताओं के हाथ मज़बूत हुये थे।

चीन का आक्रमण

सन् 1962 में चीन की सेनाओं ने हमारी उत्तरी सीमाओं के महत्त्वपूर्ण ठिकानों पर अचानक ही आक्रमण कर दिया, यह आक्रमण हमारे शासकों की लापरवाही, उपेक्षावृत्ति तथा पंचशील की अहिंसावादी नीति का पर्दाफाश करनेवाला साबित हुआ, उन्हीं के शब्दों में "हम अभी तक सपनों की दुनियां में थे, चीन के हमले ने हमारी आंखें खोल दी हैं" ऐसी अवस्था में जब शासकों ने सहयोग की अपील की तो सर्वप्रथम दिल्ली की आर्य केन्द्रीय सभा ने पचास हज़ार रुपये की भेंट सरकार तक पहुंचाई, आर्यसमाज के समाचारपत्रों, उपदेशकों, प्रचारकों एवं भजनीकों ने प्रचार तथा भजनों के माध्यम से जनजागृति का अपूर्व कार्य किया, उस समय आर्यसमाज के प्रत्येक उत्सव पर मुंह तोड़ उत्तर देने के लिये भारतीय प्रजा में अपूर्व जोशीले वातावरण का निर्माण किया जाता था, सेना में जो आर्यसमाजी विचारधारा के सैनिक थे, देश की रक्षा के लिये लड़े गये उस संग्राम में उन द्वारा प्रदर्शित वीरता का तो वहां का सम्पूर्ण इतिहास लिखने पर ही देश को यथार्थ परिचय मिल सकेगा, जिसका यहां संक्षिप्त सा परिचय

दिया जा रहा है, उस दौरान देश की रक्षार्थ अपनी जवानी भेंट करनेवाला ब्रिगेडियर होशियारसिंह आर्यसमाजी परिवार से ही जन्मा सपूत था, आज भी उसकी विधवा पत्नी के पास महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाश की वह प्रति रखी हुई है, जिसका अवकाश मिलने पर वह अधिकांश में पाठ किया करता था, इसी प्रकार उस समय सीमा की रक्षा करते हुये राष्ट्र पर अपना जीवन न्यौछावर करनेवाले कैप्टन विक्रमसिंह भी आर्यसमाजी घराने की ही उपज था, यह आर्य नेता डा0 यशपालसिंह जी का भतीजा था, चीनी भेड़ियों ने उसे पकड़कर कुल्हाड़ियों से उसके शरीर के टुकड़े कर उसे समाप्त कर दिया था, देश धर्म की रक्षा के लिये अपनी शहादत देनेवाले बलिदानी पुरुषों में कैप्टन विक्रमसिंह का बलिदान हिन्दू जाति के रक्षक वीर बन्दा वैरागी के बलिदान से किसी भी प्रकार कम नहीं है, उसी युद्ध में अपने जीवन की बाजी लगानेवाले आर्यसमाज प्रधाना मोहल्ला रोहतक के भूतपूर्व प्रधान श्री रामरंग जी के सुपुत्र कैप्टन जगदीशचन्द्र का बलिदान भी इसी श्रेणी में ही आता है, युद्ध के मैदान में गोलियों की धुँआ-धार वर्षा में भी वह अपने साथियों को आगे बढ़ने की निरन्तर प्रेरणा करता रहा, उस भयंकर संकटकाल में उसका एक यही नारा था "हमें हमारी मातृसंस्था आर्यसमाज ने क्षात्रधर्म के प्रतीक युद्ध में कभी पैर पीछे हटाना नहीं सिखाया" इस युद्ध में राष्ट्र की वेदी पर अपना खून देकर उसका तर्पण करनेवाले युवकों में बड़ी भारी संख्या में आर्यसमाजी विचारधारा के लोग थे, आर्यसमाज के ये रोमांचकारी बलिदान राष्ट्र की स्वाधीनता, अखण्डता तथा एकता के लिये अपने अटूट तथा अडिग प्रेम के परिचायक हैं।

पाकिस्तान का आक्रमण

सन् 1965 में पाकिस्तान ने अचानक ही अपने पहले से निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार काश्मीर में अपने सैनिक, घुसपैठियों के रुप में भारी संख्या में भेज दिये, जिन्होंने वहां विधिवत् आक्रमण कर दिया, भारत सरकार को जब इसका ज्ञान हुआ तो उसने अपनी

सेनायें तत्काल वहां भेजकर अपनी सीमाओं की रक्षा की, पाकिस्तान जो कि अब तक भारत को मुर्दा ही समझे हुये था, भारत की प्रत्याक्रमण की नीति को देखकर बोखला उठा, और सितम्बर मास में सार्वजनिक घोषणा के साथ उसने भारत पर सीधा आक्रमण कर दिया, उस संकटकाल में भी सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधिसभा दिल्ली तथा अन्य प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाओं ने राष्ट्ररक्षा कोष में विपुल परिमाण में धनराशि देकर सरकार की सहायता की, आर्य प्रतिनिधि सभा हैदराबाद के प्रधान स्व0 पं0 नरेन्द्र जी ने तो रक्षामन्त्री स्व0 यशवन्तराव बलवन्तराव चौहान को एक लाख पचहत्तर हज़ार रुपये की थैली भेंट की थी, आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली ने रक्षामंत्री को विशाल धनराशि के साथ स्वर्णनिर्मित तलवार भी भेंट की थी, आर्यजगत् के दिल्ली के एक सौ आर्यसमाज मन्दिर युद्ध में घायल सैनिकों के उपचार की व्यवस्था तथा सुविधा के लिये सरकार को सौंपने की पेशकश की थी, साथ ही यह भी कि घायल सैनिकों के इलाज का सारा ही व्यय आर्यसमाज करेगा यह भी घोषणा की थी, उस काल में आर्यसमाज की शिक्षा–संस्थाओं के छात्रों अध्यापकों, तथा कर्मचारियों ने अपनी सेवायें सरकार को देने का संकल्प भी सरकार तक पहुंचाया था, आर्यसमाजी उपदेशकों ने देश के कोने–कोने में पहुंचकर तथा प्रत्येक आर्यसमाज के उत्सव पर अभूतपूर्व जागृति तथा प्रत्येक नागरिक को जीवनमरण के इस संग्राम में सर्वात्मना समर्पित करने का उद्बोधन किया था, जिससे भारत में संगठित हो शत्रु से भिड़कर निपटने का वातावरण निर्मित हुआ था इसके अतिरिक्त देश की रक्षा के लिये युद्ध में लड़ते हुये जिन सैनिकों ने अपना बलिदान किया उनमें अधिक संख्या आर्यसमाजी विचारधारावालों की ही थी, डोगराई के मोर्चे पर अपनी उठती जवानी देश को भेंट करनेवाले वीर मेजर आशाराम त्यागी आर्यसमाजी वातावरण की देन था, उनके पिता श्री सगवासिंह त्यागी नित्य हवन करनेवाले आर्यसमाजियों में से थे, उनकी विधवा धर्मपत्नी श्रीमती कविता त्यागी आर्य कन्या गुरुकुल हाथरस की स्नातिका है, मेजर

साहब का विवाह हुये अभी कुल दो मास हुये थे कि कविता देवी ने भारतमाता की करुणाभरी पुकार पर अपने माथे के सिन्दूर, जीवन के सुहाग को मौत से दो-दो हाथ करने रणक्षेत्र में भेज दिया, जहां कि मेजर त्यागी ने दुश्मन की ग्यारह गोलियां अपनी छाती में झेलतें हुये उसके सात टैंकों को नष्ट किया था, घायल वीर अमृतसर के सैनिक अस्पताल में पड़ा है, अपनी मौत को अपने सामने खड़ा हुआ देखकर वीर कहता है कि "बस मेरे पिता को यह कह देना कि दुश्मन की एक भी गोली तुम्हारे बेटे की पीठ पर नहीं लगीं है, देख लो अच्छी तरह से देखकर तसल्ली कर लो सारी की सारी गोलियां तुम्हारे बहादुर बेटे की छाती पर ही लगी है तुम्हें यह जानकर सन्तोष होगा कि तुम्हारे बेटे ने युद्ध में पीठ नहीं दिखाई है" उनके पश्चात् इनकी फूल सी कोमल विधवा पत्नी ने भी देश की सेवा की, सेवा को ही जीवन का ध्येय बना लिया है, इसके बलिदान के पश्चात् इनके ग्राम में एक विशाल शोकसभा का आयोजन किया गया था, जिसमें अनेक विख्यात नेताओं ने भाग लिया था, उसी अवसर पर देश के प्रसिद्ध कवि श्री रामधारी सिंह दिनकर ने स्व0 त्यागी के बलिदानी का मूल्यांकन करते हुये निम्न पद्य बोला था।

तुमने दिया है देश को जीवन देश तुम्हें क्या देगा?
अपनी आग गरम रखने को बस नाम तुम्हारा लेगा,

इसी प्रकार सीमा पर शत्रु से जूझते हुये वीरगति पाने वाले कैप्टन सुरेन्द्रकुमार भी आर्यसमाजी विचारधारा की ही उपज थे, ये डी0 ए0 वी0 कालेज, जालन्धर में पढ़ते हुये आर्यकुमार सभा में रूचिपूर्वक भाग लेते रहे हैं, इनके पिता श्री मास्टर तेगराम जी अबोहर के अपने क्षेत्र के प्रसिद्ध आर्यसमाजियों में से हैं, तथा प्रसिद्ध आर्य सन्यासी स्वामी केशवानन्द जी के सहयोगी रहे हैं, कैप्टन सुरेन्द्रकुमार ने शत्रु को कमरतोड़ पराजय दी थी, लड़ते हुये इनके सीने में पांच गोलियां लगी थीं, परन्तु इतने पर भी दुश्मनों को ललकारते रहे, फिरोज़पुर के सैनिक अस्पताल में जाकर आपका स्वर्गवास हो गया था। दुश्मनों के ऊपर भारतीय शौर्य का सिक्का जमानेवाले इन्हीं शूरमाओं में

लैफ्टिनेण्ट सुखवीर सिंह भी आर्यसमाज से सम्बन्ध रखते थे, इन्होंने कसूर क्षेत्र में पाकिस्तानियों को उनके कसूर का मज़ा चखाया था, शत्रु से युद्ध करते हुये आपने अपनी टुकडी से कहा वीरो! आज हमें दो में से एक का ही वरण करना है, मौत या विजय, युद्ध के मैदान में हमारी पीछे हटने की परम्परा नहीं रही है, आज हमें अपने खून से भारतमाता का तर्पण करना है, इस प्रकार शत्रु की चार गोलियां लगने से रणभूमि में आपका बलिदान हो गया था, इसके अतिरिक्त कितने ही अज्ञातनामा आर्यवीर सैनिकों ने पेट के बल रेंगते हुये दुश्मन के पिलबाक्स तोड़ डाले थे, न जाने कितने हरियाणवी आर्यवीर सैनिक अपनी छातियों से बम बांधकर पाकिस्तानी टैकों के आगे लेट गये, पाकिस्तानी टैंक के उनके ऊपर से गुजरने पर बम फटने से उनके शरीरो के तो चीथडे हो ही गये परन्तु शत्रु के टैकों पर भी लाशें बिछाकर रख दी थीं, स्वतन्त्र भारत की रक्षा के लिये सीमाओं पर अपने प्राणों की भेंट सहर्ष देनेवाले इन आर्यवीर मस्तानों का वास्तविक इतिहास जब भी लिखा जायेगा और आर्यसमाज की देश धर्म के प्रति भक्ति, स्नेह तथा प्यार का एक सच्चा और सुन्दर चित्र जब संसार के सामने आयेगा तब ससार जान पायेगा कि आर्यसमाज के राष्ट्रप्रेम, स्वाधीनता की निष्ठा, देशजाति की अखण्डता का विश्वास इत्यादि का पक्ष कितना उज्जवल है।

पंजाबी सूबा और आर्यसमाज

सिखों तथा अकाली सम्प्रदाय के एक नेता सन्त फतेसिंह ने देश की अखण्डता तथा एकता का ध्यान न करते हुये जैसी कि स्वाधीनता के बाद इनकी परम्परा रही है, इसी पद्धति को जारी रखने के अभिप्राय से 10 सितम्बर, 1965 से पंजाबी सूबे की प्राप्ति के लिये अनशन की घोषणा कर दी, घोषणा मे यह भी कहा गया था कि अनशन के दौरान मांग पूरी न होने की स्थिति में सन्त जी आत्मदाह करेंगे और इसी अभिप्राय से सन्त जी अमृतसर के स्वर्ण मन्दिर में आत्मदाह की सारी सामग्री संग्रहीत कर छिपकर बैठ गये,

देश के सभी राष्ट्रभक्त तथा एकताप्रिय वर्गों ने उनकी इस घातक एव कुत्सित मनोवृत्ति की भर्त्सना की, उसी समय अचानक ही पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण कर दिया, सारे ही देशवासियों के लाख समझाने पर भी सन्त जी 9 सितम्बर तक अपनी ज़िद पर अडे रहे और समझाने पर भी टस से मस नहीं हुये, परन्तु भारतीय शूरमाओं के द्वारा पाकिस्तानी दरिन्दों को पिटता देख सन्त जी ने मन मसोसकर संकटकाल के नाम पर बडे ही नाटकीय ढंग से अपनी इस घातक मनोवृत्ति को देशभक्ति का जामा पहनाते हुये अपने अनशन तथा आत्मदाह को स्थगित कर दिया, उस समय भी पडोसी दुश्मन देशों के गुप्त इशारे पर देश विभाजन की साजिशें करनेवाले इन तथाकथित अपनों परन्तु वास्तविक परायों की घातक चालों का पर्दाफाश करने के लिये आर्यसमाजी नेता ला० रामगोपाल शालवाले ने सन्त जी के विरोध में अनशन तथा आत्मदाह की घोपणा की थी, भारत के प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री के स्वर्गवास के पश्चात् इन्दिरा जी के प्रधानमंत्री बनने पर सन्त जी ने अपना वही पुराना राग अलापना आरम्भ किया, और मांगें पूरी न होने की स्थिति मे खतरनाक परिणामों की धमकियां देना इन लोगों का स्वभाव बन गया था, अतः इनकी नाजायज़ धमकियों से डरकर पंजाब का संविधान के विपरीत केवलमात्र साम्प्रदायिक भाषा के आधार पर विभाजन कर देश की एकता में दरार पैदा करने का सरकार ने एक घृणित, लज्जास्पद कार्य किया, इससे जो अपयश तथा कलंक सरकार का हुआ वह इतिहास में कभी न मिटनेवाला एक बदनुमा काला ध ाब्बा है, किसी कवि ने उचित ही तो कहा है–

'हर शाख पे उल्लू बैठा हो अंजाम-ए-गुलिस्तां क्या होगा।'

यह एक कटु तथा खेदजनक सत्य है कि इस विभाजन को सफल करने में हरियाणा के उन लोगों का भी हाथ है। संसार जिन्हें यहां के आर्यसमाज के अग्रणी नेता के रूप में जानता तथा मानता है, इसके साथ ही यह भी सत्य है कि उन लोगों का ऐसा करना आर्यसमाज की सामूहिक नीति न होकर चन्द गिने चुने प्रभावशाली

लोगों की अपनी राजनैतिक महत्त्वाकांक्षाओं की प्राप्ति का द्योतक समझना चाहिये, इन लोगों की यह आपत्ति तो निराधार नहीं कही जा सकती है कि अविभाजित पंजाब में हरियाणा के साथ कभी न्याय नहीं हुआ, परन्तु प्रश्न यह है कि अन्याय होते समय मंत्रिमण्डल में ये स्वयं तथा इनके अनेक घनिष्ठ तथा विश्वस्त सरकारी व मित्र इनकी ही कृपा से विराजमान थे, वे उस समय क्यों इस अन्याय के विरुद्ध डटकर नहीं लडे ? यदि वे उस अवसर पर अपने तथा अपने कुछ हितैषियों के लाभ को न देखते हुए दृढ़ता के साथ उस अन्याय के प्रतिकार के लिए डट जाते जैसे कि बाद में चण्डीगढ़ की प्राप्ति के लिए कमर कसे हुये थे तो किसी की मजाल थी कि हरियाणावासियों के साथ अन्याय करने की हिम्मत कर पाता, भले ही ये लोग आज यह निराधार तर्क दें कि हरियाणा से न्याय न होने की स्थिति में हमने पृथक्ता का मार्ग अपनाया है, लेकिन उनके इतने कथनमात्र से ही उनके अपने इस कार्य का औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता है, क्योंकि विचारणीय विषय तो यह है कि न्याय न दिला सकने का उत्तरदायित्व किस पर था ? जबकि वे ही मन्त्रिमडल में हरियाणा के हितों के रक्षक समझे जाते थे, क्या केवल मंत्री पद प्राप्त कर व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करना ही किसी प्रदेश का प्रतिनिधित्व करना कहा जा सकता है ? विशेष दुःख इसलिए भी है कि सदा से राष्ट्रीय एकता के हामी आर्यसमाज के अग्रणी चाहे वे संस्था में गिने-चुने ही क्यों न हों वे भी राष्ट्र की इस विघटनकारी प्रवृत्ति में बढ-चढ़कर भाग लेते हों तो फिर सामान्य लोगों को तो हम क्या कह सकते हैं ? किसी कवि ने ठीक ही कहा है-

जहरें भी पिलाई अपनों ने ईंटें भी चलाई अपनों ने।
अपनों ही के अहसां क्या कम हैं गैरों से शिकायत क्या होगी ?
तुम गैरो की बातें करते हो यहां अपने ही आजमाये हैं
कांटों की क्या कहें यहां फूलों से ज़ख्म खाये हैं।

परन्तु इतने पर भी हमें खेद न होता यदि ये लोग हरियाणा मे विशुद्ध वैदिक राज्य की स्थापना करने में समर्थ हो पाते, जैसे कि पंजाब में अकाली विशुद्ध सिख होमलैण्ड के निकट ही पहुंचनेवाले हैं, परन्तु उसके विपरीत यहां तो ये हमारे आर्यसमाजी भाई उन्हीं हमारे धर्म, सभ्यता, संस्कृति तथा इतिहासादि के हत्यारे कांग्रेसियो के राज्य की जड़ें मज़बूती से जमाने में अपनी विजय समझ रहे हैं, परन्तु उस समय भी आर्यसमाज ने अपनी सामूहिक नीति के द्वारा इस मनोवृत्ति का विरोध ही किया था, पंजाब, हरियाणा के कुछ आर्यसमाजी नेता श्री वीरेन्द्र, श्री यश, श्री लाला जगतनारायण, स्वामी रामेश्वरानन्द जी इत्यादि ने इस विभाजन का विरोध किया तथा विरोधस्वरूप अपनी गिरफ्तारियां देकर आर्यसमाज के सही स्वरूप का परिचय दिया था, लेकिन 'फूट डालो और शासन करो' की नीति को अपनाते हुये शासकों ने 1947 के घायल पंजाब के शेष अंग के भी टुकडे कर अंग्रेजों के दास होने की मनोवृत्ति का बढ़िया परिचय दिया था, जिस पर इस देश की आनेवाली पीढियां इनके इस कुरुप के कारण इनका सौ–सौ बार धिक्कारेंगी, और अपने इन पूर्वजों के पापों पर खून के आंसू रोयेंगी, क्योंकि इन्हीं दूध पीनेवाले मजनुओं की कारस्तानियों के कारण आज पंजाब धीरे–धीरे सिख होमलैण्ड बनने जा रहा है, अकालियों का तो ध्येय ही यह है कि 'संघर्ष करो, जो कुछ मिले उसे ले लो बाकी के लिए संघर्ष जारी रखो' (ये पंक्तियां आज से 15 वर्ष पहले लिखी गई थीं) आज 1985 में कितनी प्रत्यक्ष हैं ? पाठक स्वयमेव समझ सकते हैं, इस सम्बन्ध में सबसे अधिक दुःख की बात यह है कि (भारतीय जनसंघ) जो कि आज भारतीय जनता पार्टी का चोला पहन चुका है और दुर्भाग्य से अपने को हिन्दुओं का प्रतिनिधि कहता है तथा जनता की दृष्टि मे भी उसके प्रति यही विचार है, पंजाब को सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या भाषा की नीति पर अपनी घोर स्वार्थपूर्ण नीति के कारण अकालियों का साम्प्रदायिक कूटनीति का शिकार हो गया है, जैसे सन् 1945–46 में मुस्लिम लीग ने कदम–कदम पर अपनी कट्टर साम्प्रदायिक एवं छलपूर्ण नीति

से गद्दियों की आशिक कांग्रेस को पराजय देकर पाकिस्तान प्राप्त किया है, "इतिहास अपने को दोहरता है" इस कहावत के अनुसार ठीक आज वैसे ही भारतीय जनता पार्टी को महान् पदलोलुपता तथा राजनैतिक भूलों के कारण अकाली दल सिख होमलैण्ड की ओर बड़ी मज़बूती के साथ अपने कदम बढ़ा रहा है, अपनों की इस हालत को देखकर ही सहसा किसी कवि के निम्न वचन याद आ जाते है-

'दिल के फफोले जल उठे सीने के दाग से,
इस घर को आग लग गई घर के चिराग से।
जिन्हें हम हार समझे थे गला अपना सजाने को,
वे ही अब नाग बन बैठे हमें यहां काट खाने को।

1971 का पाकिस्तान युद्ध

सन् 1970 के आसपास पाकिस्तान में आम चुनाव हुए, तब पाकिस्तान के दो हिस्से थे। पश्चिमी पाकिस्तान जिसमें पश्चिमी पंजाब तथा सिन्ध सम्मिलित थे, पूर्वी पाकिस्तान जिसमें पूर्वी बंगाल जो आज बंगलादेश के नाम से कहा जाता है, सम्मिलित था, वहां पर आर्थिक आय का मुख्य स्रोत बंगाल था, जहां पटसन से बडी आय होती थी, परन्तु पाकिस्तान की राजनीति पर सदैव पंजाब का ही दबदबा होता था, बंगालियों को हमेशा दूसरे दर्जे का नागरिक माना जा रहा था, जब चुनाव हुए उस समय पंजाब के नेता जिसका राजनीति में दबदबा था, मि0 जुल्फीकार अली भुट्टो थे और बंगाल के मुजीबुर्रहमान थे, जिनका बंगाल में सर्वमान्य प्रभुत्व था, परन्तु जब सम्पूर्ण पाकिस्तान के चुनावों का चित्र सामने आया तो मुजीबुर्रहमान को सेण्ट्रल असेम्बली में बहुमत मिल गया था, लम्बे समय से सत्ता की हड्डी का स्वाद जिन्हें पड़ चुका था, वे पंजाबी लोग सत्ता को जैसे-तैसे अपने कब्ज़े में रखने को हाथ-पैर मार रहे थे, चूँकि उस समय का डिक्टेटर जिसने चुनाव कराने के बाद हट जाने का वायदा किया था, वह भी पंजाबी ही था अतः उसने बहुमत वाले मुजीब की उपेक्षा करके अल्पमत वाले भुट्टो को गद्दी सौंपने का

मन्सूबा बनाया, जब बंगालियों को इसका अहसास हुआ तो वे बगावत पर उतारू हो गये, बंगालियों ने तत्कालीन सरकार का सब प्रकार से सहयोग करना त्याग दिया था, जिसे देखकर व सुनकर 1921 के असहयोग आन्दोलन की याद ताजा हो गई थी, उधर पाकिस्तान ने अपनी सेनाये भेजकर बंगालियों को गोलियों का निशाना बनाना आरम्भ कर दिया, उनके नेता मुजीब को पकड़ कर जेल में डाल दिया तथा उन्हें फांसी देने की घोषणा कर दी, यहां तक कि उनकी कब्र खोदकर तैयार कर ली गई, परन्तु कहा जाता है कि मि0 भुट्टो ने याहियाखान (पाकिस्तान का डिक्टेटर) से बात कर फांसी रुकवा दी थी, बंगाल में पाकिस्तान की सेनाओं ने विशाल पैमाने पर बड़ा भयानक नरसंहार किया, बंगाल के लोगो ने भी अपने नागरिकों की 'मुक्तिवाहिनी' नामक सेना बनाकर पाकिस्तान की सेना का गुरिल्ले आक्रमणों के तौर से मुँहतोड़ उत्तर देना आरम्भ किया, इसके साथ ही पाकिस्तान ने भारत पर भी आक्रमण करने की राजनैतिक भूल कर डाली, इधर बंगालियों द्वारा अपनी रक्षा की पुकार मचाने पर साथ ही अपनी रक्षा करने के अभिप्राय से भारत ने अपनी सेनायें बंगाल भेज दीं, उस समय आर्यसमाज ने सेनाओं की सहायता के लिए भारत सरकार से आर्यवीर दल के सैनिक देने की पेशकश की थी, धन का सहयोग तो पहले से भी बढ़-बढ़कर किया था, आर्यसमाज के अनेक भजनोपदेशकों ने सेना के सामने अपने जोशीले भजनों के द्वारा सैनिकों में जोश भरने का उत्तम कार्य किया था, जब ढाका के रेसकोर्स मैदान के अन्दर मेजर जनरल अर्जुनसिंह अरोड़ा के सामने पाकिस्तान के 95 हज़ार सैनिकों ने जनरल नियाज़ी सैनिकों ने जनरल नियाजी के नेतृत्व में आत्मसमर्पण किया था, उस दिन को याद करके हम गौरव से आज भी फूले नहीं समाते हैं, तब सारे देश के आर्यसमाज मन्दिरों में दीपमाला का आयोजन किया गया था, जगह-जगह आर्यसमाजों में विजयोत्सव मनाये गये थे, इसी दौरान युद्धकाल में प्रधानमंत्री स्व0 श्रीमती इन्दिरा गांधी को तार देकर सूचित किया गया था कि सारा आर्यजगत् आपके साथ है, महान् प्रशासक तथा कूटनीतिक इन्दिरा जी ने बंगाल को सहायता देकर

उसे एक स्वतन्त्र देश के रूप में भूमि पर ला खड़ा किया था, यह भारत को महान् कूटनीतिक विजय थी, भारत ने ही सबसे पहले मान्यता देकर उसके अस्तित्व को कायम किया था, पाकिस्तान जिसकी पीठ पर अमेरिका जैसा सर्वसाधनसम्पन्न देश था, इस युद्ध से अपने को बहुत ही अपमानित महसूस करने लगे थे, जिसका बदला उसी प्रकार से लेने के लिये उसी अपने आका अमेरिका देश के इशारे पर पाकिस्तान ने कूटनीतिक षड्यंत्र करने का विचार किया, जो कि उस घटना के लगभग 10 या 12 वर्ष के बाद भारत में एक विस्फोट के रूप में प्रकट हुआ जिसका विवरण अगली पंक्तियों में उपस्थित किया जा रहा है।

पंजाब में अफरा-तफरी और ब्लू स्टार आप्रेशन

सन् 1981 के लगभग पंजाब में साम्प्रदायिक हत्याओं का दौर-दौरा आरम्भ हुआ, प्रदेश के प्रसिद्ध राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं, पत्रकारों, समाजसुधारको की हत्या की जाने लगी, वह भी हिन्दू वर्ग की ही, कोई भी जिम्मेदार सिख इनकी निन्दा करने को तैयार नहीं होता था, जिसमें लाला जगतनारायण जी पत्रकार, उनके पुत्र रमेश जी, चौ0 बलवीरसिंह इत्यादि की हत्यायें मुख्य थीं, दिन-दहाड़े लूट लेना, किसी के मकान में घुसकर गोली मार देना, राह चलते किसी का स्कूटर छीनकर भाग जाना, आये दिन हत्याओं की धमकियां मिलना, किसी का भी हिटलिस्ट में नाम लिख लेना, यहां तक की बसों से उतार कर खासी बड़ी संख्या में एक साथ मार देना, स्टेशनों को जला देना, वह ऐसा भयंकर युद्ध था कि जिसने पंजाब को सौ वर्ष पीछे धकेलकर रख दिया, यह सब हुआ, उस एक व्यक्ति के इशारे पर जिसको कांग्रेस ने ही पाला था, वह था तथाकथित सन्त जरनैलसिंह भिंडरावाला, शासक दल की ओर से खुली छूट पाकर वह उन्हीं के सिर पर चढ़ बैठा था, अब वह स्वयम्भू नेता बन बैठा था, खुली छूट का परिणाम यह हुआ कि उसकी मुट्ठी में सारे पंजाब का जीवन था, गुरुद्वारों में शस्त्र-संग्रह किया जाने लगा, अमृतसर का

स्वर्ण मंदिर तो उग्रवादियो की छावनी बन चुका था, पाकिस्तान, अमेरिका आदि शस्त्र, धन से सहायता करते थे, साथ ही अपने यहां ट्रेनिंग देकर भारत में अफरा-तफरी फैलाने को गुप्त रूप से भेजते थे, यह मारधाड, लूटपाट केवल इसलिए थी कि पंजाब का बहुमत हिन्दू पंजाब छोडकर चला जाये और सिख होमलैंड अपने आप ही बन जाये, परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि सिखों ने न जाने कितने हिन्दुओ को मारा परन्तु किसी भी हिन्दू ने एक भी सिख को नहीं मारा, आखिर सबर के प्याले की जब हद हो गई, तब आर्यसमाज को मजबूर होकर जून, 1984 को सरकार के पास डेपुटेशन लेकर जाना पड़ा, कहा कि अब हमारे सबर का प्याला भर चुका है, और अन्ततः 3 जून, 1984 को सरकार को मजबूर होकर स्वर्ण मन्दिर पर सैनिक कार्रवाई करनी पडी, उक्त कार्रवाई के पश्चात् मिलनेवाले विशाल शस्त्रसंग्रह, भारतीय मुद्रा मे नोटों के बोरे, विदेशी शराब, हीरोइन इत्यादि नशीले पदार्थो तथा एक सौ के लगभग मासूम बच्चियां ही उस सन्त रुपी भेड़िये के इशारे पर उसके अनुयायियों की वासना का शिकार रही थीं, बरामद हुईं, इसके अतिरिक्त विदेशों के साथ हुए पत्रव्यवहार, अपने देश के सैनिक अड्डों के नक्शे एवं विदेशों के साथ गहरे सम्बन्धों के सूचक काग़जात भी बरामद हुए, इतना ही नहीं बल्कि देश की सेना मे विद्यमान सिख सैनिकों ने भी अकाली दल के इशारे पर बगावत की थी, आश्चर्य तो यह है कि सारी बगावत, हत्याकांड एवं लूटपाट की कार्रवाईयां तथाकथित ध ार्मस्थान गुरुद्वारों की आड़ लेकर जानबूझकर की जा रही थी, गुरुद्वारे अकाली दल के सैनिक अड्डे बन चुके थे, अकाली दल का प्रत्येक कार्यकर्त्ता, नेता बगावत का नारा देकर देश से पृथक् हो जाने की ही भाषा बोलता था, ब्लू स्टार आप्रेशन की सफल कारवाई के पश्चात् संसार ने देखा कि किस प्रकार अकाली दल ने विदेशों की राह पर देश से अलग होने की साज़िश रची थी, मार-धाड़ के उस भयंकर काल में भी आर्यसमाज ने अपने लोगों पर आक्रमण होने के बावजूद भी जिस धैर्य, संयम तथा सहनशीलता का परिचय दिया वह अपने-आप में एक मिसाल है, आर्य नेता, प्रसिद्ध पत्रकार श्री वीरेन्द्र जी

को कई बार मारने की धमकियां दी गई, एक बार तो उग्रवादियों ने बमों का पार्सल उनके नाम भेजा, जो कि उनकी अनुपस्थिति में खोला गया और कार्यलय में फट गया, जिसके परिणामस्वरूप उनके दो कर्मचारी मौके पर ही दम तोड़ गये, कई डी0 ए0 वी0 कालेजों पर हमले करके उनके रिकार्ड जलाने के प्रयास हुये, इन्हीं लोगों के इशारो पर श्रीनगर में आर्यसमाज मन्दिर को जलाकर राख बना दिया गया था, आर्यसमाज ने इस सारी क्षति को बडे धैर्यपूर्वक सहन किया, परन्तु अपना देश समझकर देश की अखण्डता बनाये रखने के लिये स्व0 प्रधानमंत्री द्वारा किये गये ब्लू स्टार आप्रेशन के बाद आर्यसमाज ने जहां चैन की सांस ली वहां उसके उपलक्ष्य में खुशियां भी मनाई गई, परन्तु इससे देश की एक बडी भारी हानि का सामना करना पड़ा, वह थी भारत की प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी की जघन्यता, पापपूर्ण हत्या। जो कि स्वतन्त्र भारत के माथे पर सदा के लिये एक अमिट कलंक तथा बदनुमा धब्बे के रूप में अकालियों के कुकृतयों का मुंहबोला चित्र प्रस्तुत करती रहेगी, साथ ही इन्दिरा गांधी की दिलेरी तथा बहादुरी को जिसने अपनी चिंता न कर उक्त आप्रेशन करने का साहसपूर्ण निर्णय लिया था गौरव के साथ स्मरण किया जायेगा, और हत्यारो द्वारा किये गये विश्वासघात को और उससे हुये घावों को इतिहास युग–युगों तक भूल न पायेगा। जिसकी कृपा से देश अखण्ड रह सका है।

डी0 ए0 वी0 कालेज, लाहौर के प्राचार्य डा0 जी0 एल0 दत्ता गोलियों के सामने

यह घटना मई, 1947 की है, लाहौर में धारा 144 लगी हुई थी, डी0 ए0 वी0 कालेज के कुछ छात्रों ने पुलिस को तंग किया और उनकी लाठियां आदि छीन लीं, पुलिस ने प्रतिशोध लेने के लिये बलपूर्वक कालेज के प्रांगण मे प्रवेश करके गोली चला दी, पुलिस की बन्दूकों की गोलियां खिड़कियों के शीशे तोड़कर अन्दर प्रवेश कर रही थीं, जिसके परिणामस्वरूप अनेक विद्यार्थी घायल हो गये थे,

ज्यों ही डा0 दत्ता को पता चला वह अपने घरेलू वेश में ही दोहरी धोती और कुर्त्ता पहने तथा चरणों मे खड़ाऊ पहने दौडते हुये उस भयानक स्थल पर पहुचे, वे बडी निर्भयता से उनके आगे वक्षस्थल किये और बोले मैं इस कालेज का प्रधानाचार्य हूं, आपने किसकी आज्ञा से यहां प्रवेश किया है ? और गोली किसरो पूछकर चलाई है ? डा0 दत्ता की इस ललकार से सारा वातावरण स्तब्ध हो गया, और सर्वत्र शन्ति स्थापित हो गई, उन्होंने उसी समय सम्बन्धित अधि ाकारियों को तार द्वारा इस निन्दनीय और दुःखद घटना की सूचना दी, डा0 दत्ता का यह साहस अवलोकनीय था।

(डा0 गोवर्धनलाल दत्ता अभिनन्दन ग्रंथ, पृ0 27)

साहस के धनी प्रि0 मेहरचन्द डी0 ए0 वी0 कालेज, लाहौर

डी0 ए0 वी0 कालेज के विधार्थी देशभक्ति में किसी से पीछे नहीं थे, कांग्रेस के आन्दोलनों मे दूसरे देशभक्तों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलते थे, साईमन कमीशन के विरोध में बडा भारी आन्दोलन हुआ, बड़ी भारी हलचल हुई, हमारे विद्यार्थियों की पुलिस के साथ मुठभेड हुई, कई एक घायल हुये, पुलिस कालेज के अन्दर घुस आई, अध्यापकों की भी मार-पिटाई हुई, लाहौर का इगलिशमैन डिप्टी कमिश्नर कालेज महाद्वार के भीतर आ गया, और मेरे सामने की बात है कि उसने धमकाते हुये, प्रि0 मेहरचन्द जी से कहा, मैं जानता हूं कि आप कांग्रेस मैन हैं, आपने खादी पहन रखी है, यह सुनते ही प्रिंसिपल साहब ने कहा, हां मैं कांग्रेस मैन हूं, आप मुझे गिरफ्तार कर सकते हैं, इस सिंहगर्जना से वह सहम गया, और तत्काल पीछे हट गया।

(विश्वज्योति मासिक होशियारपुर-जून-जुलाई 1986 के डी0 ए0 वी0 शताब्दी अंक, पृ0 110)

आर्यसमाज के उपदेशक देशभक्त पूर्णचन्द्र जी आर्य

पं.0 पूर्णचन्द्र जी का जन्म उत्तरप्रदेश में एक किसान परिवार में हुआ, इन्होंने ब्राह्म महाविद्यालय, लाहौर मे उपदेशक का प्रशिक्षण

प्राप्त किया था, उससे पहले ये एस0 एल0 सी0 परीक्षा उत्तीर्ण कर पुलिस सब इन्सपैक्टर बन गये थे, जब सन् 1921 में महात्मा गाधी ने असहयोग आन्दोलन चलाया तब आपने उनके आहवान पर इंस्पैक्टर पद से त्याग-पत्र दे दिया था, और सहर्ष कारावास का दंड भोगा था, इसके बाद तो आप न जाने कितनी बार स्वाधीनता के हेतु कारावास गये, उसी के परिणामस्वरूप आपने प्रतिज्ञा की कि जब तक देश पराधीन है, तब तक मैं स्वयं या अपने किसी सम्बन्धी को किसी सरकारी शिक्षणालय में शिक्षा प्राप्त न करूंगा और न करने दूंगा, साथ ही न नौकरी करुंगा और न करने दूंगा, 1930 मे जब नमक सत्याग्रह चला, आप आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में उपदेशक थे, सभा से अनुमति लेकर उक्त सत्याग्रह में जेल चले गये, आपकी इसी देशभक्ति को देखकर कांग्रेस ने आपको बागपत तहसील का संगठक बनाया, जब 1931 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन चला तब आपको तहसील स्तर पर डिक्टेटर नियुक्त किया गया, परिणामस्वरूप 28 जून, 1930 को आप नमक सत्याग्रह में विशाल जत्थे के साथ गिरफ्तार हुये, जिसके फलस्वरूप आप मेरठ, मैनपुरी की जेलों में रहे, और दस मास के बाद मुक्त हुये, उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिक, में आपके सम्बन्ध में निम्न शब्दों में उल्लेख किया गया है, ''पूर्णचन्द्र आर्य ने राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित होकर पुलिस सब इंस्पैक्टर का पद छोड़कर असहयोग आन्दोलन में भाग लिया, और सन् 1921 में तीस मास की सजा पाई, सन् 1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में बागपत तहसील के डिक्टेटर बने, पकडे गये और दस मास की सज़ा पाई, आपके दो भाई भी राष्ट्रीय आन्दोलन में जेल गये थे।''

आपके बाद आपकी वृद्धा माता तथा पत्नी ने उस अधूरे छूटे कार्य को पूर्ण करने के हेतु अपने को उस कार्य में झोंक दिया था, ये दोनों ही महिलाये अपने नन्हें बच्चे गोद में उठाये उक्त आन्दोलन के निमित्त जागृति उत्पन्न करती गाव-गांव फिरती थी, तत्पश्चात् इन देवियों ने भी अपने को गिरफ्तारी के लिये भी पेश किया, आपका

सारा ही परिवार देशभक्त था, आपके दो बडे भाई श्री सुबासिंह तथा स्व0 हरदेवसिंह भी प्रत्येक आन्दोलन में सक्रिय भाग लेते रहे तथा जेल जाते रहे, स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिक, पुस्तक के पृ0 112 पर लिखा है, सुबासिंह ने 1941 के कांग्रेस आन्दोलन में छः मास की सज़ा काटी थी, पुनः 1942 में भी जेल गये, और पाच मास की सज़ा काटी, इतना ही नहीं सारे परिवार के सामान की कई बार इसीलिये सरकार ने कुड़की की, और नीलामी कर दी कि इनका एकमात्र यही अपराध था देश की स्वाधीनता की लडाई में इस परिवार ने इतना बढ़-चढ़कर भाग लिया। अपने पिताजी से गांव की नम्बरदारी से भी इसलिये त्याग-पत्र दिलाया, क्योंकि आप किसी भी प्रकार से ब्रिटिश सरकार से सहयोग करने के लिये तैयार नहीं थे।

(श्री पं0 पूर्णचन्द आर्य का जीवनवृत्त-ले0 प्रो0 बलजीत आर्य)

भारतीय सेना के आर्य सैनिक भी पीछे नहीं

उस समय भारतीय सेना में हरियाणा के अनेक किसान भर्ती हुये, जिसमें रोहतक तथा हिसार के लोगों की संख्या अधिक थी, बात सन् 1935 के आस-पास की है, जब कांग्रेस ने चुनावों के द्वारा असेम्बलियों में जाने का निर्णय कर लिया था, हमारी सेना पठानों के इलाके में पड़ी हुई थी, जिसमें अधिकतर हरियाणा की टुकड़ियां थीं, चुनाव के समय वहां के कांग्रेस के टिकट से श्री मेहरचन्द जी खन्ना, भूतपूर्व पुनर्वास मंत्री, भारत सरकार थे, वहां स्थानीय जनता की अपेक्षा सेना के मतदाताओं की संख्या अधिक थी, हरियाणा के उन सैनिकों ने मेहरचन्द खन्ना को मत देने का निश्चय कर लिया, मतदान के समय सेना के उच्चाधिकारी से सैनिकों को तत्कालीन सरकारी प्रत्याशी को ही मत देने की अपील की, वहां साथ ही वैसा न करने पर खतरनाक परिणाम की भी धमकियां दी गई, उन्हीं सैनिकों में श्री चौ0 चूहड़सिंह जी भी थे, जोकि हिसार नारनौद, पिछपडी ग्राम के निवासी थे, तथा प्रखर आर्यसमाजी थे और अब भी हैं, वे जब मत देने पहुंचे तब प्रज़ाइडिंग आफिसर से बोले कि हम वोट अपनी

इच्छानुसार नहीं दे रहे हैं, जबकि सरकार का नियम है कि मतदाता अपनी इच्छानुसार ही मत दें, वे बोले कि क्यो ? तब उन्होंने कहा कि सेना के सामान्य अफसर भी हमें इसके लिये मजबूर कर रहे हैं, तब उसने दिखावे के लिये उचित कारवाई की, इन्होंने अपना मत कांग्रेस के उम्मीदवार मेहरचन्द खन्ना को ही दिया, साथ ही सबको इसके लिये प्रेरित भी किया, परिणाम यह हुआ कि सरकारी उम्मीदवार हार गया तथा खन्ना जी विजयी रहे, इससे सेना के अधिकारियों मे हलचल मच गई, और हरियाणा के इन सैनिको को गोली से उड़ाने की साजिश करने का वे परामर्श करने लगे परन्तु इतने अधिक सैनिकों को गोली मार देने से सेना में भयंकर बगावत की आशंका के आसार नजर आने लगे, तब एक उच्चाधिकारी ने कम्पनी को फलोआन किया, जब सब एकत्रित हो गये, तब उसने कहा कि आप मे जो अंग्रेजी राज्य को बुरा समझते हों, वे अपनी जगह ही खड़े रहें, बाकी दो कदम पीछे हट जाये, तब आर्य सैनिकों को छोडकर शेष सभी पीछे हट गये, जिनमें पांच हिसार के और एक रोहतक का था, जब देखा कि ये किसी भी तरह विचलित होनेवाले नहीं हैं, तब उन्होंने इनको किसी प्रकार किसी स्थानीय व्यक्ति से मरवा देने का निश्चय किया, उन्हीं अफसरों में एक सहृदय अग्रेज अफसर था, वह चूंहडसिंह जी से प्रेम करता था, एक दिन उसने इनको एकांत मे बुलाकर कहा कि अब तुम मरनेवाले हो, तुम्हारे गद्दार देशवासी ही तुम्हे मारेंगे, इनके कहने पर कि जब मरना ही है तो फिर क्यों डरें, एक न एक दिन तो मरना ही है, उसने कहा कि मैं तुम्हें ज़िन्दा देखना चाहता हूं और उसने कहा कि तुम मुझे प्रार्थनापत्र दो कि हमारी मा या भाई गम्भीर बीमार हैं, मै तुम्हे छुट्टी पर भेज दूंगा, फिर घर से लिख देना कि मुझे गभीर बीमारी ने घेर लिया, अत. मैं असमर्थ हूं, तब मै सेना से तुम्हारा नाम खारिज कर दूगा, तब इन्होने वैसा ही किया, श्री चूहडसिंह जी आज जीवित है तथा अपने उत्तम चरित्र के कारण अपने गांव नारनोद बिछपडी के वे बीस वर्ष से निर्विरोध सरपंच चले आते आ रहे है, वे एक दृढ आर्य हैं।

(श्री चौ0 चूहड़सिंह जी ने बातचीत मे लेखक को तीन बार यह बात सुनाई)

वे अनाम देशभक्त आर्यवीर

एक सज्जन गुरुकुल कांगडी में अक्सर आते रहते थे, (उनका नाम मुझे भूल गया) उनका देशभक्त क्रातिकारियो के साथ गहरा सम्पर्क था, एक बार देशभक्त क्रांतिकारियों की एक गुप्त बैठक हुई, तदनुसार उस सज्जन के पास एक नवयुवक दो सौ मोहर लेकर आया उन्होंने उरो पंजाब के प्रसिद्ध आर्यसमाजी देशभक्त चौ० रामभजदत्त जी के पास भेज दिया, उन्होंने उसे दो और युवकों के साथ वे मोहरे देकर पेशावर के रास्ते काबुल की ओर रवाना कर दिया, जो योजना थी, वह मोहर लानेवाले युवक के साथियों को समझा दी, लेकिन उसे कुछ नहीं बताया, साथियों से पूछने पर उन्होंने उसे कहा कि सूखे मेवा का व्यापार करने हम जा रहे हैं, वहां जाकर गुप्त रूप से वे कई विश्वस्त व्यक्तियों से मिले, वहां के प्रसिद्ध देशभक्त क्रांतिकारियों से भी मिले, एक दिन अचानक ही वहां का विख्यात क्रांतिकारी उनसे मिला और बोला कि जल्दी ही यहां से निकल चलो, वे वहां के प्रदेश से सर्वथा ही अपरिचित थे, तब उसने एक विश्वस्त पठान को उनको साथ कर दिया और कहा कि इनको सुरक्षित भारत की सीमा तक पहुंचाना तेरा काम है, क्योंकि अचानक परिवर्तित स्थिति के कारण सड़कों से चलना खतरे से खाली नहीं था, अतः वह पठान उनको बीहड़ जंगल के मार्ग से सीधा दरिया के किनारे लाया, कहीं से किसी प्रकार उसने चार मशकें प्राप्त कीं और उनमें बैठकर सिन्ध ा दरिया को पार किया, भारत की सीमा आ आने पर पठान ने कहा कि मेरा काम समाप्त है अब आप लोगों को कोई खतरा नहीं हैं, चलते समय वे तीनों सज्जन उसे कुछ मोहरें पुरस्कार मे देने लगे, तब उस पठान ने कहा कि यह दौलत देश की अमानत है अतः मैं इसे नहीं ले सकता, मैं अमानत में खयानत नहीं चाहता, और उनसे विदा लेकर चला गया और वे सज्जन पंजाब में आकर चौ० रामभजदत्त जी से मिले, तथा सारी मोहरें ज्यों कि त्यों उन्हें वापिस लौटा दीं, बाद में साथियों के पूछने पर रामभजदत्त जी ने बताया कि आपको

काबुल इसलिये भेजा गया था कि आप वहां के क्रांतिकारियों के सम्पर्क से रूस से हथियारों का जखीरा भारत में लावें, जिससे कि यहां देश में सशस्त्र क्रांति की जा सके परन्तु अचानक ही तथा अप्रत्याशित रूप से काबुल में विद्रोह हो गया, जिससे कि वहा का शासक अमानुल्ला मारा गया, उसके साथी भी कत्ल कर दिये गये, वे ही हमारे इस काम में परम सहायक थे, इसलिये अचानक ही तुम सबको काबुल से वापिस आना पड़ा है, पाठकवर्ग इस घटना से आर्यसमाज के नेताओं की गहरी देशभक्ति तथा देशनिष्ठा का अनुमान कर सकते हैं और देश के लिये अपने को कितनी विपत्ति में झोंकने का सामर्थ्य तथा साहस रखते थे, ऐसी न जाने कितनी घटनायें होंगी जो कि इतिहास की दृष्टि से ओझल होंगी।

(श्री क्षितीश कुमार जी वेदालंकार सम्पादक 'आर्यजगत्, ने बातचीत के प्रसंग में यह घटना लेखक को दो बार सुनाई)

आर्यजगत् के विख्यात दार्शनिक विद्वान् श्री उदयवीर जी शास्त्री क्रांतिकारियों के बीच :

सन् 1921 के असहयोग आन्दोलन के सिलसिले में अनेक नवयुवको ने कालेजों और विश्वविद्यालयों की शिक्षा को तिलांजलि देकर जेलो की यात्रा की। स्वातंत्र्य–समर क्रमश. व्यापक होने लगा और विशाल जनसमुदाय उसमें भागीदारी का निर्वाह करने के लिए आगे आया। राष्ट्र के कर्णधारों ने युवा पीढी को शिक्षित एवं प्रशिक्षित करने के लिए राष्ट्रीय महाविद्यालयो की स्थापना आवश्यक समझी। ऐसा ही एक विद्यालय लाहौर में लाला लाजपतराय ने भाई परमानन्द जी के सहयोग से स्थापित किया था जो आगे चलकर मूर्धन्य क्रांतिकारियों का साधना–पीठ बना। सन् 1921 में ही श्री उद्‌यवीर शास्त्री ज्वालापुर गुरुकुल से आकर इसी विद्यालय मे संस्कृताध्यापन करने लगे। यहां यह ध्यान में रखना है कि हमारे राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन ने देश की प्रतिभा और वैदुष्य को अपनी ओर आकृष्ट किया था। यह वह युग था जब ज्ञान–साधना और सारस्वत अनुष्ठान के

इच्छुक मातृभूमि के प्रति समर्पित हो जाया करते थे। यही कारण है कि उदयवीर सिंह शास्त्राभ्यासी युवा क्रांतिकारियों के निष्ठावान् आचार्य और विश्वसनीय संरक्षक बन गये। लाहौर का उनका यह प्रवास काल उनके जीवन के उन अलिखित गोपनीय प्रकरणों को अपने अन्तर में छिपाये हुये हैं जिनका हमारे क्रांतिकारी आन्दोलन के इतिहास में विशेष महत्त्व है और जिन्हें न छिपाने का प्रयत्न शास्त्री जी ने सहज विनम्रतावश किया लेकिन जिन्हे छिपाकर भी वे छिपा नहीं पाये! उसके न जाने कितने साक्षी आज भी मौजूद हैं! यह संभव नहीं कि यहां उन सब प्रसंगों का संक्षिप्त उल्लेख भी किया जा सके, उनके सविस्तार वर्णन की तो बात दूर की है। केवल कुछ प्रसंग इस उद्देश्य से यहां उल्लेखित हैं कि शास्त्री जी के व्यक्तित्व के परोक्ष पक्षों को उजागर किया जा सके।

नेशनल कालेज, लाहौर में प्रसिद्ध क्रांतिकारी भगवतीचरण बोहरा छात्र थे, भगतसिंह भी वहीं पढ़ते थे। यशपाल भी इन्हीं के साथ थे। भगतसिंह ने वैकल्पिक विषयों में संस्कृत भी चुना था, अत. वे शास्त्री जी की सस्कृत कक्षा के नियमित छात्र बने। भगवतीचरण के साथ तो शास्त्री जी के सम्बन्ध बिल्कुल परिवार जैसे थे–एक दूसरे के सुख–दुःख के सहभागी और राष्ट्रीय सरोकारों के प्रत्यक्ष एव परोक्ष सहकर्मी। भगतसिंह ने भी निश्छल विश्वास के साथ अपने कक्षा–गुरु को सदैव समुचित सम्मान दिया और आवश्यकता पडने पर उनके आश्रय को भयमुक्त हो स्वीकार किया। यह सर्वविदित है कि प्रसिद्ध काकोरी भगतसिंह के पूर्व लाहौर में पुलिस सरगर्मी अधिक बढ जाने के कारण भगतसिंह कानपुर चले आये थे और अमर शहीद श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' मे कार्य करने लगे थे। यद्यपि वे लाहौर से परिचय–पत्र साथ लाये थे तथापि एक अपरिचित युवक को किन्हीं गुप्त कार्यों में नियोजित करने से पूर्व यह आवश्यक था कि उसके विषय में सभी ज्ञातसूत्रों से ठीक–ठीक पता कर लिया जाये। इसी उद्देश्य से एक पत्र श्रद्धेय विद्यार्थी जी ने शास्त्री जी को भी लिखा था। उनमें यह लिखते हुए कि लाहौर से एक ऐसे युवक यहां आये

हैं और आपका भी संदर्भ प्रस्तुत कर रहे हैं, यह पूछा गया था कि आपकी सम्मत्ति मे इन्हे किस योग्य समझा जाये। शास्त्री जी ने स्पष्ट ही इंगित कर दिया था उक्त युवक को कोई भी कार्य विश्वासपूर्वक सौंपा जा सकता है। वे कर्मठ और साहसी हैं।

नेशनल कालेज के बन्द हो जाने के बाद शास्त्री जी लाहौर के ब्राह्म महाविद्यालय में पढ़ाने लगे थे। साण्डर्स हत्याकांड के बाद पुलिस की निगाह से बचकर जब सभी क्रांतिकारी युवक एक-एक कर लाहौर से बाहर चले गये तब लाहौर में उन लोगों की धर-पकड़ होने लगी जो ब्रिटिश साम्राज्य की अपार शक्ति को चुनौती देनेवाले क्रांतिकारियों को परोक्ष रूप से सहयोग और संरक्षण दिया करते थे। लाहौर में अधिक दिन तक ठहरना और नौकरी करना शास्त्री जी के लिए भी निरापद नहीं रहा। उन्होने कालेज से त्याग-पत्र दे दिया। नाहन में शास्त्री जी के ससुराल वालों की जमींदारी थी। ठाकुर प्रतापसिंह वहां रहा भी करते थे। उसी समय की बात है जब उदयवीर जी भी नाहन गये हुये थे। भगतसिंह को यह बात मालूम थी। पुलिस की निगाह से बचने के लिए वे सीधे नाहन पहुंचे और शास्त्री जी से कुछ दिन ठहरने के लिए सुरक्षित स्थान मांगा। शास्त्री जी स्वयं पराये घर में थे, जिनके सदस्य सरकारी सेवा मे थे। बात की गोपनीयता भी बनाये रखनी थी। अत. वह अपने शिष्य के साथ कालसी के निकट खोटरी मांझरी गांव गए और वहां अपने विश्वसनीय परिचित श्यामसिंह के यहां शरण दिलाई। भगतसिंह लगभग दो सप्ताह वहां रुके और यह कहकर चलते बने कि कोरे एकांतवास से क्रांतिकारी कार्यक्रम में गतिरोध आ जाएगा। आज ये प्रकरण बड़े सहज और सामान्य लगते हैं किन्तु क्रांतिकारियों के गहरे सान्निध्य एवं उनके गोपनीय रहस्यों की गोपनीयता को यथावत् बरकरार में जिन जोखिमभरी भूमिका का निर्वाह उन दिनों करना पड़ा था उससे यत्किंचित् परिचित व्यक्ति ही इन घटनाओ के अन्तर्निहित महत्त्व को समझ सकते हैं। पुलिस को ज़रा सा सुराग मिल जाने का मतलब था निर्मम और अन्तहीन यातना का कठोर भोग और फिर जेल या फांसी। कितने ऐसे कक्षागुरु

थे जो यह कर सके! और कितने ऐसे सौभाग्यशाली थे जिन्हें ऐसे शिष्य मिले? बाद में भगतसिंह ने फांसी की कोठरी से एक पुस्तक अपने गुरु के पास किसी माध्यम से पहुंचायी थी जिस पर अपने हस्ताक्षरों-सहित समर्पण लिखा था। शिष्य की दी हुई वह अनन्य साधारण अमूल्य निधि शास्त्री जी के पास आज भी सुरक्षित है।

9 अप्रैल, सन् 1929 ई0 को असेम्बली बम कांड हुआ और बटुकेश्वर दत्त तथा भगतसिंह गिरफ्तार हुये। शास्त्री जी उस समय किसी काम से गांव (बनैल) गये थे और वापस दिल्ली की ओर आ रहे थे। उन्हें ऐक्शन की आशंका तो थी किन्तु उसके स्वरूप और समय का ज्ञान नहीं था। वे मार्ग में दादरी कस्बे के निकट एक गांव घूम में ठहरे, जहां उक्त कांड हो जाने की चर्चा चली। वहां और लोगों के बीच स्पष्ट रूप से शास्त्री जी ने यही कहा कि यह पागल और दिग्भ्रमित नवयुवकों का उत्तरदायित्वहीन कार्य हैं। भला ऐसे बम-विस्फोटों से डरकर अंग्रेज देश छोड़कर चले जायेंगे? किन्तु उनके मन मे शीघ्रातिशीघ्र दिल्ली पहुंचकर भगतसिंह के विषय में जानकारी प्राप्त करने की प्रबल लालसा उत्पन्न हुई। दिल्ली में उनके एक पूर्व-परिचित मजिस्ट्रेट थे ठाकुर जगदीशसिंह। संयोगवश उन्हीं के निर्देशन या संरक्षण में सरदार भगतसिंह को कारागृह मे रखा गया था। अतएव शास्त्री जी को पूर्ण विवरण उन्हीं से मिल गया। उन्हें सावधानी बरतनी पड़ी थी। ठाकुर जगदीशसिंह को पता नहीं था कि शास्त्री जी भगतसिंह को इतने निकट से जानते हैं। उनका विचार था कि बात-चीत के सहज क्रम में यह प्रसंग आ गया था। गोपनीय रहस्यों की ओर से सावधान रहते हुए ही उदयवीर जी ने कहा कि इस प्रकार का बम-विस्फोट कुछ दिग्भ्रमित नवयुवकों के दिमाग का पागलपन है, इससे सिवाय हानि के कोई लाभ नहीं हो सकता। लेकिन ठाकुर जगदीश सिंह मजिस्ट्रेट की आप्रत्याशित प्रतिक्रिया जानकर एक बार शास्त्री जी भी चौंक गए उन्होंने रोमांचित होकर कहा था कि

"शास्त्री जी आपको नहीं मालूम, ये ऐसे नौजवान हैं कि इनके चरणों को धोकर पीने से भी पुण्य लाभ होगा। यही सच्चे राष्ट्र-भक्त और पूर्ण मानव है। इसलिए देवता हैं।" एक सरकारी उच्चाधिकारी से ऐसे वचन सुनकर शास्त्री जी भी हर्ष-विहवल हो उठे।

बम-प्रयोग में अपने प्राणों की आहुति देनेवाले साहसी क्रांतिकारी भगवतीचरण वोहरा के परिवार से शास्त्री जी के परिवार का विशेष लगाव हो गया था। 28 मई, सन् 1930 ईस्वी रावी तट के निर्जन में उन्होंने वीरगति प्राप्त की थी। इससे पूर्व ही उनकी क्रांतिकारिणी धर्मपत्नी दुर्गादेवी वोहरा जो दुर्गा भाभी के नाम से क्रांतिकारी आन्दोलन में प्रसिद्ध रही हैं, शास्त्री जी की पत्नी विद्यादेवी के आश्रय में अपने एकमात्र पुत्र शची वोहरा को छोडकर निश्चिन्त हो जाया करती थी। दुर्गा जी को क्रांतिकार्यों को निर्बाध गति से चलने की स्वतन्त्रता इस व्यवस्था से ही मिली थी। विद्या जी ने ही शैशव में इस बालक का लालन-पालन एक अर्से तक किया था। इसके रोचक संस्मरण है। किन्तु उन्हें छोडकर हम स्वयं "दुर्गा भाभी" से सम्बन्धित उन प्रकरणों की ओर लौटते हैं जिनमें शास्त्री जी का अप्रत्याशित संरक्षण और अमूल्य सहयोग क्रांतिकारिणी महिला के लिए वरदान सिद्ध हुआ।

लाहौर से हटने के बाद अध्यापन-कार्य छोडकर शास्त्री जी देहरादून मे औषधालय का संचालन करने लगे। उन्हें औषधियों के बदले में दाम लेना रोगियों के प्रति अन्याय लगता था किन्तु वे जीवनयापन की दृष्टि से उतना ले लेते थे जिसमें काम चल जाये। फरारी की अवस्था में उन्हीं दिनों संपूरनसिंह के साथ दुर्गा जी देहरादून आई। कुछ दिनों तक दोनों को एक-दूसरे का पता नहीं लगा। इधर ब्रिटिश गुप्तचर पुलिस दुर्गा जी के पीछे लगी थी। उनके अस्तित्व को सूंघती फिर रही थी। गुप्तचर ने उनके आवास के निकट ही एक मकान किराये पर ले लिया और रात-दिन परछाई की तरह उनके पीछे लगा रहता था। लेकिन कभी मुठभेड का साहस नहीं कर पाता

था–वह इरा प्रतीक्षा मे था कि पजाब पुलिस आ जाये तब फरार महिला को गिरफ्त में ले लिया जाये। लुका–छिपी के इस प्रसंग से एक दिन शास्त्री जी दिख गये। दुर्गा जी उनके घर मे इस ढग से चली गई कि उसे पता न लगे किन्तु वहा अधिक समय तक छिपकर रहना असंभव हो गया। अतः एक रात शास्त्री जी उन्हें साईकिल पर बिठाकर संपूरनसिह के साथ हरिद्वारा के लिए निकल पडे। होईवाला तक अंधेरे मे साईकिल पर आ गए किन्तु यह सोचकर कि आगे किसी को सन्देह हो सकता है, साईकिले निकटवर्ती गांव मे छोडकर यह यात्री दल पैदल ही ऋषिकेश की ओर चल पडा। कुछ दूर चलने पर मालूम हुआ कि दुर्गा जी की चप्पलो ने पांवों को काट डाला है। अतः चप्पलों को हाथ मे लेकर चलना शुरु किया। उषा की लाली प्रकाश पर छिटकने लगी थी किन्तु ऋषिकेश अब भी दूर था। कंकरीली पथरीली जमीन पर नगे पांव चलते–चलते दुर्गा जी के पांवों में छाले पड गये। विवश होकर वे पांव पकडकर बैठ गई। छाले फूटने भी लगे थे। वहा भी एक उपाय निकल ही आया। पहाडी ढलान पर से छोटे पेड की डाल तोड़ कर बहगी बनाई गई और चादर और धोती का आश्रय लेकर शास्त्री जो और संपूरनसिंह ने दुर्गा जी को उस पर बिठाया और कहारों की भाति ढोते हुए ले चले। किसी के पूछने पर यह कहना सरल था कि कोई रोगिणी तीर्थ स्नान के लिए जा रही है। किसी प्रकार सडक तक गये। तदनन्तर एक तांगे में बैठकर सब लोग हरिद्वार पहुंचे। वहां शास्त्री जी ने एक सुरक्षित स्थान की खोज की और उन्हें ठहराया। स्वयं देहरादून लौट आए।

यहां एक छोटा–सा प्रसंग उल्लेखनीय है। श्री जे0 एम0 चटर्जी (वहां के एक वकील) शास्त्री जी के हितैषी और निकट परिचित थे। वे गुप्तचर विभाग के लोगों से भी सम्पर्क बनाए हुए थे। उन्होंने शास्त्री जी को एक दिन आगाह किया कि उनकी डाक रोंसर हुआ करती है उन्हें सावधान रहना चाहिए। लिफाफों पर गौर से दृष्टि डालें तो यह बात छिपी नहीं रहती थी पर शास्त्री जी को आगाह करने की आवश्यकता नहीं था। वे अतिशय सजगता रो काम ले रहे थे। वे

पत्र लिखने की बजाए स्वयं जाकर मिल लेना श्रेयस्कर समझते थे। पर लेखन और प्रकाशन सम्बन्धी पत्राचार तो निरापद था। शास्त्राचर्चा मे क्या कठिनाई हो सकती थी ? ऐसे ही किसी पत्राचार में एक पत्र आया कि यदि आप परीक्षा कर देखें तो हम लोग पांडुलिपि आपकी सेवा मे भेज दे। गुप्तचर शाखा ने अनुमान लगाया कि "पांडुलिपि" शब्द सांकेतिक भाषा का है और इसका वास्तविक अर्थ है "पिस्तौल"। भेजनेवाला कोई क्रान्तिकारी युवकों का समुदाय है। अतएव जब शास्त्री जी ने लिखा कि आप पांडुलिपि भेज दे, मैं उसकी जांच कर लूँगा, तब गुप्तचर विभाग को यह आशा हुई कि अब यह शास्त्री भी हाथ में आ गया। वहां पांडुलिपि रूप पिस्तौल की प्रतीक्षा हो ही रही थी कि अगली डाक में वांछित पैकेट आ गया। उसे विभाग ने सावधानी से एकान्त में खोला पर पिस्तौल न मिलकर पुस्तक ही मिली। विभाग अपनी मूर्खता पर बहुत पछताया। इस रहस्य का उद्घाटन भी श्री जे0 एम0 चटर्जी महाशय ने ही किया था।

जब पुत्र को बन्दी बनाया गया

भारत छोडो आन्दोलन पूरे यौवन पर था, प्रयाग मे इस आन्दोलन ने प्रचण्ड रूप धारण कर लिया था, प्रयाग विश्वविद्यालय के छात्रों में राष्ट्रीय चेतना देखकर विदेशी सरकार चिन्तित थी, छात्र भी इस आन्दोलन में कूद पडे थे, छात्रों पर लाठी व गोली भी चलाई गई थी, अग्रेजी शासन छात्रों मे देशभक्ति के भाव के लिए डा0 सत्यप्रकाश जी को दोषी समझता था, सरकार समझती कि गांधी टोपी वाला, श्वेत खद्रधारी डा0 सत्यप्रकाश ही विद्यार्थियों का प्रेरणास्रोत है।

बस फिर क्या था, सरकार ने डा0 साहब को धर लिया, श्री लालबहादुर शास्त्री, डा0 काटजू व श्री फिरोज गांधी आदि नेताओं के साथ उन्हें नैनी जेल में बन्दी बनाया गया, बम आदि बनाने के भयंकर आरोप थे, डा0 सत्यप्रकाश जी के ससुर प्रयाग आए, वह घबराए हुए थे, पूज्य उपाध्याय जी को लेकर वह डिप्टी कमिश्नर से

मिला, और कहा कि डा0 सत्यप्रकाश तो कोई राजनैतिक व्यक्ति नहीं, अतः इन्हे छोडा जाए, सरकार को सब पता था कि डा0 महोदय के श्री टण्डन जी, शास्त्री जी जैसे माननीय राष्ट्रीय नेताओ से सम्बन्ध ा हैं, डिप्टी कमिश्नर ने उपाध्याय जी से कहा कि आप पुत्र को समझाएं कि वह लिखकर दें कि मेरा आन्दोलन से कोई सम्बन्ध न है और न होगा, इस पर उपाध्याय जी ने अत्यन्त दृढता से कहा मैं पुत्र को ऐसा परामर्श नहीं दे सकता, सरकार उसे दोषी समझती है तो दण्ड दे दे और यदि दोषी नहीं समझती है तो छोड़ दे, डिप्टी कमिश्नर ने कहा आप निर्दोष होने की बात करते हैं, हमारे पास तो उसके विरुद्ध इतनी बड़ी फाईल है कि पूरा ग्रन्थ बन जाए।

डा0 सत्यप्रकाश (वर्तमान पूज्य स्वामी सत्यप्रकाश) ही एकमात्र भारतीय वैज्ञानिक हैं, जिन्हें देश के स्वतन्त्रता संग्राम में देश हित में बन्दी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

(व्यक्ति से व्यक्तित्व-ले0 प्रो0 राजेन्द्र जिज्ञासु, पृ0 189)

आर्य देवी की ललकार

सन् 1930 मे नमक सत्याग्रह जोरों पर था, चारो ओर धरपकड जारी थी, आर्यसमाज के विद्वान् तथा शास्त्रार्थकेसरी श्री इन्द्र वर्मा को भी पुलिस ने धरपकड़ा, जब पुलिस उन्हें हथकडियां लगाने लगी, तब देखा कि हथकडियां छोटी पड गई, वे बहुत स्वस्थ तथा हृष्टपुष्ट थे, तब दो हथकड़ियां मिलाकर उससे उनको जकड़ा, उनकी गिरफ्तारी का सुनकर उनकी धर्मपत्नी को भी जोश आ गया, तब वह एक गीत बनाकर गली, सड़कों, चौराहों पर जोश के साथ गाती हुई निकलती थीं, जिससे कि नगर में अभूतपूर्व क्रांति हो गई, और प्रत्येक व्यक्ति जेल जाने को उद्यत दिखाई देता था, गीत के आरम्भिक बोल थे 'मैं पब्लिक से सुन आयी री, सिंहनी को जायो है वर्मा।'

जब आर्य देवी के सामने ब्रिटिश सरकार को झुकना पड़ा

सन् 1932 का जमाना था, जबकि भारत आबाल वृद्ध नरनारी स्वतन्त्रता के लिये जूझ रहा था, तब सावित्री नामक एक आर्य ललना ने भी सत्याग्रह किया, जेल में बन्द होने के बाद उसने ज़िद की कि मैं हवन के बिना खाना न खाऊंगी क्योंकि वह नित्य हवन करती थी, जेल अधिकारियों के आज्ञा न देने पर उसने भूख हडताल कर दी, यह भूख हडताल उसने फतेहपुर (यू0 पी0) की जेल में की थी, जब आर्यसमाजी नेताओ को इस बात का पता लगा, आर्यनेता महात्मा नारायण स्वामी जी ने यू0 पी0 के गवर्नर को इस सम्बन्ध में तार दिया, सारे आर्यजगत् में एक आन्दोलन सा खडा हो गया, तब विवश होकर सरकार को उसे हवन करने की आज्ञा देनी पड़ी।

खरबूजे को देखकर खरबूजे ने रंग बदला

उसी काल की बात है, जब हमारे देश के नरनारी राष्ट्र की स्वाधीनता के लिये प्रसन्नतापूर्वक जेल जाते थे, और उन जेल जानेवाले देशभक्तों का जनता बड़ा ही शानदार स्वागत किया करती थी, उसी दौरान आर्यसमाज के विख्यात नेता स्व0 स्वामी सत्यानन्द जी, (भूतपूर्व आचार्य रामदेव जी) गुरुकुल झेहलम के आचार्य तथा आर्य प्रतिनिधिसभा पंजाब के पूर्व प्रधान जेल जा रहे थे, उनका शानदार स्वागत हो रहा था, साथ ही उनका जयजयकार हो रहा था, इस सुन्दर दृश्य को देखकर एक ऐसा सज्जन जिसका कभी कांग्रेस आदि देशभक्त संस्था से दूर का भी नाता नहीं था, वह भी बिना पूछे ही उन सत्याग्रहियों में सम्मिलित हो गया, जब उससे पूछा कि आप कब से कांग्रेसी बन गये हो ? तब उसने कहा कि मैं यह नहीं जानता, लेकिन मैं तो यह देखकर कि उन लोगों के गलों में फूलमालायें पड़ी हैं, जनता इनका जय जयकार कर रही है, जिससे कि इनके चेहरे पर बहुत ही रोनक है, विशेषकर इनके (आचार्य रामदेव जी की ओर संकेत करके) चेहरे पर बहुत तेज तथा रौनक है, बस इसी कारण मैं भी इनमे सम्मिलित हो गया हूं, इनके साथ रहकर मुझे बडा ही अध्यात्म लाभ हुआ है।

एक निवेदन और उपसंहार

भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण तथा स्वाधीनता प्राप्ति के क्षेत्र मे आर्यसमाज ने जो महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, उसका संक्षिप्त विवरण पाठक ग्रन्थ में पढ चुके हैं, भारत के राजनैतिक उत्थान एवं पुनर्निर्माण में सर्वाधिक सहयोग देने के बावजूद भी आज के इतिहास के ग्रन्थो में तद्विषयक प्रकरण में आर्यसमाज को कार्य के अनुरूप महत्त्वपूर्ण श्रेय नहीं दिया जाता है, जो कि दिया जाना चाहिये, यह ऐसा क्यों हो रहा है? विचारोपरान्त उसके निम्न कारण हो सकते हैं।

1. आर्यसमाज के इन राजनैतिक उत्थान के महत्त्वपूर्ण कार्यों से इतिहासकारो का अनभिज्ञ होना।
2. आर्यसमाज के सुधार कार्यों, सिद्धान्तो, मान्यताओं एवं गतिविधियों से वैमनस्य होने के कारण द्वेषभाव से जानबूझकर इन गौरवपूर्ण कार्यों का वर्णन न करना।
3. पदप्राप्ति, धनलोलुपता, लोकैषणा आदि स्वार्थों के कारण आर्यसमाज के इन महत्त्वपूर्ण कार्यों की उपेक्षा कर देना।
4. जनता और विशेषकर शासकों की दृष्टि में सर्वप्रिय बनने के अभिप्राय से आर्यसमाज के इस महत्त्वपूर्ण पहलू से आंख मीच लेना, उपरोक्त कारणों मे अन्तिम तीन ही कारण मुख्य प्रतीत होते हैं, क्योकि देश का कोई निष्पक्ष इतिहासकार इतिहास के अनुसंधान के प्रसंग में आर्यसमाज के इन कार्यो से अपरिचित रह जाये, यह सर्वथा असम्भव है, यदि है तो उसे इतिहासकार कहना इस शब्द का घोर आपमान करना है, वैसे भी इतिहासकार देश का निर्माता होता है, उसकी लेखनी न्याय की तुला कहलाती है, वह अपनी लेखनी से राष्ट्र के स्वर्णिम या धूमिल किन्तु यथार्थ भूतकालीन कार्यों के चित्रण से भविष्य का पथप्रदर्शक होता है, अन्यथा इतिहासकार और उपन्यासकार में कोई अन्तर न रहे, क्या इस दृष्टि से भारत के वर्तमान इतिहासकार कहलाने के अधिकारी हैं? यह एक अत्यन्त ही शोचनीय विषय है।

भारतीय इतिहासकार बन्धुओ! अपने इस पवित्र स्वरूप को पहचानो, सांसारिक प्रलोभनो से ऊपर उठो, आप लोगों ने आर्यसमाज के इन गौरवशाली कार्यों का वर्णन न करके अपनी लेखनी, नाम तथा कार्य को कलंकित किया है, याद रखो 'कृतघ्नस्य नास्ति निष्कृतिः' अर्थात् कृतघ्नता का प्रायश्चित करना कठिन होता है, अतः हमारे राष्ट्र के इतिहासकार मेरे ग्रन्थ से सावधान हों और जागें तथा अपने कर्त्तव्य को पहचानें साथ ही आर्यसमाज के इन गौरवशाली कार्यों का उल्लेख कर अब तक की गई भूलों का प्रायश्चित करते हुए आर्यसमाज के साथ न्याय कर अपनी नैतिकता का परिचय दे, और अपनी दैवी एवं अलौकिक परम्पराओं को अक्षुण्ण बनाये रखने का पुण्य संग्रह करें, आशा करता हूं कि इतिहासकार होने का दावा करनेवाले निष्पक्ष सज्जन भविष्य में अपनी लेखनियों की भूलों का परिमार्जन करने का नैतिक साहस दिखा पायेंगे।

इसी आशा और विश्वास के साथ इस ग्रन्थ को समाप्त करता हुआ अपनी लेखनी को विराम देता हूं।

दशम अध्याय

परिशिष्ट - 2

इस अध्याय में कुछ प्रकीर्ण सामग्री प्रस्तुत की जा रही है जो लिखते समय पूर्व अध्यायों में न आ सकी, अथवा पूर्व अध्याय लिखने के बाद ध्यान में आयी। इसके साथ ही मेरे मित्रों ने प्रस्तुत की, जिनमे प्रमुख हैं–1 श्री प्रो0 राजेन्द्र जिज्ञासु जो आर्यजगत् के इतिहास के प्रामाणिक विद्वान् हैं – 2 श्री पं0 महेन्द्रनाथ वैद्य आयुर्वेदालंकार जो गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के पुराने स्नातक हैं, गुजरात विषयकतत सम्बन्धी सामग्री इन्हीं की भेजी है, जो यहां ज्यो की त्यों प्रस्तुत की जा रही है। मैं इन दोनों हितैषी सज्जनों का बड़ा हार्दिक धन्यवाद करता हूं।

पंजाब

सन् 1930 के सत्याग्रह मे आर्यसमाज के शीर्षस्थ नेता एवं विद्वान श्री पं0 विष्णुदत्त वकील फिरोज़पुर कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में जेल गये थे। श्री पं0 गुरुदत्त जी विद्यालकार तो अनेक बार स्वतन्त्रता के लिये कृष्णमन्दिर (जेल) के निवासी बने। ये पण्डित जी आर्य प्रतिनिधिसभा पंजाब में उपदेशक थे। पं0 कृष्ण ने 1–1–1934 को 'दैनिक प्रभात' हिन्दी में निकाला, तब इनसे इसकी 1000/– रु0 ज़मानत मांगी गई थी, साथ ही ज़मानत की तिथि के भीतर ही इसके सम्पादक श्री छैल बिहारी को लाहौर छोड़ने का आदेश भी दिया गया था क्योंकि इस पत्र के अंक में स्वाधीनता की आवाज़ प्रबल रूप में उठाई गई थी। आर्यजगत् के प्रसिद्ध उपदेशक महात्मा सुमेरसिंह जी काली कमली वालों की धर्मपत्नी तथा प्रसिद्ध आर्यनेता संसद सदस्य यशपालसिंह जी की माता श्रीमती चमेली देवी को स्वाधीनता संग्राम के प्रसंग में जेल जाने पर जेल मे हवन करने की आज्ञा

नहीं दी गई थी तब आर्य जगत् के विख्यात शिक्षाशास्त्री श्री आचार्य रामदेव जी गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी ने सरकार को धमकी दी थी कि मैं इस पाबन्दी को तोड़ने के लिये सहारनपुर जेल में जाऊंगा। इसी प्रकार 1921 में आर्यजगत् के विख्यात विद्वान् वेदरत्न वैद्य सन्तराम जी मोगावाले देश की स्वाधीनता हेतु ब्रिटिश कारागार में गये थे और लगभग 15 मास जेल में रहे थे। वहीं रहते हुये आपने सचित्र महाभारत ग्रन्थ की रचना की। महात्मा हंसराज के लेखानुसार ये डेढ़ वर्ष जेल में रहे। उस काल में आपने सारे पंजाब भर में और विशेषकर ज़िला फिरोज़पुर में अद्भुत जनजागृति उत्पन्न की। इसी प्रकार गुरुकुल रायकोट (लुधियाना) के स्वामी सन्तोषानन्द जी देशहितार्थ जनजागृति उत्पन्न करने के अपराध में ब्रिटिश सरकार द्वारा बन्दी बनाये गये थे*। प्रसिद्ध देशभक्त तथा मार्शल लॉ के विख्यात अभियुक्त महाशय रत्नचन्द की सुपुत्री भी जेल में गई थी, इसी प्रकार आर्यजगत् के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ महारथी तथा उपदेशक पं0 मनसाराम जी वैदिक तोप के वारंट भी विदेशी सरकार ने पटियाला से जारी किये थे। श्री पं0 सूर्यदेव जी सिद्धान्तशिरोमणी तेरह मास तक अपने अन्य तीन साथियों के साथ जेल में रहे गांधी-इरविन पैक्ट के बाद ही छूटे थे**।

श्री भारतभूषण जी गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगडी का जन्म जेल में ही हुआ था। सन् 1943 में जेल में जन्म हुआ। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने नामकरण किया और इनकी माता का नाम श्रीमती भागीरथी देवी तथा पिता जी का नाम श्री तुगलसिंह जी है।

इनका गांव उदयपुर, जि0 बिजनौर है, इनका सारा ही गांव आर्यसमाजी है तथा इनके दादा श्री भलेसिंह जी है व इनके गाव में सबसे अधिक स्वतन्त्रता सेनानी हैं।

पैप्सु में जब स्वाधीनता आन्दोलन छिडा तब म0 प्रतिज्ञापाल

---

* देखें प्रकाश मासिक लाहौर, 23 भाद्रपद 1988 वि0 पृ0, 40

** पूर्वोक्त 28 ज्येष्ठ 1885 पर।

जी (प्रसिद्ध आर्यनेता म0 प्रेमप्रकाश जी वानप्रस्थ धुरी के भाई) भी जेल गये थे। यह 1946 की बात है। श्री पं0 मोहनलाल जी मलेरकोटला वहां के प्रसिद्ध आर्यसमाजियों में माने जाते थे साथ ही कांग्रेस के भी वर्कर थे, स्वाधीनता के प्रसंग मे अनेक बार जेल गये थे। महाशय रौनकसिंह जी (प्रसिद्ध आर्यसमाजी कार्यकर्त्ता श्री ओमप्रकाश जी वानप्रस्थ) के प्रिता इस सम्बन्ध में न जाने कितनी बार जेल गये थे। आर्यजगत् के मूर्धन्य विद्वान प्रसिद्ध रिसर्च स्कालर आचार्य वैद्यनाथ जी को भी इस प्रसंग में अनेक बार जेल यातनाएं सहनी पड़ी। इसी प्रकार प्रसिद्ध हिन्दी लेखक श्री क्षेमचन्द्र जी 'सुमन' जो लेखकों में आर्यसमाजीपन के लिये विख्यात हैं ने भी इस दिशा में बड़ा कार्य किया, 1942 में भारत छोड़ों आन्दोलन में वे लाहौर में गिरफ्तार हुये। स्वाधीनता के लिये ये पूरे दो वर्ष फिरोज़पुर जेल मे यातनायें सहते रहे। पंजाब सरकार द्वारा पंजाब से निष्कासित कर दिये जाने पर ये अपने जन्मस्थान 'बाबुगढ़' मेरठ में आ गये। वहां भी इनको सक्रियनेता जानकर सरकार ने नज़रबन्द कर दिया था, लगभग दस महीने तक अपने जन्म स्थान में ये नजरबन्द रहे। सुमन जी ने फिरोज़पुर जेल में "कारा" नामक एक खण्डकाव्य की रचना की थी, जिसमें 1942 के राष्ट्रीय आन्दोलन तथा उसमें हुए शहीदों का बड़ा ही रोचक एवं मार्मिक वर्णन किया गया था। उसमें देश के युवकों का आह्वावान करते हुए लिखा था–

हम बढ़ें, हमारे जीवन में, बरबस तूफान अधीर उठें,
सदियों से सोते भारत के, तरकस का तीखा तीर उठे,
युग–युग से परवशता पिंजरे का बन्दी भारत कीर उठे,
है जंग लगा जिसमें पावन, वह वीरों की शमशीर उठे,
हम जलती आहों से रिपु के प्राणों को जलता छोड़ चलें,
'जय हिन्द' हमारा नारा है, हम लाल किले की ओर चलें।

नज़रबन्द रहते हुए सुमन जी ने 'कारा', 'बन्दी के गाने' आदि काव्यों की रचना की थी। अगस्त क्रांन्ति के रोचक इतिहास के रूप

में उनके 'हमारा संघर्ष', 'नेता जी सुभाष', 'आज की कहानी' इत्यादि राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत ग्रंथ हैं।

मध्य प्रदेश

ज़ि0 बैतूल के अंतर्गत चिंचरौली नामक कस्बा है जिसमें आर्यसमाज का बड़ा भारी प्रभाव है, आज भी वहां आर्यसमाज के उत्सवों में कई-कई हज़ार की उपस्थिति होती है, श्रोता बड़े चाव से आर्यसमाज की बातें सुनते हैं तथा आर्यसमाज के प्रति बडी श्रद्धा रखते हैं, इस नगर मे स्वतंत्रता सेनानियों की संख्या 26 है, जिनमें 16 आर्यसमाजी हैं। वे सभी आर्यसमाज के सदस्य थे तथा हैं, यावज्जीवनन आर्यसमाज के सदस्य रहे हैं, यह आर्यसमाज के लिये कम गौरव की बात नहीं है।

राजस्थान

राजस्थान में स्वाधीनता संग्राम की ज्योति को प्रज्वलित रखने के लिये तथा लोगों में उनके प्रति रूचि तथा उत्साह जागृत करने के हेतु जिन लोगो ने ऐतिहासिक कार्य किया है उनमें राजस्थान के चूरू क्षेत्र में विशेषकर महात्मा गोपालदास जी का बड़ा भारी योगदान रहा, इन्होने स्वदेशी सभ्यता, संस्कृति तथा स्वाधीनता के लिये बड़ा भारी योगदान किया, राजस्थान मे आज जो भी जागृति है, उसका सम्पूर्ण श्रेय इन्हीं महात्मा जी को जाता है। महात्मा जी ने कितनी बार ब्रिटिश सरकार की जेल यातनाये सही। अनेक लम्बी-लम्बी सजाएं भोगीं, हंटरों से पीटा गया, काल कोठरियों में रखा गया, अनेक पाबन्दियां लगी, परन्तु यह मस्ताना मजाल है कि अपने मार्ग से विचलित हुआ हो, ऐसे महात्माओं के तप, त्याग साधना के परिणामस्वरूप देश स्वतन्त्र हो सका है। विचारों से ये आर्यसमाजी थे, साथ ही आर्यसमाज के कामों में भी पूर्ण योगदान करते रहे। राजस्थान के स्वतन्त्रता सेनानियों में ये प्रमुख रहे हैं तथा लोगों की श्रद्धा के पात्र रहे हैं।

सिन्ध

सिन्ध के ताराचन्द जी गाजरा जो वहां प्रसिद्ध आर्यनेता थे, स्वाधीनता संग्राम में जेल यातनाओं, लम्बी सज़ाओं के रूप में अनेक कष्ट सहन किये, इस दृष्टि से उस प्रान्त में उनका कोई सानी नहीं था।

गुजरात

श्री योगानन्द जी स्वतन्त्रता सैनानियों के प्रमुख हैं, प्रान्तीय स्वाधीनता सेनानी कमेटी के प्रधान हैं, इन्होने गुजरात में अद्‌भुत कार्य किया है। ये प्रखर आर्यसमाजी हैं, आर्यसमाज के गुरुकुलों में अध्यापक भी रहे हैं, न जाने कितनी बार जेल यात्रायें, सजायें, यातनाये सही हैं, ये गुजरात के सुभाष माने जाते हैं, वर्त्तमान में स्वाधीनता सेनानी होने से ताम्रपत्र और पांच सौ रुपए मासिक वृत्ति प्राप्त होती हैं, सरकारी क्षेत्र में भी इनका प्रभाव तथा दबदबा है, सभी लोग आदर की दृष्टि से देखते हैं, आर्यसमाज को इन पर गर्व है, अखिल भारतीय स्वाधीनता सेनानी कमेटी के ये उपप्रधान भी हैं।

1. श्री बलदेव भाई पटेल। जन्म 29-5-1908 सामरखा जिला खेड़ा, गुजरात। 1921 में सत्याग्रह में भाग लिया। 1927 मे बारडोली सत्याग्रह में भाग लिया। 1928 मे हिन्दी रक्षा सत्याग्रह में 10 सत्याग्रहियों के दल के साथ सत्याग्रह किया। जेल में गये। 1930 में धारासणा नमक सत्याग्रह में भी भाग लिया। प्रतिनिधिसभा के उपदेशक थे। सोनगढ़ गुरुकुल में शिक्षक भी रहे थे। मृत्यु 12-12-64.

   1928 में बारडोली सत्याग्रह हुआ। बारडोली के सभी किसान आर्यसमाजी थे। उस समय श्री ईश्वरदत्त मेधार्थी विद्यालंकार (स्वामी मेधार्थी जी) ने भी बारडोली में रहकर भाग लिया था तथा किसानों के नैतिक उत्साह को बढ़ाते थे।
2. डा0 अरविंद मणिभाई देसाई, वेदालंकार, एम0 ए0, पी0 एच0 डी0। जन्म 1927 सूरत की एम0 टी0 बी0 कालिज के

प्रोफेसर। पाठ्यपुस्तको के लेखक। 1942 में सत्याग्रह में जेल में गये।

3 श्रीकृष्ण शर्मा, राजकोट। जन्म–अजीतगढ (इटावा)। 1921 से 1926 तक स्वराज्य के संग्राम में सक्रिय। जेल में भी गये। 1932 में भी जेल में गये। 'विराट् भारत', 'वैदिक सन्देश', पत्रों के संचालक। पंजाब हिन्दी सत्याग्रह में भी भाग लिया। महर्षि के जन्मस्थान के निर्णय आदि की शोध में बहुत प्रयत्न किया। पुस्तक भी छापी।

4 श्री खडुभाई भीमभाई देसाई। जन्म 3–9–1897 एम.बी.बी एस., डब्लिन से एल. एम. वियेना से ज़ैड. ओ., 1921 से कांग्रेस कार्यकर्त्ता। 1942 में नवसारी जेल मे।

5 श्री छीमाभाई भूलाभाई पटेल। भाटपोर (सूरत), पीराणापंथ के आचार्य थे। 'पीराणापंथ की पोल' पुस्तक लिखी। हजारों पीराणापंथियों को आर्य बनाया। 10 बार जेल में गये। मृत्यु 7–2–1951।

6. श्री छोटालाल कालिदास तन्ना। जन्म–1888, 1916 मे महात्मा गांधी जी की शोभायात्रा में गाड़ी के सारथी थे। हैदराबाद सत्याग्रह तथा स्वातंत्र्यसंग्राम में सक्रिय भाग लिया।

7. श्री नाथाभाई दादाभाई पटेल। सामरखा (जि0 खेड़ा स्वतंत्र्यसंग्राम में भाग लिया। हैदराबाद सत्याग्रह में भी जेल में गये। 65 वर्ष की उम्र होने पर सन्यासी। मृत्यु–1966 मे 75 वर्ष की उम्र में हुई।

8. स्व0 नारण भाई गोपाल जी पटेल, भाटपोर (सूरत) जन्म–1870, सत्याग्रहों में भाग लिया। 1950 में 80 वर्ष में मृत्यु। इनके सुपुत्र श्री धर्मेन्द्रनाथ वेदालंकार अहमदाबाद (कांकरिया) आर्यसमाज में पुरोहित हैं।

9. स्व0 आचार्य बापालाल वैद्य। जन्म–1886 सणसोली (ज़ि0 पंचमहाल) सूरत आयुर्वेदिक कालिज के आचार्य। 42 में जेल में।

10. स्व0 श्री मोहननाथ केदारनाथ दीक्षित, सूरत। जन्म 1877 वम्बई ग्रांट मेडिकल कालिज में ट्यूटर। 1918 होमरूल तथा 20-21 मे सत्याग्रह में भाग लिया। 1923 मे धारा सभ्य।
11 स्व0 श्री सूरजराम भार्गव। भरुच। सत्याग्रह में सक्रिय भाग लिया। विहार भूकप मे 7 मास विहार में रहकर सेवा। स्वतन्त्रता के वाद जब स्व0 सैनिकों को पेन्शन नहीं मिलती थी। तब इनको 20 रु0 मासिक मिलती थी।
12 श्री सत्यकाम छोटाभाई पटेल। नडियाद (ज़ि0 खड़ा) गुरुकुल सोनगढ के स्नातक। 1942 मे जेल में। पत्रकार तथा कार्यकर्त्ता है।
13 श्री बलदेवभाई मोतीभाई पटेल। रामरखा (जि0 खेडा) जन्म 21-5-1908, सन् 1921 मे सत्याग्रह में, 1928 मे बारडोली सत्याग्रह मे, 1957 में हिन्दी सत्याग्रह मे भाग लिया। 1930 में धारासणा नमक सत्याग्रह में तथा हैदराबाद सत्याग्रह में भी भाग लिया।
14. श्री अंटोलदास जोराभाई पटेल। निकोरा (भरुच)। सत्याग्रह मे भाग लिया। प्रतिवर्ष यजुर्वेदपारायणयज्ञ अपने बाग में करवाते थे। कई क्रांतिकारी इनके बगीचे में छिपकर रहे थे। एक पुत्र श्री चन्द्रकांत लाहौर, उपदेशक महाविद्यालय के स्नातक हैं। भरुच जिले के अग्रगण्य किसान हैं। इनके तीन पुत्र अमेरिका मे है। श्री अंटोलदास जी की पत्नी भी सत्याग्रह में जेल मे गई थीं। परन्तु ताम्रपत्र और पेन्शन को स्वीकार नहीं किया था। दूसरे पुत्र गोरधन भाई भी गुरुकुल में कुछ साल पढ़े थे।
15 श्री सेवकलाल आर्य। उम्र 65 वर्ष। स्वातंत्र्य–सैनिक हैं। ताम्रपत्र तथा पेन्शन मिलती है।
16. खेताभाई दवे। उम्र 68, स्वातन्त्र्यसंग्राम में भाग लिया। अहमदाबाद में 'सत्यप्रकाश' पत्र के संचालक। इस पत्र में स्वतान्त्र्य सैनिकों के समाचार इत्यादि ज़्यादा होते हैं।

श्री श्यामजीकृष्ण वर्मा के बारे में तो लिखेंगे ही। महर्षि की प्रेरणा से विदेश गये। तथा वहां इण्डिया हाउस की स्थापना की। सावरकर आदि की प्रेरणा। भारतीय क्रांतिकारियों के परम आश्रयदाता। गुजरात सरकार भी अब इनका स्मारक बनाने को तैयार हुई है।

इन सब के सिवाय पूज्य रविशंकर महाराज भी मूल आर्यसमाजी ही थे। 101 वर्ष की उम्र में मृत्यु। इनके पुत्र श्री पं0 मेधाव्रत जी आयुर्वेदालंकार हैं। ये भी सत्याग्रह में जेल हो आये हैं। ब्रह्मचारी हैं तथा सेवा-भाव से चिकित्सा-कार्य करते हैं।

17. पटेल भीखाभाई बालदास। उम्र 80 वर्ष, पटेल मोतीभाई उमेदभाई। उम्र 75 वर्ष, श्री पटेल शिवाभाई कालिदास उम्र 60 वर्ष तीनो का गांव-खड़ाणा (ज़ि0 खेड़ा) तीनों को ताम्रपत्र मिला है तथा पेन्शन मिलती है। 1932 में सत्याग्रह। हाथ में से झंडा न छोड़ने पर लाठी मार। छः मास की कैद साबरमती जेल में। धारासणा नामक सत्याग्रह में भी भाग लिया। बोरसद के हैडावेरो सत्याग्रह में भी श्री वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में भाग लिया।

महर्षि दयानन्द ने जब जन-जागरण का शंख फूंका तो ऋषिवर अंग्रेजी न्यायालयों के बहिष्कार व स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर बडा बल देते थे। अंग्रेजी न्यायालय का अपमान करनेवाले प्रथम भारतीय ऋषि दयानन्द ही थे। ऋषि के शंखनाद का यह प्रभाव हुआ कि पूना नगरी के एक प्रसिद्ध प्रबुद्ध नागरिक गणेश वासुदेव जोशी काशी नगर में पधारे। वहां एक बड़ी सभा हुई। आपने वहां देशवासियों के सामने एक राष्ट्रीय पंचायत की स्थापना का विचार रखा। आपने विदेशी माल वा अंग्रेजी न्यायालयों के बहिष्कार एवं शिल्प की उन्नति पर बल दिया। ये चारों बातें ऋषि के लेखों व व्याख्यानों में होती थीं।

इस सभा में बाबू हरिश्चन्द्र भी बोले थे। आपने काशीवालों को बहुत लताड़ा। स्मरण रहे कि यह बाबू हरिश्चन्द्र भारतेन्दु, 1869 ई0 के काशी शास्त्रार्थ में ऋषि के विरोधी थे और पण्डितों के साथी थे। अब वह काशी की अवस्था को अधम वा शोचनीय मानने लगे।

ऋषि का व आर्यसमाज का इस आन्दोलन को समर्थन प्राप्त था। उन दिनों आर्यसमाज का एक पत्र छपता था। इसका नाम 'भारत दुर्दशा प्रमर्दक था। इसके सितम्बर 1879 ई0 के इस सभा का पूरा विवरण छपा था। ऋषि के जीवनकाल में....... कांग्रेस की स्थापना से पूर्व आर्यसमाज जनजागरण व राष्ट्रीय भावों के प्रसार में इतना आगे था। देश में तब भी कई मत पंथ थे। स्वदेश में शिल्प को उन्नत करने वा अंग्रेजी माल के बहिष्कार की तब ये मत पंथ सोच भी न सकते थे।

ऋषि के जीवनकाल में ही आर्यों का राष्ट्रीय स्वर कितना ऊंचा हो चुका था और आर्य लोग देश में कितनी राजनैतिक गर्मी पैदा कर चुके थे इसका प्रमाण एक कविता के निम्न पद हैं :-

यह माना कि तुम पहले लंदन हो साहब,
जमाना तुम्हारा हकूमत तुम्हारी।
मगर खैर अब वक्त वह आ गया है,
चलेगी न कुछ भी शरारत तुम्हारी।।*

'आर्य दर्पण' में ऐसी बहुत सामग्री छपती थी। कोई सज्जन कह सकता है कि इस पत्रिका के सम्पादक मुन्शी बखतावरसिंह को तो ऋषि दयानन्द ने उनकी भूलों के कारण वैदिक यन्त्रालय से पृथक् किया था। उनका आर्यसमाज से क्या सम्बन्ध ?

भूल तो अल्पज्ञजीव से सम्भव है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि मुन्शी जी के मन से वैदिक विचारधारा ही निकल गई। वह सदा अपने पत्र में वैदिक विचार देते रहे। आर्यसमाज शाहजहांपुर के मन्दिर के निर्माण के लिए आपने पर्याप्त दान दिया। 1904 ई0 में आपके पुत्र का विवाह आर्य विधि से हुआ अतः मुन्शी जी के पत्र को हम आर्यसमाज का ही पत्र मानेंगे, यह ऋषि का ही प्रभाव था।

ऋषि के बाद उनके सुशिष्य पं0 गुरुदत्त विद्यार्थी ने सरकारी नौकरी पर लात मारकर भारतीयों के सामने एक आदर्श रखा। वह प्रथम भारतीय थे जो राजकीय कालेज, लाहौर के प्राध्यापक बने थे।

* द्रष्टव्य 'आर्य दर्पण', शाहजहांपुर, पृ0 104 मई सन् 1886 ई0

विदेशी शासन की जेल में जाने का भय भी जैसा आर्य वीरों ने भगाया उसका उदाहरण न मिलेगा। धार्मिक कारणों से ही सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी जेल गये थे परन्तु सुधार या परोपकार के लिए आन्दोलन करते हुए जेल की यातनाएं सहनेवाले प्रथम भारतीय आर्यसमाज के दूसरे रक्तसाक्षी चिरंजीवाल थे जो 1888 ई0 में जेल में ठूंसे गये।

लोकमान्य तिलक को 1908 ई0 से पूर्व ही देशहित में जेल यात्राओं का अनुभव हो गया। 1908 ई0 से पूर्व ही दो बार जब दो अभियोग में शासन ने उन्हें दोषी ठहराकर बंदी बनाया तो महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानंद जी) प्रथम व एकमेव भारतीय पत्रकार थे जिन्होंने लोकमान्य को सर्वथा निर्दोष बताते हुए अंग्रेजी न्यायालय के निर्णय पर तीखी टिप्पणियां लिखकर Contempt of Court (न्यायालय के अपमान) का अपराध किया। यह एक बडा साहसिक कार्य था जो शूरता की शान श्रद्धानंद जैसी विभूति ही करके दिखा सकती थी। महाराज की वे ऐतिहासिक टिप्पणियां हमारे पुस्तकालय में सुरक्षित है।

जब कन्हाईलाल दत्त के अभियोग में गोस्वामी ने कायरता दिखाई या सरकारी साक्षी बन गया तो मुंशीराम जी ने उसे 'अधम' लिखा था। यह भी न्यायालय का अपमान था।

पटियाला के आर्यों पर जब अभियोग चला तो शासन ने उन्हें भी राजद्रोह सिद्ध करने का यत्न किया था। तब नरवाना के ला0 दिलीपचन्द जी के घर से लाला लाजपतराय और इंग्लैण्ड की संसद के एक सदस्य हार्डी का एक चित्र मिला था। वे चित्र मैंने 1958 ई0 में स्वामी ओमानन्द जी को दिये थे। श्री लाला दिलीपचन्द जी को अन्य आर्यों के साथ बन्दी बना लिया गया। वह इतने बलवान् शरीर के थे कि उन्हें हथकड़ी ही पूरी न आई।

सेना में आर्यो पर तब ऐसी वक्र दृष्टि रखी गई कि जाटों को

सेना में यज्ञोपवीत उतारने की आज्ञा मिली। उ0 प्र0 के आर्य जाट नेता हुकमसिंह जी ने जाट सभा द्वारा इसका कडा विरोध किया। तेजस्वी श्रद्धानंद के आर्यवीर जाट सैनिकों ने गर्दनें कटाने के लिए तैयार कर लीं। यज्ञोपवीत उनके न उतारे जा सके। इस शूरता से सैनिकों में स्वाधीनता या राष्ट्रीयता का प्रेम बढ़ा।

1919 ई0 में पंजाब में डायर का डर था। आतंक था। तब आर्य पुरुषो या देवियों की वीरगाथा कहां से लिखे और कहां बन्द करें? किसकी लिखें, किसकी न लिखें। पति के शव को जलियांवाला बाग से लानेवाली आर्य ललना रत्नदेवी तो अभी कल तक जीवित थीं। चौधरी रामभजदत्त, डा0 गोकुलचन्द नारंग, महाशय कृष्ण, महाशय रत्नचन्द, डा0 सत्यपाल, चौ0 बुग्गा आदि आर्य तो जेलों में थे ही। शान्त स्वामी अनुभवानन्द जी सरीखे आर्य सन्यासी भी लाहौर मे वहीं काल कोठरी में थे जहां चौ0 रामभजदत्त थे।

डा0 सत्यपाल तो काल कोठरी में थे ही उनके वृद्ध पिता जी को भी स्वाधीनता के लिए जेल की यातनाएं दी गई। आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध कवि या भजनोपदेशक उ0 प्र0 के श्री चन्द्र कवि को पकड़कर पंजाब मे लाया गया। तब सब देशभक्तों की सुधि लेनेवाले स्वामी श्रद्धानद थे। सब देशभक्तों के परिवारों की आपने रक्षा की। चन्द्र कवि जी ने स्वयं ऐसा लिखा है।

अंग्रेजी ट्रिब्यून के सम्पादक श्री बाबू काली प्रसन्न चैटर्जी भी मार्शल लॉ में बन्दी बनाए गये। वह भी एक प्रमुख आर्य नेता थे। वे आर्यसमाज के मंच का एक श्रृंगार माने जाते थे। काली बाबू के वस्त्र उतारकर उन्हें एक जांघिया व साधारण कुर्त्ता दिया गया। उन्होने कहा कि मैं इनसे नहाऊंगा कैसे? उन्हें उत्तर मिला और वस्त्र नहीं है। इसका अर्थ स्पष्ट है कि नगे नहाओ।

एक विशेष बात :- स्वामी अनुभवानन्द जी का दोष क्या था? उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर भाषण दिया था। यह उनका

अपराध था।* आज स्वामी अनुभवानन्द होते तो कुछ सिरफिरे सत्ता के भूखे तथाकथित देशभक्त उन्हे साम्प्रदायिक घोषित करते। लोहे के पिंजरे बनवाकर इन लोगों को जेलो में सडने या मरने के लिए रखा गया।

जेल में चौ0 रामभजदत्त जी के कहने पर महाशय रत्नचन्द जी आदि भजन गाया करते थे। एक दिन भजन गाने पर जमादार ने एक देशभक्त को ऐसी भद्दी गालियां दी कि चौ0 रामभजदत्त की आंखों से अश्रु गिरने लगे।

जब लाला हरकिशनलाल, चौ0 रामभजदत्त, डा0 गोकुलचन्द सरदार मोतासिंह या महाशय मथुराप्रसाद एव लाला दुनिचन्द आदि को मार्शल लॉ कोर्ट में पेश किया गया तो उन पर एक दोष सम्राट के विरुद्ध युद्ध करने का लगाया गया। वकीलों को वकालत करने का साहस न होता था। कोई वकील आना भी चाहे तो अंग्रेज आने ही न देता था। कई बेकार वकील मुंहमांगी फीस मांगते थे।

ऐसी स्थिति में आर्यसमाज के एक प्रख्यात नेता लाला गंगाराम जी स्यालकोट वाले, चौ0 रामभजदत्त जी की वकालत के लिए अपने-आप लाहौर के लिए चल पडे। उन्हें वज़ीराबाद से आगे रेल पर जाने की आज्ञा न दी गई। वह वहां से तांगा पर लाहौर पहुंच गये। जब लोग वकीलों के पीछे मारे-मारे फिरते थे एक आर्य वकील ने घरबार छोडकर चौ0 रामभजदत्त की वकालत के लिए अपने आपको पेश किया।**

आचार्यप्रवर ने अपनी पुस्तक में स्वाधीनता संग्राम के सब युग लिखे हैं। मैं संक्षेप से कुछ विशेष बातें और लेता हूं।

जब ठाकुर रोशनसिंह को प्रयाग मे फांसी दी गई तो श्री विश्वप्रकाश जी (प0 गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के द्वितीय सुपुत्र) उनका दाहकर्म करवाने के लिये आगे आए। 'काकोरी के शहीद' पुस्तक जो अंग्रेज ने जब्त की उसमे यह तथ्य स्पष्ट दिया गया है कि ठाकुर

* पजाब के पोलिटकल लीडरों की जेल की कहानी (उर्दू) पृ0 81,

** द्रष्टव्य पजाब के पोलिटिकल लीडरो की जेल की कहानी, पृ0 33-34,

रोशनसिंह का वैदिक रीति से अन्तिम संस्कार किया गया। अन्त समय में वह प्रणव का जप करते हुये फांसी के झूले पर झूल गये। इसी पुस्तक में लिखा है कि राजेन्द्र लाहडी के शव के साथ गोरखपुर के अनेक आर्य पुरुष गये और धूमधाम से वैदिक रीति से उनका दाहकर्म किया गया। ठाकुर रोशनसिंह के दाहकर्म की बात श्री विश्वप्रकाश जी ने सगर्व मुझे सुनाई थी।

1929 ई0 मे एक पठान युवक ने लाहौर मे पंजाब के गवर्नर को गोली से उडा दिया। वह फांसी पर चढाया गया। उस युवक का नाम था हरिकिशन। वीर हरिकिशन एक दृढ आर्यसमाजी परिवार का युवक था। यह परिवार कैसा आर्यसमाजी है, इसका पता इस बात से लगता है कि आर्यसंस्कार दिलाने के लिए हरिकिशन जी के पिता श्री गुरदास जी ने अपने पुत्रों को फिरोजपुर मे शिक्षा दिलाई।

इस परिवार में जन्मा एक और युवक भक्तराम (हरिकिशन का भाई) अब भी जीवित है। यही वह साहसी युवक है जिसने मुसलमान पठान के भेस में नेता जी सुभाषचन्द्र बोस को भारत से बाहर बर्लिन तक पहुंचाया। नेता जी के देश से भागकर अफग़ानिस्तान व जर्मनी जाने की कहानी कई बार पत्रों में छप चुकी है। आप आर्यकुमार सभा में मंत्री भी रहे।

इसी घर के एक और युवक ईश्वरदास के पांव पर अब 70-72 वर्ष की आयु में भी बेडियों के चिन्ह देखे जा सकते हैं। मुझे ईश्वरदास जी तलवाड़ ने कहा, "हमने आर्यसमाजी विचारों के कारण देश की स्वाधीनता की लड़ाई में बढ़चढ कर भाग लिया। हमारे पिता जी का आदेश व उपदेश यही था।"

मैं और क्या लिखूं आर्यसमाज के जन्म से लेकर श्री पं0 नरेन्द्र जी हैदराबाद व नारायणराव पवार सरीखे अनेक दिलजलो की प्रेरणाप्रद घटनाएं इस ग्रंथ मे आचार्य जी ने दी हैं। यह इतिहासकारों के लिए एक सन्दर्भग्रंथ रहेगा। इतिहास के वे स्वर्णिम पृष्ठ जो पेटार्थी इतिहास लेखको ने दबा रखे थे, ग्रंथ लेखक ने इतिहास प्रेमियों के सामने रखकर बड़ा उपकार किया है।

परिशिष्ट-3

सहायक-साहित्य सूची

1. आर्यसमाज का इतिहास, भाग 1-2 (ले० श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति)
2. आर्यसमाज का इतिहास, भाग 1-4 (ले० डा० सत्यकेतु विद्यालंकार)
3 मेरे पिता (ले० इन्द्र विद्यावाचस्पति)
4. भारतीय-स्वतन्त्रता-संग्राम का इतिहास (ले० इन्द्र विद्यावाचस्पति)
5. मैं इनका ऋणी हूं (ले० इन्द्र विद्यावाचस्पति)
6. सिंहावलोकन भाग 1-3 (ले० यशपाल)
7 भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास (ले० मन्मथनाथ गुप्त जीवित क्रातिकारी)
8 भारत के क्रांतिकारी (ले० मन्मथनाथ गुप्त)
9 ऋग्वेदभाष्य (ले० महर्षि दयानन्द सरस्वती)
10. यजुर्वेदभाष्य (ले० महर्षि दयानन्द सरस्वती)
11 सत्यार्थप्रकाश (ले० महर्षि दयानन्द सरस्वती)
12. आर्याभिविनय (ले० महर्षि दयानन्द सरस्वती)
13. राष्ट्रवादी दयानन्द (ले० सत्यदेव विद्यालंकार)
14. जीवन संघर्ष (ले० सत्यदेव विद्यालंकार)
15. लाला लाजपतराय (ले० अलगुराय शास्त्री)
16. आत्मकथा (अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल)
17. कल्याणमार्ग का पथिक (ले० स्वा० श्रद्धानन्द महाराज)
18 हमारा राजस्थान (ले० पृथ्वीसिंह महता विद्यालंकार)
19 वे क्रांति के दिन (ले० श्री महावीर त्यागी)
20 मेरी कौन सुनेगा (ले० श्री महावीर त्यागी)
21. बलिदानांक (सम्पादक आचार्य भगवान्देव जी)
22. आजीवन कारावास भाग 1-3 (ले० स्वातन्त्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर)
23 गदरपार्टी का इतिहास (ले० प्रीतम सिंह पंछी)
24 बन्दी जीवन (शचीन्द्रनाथ सान्याल)

25 चन्द्रशेखर आजाद (ले० पूर्णचन्द 'सनक')
26 अठारह सौ सत्तावन (ले० श्रीनिवास बालाजीराव हर्डीकर)
27 आर्यसमाज के त्यागी तपस्वी सन्त
(ले० प्रि० दीवानचन्द एम० ए०)
28. स्वामी विरजानन्द चरित (ले० स्वा० वेदानन्द सरस्वती)
29 वीर सन्यासी (ले० प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु)
30. विदेशों में एक साल (ले० स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी महाराज)
31. जीवन ज्योति (ले० श्री खण्डेराव तथा श्री कृष्णदत्त जी)
32 युगद्रष्टा भगतसिह और उनके मृत्युंजय पुरखे
(ले० श्रीमती वीरेन्द्र सिन्धु)
33. अमर शहीद चन्द्रशेखर आज़ाद भाग 1-3
(ले० विश्वनाथ वैशम्पायन)
34 कांग्रेस का इतिहास भाग 1-3 (ले पट्टाभि सीता रमैयया)
35. आर्य प्रतिनिधिसभा उत्तर प्रदेश का इतिहास
(ले० शिवदयालु जी)
36 न्यायकुसुमांजलि (भाष्यकार जगदीश शास्त्री दर्शनाचार्य)
37 शहीद के कलम से (ले० शुक्रराज शास्त्री)
38 भारत सन् 57 के बाद (ले० शंकरलाल तिवारी)
39 हैदराबाद का स्वाधीनता सघर्ष और आर्यसमाज
(ले० पं० नरेन्द्र जी)
40. महर्षि दयानन्द संसार की नज़रों में (ले० उलफतराय)
41 जिनका मैं ऋणी हू (ले० राहुल सांकृत्यायन)
42 रामकृष्ण परमहंस का जीवन (ले० संत रोमां रोलां)
43 भारतीय लोक समिति के प्रथम वार्षिक अधिवेशन का अध्यक्षीय भाषण
44. आत्मानंद-जीवन ज्योति (ले० वेदानन्द वेदवागीश)
45. क्रांतिपथ का पथिक (ले० पृथ्वीसिंह आज़ाद)
46. देहली बम रहस्योद्घाटन (ले० बलराज भल्ला)
47. 1857 और स्वामी दयानन्द (ले० वैद्य रामगोपाल शास्त्री)
48 1857 में स्वामी दयानन्द जी का योगदान (ले० ज्ञानी पिण्डीदास)
49. भारतीय राष्ट्रवाद एवं आर्यसमाज आंदोलन
(ले० डा० विजेन्द्रपाल सिंह)